



अ नमः सिद्धेभ्यः।

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला ।

६---८.

श्रीमद्गोजकविविरचिता

द्रव्यानुयोगतर्कणा।

व्याकरणाचार्यपण्डितठाकुरप्रसाद्शर्मप्रणीत-हिन्दीभाषानुवादसहिता।



सा च

स्वर्गीय शा० भारमल मेघजी इत्यभिधानस्य स्मरणार्थे मुम्बापुरीस्थ-श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलस्वत्वाधिकारिभिः

> निर्णयसागरास्थमुद्रणालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीता ।

> > श्रीवीरनिर्वाणसंवत् २४३२.

प्रकाशकः - मुम्बयीस्थ-श्रीपरमञ्जनप्रभावक-मण्डलः ।

शाः जेठाभाई दामजी तरफथी पोताना स्वर्गस्थ काका श्रीभारमल मेघजीना स्मरणार्थ

श्रीमद्भोजकविरचिता

द्रव्यानुयोगतर्कणा

नामक

परमोत्तम ग्रन्थन् भाषानुवाद तैयार कराववामां

अने

छपाववामा सहायतारूपे

रु. ३५०) सार्डीत्रणसोनी रकम

रायचंद्रजैनशास्त्रमालाने

अर्पण कीधी छे.

श्री परमात्मनं नमः।

प्रस्तावनाः

विदित हो कि अनादिकालीन सर्वात्तम जैन धर्ममें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रयके समुदायको मोक्षकी प्राप्तिक प्रति कारणता है। इसमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है। क्योंकि, उसके विना ज्ञानको और सम्यग्जानके विना चारित्रको सम्यक् पदकी प्राप्ति नहीं होती है। वह सम्यग्दर्शन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन षट् द्रव्योंके यथार्थ खरूपको ज्ञानकर उसमें श्रद्धान (विश्वास) करनेसे होता है। अतः सिद्ध हुआ कि मोक्षाभिलापी जनोंको सर्वतः प्रथम षट् द्रव्योंका ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। वह ज्ञान अन्तिम द्रव्यानुयोगसे होता है। इसी कारण पूज्य पुरुषोंने द्रव्यानुयोगके ज्ञानकी प्रशंसा मुक्तकंठ होकर की है और इसके अभ्यास करनेवालोंको उत्तम कहा है॥

प्राचीन आचार्यों और बुद्धिमान् गृहस्थरतोंने अपरिभित्त आपत्तियों और परिश्रमोंको सहन करके परोपकारबुद्धिसे इस विषयक सहस्रों प्रन्थोंकी रचना की थी। परन्तु विकरात कलिकालके प्रभावमें जीवोंके आयु, बल, बुद्धि तथा सद्धर्मकी श्रद्धा आदिमें प्रति समय होती हुई मंदता, प्रमाद और विप्याभिलापिताकी बुद्धि एवं दुष्टोंकी दुष्टता आदिसे अनके प्रन्थ तो निरादरपूर्वक नष्ट होगये और बहुतसे तल्लाकोंदार कुफल और मूर्खोंके अधिकारमें रहनेसे जीर्ण हो रहे हैं, जिनका कि सूचीके विना पता भी नहीं लगता। यह अत्यन्त खंदका विषय है।

तथापि दिगम्बर संप्रदायमें समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश, राजवार्त्तिक, श्लोकवार्त्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्रोद्य, अष्टमहस्री, आप्तपिक्षा, पंचाध्यायी सटीक, द्रव्यसंग्रह, नयचक, सप्तमंगतंरिंगणी आदि और श्वेतीम्बर संप्रदायमें संमितित्रक, पोडशक, स्याद्वाद-रत्नाकरावतारिका, स्याद्वादमंजरी, तत्त्वार्थाधिगमभाष्य आदि अनेक प्रन्थ जो प्रचारमें आरहे हैं, उनसे संतोष है।

श्वेताम्बर संप्रदायके उक्त ग्रन्थोंमं यथार्थ नामका धारक यह " द्रव्यानुयोगतर्कणा " नामक शास्त्र भी एक है । इसके कर्त्ता तेपोगच्छगगनमण्डलमार्त्तण्ड श्रीविनीतसागरजीके मुख्य शिष्य द्रव्यविज्ञाननागर सकलगुणसागर श्रीभोजसागरजी हैं। उक्त महात्माने अपने अवतारसे किस वसुधामंडलको मंडित किया यह शीव्रतामं निश्चित न होसका। समयके विषयमें वाचकमुख्य श्रीवैशोविजयोपाध्यायजीविरचित्त द्रव्यगुणपर्याय भाषाविवरणके अनुसार इस प्रकृत शास्त्रका संकलन करनेसे अनुमान किया जाता है कि विक्रम सं० १५०० के पीछे किसी समय इन्होंने यह ग्रन्थ रचा है॥

⁽१) श्वेताम्बर संप्रदायके प्रचलित ग्रन्थोंके विशेष नाम उपस्थित नहीं थे, इस लिये थोड़ेसेही नाम दि-खलाये गये हैं।

⁽२) तपोगच्छकी एक दो पत्रोंकी पट्टावर्ल देखी, उसमें भी इनका तथा इनके गुरुजनोंका वर्णन नहीं मिला।

⁽३) इनके नामके स्मरणार्थ काशीमें एक विशास वितास्वरपाठशाला है।

उक्त प्रन्थमें शास्त्रकार महोदयने सुगमतासे मन्दबुद्धि जीवोंको द्रव्यज्ञान होनेके अर्थ "गुणप-र्थयबह्रव्यम्" इस महाशास्त्र तत्त्वार्थस्त्रके अनुकूठ द्रव्य, गुण और पर्यायोंका ही विशेष वर्णन किया है और प्रसंगवश 'स्पादस्ति ' 'स्पान्नास्ति ' आदि सप्त भंगोंका और दिगम्बराचार्यवर्य श्रीदेवसेन-स्वामीविरचित नयचक्रके आधारसे नय, उपनय तथा मूलनयोंका भी विस्तारसे वर्णन किया है; जो कि विषयस्चीसे विदित होगा।

वर्त्तमान संस्कृतानिभन्न बुद्धिमान् जीवोंको अतिशय ज्ञानप्रद इस प्रन्थद्वारा तेरह लाख जैनि-योंमेंसे प्रायः तेरह जैनियोंको भी परिपूर्ण लाभ नहीं मिलता हुआ देखकर यथार्थ नामधारक "श्रीपर-मश्रुतप्रभावकमंडल बंबई" के प्रबन्धक चतुर महाशयोंने इस शास्त्रको व्याकरणाचार्य श्रीठाकुर-प्रसाद्जीशर्मा द्विवेदीके हस्तमें अनुवाद करनेके अर्थ प्रदान किया और उक्त पंडितजीने भी इसका अनुवाद करके उनके मनोरथको सफल कर दिया। परन्तु अनुवादक महाशयके स्थानान्तर होजानेसे इसके संशोधनका भार मंडलके व्यवस्थापक महाशयने मुझको दिया, जो कि मैंने यथाशक्ति किया है। इसमें यदि कोई भूल हुई हो तो पाठकगण क्षमा करें।

इस शास्त्रके संशोधनमें जयपुरस्थ संवेगी साधुवर श्रीशिवरामजी महाराजने अनेक प्रकारकी स-हायता दी है, अतः मैं उनका कृतज्ञ हूं।

अन्तमें परमश्रुतप्रभावकमंडलके सभासदों और व्यवस्थापक शा० रेवाशंकरजी जगजीवनजी जोंहरीको धन्यवाद देता हूं कि जो इस सच्चे धर्मकार्थमें परिश्रम कर जगत्का उपकार कर रहे हैं ॥ इत्यलम् ।

स्थान जयपुर ग्रुभमिति कार्त्तिक वदि १२ रविवार सं० १९६३ विकम. संशोधक और निवेदक विनयावनत पं० जवाहरलाल साहित्यशास्त्री दि० जैन. ओं नमः सिद्धेभ्यः।

उपोद्धात: ।

विदितमस्तु समस्तवस्तुवेदकवीतरागचरणशरणमासेदुषामाशोदितविश्वासञ्जषां हेयोपादेयविदुषां विदुषां प्रति संप्रति यद्धि समीचीनतायाः प्राचीनतायाश्च निदर्शने जैनदर्शने सम्यग्दर्शनज्ञानचा-रित्रमयरक्षत्रयसमुद्रयमेव निखिलकर्मनिर्मोक्षणलक्षणस्य मोक्षस्य कारणं विश्वतमिति । तत्रापि च तत्त्वा-धिश्वद्धानं सम्यग्दर्शनमिति महाशास्त्रतत्त्वार्थाधिगमस्त्रानुकूलं जीवाजीवासवबन्धसंवरनिर्जरामो-क्षाख्यानां सप्ततत्त्वानां स्वरूपानुरूपश्रद्धानलक्षणं सम्यग्दर्शनं प्रकृष्टतरं, तेन विना ज्ञानस्य सज्ज्ञानमन्तरा चारित्रस्यासमीचीनत्वाच । उक्तेषु सप्ततत्त्वेषु जीवाजीवौ मुख्यतमौ—अपराणि त्वनयोः संयोगजनितानीति च । एतयोर्जावस्त्वेक एव, अजीवः पुनर्धमीधर्माकाशकालपुद्रलभेदात्पञ्चधा । एवमेकेन जीवेन सार्द्धमजीवस्य पञ्चप्रकाराणां मेलने कृते निष्पन्ना या षट्संख्या सेव षड्दव्यत्वेन प्रपन्ना सर्वज्ञैः । द्रव्यलक्षणं चाखिलमतविलक्षणं गुणपर्ययवत्त्वमतः कृत्वा गुणपर्यायसमन्वितानां षणणां द्रव्याणां परिज्ञानमेव मोक्षं प्रत्यत्यन्तोपयोगीति पर्यवसन्तम् ॥

अत एव च विहितात्तरोद्रदुर्ध्यानद्वयिवयोगानां श्रेयोविनियोगानां प्रथमकरणचरणद्रव्याभिरूय-चतुरनुयोगानां मध्ये स्वाद्वादभानुप्रखरकरप्रकरदूरीकृतेकान्तध्वान्तं शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मस्वरूप-निरूपणसुधासंधृतमिथ्यात्वमलमलिमनव्यजनस्वान्तं नितान्तनिचितपरमशुद्धोपयोगं चरमद्रव्यानुयोगं विशेषेण समनुमनन्ति परिशीलयन्ति चात्मज्ञानप्रसेदिवांसो विद्वांसः।

दुःषमारजनिजनितप्रतिसमयविवर्द्धमाननिनिडान्धकारप्रचारसंजातैर्जनतामितमान्धप्रमादानिष्टजनदौ-ष्ट्यादिकारणजातैर्निष्टे नष्टप्राये जीणितेऽनवधारितसत्त्वे च कलाकलापालयनिखिलनिलम्पपत्यालापसं -स्तुतसर्वज्ञकल्पानल्पयतिपतिपरिकल्पितैतद्विषयकसिद्धान्तसंघाते संतिष्ठन्ते किलाधुनापि सुकृतिनां सुकृ-तैर्दिगम्बरश्वेताम्बराख्ययोरुभयोरेव संप्रदाययोर्मध्ये शतशो ग्रन्था इति संतोषास्पदमिदम् ।

तेषु चैषा यथार्थनामा द्रव्यानुयोगतर्कणाप्यन्यतमा । अस्या विधाता तपोगच्छगगनभास्करश्रीविनीतसागरिष्रयाप्रशिष्यो द्रव्यविज्ञाननागरः सद्घणसागरः श्रीभोजसागरः स्वजनुषा कतमं वसुधामण्डलं
मण्डयामासेति निर्णेतुं नो शक्तुनः । समयश्रास्य दुर्वारमारमदमर्दकश्रीहेमचन्द्रस्रीश्वरविनिर्मितायाः
स्याद्वादपरिच्छेदिकाया अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिकाया निरवद्यपद्यानां स्वप्रवन्धे विनियोजनात्—
श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायमतिष्ठकाविहितद्रव्यगुणपर्यायभाषाविवरणोदितार्थमनुसृत्येतद्रन्थसंकलनाच विक्रमार्कपञ्चदशशताब्द्यत्रसेव भवेदित्यनुमीयते ।

विज्ञजनसंस्तुतेऽस्मिन् प्रस्तुते प्रन्थे गुणपर्ययवद्गव्यमितिस्त्रोदितलक्षणानुकूलं जीवाजीवादि-षड्द्रव्याणां तद्वर्तिनां गुणपर्यायाणां च स्वरूपं मन्दमितमनुजावबोधनार्थमनितिविस्तरेण सरलसं-स्कृतेन सशास्त्रप्रमाणं सयोक्तिकं च प्रदर्शितं प्रन्थकर्ता । प्रसंगाचानेकान्तमतजीवनप्रायाणां स्याद्स्तिः स्याक्नास्तीत्यादिरूपाणां सप्तभङ्गानां दिगम्बराचार्यवर्यश्रीदेवसेनपादविनिर्मितनयचक्राधारतया नयो-पनयमूळनयानामन्येषामपि बहूनां विषयाणां निरूपणं कृतमस्तीत्येतत्सर्वममे विषयस्चीतो ज्ञातं मविष्यति ।

सर्विहितविहितप्रयत्नस्य चास्य शास्ररत्नस्य दुष्प्राप्यत्वात्सर्वजनसौकर्याय श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलसत्त्वाधिकारिभी रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाद्वारा मुद्रापणे मनोरथं व्यधायि । उक्तमण्डलव्यवस्थापकेन श्रीरेवाशंकर जगजीवनाभिषेन श्रेष्ठिवरेण व्याकरणाचार्यपण्डितठाकुरप्रसादशमिद्विवेदिभिरनुवादं कारियत्वा सत्स्विप बहुरत्नायां वसुन्धरायां मत्तोऽप्यधिकविद्वत्सु मव्यवाध्यारोपितोऽस्य संशोधनभारः । प्रेषिते चोमे पुस्तके । एकं च प्रायः शुद्धं पुस्तकं जयपुरस्थसंविगिसाधुप्रवरश्रीशिवरामजिदनुत्रहेण लब्धं मया। एवं ममुपगते पुस्तकत्रये तदनुसारं यथामित सावधानतया नातिशीघ्रतया च संशोधनमकारि । यत्र तत्र शङ्कास्थलेषु च माधुश्रीशिवरामजीप्रभृतिभिरिप साहाव्यमवापि । तथापि संप्रति 'सर्वः सर्वे न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कश्चन' इति न्यायेन केवलिश्रुतकेवलिनमन्तरा सर्वेषामेवागाधागमवाधा प्रस्वलनसंभवान्मदीयप्रमादाज्ञानाधिमुद्रणकालीनैरपरेश्च कारणकलापैर्मूले यास्रुटयो भवेयुस्तासां शोधनं कृत्वा तद्विषयकसूचनया मामनुगृह्णीयुस्तत्रभवन्तः सज्जनविद्वद्वराः येन द्विरावृत्तौ 'ता न स्युः क्षन्तव्यश्चाज्ञानादिजनितो ममापराध इति मुहुर्मुहुः प्रार्थयेऽहमिति दिक् ।

संशोधको निवेदकथ विज्ञानुचरो जयपुरस्थः साहित्यशास्त्रीत्युपाधिधारी जवाहरलालो दिगम्बरीयजैनः।

श्रीः ।

अथ विषयसूची ।

~ 1. 8x.42 ~~

वि०	संख्या. विषय.	प्रा॰पृष्ठाङ्क	. সা৹	श्लो•	वि ० सं ख्या •	विषय.	प्रा॰पृष्ठाङ्क.	प्रा०श्लो०
٩	टीकामङ्गलाचरण.	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	9	۹ ٔ	२३ जिस द्रव	प के भेद है उस	ीके रूपान्तरक <u>े</u>	Í
	सूत्रमङ्गलाचरण.			٩.	प्राप्त ह	होनेपर अभेद ह	हो जाता है	
	द्रव्यानुयोगकी प्रशंसा.			3	और इ	इसरीतिसे सैकड़	ों नयोंका	
	उपसंहार और प्रथमाध्य			6,	उदय	होता है, इस प्रव	घर निरूपण.	४९ ८
	द्रव्यकालक्षण.			٩	२४ क्षेत्र आ	दिसे सप्तभंगोंकी	ो उत्पत्ति औ र	
	गुण तथा पर्यायका संक्षि			۶	उः	कावर्णन	***	५० ९
	द्रव्यके साथ गुण और प		98	३	२५ उपसंहार	: और च तुर्थ अ	मध्यायकी	
	सामान्यका निरूपण.		,,	8.		माप्ति. •••		
	शक्तिरूप गुणका निषेध			90	२६ प्रमाण व	गार नयके विष	यका निरूपण.	५७ १
	गुण और पर्यायकी एक			99		नयके विषयका		
99	पर्यायसे भिन्न गुण मानने	वालोंके प्रति				क्त नयके विषय		
	दूषण ्		२२	9 3	२९ दोनों नय	। मुख्यता तथा	गौणतासे भेद	
93	पर्यायका कारण गुणको र					अभेदका निरूप		
	प्रति दूषण.		२२	45	यह व	ર્ળન		६१ ४
93	एकानेकम्बरूप तथा आध			}		एकही विषयको		
	भेद कल्पना.			98	मा	ननेवालोंके प्रति	दूषण.	६२ ५
	आधाराधेयभावका दृष्टान		२६	م در ا	३१ दिगम्बरम	मत जाननेके वि	ष्ठेये उनके	
94	उपसंहार और द्वितीया	ध्यायकी		!		अ नुसार नयों		
	समाप्ति		२७	95	उपनय	ोंके कथनकी प्र	ातिज्ञा	६४ ७
٩ ६	द्रव्यादिकमें सर्वेथा भेद			ĺ	३२ नय, उप	नय और मूलन	योंकी संख्या.	६५ ८
	प्रति दृष्ण			٩		नयके दश ५०		६६ ९.
१७	यदि कार्योत्पत्तिके पहले			1	३४ ज्ञानकी प्र	शिंसा और प	ह्माध्यायकी	
	है तो कार्य क्यों नहीं			;	स्र	गप्ति	•••	७६ २०
	् इस शंकाका समाधा				•	नतसे भी सत्यव		
	नैयायिकका मत और उ		३६	٩,		ता चाहिये, य		७८ १
98	ज्ञानमें सर्वथा अविद्यमान			i		क नयके ६ भे		७९ २
	भान माननेवालोंके प्र	ति दृषण.	३ ८			के ३ भेदोंका ब		८४ ९
२०	उपसंहार और तृतीयाध	यायकी			•	प्रके दो सेदोंका		८९ १२
	समाप्ति		४१	94!	३९ व्यवहारन	ायके दो भेदोंक	ा कथन.	९१ १३
२१	''एक द्रव्यमें परस्पर विरे	ोधी भेद और	•	ì		तयके दो भेदोंव		
	अभेद ये दोनों धर्म न	हीं र ह सकते''	<u> i</u>	[=	और समभिरू		
	इस शंकाका निराकरण	ग	४३	9		नयका वर्णन अं		i
२ २	जहां भेद है, वहां अभेव	द नहीं रहता	;	!		दोंकी सं ख्या		९५ १६
	इस शंकाका निरा	करण	४७	ę !	४३ उपसंहार	(और षष्टाध्या	यकी समाप्ति.	९७ १७

वि॰संख्या. विषय. प्रा॰पृष्ठाङ्क. प्रा॰श्हो॰	वि॰संख्या. विषय. प्रा॰पृष्ठाङ्क. प्रा॰ऋो॰
४४ सद्भूत व्यवहार उपनयका निरूपण. ९८ १	६८ षट् द्रव्योंके नाम १६५ ३
४५ असद्भत व्यवहार उपनयका कथन. १०० ४	६९ धर्म द्रव्यका वर्णन १६६ ४
४६ उपचरित असद्भृत उपनयका वर्णन. १०८ १३	७० अधर्म द्रव्यका कथन • • ९६७ ५
४७ उपसंहार भौर सप्तमाध्यायकी	७९ धर्म द्रव्यमें प्रमाण १६८ ६
समाप्ति ११० १६	७२ अधर्म द्रव्यमें प्रमाण १६९ ७
४८ दो मूलनयों में प्रथम निश्चयनयका	७३ आकाश द्रव्यका निरूपण १७० ८
कथन १११ १	७४ काल द्रव्यका वर्णन १७३ १०
४९ द्वितीय व्यवहारनयका निरूपण. ११२ ३	७५ पुद्गल और जीव द्रव्यका वर्णन. १८२ २०
५० इन नय, उपनय और मूलनयोंका	७६ उपसंहार और दशमाध्यायकी
वर्णन दिगम्बरीय नय-चक्रमें	समाप्ति १८३ २१
देवसेनजीने इसीप्रकार किया है,	७७ गुणनिरूपणकी प्रतिज्ञाः १८४ १
यह कथनः ११५ ८	७८ दश सामान्य गुणोंका निरूपण. १८५ २
५१ इस नयविचारमें दिगम्बर और श्वेताम्ब-	७९ विशेष गुणोंका वर्णन १८९ ७
रोंके अर्थभेद नहीं, यह वर्णनः ११६ ९	८० एकादश सामान्य स्वभावींका कथन.१९३ १३
५२ दिगम्बर नव नय मानते हैं, इसका	८१ उपसंहार और ११ वं अध्यायकी
खंडनः १९७ १०	समाप्तिः २०२ २७
५३ द्रव्यार्थिकके दश भेद उपलक्षण	८२ दश विशेष स्त्रमायोंका वर्णन. २०४ १
मात्र हैं, यह वर्णन १२७ २०	८३ किस २ द्रव्यमें कितने २ खभाव है,
५४ उपनय भी व्यवहारमें ही अन्तर्गत हो	यह कथन २१ १ १२
जाते हैं १२८ २१	८४ उपसंहार और १२वे अध्यायकी
५५ निश्चय और व्यवहारमें जब एककी	समाप्ति २१२ १५
मुख्यता रहती है, तब दूसरेकी	८५ कौन २ से स्त्रभाव किस २ नयके
गौणता रहती है; यह निरूपण. ,, २२	मतसे हैं, यह वर्णन २१३ १
५६ निश्चय तत्त्वार्थको और व्यवहार लोको-	८६ गुण और पर्यायका लक्षण २२१ १७
क्तिको कहता है १३० २३	८७ उपसंहार और १३ वें अध्यायकी
५७ निश्चयका विषय १३१ २४	समाप्ति २२२ १८
५८ व्यवहारका विषय १३२ २५	८८ पर्यायका निरूपण २२३ १
५९ उक्त कथनका संक्षेप १३३ २६	८९ गुणके विकार ही पर्याय हैं, इस मतका
६० अष्टमाध्यायकी समाप्तिः १३४ २७	खंडन २३२ १७
६१ एकही पदार्थ उत्पाद, व्यय और प्रौव्य इन तीन लक्षणोंसहित है,	९० उपसंहार और १४ वें अध्यायकी
गर निरूपण	समाप्तिः २३३ १८
•	९१ द्रव्यविचार करनेका फल २३३ १
६२ उत्पादका वर्णन १५४ १९ ६३ नाशका वर्णन १५९ २५	९२ द्रव्यानुयोगका प्रकाश मैंने किया. २३४ २
६४ ध्रौव्यका निरूपण १६२ २८	
६५ उपसंहार और नवमाध्यायकी समाप्ति. ,, २९	० ४ वानकी गर्नामा
६६ द्रव्यका निरूपण करनेकी प्रतिज्ञाः १६४ १	९५ प्रशस्ति २३७ ११
६७ द्रव्यपरिज्ञानसे सम्यक्त्वकी शुद्धिः ,, २	९६ ग्रंथकी समाप्ति २४० २३
A secondaria de cream Ande 35 ()	

द्रव्यानुयोगतर्कणायाः शुद्धिपत्रम् ।

अग्रुद्ध.	गुद्धः	2 8.	पंकि.
जिनत्रयीतनुः	जिनस्रयीतनुः	9	90
जिन भगवान्की तीन अवयवमयी	रत्नत्रयरूप शरीरके धारक	२	रा३
मूर्ति सर्वोपरि विजयकारी है	श्रीजिनेन्द्र जयवन्त हैं	.,	,
श्रीलक्ष्मीसे	श्री (ल क्ष्मी) से	"	*
(आदिज्ञान)	आदि	3	92
याणंति	जाणंति	"	₹ €
पृच्छानुवाद है	+	"	३०
बाह्यव्यवहारप्राधान्यम् ।	+	ሄ	96
(चित्तके प्रणिधान चित्तकी तत्परता)	चित्तकी तत्परता	4	२७
अवस्यादिक	आवश्यका दि	Ę	90
आवर्यक	आवश्यकआदिरूप जो	,,	२६
भ्रमतः	भ्रमत	u	२३
तर्कशास्त्रोंके अध्ययनद्वारा सिद्धान्त-रहस्यमें	गीतार्थं तथा गीतार्थनिश्वय इन दोनोंके		
जिसने विहार किया है, अथवा सामा-	सिवाय किसी तीसरेको श्रीजिनेन्द्रने		
न्यरूपसे इसमें प्रेम होनेसे जो सिद्धा-	साधु नहीं कहा है		
न्तरहस्यमें निष्ठ है, इनहीको जिन श्रे-			
ष्टोंने साधु कहे हैं, न कि अन्यत्र तृतीय			
स्थान विहार करनेवाळे		८१९ ३	१।३२।१
तादक् कियारहितः	ताद क्ट्रियारहितः	9	२२
तत्वंवयवा	तन्त्ववयवा	99	२१
आपेक्षिक जातं	आपेक्षिकं जातं	"	२३
सर्थैवेति	सर्तव्येवेति	21	२६
इसी प्रकार	इसी प्रकार सर्व	,,	३१
तीन लक्षणयुक्त द्रव्य गुण तथा पर्यायसे	द्रव्य, गुण तथा पर्याय परस्पर भिन्न भी		
त्रिविध (तीन प्रकारके हैं और ये तीनों	हैं, अभित्र भी हैं, तीन प्रकारके हैं		
कथंचित्भिन्न और कथंचित् अभिन्न भी हैं।	ऑर त्रिलक्षणसहित हैं। •		१२११२२
छहों	छहों द्रव्य	93	२३
त्रिविध	त्रिविध हैं और त्रिलक्षण	,,	28
भ्रोव्य	घ्रौ व्य	"	२५ .
(?)	(३)	,,	ફ 9
(3)	(?)) † 	३२
श्वेतदिम्यश्व	श्वेततादिभ्यश्व	98	É
मनुभवन् ऊर्ध्वता	मनुभवत्	,,	99
जन्त्रत।	प्रथम ऊर्ध्वता	12	ર્ષ

अशुद्ध.	गुद्ध.	2 5.	पंक्ति.
परोग्नेऽतनो	परोऽप्रेतनो	98	3 o
तदि	त दा	94	3
द्रव्यमापद्यतेति	द्रव्यमापद्यत इति	,,	ć
गाभिकां	गामिनां	,,	२४
(उचित वा योग्य)	+	90	98
तथाह	तथाहि	,,,	२५
परिणमिता	परि णता	"	२ ६
परम्परकारण	परम्पराकारण	98	હ
परियहेसु	परिवटेस	,,	२८
कार्यकरणोंके	कार्यकारणोंके	२०	१४
भण्णई	राण् णाड्	२१	२८
गोर्न	गैंनि	२२	४
दै।गिध	दोग्धि	,,	,,
तदि	र्ताई	२३	8
वदन्ते	वदन्ति	२४	9 २
किमिति	के मिति	,,	२ १
श्रयनाम	श्रयोनाम	,,	२६
होना चाहिये	होने चाहिये	२५	3
पर्यायाऽनेके	पर्याया अनेक))	9 6
गुण है सो सहभावी	हो सो सहभावी गुण ह	२ंड	Ę
पर्याय सो क्रमभावी	हो सो कमभावी पर्याय है	<i>y</i> ,	৬
संञ्ज्ञा	संज्ञा	,,	ર્ષ
गुणना	गुणन	>>	२८
नि:प्रकम्पो	_{नि} ध्प्रकम्पो	,,	३१
क्योंकि जैसे	क्योंकि	३०	٩
पुनरभेद	पुनर्भेद	, ,,	ર૧
भावास्कन्धा	भावात्स्कन्धा	३ 9	ኅ
मान्याष्टगुरुलमाननात्	मान्योत्ऋष्टगुरुत्वमननात्	,,	२९
परिणमयत्येव	परिणमत्येव	"	३ 9
भाषते	भाषसे	३३	90199
यह एक रूप उससेही हैं अर्थात्	ये एकरूप ही हैं इससे	३४	99
आगातः	आगत:	,,	२५
लाधवोऽस्ति	ला घवमस्ति	₹ €	२६
अविद्यामान	अविद्यमान	३७	२३
मन्वप	मन्वय	,,	94
बाह्यमान	बाध्यमान	>>	9 €

भशुद्.	गुद्ध.	멸평.	पंक्ति.
ऐसा कहना	ऐसा न कहना	३ ९	₹
पीताकर	पीताकार	,	94
दढयन्नाह	द्रढयनाह	38	२०
ज्ञापयितु-	ज्ञापयितु	४०	96
प्राकारकी	प्रकारकी	,,	२४
भेदे नयं	भेदनयं	४१	99
क्योंकि ऐसा	तथा यह	४५	94
है अहो	है ऐसा पूछते हो सो अहो,	,,	9 ६
प्रका रा का	प्रका शके	,,	96
भेद	भेदसे	,,	2 3
यर्घाय	पर्याय	૪૬	9 6
जम्भाई	जम्माई	,	₹ o
भीत्या	भेदा	"	,,
जीवा जीवा	जीवा जीवा	86	ર્.
स्यादवाच्य एव	स्यादस्त्येव स्यादवाच्य एव	५१	२
चार	चौथा	,,	33
पर्याय	पर्यायार्थ	५३	२९
"तब स्थान्	तब ''स्यात्	48	9
(बोध)	(बोध)का	'10	ч
तिनोंमें	तीनोमें	५९	२ ३
અર્થ	तथा	,,	39
अभेदको	भेदक ो	६ 9	२ ६
दुर्णय-	दुर्नय-	ę÷	ی و
विमुख्यत्वेन	विमुखत्वेन	12	98
युक्तः संमिता	प्युक्तः संमता	έź	ર
अणुः ण(अणुण्ण	,,	6
दुर्णय-	दुर्नेय <i>-</i>	,,	90
"	"	,,	,,
तदा भासतां	तदाभासता	,,	ی و
सप्त श्रुताः	सप्तश्रुताः	.,	२१
दुर्णियाः	दुर्नयाः	"	२ २
जिसके हुए	जिस के क हे हुए	ÉR	હ
क अभिप्रायसे जो	का जो अभिप्राय	,,	c
वहुवचन लगाकर	तथा बहुवचन भी लगालेना चाहिये	,,	99
खीकार	स्वीकार	,,	२६
शास्त्रामें	शास्त्रोंमें	६५	93
को इमारे समानही होनेसे उन नयोंके	हमारे समानहीं है इसलिये उसके	,,	96

અશુદ્ધ.	गुद्	पृ ष्ठ.	पंक्ति.
उनका	उन नयोंका	६५	98
चाच्यात्माऽपि	चाध्यात्ममपि	, ,	२ ६
दश भेद दिखाकर उन	+	ξĘ	9 9
द्ब्बं भृद्धं	दन्त्रं भन्त्रं	,,	३१
कर्मीपाधि-	कर्मोपाधि-	દ્દ હ	હ
दोश्च। पा० ४।३।१६२।	द्रोश्च । पा० ४।३।१६१।	,,	३१
बाह्यकारेण	वाद्याकारेण	६८	२०
अन्तरविद्य-	अन्तर्विद्य	,,	,,
विण्णेया	विण्णेया	,,	ર ૨
अवि भीवको	आविर्भावको	,,	₹७
कहलाते (द्रव्यप्राण और भावप्राण) दोनों	कहलाते हैं द्रव्य तथा भाव ये दोनों प्राण		
प्राण जिनके हैं वे प्राणी हैं ऐसे जो संसारी	जिनके हैं व प्राणी हैं संसारी ऐसे जो	,,	२९/३०
मुख्यनयं	मुख्यनयः	७३	१३
क हते	करते	७३	4
भाव्यालय:	भव्यालय:	७६	ર્લ
नव	भवं	৩৩	3
घातीया कमोंके	घातिया कर्मीके	23	સ્ક્
গ্ৰন	গ্ৰন্থ	٠,	,,
विधिबलीवान्	विधिर्वलवान्	८०	२.४
–मुपाधिकानां	–मोपाधिकानां	۶ ک	१३
द्यान्त-	इष्टान्त-	,,	9 4
उपाधिक-	ञे।पाधिक-	,,	90
सापेक्षिकं	सापेक्षकं	٤ ٢	6
<u>,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,</u>	22	,1	98-96
व्याधयोर्वर्तमानाः	व्याधयो वर्तमानाः	"	94
सापेक्षिकं	मापे <u>क्ष</u> कं	,,	9 <
-तस्मिन्तदध्यारोप-	-तसिंस्तदध्यारोप-	८४	ક્ ૧
धर्मके 	धर्मकी	८६	18
गोत्रकर्म 	गोत्रकर्म, नामकर्म	८৬	5%
चाचिये रे	चाहिये 	,,	२३
संगृह्यते	संगृह्येते	۷۲.	٧,
भावप्राणश्चत्वारः पञ्चभेदा	भावप्राणाश्चत्वारः	2)	م در
पंचाराह्रक्षण	पत्र भेदा—	,,	94.
पचाराह्मदाण विसेष	पञ्चाक्षलक्षण विशेष	"	"
व्यव इस लिये उनके		"	३२
इस १७५ ७ म्ह उनसे	+	ڊ ه 	90
	उन २	९ २	بع

अशुद्ध.	ग्रद.	9₹.	पंक्ति.
संप्रति	समस्त	९२	v
जीव और	जीव और अजीव	,,	98
द्रन्य लावो वा	द्रव्य लाओ	,,	२८
द्रव्याविवक्षासे	इत्यादि विवक्षासे	,,	۽ 0
क्योंकि शब्दके घटभेदसे और कुंभके	इसलिये शब्दके भेदसे	९५	9
गुक	गुऋ	९६	२३
तथा तीन	तथा वक्षमाण तीन	٠, ن	٩
समृह्	संग्रह	"	१२
समृहो	संप्रहो	,,	94
दिहि–	दिद्रि	,,	98
अथासद्भुत-	अथासद्भृत-	900	90
श्चेप, जन्यो	श्हेष,—जन्यो	,,	93
यथाभवेत्	यथा भवेत्	१०२	२१
गोर-	गाँर व-	903	३ ६
गुणाचारो	गुणचारो	9 o 8	32
प्रतिज्ञान	मतिज्ञान	904	8
शरीरे	शरीरं	>>	Ę
मुण:	गुणा:	,,	Š
गुण:	गुणा:	,,	90
पटेनेत्येवं सङ्गतव्यवहारो	पटेनेत्येवमसङ्गतव्यवहारो		9'4
किञ्चमति-	किञ्च मति-	"	93
और	अर्थात्	,, १०६	ب
संसर्गसिद्ध	संसर्गसिद्ध जाति		२२
धर्मक <u>े</u>	धर्मसे	,, 9 o	9
मतिज्ञीनं	मति ज्ञानं		96
भागिक	भोगिक	,, १०९	 २३
सम्बधीकी	सम्बन्धीकी	990	` ` ₹
स्वम्धकी	सम्बन्धीकी		ų
स्याद्वादशेलीसे	स्याद्वादशेली के	,,	99
पूर्वाक्त	पूर्वाक	,,	ર હ
निश्चयो नामा	े निश्चयनामा	,, 999	9
आत्माथ शुद्ध	आत्माप्यशुद्ध		ર ૬
नयोऽप्यशुद्ध-	नयोऽशुद्धः ।	"	
गुणिनि दर्शनात्	गुणिनिद्शनात्	,, ११२	,, २ ९
परत्त्वस्य	परन्तस्य		₹°
तद् नुपाधिकगुणगुणिनोर्भेदाभिन्नो	तदानुपाधिकगुणगुणिनोर्भेदाद् भिन्नो	,, ११३	9 ६
मेद	भद		, 4 28
• •	• 3	,,	, ,

अग्रद्ध.	युद्.	gg.	पंक्ति.
द्धिःप्रकारः	द्विप्रकारः	998	ц
केवलादिगुणके	केवलादिगुणसे	,,	Ę
तदपि कल्पितत्वादुपचरितम्	सोऽपि कल्पितत्वादुपचरितः	994	રૂ
संबन्धमिव	सम्बन्ध इव	,,	દ્
समादिष्टं कथितम् ।	समादिष्टाः कथिताः	,,	२८
कहा है	कहे हें	995	3
समानतंत्र	समानतंत्रता	ور	9
कृत्वान्तरतमना	कृत्वान्तरात्मना	33	२०
"देवसेनजीसे (अन्य	देवसेनजीसे ''अन्य	29.0	२
अथेकैकस्य	^{स्पर्यके} कस्य	,,	२०
पर्यायार्थि	पर्यायार्थ	996	94
प्रति व्यक्ति-	प्रनिव्यक्ति-	,,	२०
वैसदर्य-	वसाददय-	> >	ર ૨
समभिरूड	समभिरूड	920	92
उ ज्जुसुयस्य	उ ज्जुसुयम्स	922	o,
वादीयोंका	व⊤दियोंकः	,,	9 5
द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थिक-	٠,	ર
कोटिप्रकारेरपि तानिर्पत	कोटिप्रकारेरप्यर्पितानर्पित	१२३	بر
समभिरूड	समभिरूढ	, ,	૧ હ
विशेष	विशेष-	y;	३१
संप्रहाव्यवहाराच	संप्रहाद व्यवहाराच	१२४	9 €
इत्यादि	इत्यादि ।	,,	96
पृथिवीकथिकादि-	प्रथिवीकासिकादिः	१२५	v
खप्रक्रिया	स्त्रप्रकिया	,,	१२
नियोजनजीवा	नियोजनं जीवा.	,,	१३
अजीवश्रेतौ	अजीवश्चेती	"	9 &
आश्रय:	आस्रवः	,,	9.3
कहिये	क हने चाहिये	१२६	٩
आश्रय आदि	आखब आदि	,,	99
आश्रय आदिक	आस्रव आदिक	3,	Ę
शुभ बंधके कारण पुण्यको	शुभ अशुभ बंधके कारण पुण्य पापको	>>	१९
पणात्ता_	पणता	,,	३ ७
मुह्रङ्घाधिकं	मुहद्वयाधिकं	,,	"
स्वसम्पत्क	स्वसम्यक्तव	,,	२९
सूत्र्में	सूत्र त	१२७	२
तेन		,,	ې بې
सूत्रे	सूत्रे व्यवहारतक्षणं—	"	२ ६
के किकप्राय:''	लें।किकप्रायो व्यवहारः'' इति	"	"

अग्रुद्ध.	गुद्ध.	ष्ट्र.	पक्ति.
मात्रेण	मात्रैव	१२८	२८
द्वन्दन	द्वन्द्वन	१२८	२७
नरतैरयकादि	नरनैरयकादि	१२९	93
गौणतासे उस नयकी अर्थबोधनशक्ति	X	,,	२
तथा पुण्डरीकाध्ययनार्थ	पुण्डरीकाध्ययनार्थ	939	२३
विद्या:	विधा:	१३२	96
करती है	झरती हैं	,,	२७
^{ध्य} धिकान्	प्यधिकान्	9 ३३	४
इत्यादि अनेक-	इत्या वनेक •	,,	99
सत् केली के	सन्येऽलीके	,,	90
देससेनः	देवसेनो	,,	
भाङ्गा	भङ्गा	વર્રેજ	" S
ध्रुवे इवा	धुवे इवा	१३५	4
निर्नाशै:	निर्णाशै:	"	३ 9
निर्नाशै-	निर्णाशै-	935	` }
विरोधनाश	विरोधनाश-		90
जेगह	जगह	,,	૧ હ
नियत्ततास <u>े</u>	नियततासे	,,	₹८
त्रिविधलक्षणप्रस्तुताका	प्रस्तुत त्रिविध लक्षणका	"	₹ 9
घुव ही है	प्रुव ही न हीं है	٥٤٤	9
मारे घोव्यं	मा ले धौंव्यं	7)	٠
गृहण	प्रहण	938	94
भानामनिष्टम्	भाणामनिष्टम्	980	 २६
इक्षु ।	इक्षु है ।	989	٠٠
प्रमाणसिद्ध-	प्रमाणसिद्धच-		२ ९
आहतत्वाः	आदर्तव्याः	,,	¥ 0
–ध्राव्यानि	ध्रौव्याणि	" 9४ २	र २७
अमिन्नरूप	अ भिन्नरू प	983	٠,
प्यानसे	थानसे	,,	ć
राघवप्रिय (१)	लाघवप्रिय नैयायिक		99
नैयायिक नाश	नाश	,,	93
पुस:	पुन:	"	9 9
गौरवसत्वेन	गोरसत्वेन	"	38
भ क्षणत्रयं	लक्षणत्रयं	'' የሄሄ	``` ```
अवतारण	अवतारणा		२३
घटेति	घट इति	,, 9४५	`र १४
संमती	 संभवती	4.8.É	३०
3			₹ -

अग्रुद्ध.	ग्रद.	वृष्ठ.	पंक्ति.
नश्रधातो	नश्घातो	980	v
तथा नाराके	नाशके	,,	२८
कालकी	कालके	986	9
भवद्ग्रे	भवेदये	,,	90
अपक्षासे	अ पेक्षासे	988	ч
सेव	स एव	,,	94
विशेश	विसेस	,,	96
नाशको	नाशकी	940	99
अभवका	अभावका	9 ५ २	२८
द्रव्याना-	द्रयाणा-	१५३	90
नियमा	नियता	,,	२४
नियमकता	नियामकता	",	98
दविपस्स बहुयाबिहोति उप्पापाः ।	दवियस्सबहुयावि होति उपाया ।	,,	२१
उ प्पा पसमाविगमा ठिइपस्सुगाओ	उप्पायसमा विगमा ठिइयउस्युगाओ	,,	२२
(तथा उत्पत्तियुक्त)	तथा उत्पत्तियुक्त	१५४	6
आदो विशुद्धो	आयोऽविद्युद्धो	,,	94
अपरिशुद्धो	अपरिसुद्धो	,,	२३
परिगत:	परिणतः	१५५	२७
उत्पत्तिसे	उत्पत्ति एकत्व	940	२९
संयोगे है	संयोग है	946	v
पर्यायतः	पर्ययत:	१५९	२ २
पर्यव	प र्थेय	"	,,
परमाणुना-	परमाणूना-	940	२ ३
सं मितौ	संमतों	9 6 9	98
समयप्रमाणमस्ति	समयप्रमाणोऽस्ति	9 ६ २	۷
अन्तया नु गम	अन्वयानुगम	,,	२१
लक्षीकृतम्	लक्ष्यीकृतम्	9 ६ ३	ع
गुणपर्यायो	गुणपर्याय	,,	२५
द्रव्यादीनि	द्रव्यादीनां	968	ų
मोक्त्वफलाओ	मोक्खफलाओ	"	२७
प्रवर्तन्	प्रवर्तमान <u>ः</u>	,,	२८
कर्मधर्मको आच्छा	धर्मकर्मको अच्छा	964	9 ६
प्रदेशास्तै	प्रदेशास्तैः	رر	39
स्यास्तिकायात्वं	स्यास्तिकायत्वं	9 € €	9
इयारित्तकिरियाय	ए यखित्तकिरियाय	, , ,	4
जीव द्रव्य	जीवद्रव्य	,, ,,	٠
देवेंने	देवने	"	,,
		"	"

અ શુદ્ધ.	शुद्ध.	g y.	पंक्ति.
अपदेशा	अपवेसा	9 ६ ६	Ę
असर्व तत्त्व और प्रदेशत्व	+	,,	२१
अपेक्षा कारण	अ पेक्षाकारण	१६७	99
आगोका	आगेका	१६८	१७
काशात्वेनैव	का शत्वेनेंव	,,	३०
अस्यच	अन्यच	,,	39
निबधनो	निबन्धनो	,,	,,
नियामाका	नियामिका	१६९	२९
(क्र्यणुकादिद्रव्य)	(क्र्यणुकादिदव्य) की सिद्धि	900	२५
-नन्तमेव-	–नन्त एव	१७२	۷
–मन्तन्त-	–मनन्त-	१७३	9७–9८
मथा नन्त	मथानन्त	,,	96
सुधाराणां	सुधीराणां	१७४	93
भगवात्राहा गोतम	भगवानाह । गोतम	,,	9 ६
बृद्धिके	बुद्धिके	,,	२२
- त्राह्या-	त्राह्य-	904	9 Ę
भगवतांग	भगवत्यंग	,,	२४
भ्रंते	भं ते	,,	२५
संग्रहिण्यां	संग्रहण्यां	१७६	٩
,,	"	,,	ų
वत्तणाई	वत्तणाइ	,,	Ę
संप्रहिणी	संग्रहणी	,,	v
दुदाहतम्	दुदाहृतम्	,,	93
व्यवहारे	व्यवहारो	१७७	१५
त्यणवो	प्यणवो	906	२
मयीष्टमस्ति	मपीष्टमस्ति	,,	Ę
तावन्त	तावन्तः	,,	90
प्रकल्पितस्य	प्रकल्प्य तस्य	960	98
समृद्रक	समुद्रक	,,	३ 9
ज्ञेय:	ज्ञेया	१८२	ጸ
मनुष्य	मनुध्य-	,,	૭
च	च:	,,	३२
मरूपमगन्धं अवण्णं चेपणा	मरूवमगंधं अवण्णं चेयणः	१८३	Ę
दिसंठाणं	दिइसंठाणं	,,	¥
लिंग से	िंग प्रहणसे	"	9 😉
अनिदिष्ट	अनिर्दिष्ट	,,	96
सं ख्यायते	संख्यावतो	"	२८

अशुद्ध.	ग्रद-	ge.	पंक्ति.
सम्यक्ति	सम्यक्ति	१८४	२
श्रीनामेय	श्रीनाभेय	,,	२८
व्याध्या	व्याप्त्य	१८६	6
समनितल	समनियतत्व	966	4
सद्वंधकार उज्जोया प्रभायावा	सद्धकार उज्जोया पभा छाया	१९२	90
प्रमा,	प्रभा, छ।या,	१९३	٩
यत्स्वभावाः	ये खभावाः	*;	99
करते	कहते	9 ९४	३५
मृत्रघट	मृत्र घट	996	٩
। और	वेसे	"	y
विभावस्वमाव	विभावस्त्रभाव	२०९	4
मूर्तेति	मूर्तेते <u>ति</u>	399	३ ७
व्यवहारी	व्यवहारो	२३१	<i>ર</i> 9
वे हैं	करते हैं	२३५	२७
	इति ।		

आवश्यक सूचना।

बुटि पृ० १२८, पं० २८ के आगेका यह व्यास्यार्थ है.

व्याख्यार्थ: ऐसा होनेपर नयभेदोंको यदि उपनयकरके मानते हो तो 'स्वपर-व्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्' अर्थात् 'स्वपरका व्यवसाय (निश्चय) करनेवाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है' इस लक्षणसे लक्षित ज्ञानरूप प्रमाणका भी एकदेश मतिज्ञानादि, अथवा मतिज्ञानका एकदेश जो अवग्रहादि वह भी उपप्रमाणरूपसे भिन्न हो जायगा। इससे नयोपनयप्रकिया शिप्योंकी वुद्धिका द्वन्द्वन (विकल्प) मात्र करनेके लिये समझनी चा-हिये॥ २१॥



रायचन्द्रजेनशास्त्रमाला.



श्रीभोजकविविरचिता

द्रव्यानुयोगतर्कणा।

भाषानुवादसहिता च.

श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीवीतगगाय नमः । मङ्गलाचरणम्.

श्रियां निवासं निखिलार्थवेदकं सुरेन्द्रसंसेवितमन्तरारिधम् ।
प्रमाणयुङ्न्यायनयप्रदर्शकं नमामि जैनं जगदीश्वरं महः ॥ १ ॥
यदीयगोभिर्भुवनोदरस्थितं कुवादभूच्छायभरं निवायते ।
द्रव्यादियाथात्म्यमपि प्रकाश्यते जयत्यधीशः स जिनत्रयीतनुः ॥ २ ॥
वन्दे वीरपरम्परावियदहर्नाथं सनाथं श्रिया
गाम्भीर्यादिगुणावलीप्रविलसद्रत्नोधरत्नाकरम् ।
विद्यादेवपुरोहितप्रतिनिधि श्रीमत्तपागच्छपं
प्रख्यातं विजयादयागणधरं द्रव्यानुयोगेश्वरम् ॥ ३ ॥
श्रीभावसागरं नत्वा श्रीविनीतादिसागरम् ।
प्रबन्धे तत्प्रसादेन किञ्चिद्याख्या प्रतायते ॥ ४ ॥
सद्भावयुक्तं श्रीमन्तं सुविनीतं गुरुं ग्रदा ।

अनेक प्रकारकी लिक्ष्मयोंका निवासस्थान, संपूर्ण पदार्थोंका संप्रवर्तक, देवेन्द्रोंसे सेवित, अभ्यन्तरके रात्रुओंका नाशक, और प्रमाणसहित न्यायमार्गका प्रदर्शक ऐसे श्रीजिन भगवान्सम्बधी जगदीश्वर तेजको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जिनकी किरणोंसे संसा-

प्रणम्य रम्यभावेन सूत्रवृत्तिः प्रतायते ॥ ५ ॥

रके उद्रमें वर्तमान कुवाद्से उत्पन्न छायाका समूह दूर होता है, और द्रव्यादि पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप भी प्रकाशित होता है ऐसे सबके स्वामी जिन भगवानकी तीन अवयव (सम्य-ग्ज्ञान, दर्शन, तथा चारित्र) मयी, मूर्ति (शरीर) सर्वोपरि विजयकारी है ॥ २ ॥ श्रीमहावीरस्वामीसे आदि लेके संपूर्ण तीर्थंकरोंकी पंक्तिरूप आकाशके सूर्य, श्रीलक्ष्मीसे सेवित तथा गाम्भीर्य, "द्या दाक्षिण्य" आदि गुणोंकी पंक्तियोंसे अति शोभायमान रह्नों के समूहके रह्नाकर तथा शास्त्र, देव, और पुरोहितके प्रतिनिधि (स्थानापत्र) श्रीमत्तपागच्छके नायक श्रीद्याविजय नाम गणधरजीको में नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥ और श्रीविनीतसागरजी तथा श्रीभावसागरजी नाम विद्यागुरुको नमस्कार करके उन्ही महाऽनुभावकी कृपासे इस द्रव्याऽनुयोगत्रकणा नाम प्रवन्धकी कुछ व्याख्या में करता हूं ॥ ४ ॥ समीचीन (उत्तम) भावोंसे संयुक्त, श्रीमान् सुविनीत गुरुजीको परमरमणीय भक्तिभावसे प्रणाम करके सूत्रोंकी वृत्तिका विस्तार में करता हूं ॥ ५ ॥

चिकीर्षितप्रन्थस्य निर्विन्नपरिसमाध्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारादिरूपं मङ्गलं प्रन्थादौ आचरन अनुबन्धचतुष्टयं दर्शयत्रेव चिकीर्षितं प्रतिजानीते ।

रचनेको अभीष्ट ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिकी इच्छासे अपने इष्ट देवका नमस्काररूप मङ्गलाचरण करतेहुए तथा ग्रन्थके अनुबन्धचतुष्टयको दशीतेहुए ग्रन्थकार निजिचकी-र्षित (करनेको इष्ट) विषयकी प्रतिज्ञा करते हैं।

अथ सूत्रम्-श्रीयुगादिजिनं नत्वा कृत्वा श्रीगुरुवन्दनम् । आत्मोपकृतये कुर्वे द्रव्यानुयोगतकणाम् ॥ १॥

सूत्रभावार्थ——युगके आदिमें आविर्भूत श्रीआदिजिन भगवान् (श्रीआदिनाथ ऋषभदेवजी) को नमस्कार करके, तथा श्रीगुरुदेवको वन्दना करके आत्माके उपकारके अर्थ, अर्थात् जीव अजीव आदि द्रव्योंको जानकर संसारसागरसे जीवके उद्घारके लिये इस द्रव्याऽनुयोगतर्कणा नाम प्रन्थको मैं रचता हूं॥ १॥

व्याख्या। तत्र प्रथमिष्टदेवतानमस्करणेन सप्रयोजनाभिधेयो दर्शितः। आद्यपदृद्वयेन मङ्गलाचरणं नमस्कारकरणं च । १ । आत्मार्थिन इहाधिकारिणः। २ । तेपामर्थवोधो भविष्यतीति उपकारक्षपं प्रयोजनम् । ३ । द्रव्याणामनुयोगोऽत्राधिकारः। ४ । अथ द्रव्यानुयोग इति कः शब्दार्थः। अनुयोगो हि सूत्रार्थयोव्याख्यानं तस्य चलारो भेदास्तत्र प्रथम-अरणानुयोग आचारवचनमाचाराङ्गादिसूत्राणि। द्वितीयो गणितानुयोगः संख्याशास्त्रं चन्द्रप्र- इम्यादिसूत्राणि। तृतीयो धर्मकथानुयोग आख्यायिकावचनं ज्ञाता धर्मकथांगादिसूत्राणि। ३। चतुर्थो द्रव्यानुयोगः षड्द्रव्यविचारः सूत्रकृताङ्गादिस्त्राणि सम्मतितत्त्वार्थप्रमुखप्रकरणानि च महाशास्त्राणि। ततोऽन्त्यभेदविचारणामहं कुर्वे।

व्याख्यार्थ--प्रथम स्त्रमें अभीष्ट परमदेव जिन भगवानको नमस्कार करनेसे प्रयोजनसहित निजप्रन्थमें अभिधेय अर्थात् कथन करनेके योग्य पदार्थ दर्शाया है.

तात्पर्य यह है कि द्रव्यादि पदार्थोंके ज्ञानसे आत्मज्ञानपूर्वक श्रीजिन भगवानका ज्ञान तथा उनकी नमस्कार आदिरूप भक्ति ही इस प्रन्थका अभिधेय और प्रयोजन है। सूत्रके प्रथम दो पादोंसे श्रीजिन देवको तथा श्रीगुरु देवको नमस्कार करके आस्तिक मतके अनुसार मङ्गलाचरण तथा नमस्कार प्रदर्शित किया गया है ॥१॥ और "आत्मोपकृतये कुर्वे" इस तृतीय पादसे यह अभिप्राय दर्शाया है कि आत्माके अभिलाषी जन इस प्रन्थके अधि-कारी हैं ॥ २ ॥ उन अधिकारी जीवोंको पदार्थोंका ज्ञान होगा इस उपकाररूप यन्थका प्रयोजन है ॥ ३ ॥ और द्रव्याऽनुयोग इस यन्थका अधिकृत विषय है ॥ ४ ॥ ये ही ४ अभिधेय, प्रयोजन, संबन्ध तथा अधिकारी ग्रन्थकी आदिमें अनुबन्धचतुष्टय कहे जाते हैं। अब "द्रव्याऽन्योग" इस शब्दका क्या अर्थ है इस विषयमें विचार कर-ते हैं। सूत्र और अर्थके व्याख्यानको अनुयोग कहते हैं। उस अनुयोगके चार भेद हैं। उनमें प्रथम चरणानुयोग है, जिसमें आचारके वचन हैं, जैसे आचारांगादिसूत्र ॥ १ ॥ द्वितीय गणितान्योग अर्थात् संख्याशास्त्र है. जैसे चन्द्रप्रज्ञप्ति (आदि ज्ञान) के सूत्र ॥ २ ॥ तृतीय धर्मकथानयोग अर्थात् कथा शास्त्र है. इसमें ज्ञाताधर्म कथा आदि सूत्र हैं ॥ ३ ॥ और चतुर्थ द्रव्याऽनुयोग अर्थात् जीव आदि पट् द्रव्योंका विचार है. इसमें सूत्रकृतांगादिसूत्र, संमतिप्रकरण, तत्त्वार्थप्रकरण आदि अनेक महाशास्त्र हैं ॥ ४ ॥ अत एव अतिउपयोगी होनेसे अन्तिम भेद जो द्रव्यानुयोग है उसीका विचार मैं करता हूं ॥१॥

सूत्रम् । विना द्रव्यानुयोगोहं चरणकरणाख्ययोः। सारं नेति कृतिप्रेष्ठं निर्दिष्टं सम्मतौ स्फुटम् ॥ २॥

सृत्रभावार्थ:— द्रव्याऽनुयोगके विचारके विना द्रव्य तथा गुणपर्यायोंका ज्ञान नहीं होता अत एव चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगमें द्रव्याऽनुयोगके ज्ञानके विना कुछ तत्त्व नहीं है, और द्रव्याऽनुयोगके ज्ञानको ही चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगका सार और पण्डित जनोंको अतिप्रिय संमति ग्रन्थमें स्पष्ट रीतिसे द्शीया है ॥ २ ॥

व्याख्या । द्रव्यानुयोगोहं द्रव्यगुणपर्यायविचारं विना चरणकरणयोः सारं न । चरण-सप्तस्याः करणसप्तत्याश्च सारं केवलं द्रव्यानुयोग एव । इत्ययं निष्कर्षः । सम्मतिग्रन्थे स्फुटं प्रकटं कृतिप्रेष्टं बुधजनवल्लभं निर्दिष्टं कथितं बुधा एव जानते न तु बाह्यदृष्टयः । यतः "चरणकरणप्पहाणा ससमयपरसमयमुक्कवावारा।चरणकरणस्स सारं णिच्चयसुद्धं न याणंति१" इतीयं गाथा सम्मतौ कथिता।अतश्चरणकरणानुयोगमूल इहोपायो द्रव्यानुयोगएव उक्तः।२।

व्याख्यार्थः—द्रव्यानुयोग जिसमें जीवआदि संपूर्ण द्रव्य, गुण तथा संपूर्ण पर्यायोंका पूर्णरूपसे वर्णन है उसके (द्रव्याऽनुयोगके) ज्ञानके विना चरण तथा करणाऽनुयोगमें

१ पृच्छानुवाद है.

कुछ सार नहीं है, अर्थात् चरणसप्तिति और करणसप्तितिका सार केवल द्रव्याऽनुयोग ही है, और वही पण्डितजनों (सम्यग्दर्शन आदि सहित जनों)को प्रिय है. क्योंकि, आत्म-ज्ञानद्वारा मोक्षका कारण द्रव्याऽनुयोग ही है, उसीसे खमतका स्थापन तथा परमतका खण्डन होता है, यह वार्ता संमित प्रन्थमें स्पष्ट रीतिसे दर्शाई गई है। "चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगके ज्ञानसे संपन्न भी जन अपने तथा अन्यके शास्त्रीय सिद्धान्त ज्ञानके व्यापारसे सर्वथा वर्जित रहते हैं, क्योंकि वे चरणानुयोग तथा करणाऽनुयोगके सारभूत निश्चय शुद्ध द्रव्याऽनुयोगको नहीं जानते" ॥ १॥ यह गाथा सम्मित प्रन्थमें कही गई है। इसी हेतुसे चरणाऽनुयोग और करणाऽनुयोगका मूल (मुख्य सिद्धान्त) जाननेका उपाय द्रव्यानुयोग ही यहांपर कहा गया है॥ २॥

सूत्रम् । शुद्धान्नादिस्तनुर्योगो महान् द्रव्यानुयोगजः। इत्थं षोडशकाज्ज्ञात्वा विद्धीत शुभादरम्॥ ३॥

सूत्रभावार्थ:—-शुद्ध आहारआदिका ग्रहण करना, अर्थात् चरण करणाऽनुयोग-रूप योग लघु हे और द्रव्याऽनुयोगनामक योग महान् है, इस प्रकार पोडशक नामके उपदेशग्रन्थसे जानकर शुभ मार्गमें आदर करना उचित है॥ २॥

व्याख्या । शुद्धान्नादिः शुद्धाहारप्रहणमर्थात् चरणकरणानुयोगाख्यो योगो द्विचत्वारिशहृषणरिहतिपण्डप्रहणो योगस्तनुर्रुषुः कथितः । तथा द्रव्यानुयोगः । स्वसमयपरसमयपरिज्ञानं
तदाख्यो योगो द्रव्यानुयोगजो योगो महान् महत्तरः कथितः । अत्र साक्षित्वमुपदेशपदादिषु प्रन्थेषु
वर्तते । ततो ज्ञात्वा शुभे पथि प्रवर्ततां वाह्यव्यवहारप्राधान्यम् । वाह्यव्यवहारप्राधान्यं ज्ञानस्य
गौणता यत्र भवति सोऽशुभमार्गः । १ । ज्ञानस्य प्राधान्यं व्यवहारस्य गौणता यत्र स
उत्तममार्गः । २ । अत एव ज्ञानादिगुणहेतुगुरुकुलवासरिहतस्य शुद्धाहारादियत्नवतोऽपि
महान् दोषश्चारित्रहानिश्च जायते । यदुक्तम् । पोडशके गुरुदोषारिक्मितया लब्धकरणम् ।
यत्नतो निषुणधीभिः सिन्निन्दादेश्च तथा ज्ञायते यिन्नयोगन् । ३ ।

व्याख्याथे:— गुद्ध शोधित आहारसेवन, अर्थात् शास्त्रप्रोक्त ४२ दोषोंसे वर्जित मोजनप्रहणआदिह्मप जो चरण तथा करणाऽनुयोगह्मप योग है वह लघु है और म्य तथा परसमयके ज्ञानह्मप जो द्रव्याऽनुयोगह्मप योग है वह अतिमहान् कहा गया है। इसी विषयकी साक्षिता उपदेशपदआदि प्रन्थोंमें विद्यमान हे। उन प्रन्थोंसे द्रव्याऽनुयोगको श्रेष्ठतर जानके ग्रुम मार्गमें ही आदरसे प्रवृत्त होना चाहिये। जहां लौकिक व्यवहारोंकी प्रधानता हो और ज्ञानकी गौणता हो वह अग्रुम मार्ग है॥१॥ और जहां ज्ञानकी प्रधानता तथा लौकिक व्यवहारकी गौणता है वह उत्तम वा ग्रुम मार्ग है॥१॥ द ॥ इसी कारणसे ज्ञानआदि गुणोंका हेतुभूत जो गुरुकुलमें निवास है उससे रहित पुरुष चाहे ग्रुद्ध

आहारआदि करनेमं प्रयत्न भी करे, परन्तु वह ज्ञानसे रहित होनेसे महान् दोषभागी होता है तथा उसके चारित्रकी भी हानि होती है। इस विषयमें ऐसा कहा भी है,—उप-देशके प्रन्थोंमें यह निरूपित है कि द्रव्यानुयोगके ज्ञानिवना गुद्ध आहारादिके प्रहणमें महान् दोषोंके आरम्भ होनेकी संभावना है इस हेतुसे तथा ज्ञानरहित होनेसे सज्जनोंकी निन्दादिसे चरणकरणानुयोग द्रव्यानुयोगकी अपेक्षासे लघु है, उस लघु चरणकरणानुयोगके दोषोंको कुशलबुद्धि जन यत्नपूर्वक द्रव्यानुयोगद्वारा जानते हैं॥ ३॥

सूत्रम् । सति द्रव्यानुयोगेऽस्मिन्नाध्यकर्मादिदूषणम् । इत्युक्तं पश्चकल्पाख्ये भाष्ये यत्तद्वरोः श्रुतम् ॥ ४॥

सूत्रभावार्थ:—इस द्रव्याऽनुयोगके ज्ञान होनेहीसे आधाकर्मादि (पाकादि कर्म अध्यवपूरकान्त) दूषण जाने जाते हैं, यह पश्चकल्प नाम प्रन्थमें तथा भाष्यमें कहा है और गुरुमुखसे भी ऐसा सुना है ॥ ४ ॥

व्याख्या। अस्मिन् द्रव्यानुयोगिवचाररूपे ज्ञानयोगे सित आध्यकर्मादिदूषणम्। आधाकर्माद्योऽध्यवपूरकान्ताः पोडर्शापण्डोद्गमिवपया दोषास्तत्र आधानम्। आधा साधुनिमित्तं चेतसः प्रणिधानं यथा अमुकस्य साधोः हेतोर्मया भक्तादि पचनीयमिति आध्या कर्मपाकादिकियया
आधाकर्म तद्योगाद्गक्ताद्यप्यधाकर्म तदादिर्येषां तेपां द्रपणं गुरुसमुदायान्तर्निवसतो ज्ञानाभ्यासवसतो मुनेन भवति ॥ एवं पञ्चकल्पभाष्ये यदुक्तम् तन्मया गुरोः सकाशात् धृतं कल्पाकल्पविचारस्तु अनेकान्तशास्त्रणोक्तो यतो गाथाः। "आहा गुर्डाई भुंजंति। अणुमण्रो सकम्मुणा ॥ उवित्रत्ते वियाणिज्ञा अणुवित्ते विवा पुणो । १। एदे हिंदोहि ठाणेहि ववहारोण विर्ज्ञई ॥ एदे हिंदोहि ठाणेहि अणायारं तुजाणए। २।" द्वितीयाङ्गस्य प्रथमाध्ययने ।
किश्वच्छुद्धं कल्पमकल्पं स्थान् स्थादकल्पमपि कल्पं पिण्डः। शय्या वस्त्रं भेषजाद्यं वा देशं
कालं पुरुषमवस्थामुपयोगशुद्धपरिणामान प्रसमीक्ष्य भवति कल्पं नैकान्तात्कल्पने कल्पम्।२।
इति प्रशमरतौ ॥ ४॥

 अभ्यासके वशसे नहीं होते इस प्रकार पश्चकल्पभाष्यमें जो कहा है वह मैंने गुरुमुखसे सुना है और कल्पाकल्पका विचार तो अनेकांतशास्त्रसे कहागया है। इस विषयमें ये गाथा हैं। उपलिप्त हो अथवा अनुलिप्त हो अन्योऽन्यकर्मसे अनिभन्न (अज्ञानी जन)आधाकर्मगत पाप अवश्य भोगते हैं॥ १॥ क्योंकि ये दोष हैं, ये दोषोंके स्थान हैं, इन व्यवहारोंको द्रव्यानुयोगज्ञानसे रहित जन नहीं जानते और गुरुकुलिनवासी द्रव्यानुयोगज्ञाता मुनि दोष तथा दोषस्थानोंको जानता है॥ २॥ द्वितीयाङ्किक प्रथम अध्ययनमें ऐसा वर्णित है कि कोई वस्तु शुद्धकल्प भी अकल्प हो सकती है;—और अकल्पभी कल्प हो सकती है. जैसे आहार, शय्या, वस्त्र, पात्र, औषध, भोज्य पदार्थ, देश, काल, पुरुष, अवस्था, ये सब उपयोगसे शुद्ध परिणामोंको देखकर कल्प (योग्य वा शुद्ध) होते हैं किन्तु सर्वथा कोई पदार्थ अपने स्वरूपसे ही शुद्ध वा योग्य कल्पित नहीं हो सकता ॥ २ ॥ ऐसा प्रशमरितनाम ग्रन्थमें कहा है॥ १॥

सूत्रम् । बाह्यक्रिया बहियोंगश्चान्तरङ्गित्रियापरः । बाह्यहीनोऽपि ज्ञानाद्यो धर्मदासैः प्रशंसितः ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—बाह्य कियाको बहिर्योग कहते हैं, और जो अन्तरङ्ग किया है उ-सको अन्तरङ्गयोग कहते हैं, किन्तु बाह्यकियासे हीन (शून्य) होनेपर भी यदि ज्ञानसे पूर्ण हो तो वह धर्मदासोंसे प्रशंसित है ॥ ५ ॥

व्याख्या । बाह्यित्रया अवद्यादिकरूपा वहिर्योगोऽस्ति । १ । च पुनः । अन्तरङ्गित्रया च स्व-समयपरसमयपरिज्ञानरूपा ज्ञानिकया अपरो द्रव्यानुयोगोऽस्ति । अन्तरङ्गयोगो ज्ञानिकया । एवं द्विविधो योगस्तत्र बाह्यित्रयाहीनोऽपि ज्ञानाक्व्यो ज्ञानाधिकः साधुः । उपदेशमालायां व्याख्यातो यतः । " नाणाहिओवरचरणहीणो विद्वपयवेणपभासंतो । णयंदुक्खरं करंतोसुदुवि अप्पागमोपुरिसो । १ । तहा हीणस्स विसुद्धपरूवगस्स नाणाहि जस्स कायव्व" तस्मान् कि-याहीनस्थापि ज्ञानिनोऽवज्ञा न कर्तव्या । ज्ञानयोगाच्छासनप्रभावको ज्ञातव्यः कश्चिद्वं कथ-यिष्यित यत् कियाहीनः । ज्ञानाधिको भव्य उक्तस्तदीपकसम्यक्त्वापेक्ष्या परं किया विनेकन ज्ञानेन स्वस्थोपकारो न जायते दोपवत् । इति दाङ्काकारं प्रत्युक्तरयति । द्रव्यादिज्ञानमेव ग्रुक्कथ्यानमतो मोक्षकारणं तत उपादेयमेव ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—आवश्यक वाह्य किया है वह बहियोंग है, और स्वसमय तथा परसमय-के ज्ञानरूप जो ज्ञानिकया है वह अभ्यन्तर अर्थात् द्रव्याऽनुयोग है, कह अन्तरङ्ग योग अथवा ज्ञानिकया है। इस रीतिसे अन्तरङ्गयोग तथा बहियोंग भेदसे दोप्रकारका योग कहा गया है; उनमेंसे बाह्य किया अर्थात् बहियोंगसे हीन भी पुरुष हो, परन्तु ज्ञानपूर्ण अर्थात् अधिकज्ञानसंयुक्त हो तो वह साधु है। क्योंकि वह साधुरूपसे उपदेशमालामें प्रख्यात है। यथा गाथा,—चरणकरणानुयोग अर्थात् बाह्यकियासे हीन भी गुद्ध उपदेश ज्ञानमय वचनको कहते हुए, और दुष्कल्मषको करतेहुए ज्ञानसे पूर्ण आत्मज्ञानी पुरुष निजज्ञानसे ही साधु है, तथा विशुद्धज्ञानसे हीन होनेसे भी बाह्य क्रियासे संपन्न होनेपर भी वह साधु है क्योंकि शरीर ज्ञान ही है इस कारण क्रियाहीन भी ज्ञानी पुरुषका अनादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि ज्ञानके योगसे वह सबके ऊपर आज्ञा करनेका प्रभाव धारण करता है ऐसा समझना चाहिये।

अब कोई यहांपर ऐसा कहता है कि क्रियाहीन और अधिक ज्ञानसम्पन्नको जो भव्य कहा है वह दीपंकसम्यक्त्वकी अपेक्षापर है; क्योंकि, क्रियाके विना केवल ज्ञानमात्रसे अपने आत्माका कुछ भी उपकार नहीं होता जैसे; दीपक यदि अपना ही प्रकाश न करे तो अन्य घटपटआदिका प्रकाश कैसे कर सकता है? । इसप्रकार शंकाका उत्तर प्रनथकार देते हैं कि द्रव्यआदि पदार्थोंका ज्ञान ही शुद्ध ध्यान कहा गया है और वही मोक्ष-का कारण होनेसे उपादेय है ॥ ५ ॥

सत्रम् । द्रव्यादिचिन्तया सारं गुक्कध्यानमवाप्यते । आद्रियध्वममुं तस्माद्गुरुशुष्र्या बुधाः ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यआदि पदार्थोंकी चिन्तासे सबका सारभूत शुक्रध्यान प्राप्त होता है, इस हेतुसे हे वुधजनो ! गुरुजनोंकी सेवा आदिसे आदरपूर्वक द्रव्यआदि पदा-र्थोंके ज्ञानके उपार्जनमें आदर करो ॥ ६ ॥

व्याख्या। द्रव्यादिचिन्तया षड्द्रव्यचिन्तनेन सारं प्रधानं शुक्रध्यानमवाष्यते, किं च आन्मद्रव्यस्य गुणपर्यायभेदचिन्तया शुक्रध्यानस्य प्रथमः पादो भवति । तथा तस्येव द्रव्यस्य गुणपर्याययोरभेदचिन्तया द्वितीयपादो भवति। एवं शुद्धद्रव्यगुणपर्यायभावनयासिद्धसमाप्ति- जायते । ततो द्रव्यचिन्ताशुक्रध्यानं फछं । तेन संसारापगमः । यतः प्रवचनसारेऽप्युक्तम् । "जो जाणदि अरहन्ते द्व्वत्त गुणत्त पज्जयन्ते हिं । सो जाणदि अप्पाणं मोहो खळु जादि तस्स छयं । १।" तस्मान् कारणात् भो बुधाः। गुरुशुश्रूपया गुरुसामीप्येन अमुं द्रव्यानुयोग- माद्रियध्वमाद्रं कुरुध्वमिति गुरु त्यक्त्वा स्वेच्छया मा भ्रमतः । ६ । अथ ज्ञानं विना चारिन्त्रमात्रेण ये सन्तुष्टाः सन्ति तान हित्रिश्चिया सम्बोध्यति ।

व्याख्यार्थः—द्रव्यआदि षट् पदार्थोंकी चिन्ता अर्थात् पूर्ण विचारसे प्रधानभूत शुक्र-ध्यान प्राप्त होता है। और आत्मद्रव्यके गुण तथा पर्यायोंके भेदके विचारसे शुक्र ध्यानका प्रथम पाद सिद्ध होता है, तथा उसी आत्मद्रव्यके गुण तथा पर्यायोंके अभेदविचारसे शुक्रध्यानका द्वितीय पाद सिद्ध होता है, और इसी रीतिसे शुद्ध द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी भवनासे सिद्धिकी समाप्ति होती है। इसिलये द्रव्यकी चिन्ताका शुक्रध्यान फल है, और इस शुक्रध्यानकी प्राप्तिसे संसारका नाश होता है; क्योंकि, ऐसा ही प्रव-

⁹ दीपकमें जैसे दूसरेके प्रकाश करनेमें सामर्थ्य रहता है ऐसे ही अपनेको भी, न कि केवल अन्य पदा-थाँके प्रकाश करने मात्र ।

चनसारमें भी कहा है:—जो कोई अईन् भगवान्को द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूपसे जानता है वही आत्माको भी जानता है, क्योंकि द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूपसे आत्मज्ञानी पुरुषका मोह लयको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इस कारण हे बुधजनो ! गुरुके समीप जाके भक्ति गुश्रूषादि द्वारा इस द्रव्यानुयोगके ज्ञानसंपादनमें आदरसे लगो । तात्पर्य यह है कि गुरुसे आदरपूर्वक इसके ज्ञानको ग्रहण करो, और गुरुको त्याग कर अपनी इच्छासे न भ्रमण करो ॥ ६ ॥

अब जो ज्ञानके विना चारित्र मात्रसे संतुष्ट हैं उनको हितदायक शिक्षासे संबोधन करते हैं—

सूत्रम् । अस्य येनेक्षितः स्तायोऽत्रौघेन प्रेम यस्य वा । द्रौ निर्प्रन्थाविमो ख्यातौ नान्य इत्याह सम्मतिः ॥ ७॥

सूत्रभावार्थः — जिस पुरुषने इस द्रव्याऽनुयोगरूपी समुद्रका अधोभाग देखा है, अथवा जिसका इसमें सामान्यरूपसे अनुराग है, ये दो प्रकारके पुरुष निर्प्रन्थ अर्थात् साधु कहे गये हैं न कि अन्य, ऐसा सम्मति प्रन्थ कहता है ॥ ७ ॥

व्याख्या । अस्य द्रव्यानुयोगसमुद्रस्य सायुक्तलम्पर्शनं येन ईक्षितो विलोकितः सम्मत्या-दित्तर्कप्रन्थाध्ययनेन गीतार्थो जातः स एव एकः प्रशस्यः । तथा अत्र द्रव्यानुयोगं ओघेन सामान्यप्रकारेण यस्य प्रेम रागोऽस्ति गीतार्थनिश्चयः सोऽपि प्रशस्यः । इमौ द्वौ निर्प्रन्थौ साधू ख्यातौ कथितौ । आभ्यामपरस्तृतीयः कश्चित्साधुरपि नास्ति इत्युक्तिं सन्मतिप्रन्थ आह । यतः । "गीयत्थोयविहारो वीओगीयत्थ निस्सओ भणिओ । इतोतइयविहारोणाणुब्भाओ जिण-वरेहिं । १ ।" एतावन्मात्रो विशेषोऽस्ति । या चर्णकरणानुयोगद्दिर्गिशीथकल्पव्यवहाराध्य-यनेन जायते सा जघन्या दृष्टिः या च दृष्टिर्वादाध्ययनेन जायते सा मध्यमा दृष्टिः । २ । या पुनः समस्तश्चतिष्कर्षज्ञानरूपेण जायते सा उत्कृष्टा दृष्टिः । ३ । एवं जघन्यमध्यमो-त्कृष्टा दृष्टयस्तिस्रस्तिद्वशेषेण गीतार्था अपि त्रयः । अत्र द्रव्यानुयोगदृष्टिः सम्मत्यादित्र्वशा-स्वपारीणताख्या उत्कृष्टा । तथा तिन्नश्चया द्वितीया दृष्टिः । एतदृष्टिद्वयपरौ द्वावेव निर्प्रन्थौ स्तोऽपरः कोऽपि साधुनैति भावः ॥ ७॥

व्याख्यार्थः — जिस महा उद्योगी पुरुषने इस द्रव्याऽनुयोगरूप महासमुद्रके तल-स्पर्शको गोता मारके देखा है, अर्थात् सम्मित आदि तर्कग्रन्थोंको पूर्णरूपसे पढ़के सि-द्धान्तरहस्यका ज्ञाता हुआ है वही एक पुरुष प्रशंसनीय है. अथवा इस द्रव्याऽनुयोग-में जिसका सामान्य प्रकारसे प्रेम है, अर्थात् तर्कके अध्ययनपूर्वक अनुरागसे सिद्धान्तरहस्यको जिसने निश्चय किया है, ये ही दो प्रकारके पुरुष निर्ग्रन्थ साधु प्रख्यात हैं अर्थात् शास्त्रोंमें कहे गये हैं. इन दोनोंसे अन्य कोई तृतीय साधु नहीं है, ऐसा कथन सम्मित प्रन्थका है. उसकी गाथा यह है — तर्कशास्त्रोंके अध्ययनद्वारा सिद्धान्तरहस्यमें जिसने विहार किया है, अथवा सामान्यरूपसे इसमें प्रेम होनेसे जो सिद्धान्तरहस्यमें निष्ठ है

इनहीको जिनश्रेष्ठोंने साधु कहे हैं । निक अन्यत्र तृतीय स्थान विहार करनेवाले ॥ १ ॥ इसमें इतनी विशेषता है कि जो निशीथकल्प (अर्द्धरात्रिके तुल्य अन्धकारमय) व्यवहारके अध्ययनसे चरणकरणाऽनुयोगदृष्टि उत्पन्न होती है वह जघन्य अर्थात् निकृष्ट दृष्टि है, जो दृष्टिवाद शास्त्रके अध्ययनसे उत्पन्न होती है वह मध्यमा दृष्टि है, और समस्त शास्त्रोंके तत्त्वज्ञानसे उत्पन्न जो दृष्टि है वह उत्कृष्ट अर्थात् उत्तम दृष्टि है ॥ ३ ॥ इस प्रकार जघन्य मध्यम तथा उत्तम भेदसे तीन प्रकारकी दृष्टियें हैं, और उन २ दृष्टियोंके विशेषसे गीतार्थ भी तीन ही प्रकारके हैं । इनमें संमृति आदि तर्क शास्त्रोंमें पारीणता (तर्कशास्त्रमें पारगामिता) नामवार्टा जो दृत्यानुयोगरूप दृष्टि है वह उत्तम है, और उस तर्कशास्त्रको निश्चय करनेवाली द्वितीया दृष्टि है, इन दोनों दृष्टियोंमें परायण दोनों प्रकारके ही पुरुप निर्मन्थ साधु हैं, इनसे भिन्न कोई साधु नहीं है, यही पूर्वोक्त वाक्यका अभिप्राय है ॥ ७ ॥

अथ द्रव्यानुयोगप्रत्याभ्या निजस्यात्मनः कृतकृत्यतां द्रशयत्राह । अब द्रव्यानुयोगकी प्राप्तिसं अपने आत्माको कृतार्थ दिखाते हुये कहते हैं ।

सूत्रम्। तस्मादुरुपदाधीनो लीनश्चास्मिन्प्रतिक्षणम्। साधयामि ऋयां यां मे महत्याधारता हि सा॥८॥

सूत्रभावार्थ: द्रव्याऽनुयोगकं भी बलवत्त्वके हेतु गुरु हैं इस हेतुसे गुरूके चरणोंके आश्रित होके, तथा प्रतिक्षण इस द्रव्यानुयोगरूप योगमें लीन होके जिस किया-को में सिद्ध करता हूं उसमें वहीं मेरी बड़ी आधारता है।। ८।।

व्याख्या । तस्मादिति । ततः कारणान् द्रव्यानुयोगवलवत्ताहेतुर्गुरुस्तस्य पद्योश्चरणयोरा-धीनः । शुश्रृपापरो विनयादिशसन्नो गुरुर्ज्ञानमेव दत्त इति । पुनः अस्मिन् द्रव्यानुयोगे प्रतिक्षण-मनुसमयं लीनो यां चरणकरणानुयोगरूपां क्रियां साध्यामि सा एव मे महती महीयसी आधारता । एतावता ताद्यक् क्रियारिहतः परं गुरुसेवी ज्ञानप्रिय इच्छायोगाधिकारी भवति । यतः—"कर्त्तुमिच्छोः श्रुतार्थस्य ज्ञानिनोपि प्रमादिनः । विकलो धर्मयोगो य इच्छायोग । उदाहृतः" । १ । लिलतविस्तरादौ । ८ ।

च्याख्यार्थ:—द्रव्यानुयोगजिनत ज्ञानके सर्वोत्कृष्ट तत्त्व सिद्ध करनेमें द्रयालु गुरु ही मुख्य कारण हैं, इस कारणसे श्रीगुरुमहाराजके चरणकमलोंके आधीन अर्थात् उनकी गुश्रृषा विनय आदिमें ही सदा तत्पर होके (क्योंकि विनय आदिसे प्रसन्न गुरु ज्ञान देतेहैं) फिर इस द्रव्यानुयोगमें प्रतिक्षण लीन होके जिस चरणकरणाऽनुयोगरूप कियाको मैं सिद्ध करता हूं वह क्रियाही मेरेलिये महान् आश्रय है, इतने कथनसे यह सिद्ध हुआ कि उस क्रियासे रहित, केवल गुरुसेवी, तथा ज्ञानिष्रय जन इच्छायोगका अधिकारी होता है। क्योंकि-शास्त्रीय अर्थके सिद्ध करनेकी इच्छावाले ज्ञानी ऐसे भी

प्रमादी पुरुषका जो विकल धर्मयोग है वही इच्छायोग कहा गया है ॥ १॥ ऐसा वचन ललितविस्तर आदि ग्रन्थमें है॥ ८॥

एवं इच्छायोगे स्थितानां परोपकारार्थं द्रव्यानुयोगविचारं कथयामः । पुनरेतावतैव संतुष्टिर्न कर्तव्या । विशेषार्थिना गुरुसेवा न मोक्तव्या । एवं हितशिक्षां कथयन्नाह ।

इस प्रकार जो इच्छायोगमें स्थित हैं उनके परोपकारार्थ द्रव्यानुयोगका विचार कहते हैं, क्योंकि इच्छायोगमें स्थितिमात्रसे प्राणीको सन्तोष नहीं करना चाहिये, किन्तु विशेष अर्थके अभिलाषी जनको गुरुसेवा कटापि न त्यागनी चाहिये, इस प्रकारकी हितकारिणी शिक्षाको कहतेहुये ग्रन्थकार कहते हैं:—

सूत्रम् । तत्त्वार्थसंमितमुखेषु महाश्रुतेषु द्रव्यानुयोगमहिमा कथिता विशेषात् । तह्नेशमात्रमिह पश्यत सत्प्रबंधे सर्वाद्रेण किल तिष्ठत तीर्थवाक्ये ॥ ९ ॥ इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूच्रभावार्थः—तत्त्वार्थसंमति आदि महा शास्त्रोमं द्रव्यानुयोगकी महिमा विशेष रूपसे वर्णन की गई है, अतः हे बुधजन! इस छघु प्रबन्धमं अर्थात् इस द्रव्याऽनुयोग्तर्कणा नाम ग्रन्थमं उनका यिकिचित् देश मात्र तुम छोग देखो, और सर्वथा आद्र तथा विश्वासपूर्वक तीर्थ (शास्त्रवक्ता गुरु)के वाक्यमें स्थित रहो।। ९ ।।

द्रव्यानुयोग तर्कणामं प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ.

व्याख्या । तत्त्वार्थसंमितप्रधानेषु 'महाश्रुतेषु' महाशास्त्रेषु द्रव्यानुयोगमिहमा 'कथितः' । विशेषाद्विस्तरेण तेषु प्रथेषु प्रकाशितः । तेषां प्रथोक्तानां वाक्यानां छेशमात्रमल्पमात्रम् । इहैतिस्मिन्वक्ष्यमाणे सत्प्रबंधे द्रव्यानुयोगतर्कणायां 'पश्यत' विछोकयत । 'किछ' निश्चयेन तीर्थनाक्ये, तीर्थो गुरुस्तस्य वाक्यं द्रव्यादिपदसमूहस्तस्मिन् तीर्थवाक्ये 'सर्वादरेण' सर्वप्रयत्नेन 'तिष्ठत' आदरं कुरुत । परंतु परमार्थतो गुरुवाक्ये स्थातव्यम् अल्पमिति ज्ञात्वा अहंकारो न कर्तव्यः । यथा अधनेन धनं प्राप्तं तृणवन्मन्यते जगत् इति दृष्टांतात् । अत एव उपरितना-श्चत्वारो नया अतिगंभीरार्था यस्य कस्यापि स्मृतिविषयं न यान्ति । तेन सिद्धांते प्रथमं न दृशितास्तथा रहस्यं च गुरुभक्तायैव देयमित्युक्तत्वात् ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां कृतिभोजिविनिर्मितायां प्रथमोध्यायः सूचनार्थमुपदिश्वतः ।

च्याख्यार्थः—हे वुधजन तत्त्वार्थसंमति आदि प्रधान महाशास्त्रोंमं विस्तारसे द्रव्यानुयोगकी महिमा प्रकाशित है, किन्तु उन प्रन्थोंमं कथित वाक्योंका अति अल्प लेशमात्र इस वक्ष्यमाण लघु सत्प्रबन्ध अर्थात् द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक प्रन्थमं, तुम लोग देखो, और निश्चयसे तीर्थरूप जो गुरु हैं, उनके वाक्यरूप जो द्रव्यआदि पदोंका समृह

है उसमें सर्व आदर अर्थात् संपूर्ण प्रयत्नसे आदर करो, परंतु परमार्थसे गुरुके वाक्यमें स्थित रहना चाहिये, तथा अपनी अल्पबुद्धिको जानकर अहंकार न करना चाहिये और "निर्धन पुरुष धनको पाकर संसारको तृणके समान समझता है" यह जो दृष्टान्त है वह तुमारे ऊपर न घटे ॥ इसीसे ऊपरके चारों नय अति गंभीर अर्थसहित हैं और जिस किसी साधारण मनुष्यके स्मरण विषयमें नहीं आते इसी कारणसे सिद्धान्तमें वे प्रथम नहीं देखाये गये क्योंकि उनका रहस्य परम गुरुभक्तको ही देना उचित है, ऐसा शास्त्रकारोंने कहा है ॥

इति द्रव्यानुयोगतर्कणार्यां कृतिभोजविनिर्मितायामाचार्य्योपाधिधारिद्विवेद्युपनामकपण्डित-ठाकुरप्रसादशास्त्रीप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्रव्यस्वरूपमाह । अब द्रव्यके स्वरूपका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम्। गुणपर्याययोः स्थानमेकरूपं सदापि यत्। स्वजात्या द्रव्यमाख्यातं मध्ये भेदो न तस्य वै॥१॥

मृत्रभावार्थ:—जो गुण और पर्यायोंका स्थान है । जो निजम्बरूपसे सदा एकरूप रहता है, और जिसके निजरूपका मध्यमें कुछ भेद नहीं है, वह द्रव्य कहा गया है ॥ १ ॥

व्याख्या। गुणपर्याययोभीजनं कालत्रये एकरूपं द्रव्यम् खजात्या निजत्वेन एकखरूपं भवति । परं पर्यायवत् न परावृत्ति लभते तद्भव्यमुच्यते । यथा ज्ञानादिगुणपर्यायभाजनं जीवद्रव्यम् । रूपादिगुणपर्यायभाजनं पुद्रलद्भव्यम् । सर्वरक्तत्वादिघटत्वादिगुणपर्यायभाजनं जनं मृद्भव्यम् । यथा वा तंतवः पटापेक्ष्या द्रव्यम् । पुनस्तंतवोऽवयवापेक्ष्या पर्यायाः । कथं ! यतः पटिवचाले पटावस्थाविचाले च तंतृनां भेदो नास्ति । तत्वंवयवावस्थायामन्वयत्वरूपो भेदोस्ति । तस्मान् पुद्रलस्कंधमध्ये द्रव्यपर्यायत्वमापेक्षिकं बोध्यम् । अथ कश्चिदेवं कथियष्वति । द्रव्यत्वं तु स्वाभाविकं न जातम् । आपेक्षिकजातं । तदा तं समाध्यते । भो तार्किक ग्रृणु । यत्सकलवस्तूनां व्यवहारोपेक्ष्येव जायते । न तु स्वभावेन । तस्मादत्र न कश्चिद्दोपः । ये च समवायिकारणप्रमुखैर्द्रव्यलक्षणं मन्वते । तेषामिष अपेक्षामनुसर्वेवेति । गुणपर्यायवद्भव्यमिति तत्त्वार्थे । विस्तरस्तु द्रव्याणामुद्देशलक्षणपरीक्षा-भिस्तत्रैवास्ति । अतस्ततोऽवसेयः । १ ।

व्याख्यार्थ:—जो गुण और पर्य्यायका आश्रय हो, निजस्वरूपसे कालत्रयमें मी एक-रूप हो, न कि-पर्याके सदश परिवर्तनको प्राप्त हो उसको द्रव्य कहते हैं। जैसे ज्ञान आदि गुणपर्य्यायका भागी जीवद्रव्य है, और रूप आदि गुणपर्य्यायका भागी पुद्गल द्रव्य है। इसीप्रकार रक्तत्व आदि गुण तथा घटत्व आदि पर्यायका भागी मृत्तिकारूप

द्रव्य है। अथवा जैसे तन्तु (सूत्र) पटरूप कार्य्यकी अपेक्षासे द्रव्य हैं, और वेही तन्तु अपने अवयवोंकी अपेक्षासे पर्य्याय कहे गये हैं, किस प्रकारसे ऐसा पृछो तो कहतेहैं । क्योंकि पटके तथा पटकी पर्य्यायोंके संचालनमें तन्तुओंमें भेद नहीं है, और तन्तुओंके अवयवोंकी अवस्थाओंके संचालनमें अन्वयत्वरूप भेद हैं; इस लिये पुद्गलस्कन्धोंके मध्यमें द्रव्य तथा पर्य्याय सापेक्षिक समझना चाहिये । यहांपर कोई ऐसा कहता है कि इसप्रकार माननेसे द्रव्यस्कर स्वाभाविक न रहा किन्तु सापेक्षिक हो गया, तो इस शंकाका समाधान करते हैं:— हे तार्किक सुनो, संपूर्ण वस्तुओंका व्यवहार इस लोकमें अपेक्षासेही होता है, इसल्वेये अपेक्षासे किसी वस्तुको द्रव्य अथवा पर्य्याय माननेमें कोई दोप नहीं हे । और जो नैयायिक समवायी कारण आदि द्रव्यका लक्षण मानते हैं उनको भी अपेक्षाका अनुसरण अवश्य करना होगा । और ''गुणपर्यायवह्रव्यक्'' गुण तथा पर्यायमहित होना, यह द्रव्यका लक्षण महातत्वार्थसूत्रमें कहा है । तथा उद्देश लक्षण और परीक्षाद्वारा द्रव्योंका विस्तारसे निरूपण भी उस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रमें ही है; इसलिये द्रव्योंका विशेष विस्तार उसी शास्त्रसे जानना चाहिये ॥ २॥

अथ द्रव्यं संक्षेपत उक्तम् । अस्यैव गुणपर्याययोर्भेदादिकांक्ष्या तदेव दर्शयन्नाह । अब द्रव्यका तो संक्षेपसे निरूपण करचुके, आगे इसहीके गुणपर्य्यायोंका भेदादिवर्णन करना है, अतः वही दर्शाते हुये अग्रिमसूत्र कहते हैं ।

स्त्रम्। सहभावी गुणो धर्मः पर्यायः क्रमभाव्यथ। भिन्ना अभिन्नास्त्रिविधास्त्रिलक्षणयुता इमे॥२॥

सूच्रभावार्थ:—द्रव्यके साथ सदा रहनेवाला जो धर्म है उसको गुण कहते हैं, और द्रव्यमें जो कमसे होनेवाला है उसको पर्याय कहते हैं, ये तीनलक्षणयुक्त द्रव्य, गुण, तथा पर्यायसे त्रिविध (तीनप्रकार)के हैं, और ये तीनों कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न भी हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या । द्रव्यस्य सहभावी यावद्रव्यभावी यो धर्मः स गुण उच्यते। यथा जीवद्रव्यस्यो-पयोगाख्यो गुणः । पुद्रलस्य प्रहणं गुणः । धर्मास्तिकायस्य गतिहेतुत्वं गुणः । अधर्मास्तिकायस्य स्थितिहेतुत्वं गुणः । कालस्य वर्तनाहेतुत्वं गुणः । यदैव द्रव्यं उत्पद्यते तदैव ते द्रव्येण गुणा उत्पद्यते । पौर्वापर्यभाव एव नास्ति । गुणगुणिनोः समानसामग्रीकत्वात् सव्ये-तरिवषाणविद्ति । अनादिनिधनानां द्रव्यगुणानामुत्पत्तिदर्शनं व्यवहारतः कृष्णादिघट-वत् । अथ क्रमभावी अयावद्रव्यभावी पर्यायः । यथा जीवस्य नरकादिपर्यायाः ।

⁽१) न्यायमें द्रव्यको समवायीकारण माना है जैसे घटआदि कार्य्यमें मृत्तिका समवायी कारण है।

⁽२) जीव और उसके ज्ञान आदि उपयोग व्यवहारदृष्टिसे भिन्न हैं।

⁽३) परन्तु एकही देशमें जीव तथा ज्ञानादिकी उपलब्धी होनेसे जीवपर्घ्याय अभिन्नभी है चतुर्विध दर्शन तथा अष्टविध ज्ञानको उपयोग कहते हैं।

पुद्गलस्य रूपरसस्पर्शादिपर्यायाः । धर्मस्य व्यंजनार्थपर्यायौ । अधर्मस्य व्यंजनार्थपर्यायौ । कालस्य व्यंजनार्थपर्यायौ । आकाशस्य व्यंजनार्थपर्यायौ । एवं द्रव्याणां संख्याकृतो भेदः । लक्षणादिकृतो भेदः । प्रदेशादिविभागतिस्वविधाः । उपचारेण नवविधाः । एकैकस्य त्रैविध्यान् । तथापि लक्षणादुत्पाद्व्ययधौव्ययुक्ताः । इत्थं पडपि जैनप्रमाणप्राप्तानि द्रव्याणि इमे । इति द्रव्यगुणपर्यायाः प्रत्येकं परस्परं भिन्ना अभिन्नास्विविधास्विलक्षणयुताः संतीति व्याख्येयम् ।२।

व्याख्यार्थ: द्रव्यके सहभावी अर्थात् द्रव्यके साथही साथ होनेवाला, तथा याव-द्रव्यभावी अर्थात उस द्रव्यमात्रमें रहनेवाला जो धर्म है उसीको गण कहते हैं: जैसे जीव द्रव्यका उपयोग नाम गुण है, पुद्रल द्रव्यका प्रहण गुण है, धर्मास्तिकाय(धर्मद्रव्य)का गैतिहेतुता गुण है, अधर्मास्तिकाय (अधर्मद्रव्य) का स्थितिकी कारणतारूप गुण है, और ऐसेही कालद्रव्यका वर्तना हेत् लक्षण गुण है। जिस समय जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसी समानकालमें उस द्रव्यके गुणभी उत्पन्न होते हैं, इस हेत्से द्रव्य तथा उसके गुणोंका पौर्वापर्यभाव, अर्थात पूर्व कालमें द्रव्य है पश्चात उस द्रव्यके गुण हैं यह वार्ता नहीं है। दक्षिण तथा वाम भागके पशुके शृंगोंके सदश द्रव्य तथा गुण ये दोनों समान सामग्रीसे जन्य होनेसे एकही कालमें है। अनादि अनन्त द्रव्य गुणोंकी उत्पत्ति संसारके व्यवहारसे एकही कालमें देखी गई है, जैसे क्रप्णघट । अब क्रमभावी, अथवा अया-वह्रव्यभावी अर्थात उस संपूर्ण द्रव्यमात्रमें जो न रहे किन्तू किसी दशामें रहे उसको पर्याय कहते हैं। जैसे जीव द्रव्यके नरकआदि पर्याय; पुदुलद्रव्यके रूप रस स्पर्शादि पर्याय, धर्म-द्रव्यके व्यंजन तथा अर्थपर्याय, अधर्मद्रव्यके भी व्यंजन तथा अर्थपर्याय, कालद्रव्यके व्यंजन तथा अर्थपर्याय, और आकाशद्रव्यके भी व्यंजन तथा अर्थपर्याय हैं । इसी प्रकार द्रव्योंके संख्याकृत, भेद लक्षणादि कृतभेद, प्रदेश विभाग कृतभेद हैं, इसरीतिसे तीन प्रकारके हैं, और उपचारसे नवविध हैं, क्योंकि एक २ के तीन २ भेद हैं, तथापि लक्षणसे संपूर्ण द्रव्य उत्पाद, व्यय और धौव्ययुक्त हैं। इस प्रकार जीव १ पुद्रल २ धर्म, ३ अधर्म ४ आकाश, ५ तथा काल, ६ ये छहों जैनप्रमाणसे प्राप्त (सिद्ध) हैं; और ये द्रव्य, गुण, पर्घ्याय परस्पर भिन्नभी हैं और अभिन्न भी, तथा त्रिविध लक्षण, अर्थात उत्पत्ति, व्यय और धोव्ययक्त हैं। ऐसा सूत्रका व्याख्यान करना चाहिये॥ २॥ अथ द्रव्येण सह गुणपर्याययोभेंदं दर्शयन्नाह ।

अब इसके अनन्तर द्रव्यकेसाथ गुण और पर्य्यायका भेद दर्शातेहुये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

⁽१) परन्तु एकही देशमें जीव तथा ज्ञानादिकी उपलब्धी होनेसे जीवपर्व्याय अभिन्न भी है चतुर्विध दर्शन तथा अष्टविध ज्ञानको उपयोग कहते हैं।

⁽२) अमुक पदार्थ इतने समयमें है इस प्रकार सब पदार्थोंके वर्त्तानेके लक्षणरूप काल है।

⁽३) प्रत्येक पदार्थकी गतिमें सहकारिकारणता धर्म द्रव्यको है ।

सूत्रम् । मुक्ताभ्यः श्वेततादिभ्यो मुक्तादाम यथा पृथक् । गुणपर्याययोर्व्यक्तेर्द्रव्यदाक्तिस्तथाश्रिता॥३॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे मोतियोंसे तथा श्वेतता आदि गुणोंसे मोतीकी माला भिन्न है, ऐसेही गुणपर्य्यायकी व्यक्तिसे द्व्यशक्ति पृथक् होकर भी एक प्रदेशमें आश्रित होनेसे अभिन्नरूप है ॥ ३ ॥

व्याख्या। यथा मुक्ताभ्यो, मौक्तिकानां श्वेतादिभ्यश्च मौक्तिकमाला भिन्ना वर्तते। तथैव द्रव्य-शक्तिर्गुणपर्यायव्यक्तिभ्याम्। तथात्र समाधिः। गुणपर्याययोव्यक्तिः सकाशान् पृथगपि द्रव्यश-क्तिरेकप्रदेशसंबंधेनाश्रिता अभिन्ना अषृथगित्यर्थः। श्वेततादयो मौक्तिकानां गुणस्थानिनः, मौ-क्तिकाः पर्यायस्थानिनः। एतद्द्वयं भिन्नमपि द्रव्यस्थाने मुक्तादान्नि संगतमभिन्नं सन् मुक्तादामिति व्यवहारो जायते। इति दृष्टांतयोजना। अथ च घटादिद्रव्यं प्रत्यक्षप्रमाणेन सामान्यवि-शेषरूपमनुभवन् सामान्योपयोगेन मृक्तिकादिसामान्यं भासते विशेषोपयोगेन घटादिविशेषं च भासते। तत्र यत्सामान्यभानं तद्वव्यरूपम्। यश्च विशेषः स गुणपर्यायरूपो ज्ञेयः। ३।

व्याख्यार्थ: मौक्तिक (मोतीकी) माला, मोतीसे तथा मोतीमें रहनेवाले श्वेतता आदि गुणोंसे जैसे भिन्न भासती है, ऐसे ही गुणव्यक्ति तथा पर्यायव्यक्तिसे द्रव्यशक्ति भिन्न भासनेपर भी एकप्रदेशसंबन्धमं आश्रित होनेसे अभिन्न हे, यह अभिप्राय सूत्रका है। श्वेतआदि गुण जो हैं वे मोतियोंके गुणस्थानी हैं, और मोती पर्यायस्थानी हैं; ये दोनों (गुणपर्याय) भिन्न हो कर भी, मोतीकी मालारूप द्रव्यस्थानमें मिले हुए अभिन्न हैं इस ही से मोतीकी माला यह व्यवहार होता है ऐसे सूत्रके दृष्टान्तकी योजना है। और जो घट आदिक्रप द्रव्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे मामान्य और विशेषक्रपको अनुभव करता हुआ सामान्य उपयोगरूपसे मृत्तिका आदि सामान्यक्रप भासता है, और विशेष उपयोगसे घट आदि विशेषक्रप भासता है; इसमें जो सामान्य भान है वह तो द्रव्यक्रप और जो विशेषका भान है उसको गुणपर्यायक्रप जानना चाहिये॥ ३॥

अथ सामान्यं द्विप्रकारं दर्शयन्नाह् ।

अब दो प्रकारके सामान्यको दिखाते हुए सूत्र कहते हैं।

स्त्रम् । अर्ध्वतादिमसामान्यं पूर्वापरगुणोदयम् । पिंडस्थादिकसंस्थानानुगता मृद्यथा स्थिता ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थ: पूर्वोक्त गुणपर्यायोंके उद्यका कारण, तथा पूर्वोत्तर पर्य्यायोंकी त्रिकाल दशामें पिंड कुसूल अनेक आकारोंमें जो एक अनुगतरूपसे स्थित है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं॥ ४॥

व्याख्या । पूर्वः प्रथमोऽपरोग्नेऽतनो यो गुणो विशेषस्तयोरुद्यं कारणं पूर्वा-परगुणोद्यं पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रव्यं त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदृर्ध्व-तासामान्यमित्यभिधीयते । निदर्शनमुत्तानमेव । यथा । पिंडो मृत्पिडः अस्थिः कुसूल- इत्याद्योऽनेके संस्थाना आकृतयस्तासु अनुगता पूर्वापरसाधारणपिरणामद्रव्यरूपा मृत्तिका तथाकारा स्थिता। एतदूर्ध्वतासामान्यं कथ्यते। यदि च पिंडकुसूलादिपर्यायेषु अनुगतमेकं मृद्द्रव्यं न कथ्यते। तदि घटादिपर्यायेषु अनुगतं घटादिद्रव्यमपि न कथ्यते। तथा च सर्व विशेषरूपं भवति। क्षणिकवादिवौद्धमतमायाति। अथवा सर्वद्रव्येषु एकमेव द्रव्यमागच्छतीति। ततः। घटादिद्रव्ये अथ च तदंत्वितिसामान्यमृदादिद्रव्ये चानुभवानुसारेण परापरोध्वतासामान्यमवद्यमंगीकर्तव्यम्। घटादिद्रव्याणि स्तोकपर्यायव्यापीनि पुनर्मृदादिद्रव्याणि बहुपर्यायव्यापीनि संति। इत्थं नरनारकादिद्रव्याणां विशेषो ज्ञातव्यः। एतत्सर्वमिपि नैगमन्यमतम्। तथा शुद्धसंम्रहन्यमते तु सद्दैतवादेन एकमेव द्रव्यमापयतेतिज्ञेयम्। ४।

व्याख्यार्थ:—पहिले और अगले विशेषोंके उद्यक्ता जो कारण सो पूर्वापर गुणोद्य अर्थात् पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें त्रिकाल अनुयायी पदार्थका अंश है उसको उद्धता नामक प्रथम सामान्य कहतेहैं। दृष्टान्त यह है कि जैसे—मृत्तिकाका पिंड, कुसूल इत्यादि आकृतियोंमें अनुगत अर्थात् पूर्वोत्तर साधारण परिणामरूप द्रव्यरूप जो मृत्तिका है वह उसही आकारसें स्थित है। इसहीको उर्ध्वता सामान्य कहतेहें। और यदि पिंड कुसूल आदि यावत् पर्यायोंमें अनुगत एक मृत्तिकारूप द्रव्य न कहें तो घट आदि पर्यायोंमें अनुगत घट आदि द्रव्य भी नहीं कह सकते; और इस प्रकारसे सब विशेषरूप होनेसे क्षणिकवादी बौद्धका मत आके प्राप्त होता है। अथवा संपूर्ण द्रव्योंमें एकही द्रव्य आता है, इस लिये घटआदि द्रव्यमें और उसके अन्तर्गत मामान्य मृत्तिका आदि द्रव्यमें भी अनुभवके अनुसार पूर्वापरदशासाधारण उर्ध्वता मामान्य अवश्य अङ्गीकर्तव्य है। इनमें घटआदि द्रव्य तो अल्प पर्य्याय व्यापी हैं और मृत्तिका आदि द्रव्य बहुत पर्याय व्यापी हैं। इसी प्रकार नर तथा नारक आदि द्रव्योंकाभी विशेष समझना चाहिये। यह सब द्रव्य गुण तथा पर्यायका भेद और अभेद तथा उर्ध्वता सामान्यकी व्यवस्थादि नैगमनयमतके अनुसार वर्णन किया गया है, और ग्रुद्धसंग्रहनयमतके अनुसार तो सद् अद्वैतवादसे एक ही द्रव्य प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये॥ १॥

पूर्वापरसाधारणं परिणामद्रव्यमृर्ध्वता कटककंकणाद्यनुगामिकां न वदतीति तत्स्वरूपमु-क्त्वाथ तिर्यक्सामान्यस्रक्षणमाह ।

पूर्वीपरपर्यायों में साधारण परिणामरूप द्रव्य ऊर्ध्वता सामान्य है, वह कुंडल, कटक (कडे) कंकण आदि पर्यायों में अनुगामी पनेको नहीं कहता है यातें ऊर्ध्वता सामान्यका स्वरूप कहके अब तिर्थक् सामान्यका लक्षण कहते हैं॥

सूत्रम् । तुल्या परिणतिर्भिन्नव्यक्तिषु यत्तदुच्यते । तिर्यक्सामान्यमित्येव घटत्वं तु घटेष्विव ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थ:—भिन्न २ प्रदेशोंमें स्थित जो अनेक व्यक्तियें हैं उन सबमें सहश परिणामरूप जो द्रव्यशक्ति है उसको तिर्थ्यक् सामान्य कहते हैं जैसे कि घटोंमें घटत्व ॥५॥ व्याख्या। यत् भिन्नव्यक्तिषु भिन्नप्रदेशिवशेषेषु तुल्या समाना एकरूपा। एकाकारा द्रव्यशक्तिस्तिर्यक्सामान्यमुच्यते तु। यथा। घटेषु घटत्वं, गोषु शाबलेयादिषु गोत्वम्, अश्रेषु अश्वत्वं, तिष्ठति सामान्यभूतम्। तथा। अनेकाकारघटसहस्रेष्विप घटत्वमेवेति तिर्यक्सामान्यमिति। अत्र कश्चिद्दाह्। यद्घटादिभिन्नव्यक्तिषु यथा घटत्वादिकं सामान्यमेकमेवास्ति। तथा पिंडकुस्लादिभिन्नव्यक्तिषु मृदादिसामान्यमेकमेवास्ति। तार्हि तिर्यक्सामान्योध्वतासामान्ययोः को विशेषस्तत्राह। यत्र देशभेदेन या एकाकारा प्रतीतिरुत्पद्यते। तत्र तिर्यक्सामान्यमभिधीयते। यत्र पुनः कालभेदेन अनुगताकारप्रतीतिरुत्पद्यते। तत्र अर्ध्वतासामान्यमभिधीयते इति। एवं सित दिगंबरानुसारी कश्चिद्वक्ति। षण्णां द्रव्याणां कालपर्यायरूप अर्ध्वताप्रचयः। कालं विना पंचद्रव्याणामवयवसंघातरूपतिर्यक्प्रचयश्चास्ति। एवं वदतां तेषां मते तिर्यक्प्रचयस्याधारो घटादिस्तिर्यक्सामान्यं भवति। तथा परमाणुरूप प्रचयपर्यायाणामाधारो भिन्न एव युज्यते। तस्मान पंचद्रव्याणाम्। एकंघ १ देश २ प्रदेश भावेन एकानेकव्यवहार उत्पादनीयः। परंतु तिर्यक्प्रचय इति नामांतरमप्रयोजकं वालुका-पेपवन्। इति नियमः १४। ५।

व्याख्यार्थ:—जो भिन्न २ प्रदेशोंवाले विशेषोंमें समान अर्थात एकआकारवाली द्रव्यशक्ति है उसको तिर्ध्यक् सामान्य कहते हैं जैसे संपूर्ण घट व्यक्तियोंमें घटत्व, शाबलेय आदि समस्त गो व्यक्तियोंमें गोत्व. एवमेव अश्व (घोडे) में अश्वपना सामान्यभूत रहता है वैसेही अनेक आकारवाले हजारों घटोंमेंभी घटत्वही रहता है ऐसा तिर्यक सामान्य है ॥ अब यहांपर कोई शंका करता है कि जैसे घट आदि भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें घटत्व आदि सामान्य एक ही है ऐसे ही पिंड, कुसूल, आदि भिन्न व्यक्तियोंमें मृत्तिका आदि सामान्य भी एक ही रूप है. तो तिर्ध्यक सामान्य तथा ऊर्ध्वता सामान्य इन दोनोंमें क्या विशेष है ? इस शंकाका उत्तर देते हैं-जहांपर एक जातिके पदार्थीमें केवल देशभेदसे जो सब उस प्रकारकी व्यक्तियोंमें एकाकार प्रतीति होती है वहांपर उस (एकाकार प्रतीति वा भान) को तिर्ध्यक् सामान्य कहते हैं; और जहां पुनः कालभेदमे सब पर्ध्यायोंमें अन्-गत एकाकार प्रतीति होती है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं; येही दोनोंमें भेद है। इस प्रकार मानने पर कोई दिगम्बर जैनमताऽनुयायी कहते हैं कि जीवे. पुद्रेल, धैर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन छहों द्रव्योंका काल पर्व्यायरूपमें तो ऊर्ध्वता प्रचय है: और कालको छोडके शेष पंच द्रव्योंका अवयव संघातरूप तिर्ध्यक प्रचय है। इस प्रकार कहनेवाले दिगम्बरियोंके मतमें तिर्घ्यक् प्रचयका आधार घटआदि तिर्घ्यक् सामान्य होता है; और उसी रीति परमाणुरूप प्रचय पर्य्याओंका आधार उनसे कोई भिन्न होना योग्य है!! इस हेतुसे पञ्चद्रव्योंका स्कंध १ देश २ तथा प्रदेश भावसे एक तथा अनेक व्यवहार प्रतिपादन करना चाहिये; परन्तु तिर्य्यक् प्रचय ऐसा अन्य नाम तो व्यर्थही है जैसे वालू (रेती) का चूर्ण वश यही नियम है ॥ ५ ॥

अथोर्ध्वतासामान्यशक्तेभेंदृद्धयं दृश्यन्नाह । इसके पश्चात् उर्द्धता सामान्य शक्तिके दो भेद दृशांते हैं;

सत्रम् । गुणपर्याययोः शक्तिमात्रमोघोद्भवादिमा । आसत्रकार्ययोग्यत्वाच्छक्तिः समुचिता परा ॥ ६॥

सूत्रभावार्थ:—द्रव्योंके गुण तथा पर्यायमें शक्तिमात्र है उसके दो भेद हैं, उनमेंसे जो प्रथम शक्ति है उसको ओघोद्भवा कहते हैं, और समीपवर्ती कार्यके योग्य होनेसे तथा व्यवहारके उपयुक्त होनेसे द्वितीय शक्तिको समुचिता शक्ति कहते हैं॥ ६॥

व्याख्या । सर्वेपां द्रव्याणां निजनिजगुणपर्याययोः शक्तिमात्रम् । ओघोद्रवा ओघशक्तिः आदिमा प्रथमभेदरूपा कथ्यते । पुनः आसत्रं निकटं शीद्रभावि वा यत्कार्यं तस्य योग्यत्वान् व्यवहारयोग्यत्वान् समुचिता शक्तिरपरा द्वितीया समुचितशक्तिक्च्यत इति । ६ ।

च्यारुयार्थ:—सम्पूर्ण द्रच्योंके गुण तथा पर्यायमं जो शक्तिमात्र है उसके दो भेद हैं, प्रथम अथवा आदि शक्ति जो ओघसे अर्थात् समूहसे उत्पन्न होती है उसको ओघशक्ति कहते हैं; और पुनः समीपवर्ती शीघ्रभावी जो कार्य्य है उसके योग्य होनेसे तथा व्यवहारके उपयोगी होनेसे द्वितीय शक्तिको समुचित (उचित वा योग्य) शक्ति कहते हैं ॥ ६ ॥

अथैतद्भेदद्वयं दृष्टान्तेन द्रहयन्नाह ।

अब इन दोनो भेदोंको दृष्टान्तसे दृढं करते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । ज्ञायमाना तृणत्वेनाज्यशक्तिरनुमानतः । किं च दुग्धादिभावेन प्रोक्ता लोकसुखपदा ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ:—यद्यपि घृतकी शक्ति तृणपनेकर अनुमानसे जानी जाती है तथापि दुग्धभावसे कही हुई लोकमें सुख देनेवाली होती है ॥ ७ ॥

व्याख्या। यथा आज्यशक्तिर्घृतशक्तिः तृणलेन तृणभावेन अनुमानप्रमाणतो ज्ञायमानापि लोकानामग्रतः कथियतुं न शक्यते । यदि तृणपुद्रलेषु घृतशक्तिर्नास्ति तदा तृणाहारेण धेनुर्पुग्धं कथं दत्ते । तहुग्धान्तर्भूता घृतशक्तिः कुत आगता । इत्थमनुमीयमाना तृणभावेन घृतशक्तिश्तिकदृष्टान्तः । किं चानुमीयमानौधशक्तिराद्या पुनर्व्यवहारादेशं लभते । तथाह । तृणजत्यदुग्धादिभावेन दुग्धंद्ध्यादिभावेन परिणमिता घृतशक्तिः प्रकाश्यमाना लोकसुखप्रदा
लोकचित्तगम्या भवेन् । ततः सा शक्तिर्दितीया समुचितशक्तिः कथ्यते । अत्रायं विवेकः ।
अनन्तरकारणमध्ये समुचितशक्तिः, परम्परकारणमध्ये ओघशक्तिरिति। ओघशक्तौ तु तृणानि
धेनुरश्नाति, पुष्टा सती दुग्धं दत्ते, दुग्धेन द्धि जायते, द्ध्नः कारणकलापेन घृतमेवमोधेन
घृतशक्तिः स्फुटीभवति । तथान्यत्र दुग्धद्ध्यादेर्घृतमेवेति व्यवहारयोग्यत्वं लोकप्रसिद्धमेवेति । अथ च ओघशक्तिसमुचितशक्त्योरन्यकारणता, प्रयोजनतेतिनामान्तरद्वयमिष प्रन्थान्तरात्कथितमिति श्रेयम् । ७ ।

१ ख पुस्तके नास्ति.

व्याख्यार्थ:--जैसे घृतशक्ति तृणस्वरूपसे अनुमानप्रमाण द्वारा जानी जाती ह तो भी मनुष्योंके आगे कही नहीं जा सकती । यदि तृणरूप पुद्रलोंमें घृतशक्ति नहीं होती तो तृणका मोजन करनेसे गौ दुग्ध कैसे देती ? और उस दुग्धके भीतर भी जो घृत शक्ति है वह कहांसे आती? इसप्रकार अनुमान की हुई घृतशक्ति तृणभावसे जानली गई है तो भी मनुष्योंके आगे वह प्रकट नहीं की जा सक्ती। इसी हेतु तृणभा-वसे ज्ञात जो घृतराक्ति है वह पहली ओघराक्ति है । यह एक दृष्टान्त हुआ। किञ्च अनुमान प्रमाण सिद्ध जो वह आदिम ओघशक्ति है सो फिर व्यवहारके आदेश को प्राप्त होती है। सो ही कहते हैं कि तृणके भोजनसे उत्पन्न हुए दुग्ध आदि भावसे परिणामको प्राप्त हुई घृतराक्ति जो लोकमें प्रकाशित की जाती है वह लोंगोंको सुख देनेवाली अर्थात् रमणीय होती है। तात्पर्य यह कि यदि छोकमें कहो कि घृत तृणसे उत्पन्न होता है तो लोगोंको अच्छा नहीं लगेगा और दुग्धसे घृत उत्पन्न होता है ऐमा कहना सबको अच्छा लगेगा क्योंकि घृत साक्षात् दुग्ध व दिध (दही) से उत्पन्न होता है इसकारण वह दूसरी शक्ति समुचिता शक्ति कहलाती है। यहांपर ऐसा विवेक करना चाहिये कि व्यवधानरहित कारणके मध्यमें जो शक्ति है वह समुचित शक्ति है अर्थात् दुग्ध तथा द्धिरूप कारण और घृतकार्यके मध्यमें कोई व्यवधान नहीं है इसिलिये घृतकार्यके अव्यवहित पूर्व दुग्ध वा दिधिरूप कारणमें जो शक्ति है वह समुचित शक्ति है । परं-परा कारणके मध्यमें जो शक्ति है वह ओघशक्ति है। इस ओघशक्तिमें परंपरा इसप्र-कार है कि गो पहले तृणोंको खाती है, फिर उससे रस आदिका जो परिणमन होता है उससे जब पुष्ट होती है तब दुग्ध देती है, पुनः दुग्धसे दिध होता है, इसरीतिसे तृणसे द्धिपर्य्यन्त जो कारणोंका समूह है उससे घृत होता है, ऐसे ओघसे घृतशक्ति प्रकट होती है। और अन्यत्र दृध दही आदि घृतरूप हैं यह व्यवहार लोकमें प्रसिद्ध ही है। तथा ओघराक्ति और समुचित राक्तिके अन्य ग्रंथोंमें कहे हुए समुचित कारणता तथा प्रयोजनता ये दो दूसरे नाम भी जानने चाहियं।

अथ आत्मद्रव्यमध्ये एतच्छक्तिद्वयं विवक्ति ।

अजीव द्रव्यमें दोनों शक्तियोंका निरूपण करके अब आत्मद्रव्यमें ओघशक्ति तथा समुचितशक्तिकी विवेचना करते हैं--

स्त्रम्। प्राक् पुद्गलपरावर्ते धर्मशक्तिर्यथौधजा। अन्त्यावर्ते तथा ख्याता शक्तिः समुचिताङ्गिनाम्॥८॥

सूत्रार्थ:—जैसे भव्य जीवोंके प्रथम पुद्गलोंके परावर्त्तनोंमें ओघ (समूह)से उत्पन्न हुई धर्मशक्ति थी वैसे ही अन्तके पुद्गल परावर्त्तनमें समुचिता नामसे प्रसिद्ध धर्म-शक्ति है॥८॥ व्याख्या । यथा अङ्गिनां प्राणिनां भव्यानां प्राक् पुद्रलपरावर्ते प्रथमपुद्रलपरावर्ते जाले-कवचनम् । अर्थात् अनन्तेषु पुद्रलपरावर्तेषु प्रथमं व्यतीतेषु सत्सु ओघजा सामान्यरूपा धर्म-शक्तिस्तद्गुगता आसीत् । यद्येवं न भवेत्तार्हे अन्त्यपुद्रलपरावर्ते सा कुतः प्राप्स्यते । यतः नासतो विद्यते भाव इत्यादिवचनात् । तथा पुनरन्त्यावर्ते चरमपुद्रलपरावर्ते धर्मशक्तिः समु-चिता ख्याता । अत एवाचरमपुद्रलपरावर्तकालो भवबाल्यकालः पुनरन्त्यपुद्रलपरावर्तकालो धर्मयौवनकालश्च कथ्यते । उक्तं च ।

अचरमपरियद्वेसु कालो भवबालकालगो भणिओ।

चरमोड धम्मजुव्वणकालो तह् वन्नभेउत्ति । १ । एतद्विंशत्यां पठितमिति ॥ ८ ॥

च्याख्यार्थ: जैंसे भव्य जीवोंके प्रथम पुद्रलोंके परावर्तनोंमें, "प्राक्पुद्रल-परावर्त्ते" यहां जातिकी अपेक्षा से एक वचनका प्रयोग किया गया है भावार्थ:—अनन्त परावर्त्तमान अर्थात् एकके पीछे निरन्तर गमनागमन शील जो पुद्रल प्रथम व्यतित होते चले आये हैं उनमें ओघसे उत्पन्न तथा उनके सब पर्यायोंमें अनुगत सामान्य रूपको धारण करनेवाली धर्मशक्ति विद्यमान थी। क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो अन्तिम पुद्रल परावर्त्तनमें उन पुद्रलोंको पर्यायोंमें चलानेवाली धर्मशक्ति कहांसे प्राप्त हो सक्ती है है क्योंकि असत् पदार्थका भाव अर्थात् विद्यमानपना नहीं हो सक्ता इत्यादि वचन है, इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम पुद्रलोंके परावर्त्तनोंमें जो विद्यमान धर्मशक्ति है उसका समुचिता नाम है। इसी कारणसे प्रथम पुद्रलोंका जो परावर्त्तन काल वह भवका वाल्य काल है, ओर जो अन्तके पुद्रलोंका परावर्त्तन काल है वह धर्मका यौवनकाल कहा जाता है। इस विषयमें यह वचन भी कहा गया है कि— प्रथम पुद्रलोंके परावर्त्तनोंका काल भवका बाल्यकाल कहलाता है, तथा अन्तके पुद्रलोंका परावर्त्तन काल धर्मयौवनकाल कहलाता है। १। यह गाथा विश्विन-नामक ग्रंथमें पठित है।। ८।।

अथ द्रव्यशक्तिं व्यवहारनिश्चयनयाभ्यां दर्शयन्नाह् । अब द्रव्यकी शक्तिको व्यवहार तथा निश्चयनयमे दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम्। कार्यभेदाच्छक्तिभेदो व्यवहारेण दृश्यते। युक्निश्चयनयादेकमनेकैः कार्यकारणैः॥९॥

सूत्रार्थ:—व्यवहारनयकी अपेक्षासे कार्योंके भेदसे शक्तिभेद भी देख पडता है, तथा निश्चयनयकी अपेक्षासे तो अनेक कार्य्य तथा कारणोंसे युक्त होने पर भी निजशक्ति-स्वभाव एकही द्रव्य है ॥ ९ ॥

व्याख्या । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकस्य कार्यस्य ओघशक्तिसमुचितशक्तिरुपाः शक्तयोऽने-कश एकद्रव्यस्य प्राप्यन्ते ।ताः पुनर्व्यवहारनयेन व्यवहृताः सत्यः कार्यकारणभेदं सूचयन्ति । कथं व्यवहारनयो हि कार्यकारणभेदमेव मनुते। निश्चयनयो हि अनेककार्यकारणैर्युगिप द्रव्यमेकमेव स्वज्ञक्तिस्वभावमस्तीत्यवधारयित। कदापि इत्यं नावधार्यते। तदा स्वभाव-भेदाद्रव्यभेदोऽपि संपद्येत। तस्मात्तत्तदेशकालादिकापेक्ष्या एकस्यानेककार्यकारणस्वभावमङ्गी-कुर्वतां न कोपि दोषपोषः। कारणान्तरापेक्षापि स्वभावान्तर्भूता एवास्ति। तेन तस्यापि वैफल्यं न जायते। तथा शुद्धनिश्चयमताङ्गीकारे तु कार्यकारणकल्पनीव मिथ्या। यतः आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्त्रथिति वचनान्। कार्यकारणकल्पनाविरिद्धतं शुद्धमिवकलमचिलतस्व-रूपं द्रव्यमस्तीति क्षेयम्। ९।

च्याख्यार्थ: पूर्व प्रसंगमें कही हुई रीतिसे एक एक कार्यकी ओघशक्ति तथा समुचित शक्तिरूप जो शक्तियें हैं वे एक द्रव्यके अनेक प्राप्त होती हैं, और व्यवहार नयसे व्यवहत (व्यवहार वा उपयोगमें प्राप्त) होनेने वे ही शक्तियें कार्य तथा कारणका मेद सूचित करती हैं; क्योंकि व्यवहार नय कार्यकारणका मेद ही मानता है; और निश्चय (शुद्ध) नय तो अनेक कार्य्य तथा कारणोंसे युक्त होनेपर भी द्रव्य एक निजशक्ति स्वभाववाला है ऐसा निश्चय कराता है, और ऐसा निश्चय कभी भी नहीं कराता कि कार्यकरणोंके भेदसे अनेक स्वभावयुक्त द्रव्य होता है, क्योंकि जब ऐसा माना जायगा तब स्वभाव भेदसे द्रव्य भेद भी प्राप्त हो जायगा । इसल्यि उस उस देश उस उस काल आदिकी अपेक्षासे एक द्रव्यका अनेक कार्य कारण स्वभाव अंगीकार करनेवालोंको कोई भी दोपका लेश नहीं है, और कारणान्तरकी अपेक्षा जो है वह भी द्रव्यके स्वभावके अन्तर्गत ही है, इसल्यि उसको भी निष्फलता नहीं होती और शुद्ध निश्चय नयके मतको स्वीकार करने पर तो कार्यकारणकी कल्पना ही मिध्या है । क्योंकि "जो धर्म अथवा स्वभाव अर्थात् द्रव्यका अनेक स्वरूप आहि अन्तमं नहीं है वह वर्तमानेमें भी वैसा ही है अर्थात् नहीं हे ऐसा वचन है; इससे कार्यकारणकी कल्पनासे सून्य, अखंडित, तथा अविचलित स्वरूप एक ही द्रव्य है ऐसा जानना चाहिये॥ ९॥

पूर्वेत्र शक्तिस्तरूपं द्रव्यं व्याख्यातम् । अथ च व्यक्तिरूपौ गुणपर्यायौ वर्णयन्नाह् । पूर्व प्रकरणमें शक्तिस्वरूप द्रव्यका वर्णन किया गया, अब व्यक्तिरूप गुण तथा पर्या-यका वर्णन करते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं.

सूत्रम् । खस्रजात्यादिभूयस्यो गुणपर्यायव्यक्तयः। शक्तिरूपो गुणः केषांचिन्मते तन्मृषागमे॥ १०॥

सूत्रार्थ:—सहभावी अथवा क्रमभावी कल्पनासे किये हुए निजस्वभावसे वर्त्तमान गुण तथा पर्यायोंकी व्यक्ति अनेक प्रकारकी है; और किन्हींके अर्थात् दिगम्बरमतानु-सारियोंके मतसे गुण जो है वह शक्तिरूप ही है परंतु यह शास्त्रीय सिद्धान्तोंसे मिथ्या है ॥ १०॥

व्याख्या । स्वस्वजात्या सहभाविकमभाविविकस्पनाकृत्रिजस्वभावेन वर्तमाना गुणपर्याय-

व्यक्तयो भूयस्यो बहुप्रकाराः सन्तीति । अत्र कश्चिद्दिगम्बरानुसारी शक्तिरूपो गुण इति कथयन्नाह् । यतो द्रव्यपर्यायकारणं द्रव्यम् । गुणएर्यायकारणं गुणः द्रव्यपर्याययोर्द्रव्यस्यान्यथाभावः । यथा नरनारकादयो यथा वा द्व्यणुकत्र्यणुकाद्यः । पुनर्गुणपर्याययोर्गुणस्यान्यथाभावः । यथा मतिश्रुतादिविशेषः । अथवा भवस्थिसद्धादिविशेषः । एतौ द्रव्यगुणौ स्वस्वजात्या शाश्वतौ पर्यायेण चाशाश्वतौ इत्थं संगिरन्ते । परमार्थतस्तु आगमयुक्तया एतत्सर्व मृषा असत्कल्पनित्यवधार्ये प्रमाणाभावात् । १८ ।

च्याख्यार्थः — द्रव्योंके अपने २ स्वभावमे सहभावी अर्थात् द्रव्यके साथ ही होने-वाले गुणोंकी व्यक्तियां, तथा द्रव्योंके निज २ स्वभावसे क्रमभावी पर्यायोंकी व्यक्तियां अनेक प्रकारकी हैं । यहां कोई दिगम्बरमतके अनुयायी शक्तिरूप ही गुण है ऐसा कहते हुए कहते हैं कि द्रव्यपर्यायका कारण तो द्रव्य है, और गुणपर्यायका कारण गुण है, तथा द्रव्य और पर्यायोंमें भी द्रव्यका अन्यथा भाव है, जैसे जीवद्रव्यके नर तथा नारकादि विशेष, पुद्गल द्रव्यके द्रचणुक, व्यणुक आदि विशेष, ओर गुणपर्यायोंमें गुणका अन्यथाभाव अर्थात् गुणकी रूपान्तरसे स्थितिरूप ही है। जैसे ज्ञानगुणके मति-श्रुत आदि विशेष, अथवा भवस्थ सिद्ध आदिक विशेष। फिर यह द्रव्य गुण निज निज स्वभावसे तो नित्य हैं, और पर्यायरूपसे अनित्य हैं, ऐसा दिगम्बर जैनी कहते हैं। परन्तु यथार्थमें शास्त्रीय युक्तिसे यह सब मिथ्या है अर्थात् यह कल्पना उनकी असदृप है। क्योंकि इस कल्पनामें कोई प्रमाण नहीं है॥ १०॥

अथ गुणपर्याययोरैक्यं प्रदर्शयन्नाह ।

अब गुण तथा पर्य्यायकी एकता दर्शाते हुए यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । पर्यायात्र गुणो भिन्नः सम्मतिग्रन्थसम्मतः । यस्य भेदो विवक्षातः स कथं कथ्यते पृथक् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ:—संमितिग्रन्थको यह सम्मत है कि पर्यायसे गुण भिन्न नहीं है क्योंकि जिसका भेद वक्ताकी इच्छा अथवा किसी अपेक्षाके आधीन है वह पदार्थ भिन्न कैसे कहा जा सकता है।। ११।।

व्याख्या । पर्यायाद्वुणो भिन्नः पृथक् न किं तु पर्याय एव गुण इत्यर्थः। कीटशो गुणः सम्म-तिप्रन्थसम्मतः। सम्मतिप्रन्थे श्रीमित्सद्धसेनैराचार्थेर्व्यक्तवाचा समुचारितस्तथा च तद्गन्थः।

> परिगमणं पज्जाओ अणेगकरणे गुणत्ति तुह्नद्वा । तह्वि न गुणत्ति भण्णेई पज्जवणयदेसणं जम्मा ।१।

इति यथाक्रमभावित्वं पर्यायलक्षणम् । तथैवानेककरणमपि पर्यायस्य लक्षणान्तरमेवास्ति । द्रव्यं तु एकमेवास्ते ज्ञानदर्शनादिभेदकार्यपि पर्याय एव परं गुणो न कथ्यते । यस्मान् द्रव्य-पर्याययोर्भगवतो देशना वर्तते । परन्तु गुणपर्याययोर्देशना न विद्यते । अयं गाथार्थः । एवं सित गुणः पर्यायाद्रिन्नो न तर्हि द्रव्यम् १ गुणः २ पर्याय ३ श्रेति नामत्रयं पृथक् कथं सङ्कलितम् । इत्थं कचन व्याचश्चते तानाह । यस्य गुणस्य विवश्चाकृतो भेदो विवश्चा हि

नयस्य कल्पना। यथा तैलस्य धारा । अत्र तैलात् धारा भिन्ना प्रदर्शिता । तथापि भिन्ना नास्ति । तथैव सहभावी गुणः क्रमभावी पर्याय इति भिन्नत्वं विवक्षितं परं परमार्थदशा भिन्नत्वं नास्ति । तस्माद्यस्य भेद उपचिरतो भवेत् । स कथं भिन्नत्वेन व्यपदित्यते । यथा उपचिरतगुणे दृष्टान्तवचनं "गौदोंग्धि" इत्यत्र गोर्न दौग्धि तद्वन् उपचिरतगुणोऽपि शक्तित्वं न धत्त इति । ११ ।

व्याख्यार्थ:---पर्यायसे गुण भित्ररूप नहीं है किन्तु पर्याय ही गुण है, कैसा गुण? इस आकांक्षापर विशेषण कहते हैं कि सम्मतिय्रंथके सम्मत अर्थात् सम्मतियन्थमें श्रीसिद्धसेन आचार्यद्वारा स्पष्ट वाणीसे कहा गया ऐसा । उनके प्रन्थकी गाथा यह है कि द्रव्यमें जो क्रमसे गमन करे अर्थात् क्रमसे हो वह पर्य्याय है तथा एकको अनेक करना यह गुण है और दोनों समान हैं तथापि गुण नहीं कहा जाता है क्योंकि शास्त्रोंमें पर्याय-नयका ही कथन है। १। तात्पर्य-गाथाका यह है कि जैसे क्रमभावीपना पर्यायका लक्षण है, उस ही प्रकार एकको अनेक करना भी पर्यायका दूसरा लक्षण ही है, दृव्य तो सदा एक रूप ही रहता है, तथा ज्ञान दर्शन आदिकके भेदका करनेवाला भी पर्याय ही कहा जाता है न कि गुण. क्योंकि गुण, भेद करनेवाला नहीं है इसीसे श्रीभगवान्का उपदेश भी द्रव्य तथा पर्यायमें ही है । परंतु गुण और पर्यायमें उपदेश नहीं । यदि पूर्वोक्त प्रकार गुण पर्यायसे भिन्न नहीं है तो द्रव्य, गुण तथा पर्याय यह तीन नाम जुदे कैसे गिने गये इस प्रकार जो कितने ही कहते हैं उनका समाधान करनेके लिये उत्तरार्द्धसे कहते हैं कि जिस गुणका विवक्षासे किया हुआ भेद है वह भिन्नपनेसे कैसे कहा जाय? भावार्थ-नयोंकी जो कल्पना है वह विवक्षा कहलाती है, जैसे ''तैलकी धारा'' इस वाक्यमें तेलसे धारा जुदी दिखाई गई है; तो भी यथार्थमें धारा तैलसे भिन्न वस्तु नहीं है, वैसे ही सहभावी साथ होनेवाला गुण, तथा क्रमभावी (क्रमसे होनेवाला) पर्याय, ऐसे गुण पर्यायका भेट केवल विवक्षासे है, परंतु परमार्थदृष्टिसे भेद नहीं है। इसकारण जिसका भेद उपचा-रसे माना गया हो, वह यथार्थमें भिन्नरूपसे कैसे कहा जा सकता है। और गुण उप-चारसे हैं इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे 'गी दुहती हैं' यहां गी नहीं दुहती हैं। यहांपर दोहनकत्तीपना उपचारसे गायमें है न कि यथार्थमें । ऐसे ही उपचारको प्राप्त हुआ गुण भी शक्तिको नहीं धारण करता है ॥ ११ ॥

अथ ये च गुणः पर्यायाद्भिन्न इति प्रमाणयन्ति तान् दृषयन्नाह ।

अब गुण पर्यायसे भिन्न पदार्थ है, ऐसा जो प्रमाण करते हैं उनको दृष्ण देते हुए आगेका सूत्र कहते हैं।

सूत्रम्। गुणो द्रव्यं तृतीयं चेतृतीयोऽपि नयस्तदा। सिद्धान्ते द्रव्यपयीयार्थिकभेदान्नयद्वयम्॥ १२॥ सूत्रार्थ:—द्रव्य तथा पर्यायको मानकर सिद्धान्तमें द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदसे दो ही नय कहे गये हैं; यदि गुण भी तृतीय द्रव्य होता तो तीसरा नय भी कहते॥ १२॥

व्याख्या। यदि गुणस्तृतीयः पदार्थो द्रव्यपर्यायाद्भिन्नोन्यः पदार्थो भावो भवेत् । तदि तृतीयो नयोऽपि लभ्यते । सूत्रे तु द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिक इति नयद्वयमेव कथितम् । नयान्तरं यद्यभविष्यत्तदाद्रक्ष्यत् । अतो नयद्वयादपरो नय एव न । उक्तं च सम्मतौ—

> दोऊ णया भगवया द्व्वद्वियपज्ञवद्वियाणियया । जइ पुण गुणोवि हुंतो गुणद्वियणयोवि जुज्जंतो ॥ १॥ विकासिक विकास जंच पुण भगवया ते सुत्तेसु मुत्तेसु गोयमाईणं । पज्जवसण्णा णियया बागरिया तेण पज्जाया ॥ २॥

रूपादीनां गुणसंज्ञा सूत्रे न भाषिता परन्तु "वण्णपज्जवा गंधपज्जवा इत्यादिपाठः पर्यायशब्देन पठितस्तथापि गुणो न कथ्यते। अन्यच। एगगुणकालएइत्यादिस्थानेष्विष गुणशब्दो यश्च हश्यते सोपि गणितशास्त्रसिद्धपर्यायिवशेषः संख्यावाचको ज्ञेयः। परन्तु गुणास्तिकनयविषयवाचको न। उक्तं च। सम्मतियन्थमध्ये—

जंपंति अत्थिसमए एगं गुणो दशगुणो अणंतगुणो ।
क्वाईपरिणामा भन्नइ तम्हा गुणिवसेसा ॥ १ ॥
गुणसद्दमंतरेणावि तणुपज्जविवसेससंखाण ।
सिज्झइ ण वरं संखा णसत्थधम्मो एव गुणोत्ति ॥ २ ॥
जह दससु दसगुणीम य एगीम दसतणं समत्ते च ।
अहियं वि गुणसदे तहेव एथीम दन्वहं ॥ ३ ॥

एवं गुणः पर्यायान् परमार्थदशा भिन्नो नास्ति । तस्माद्रव्यमिव शक्तिरूपता कथं स्थादि-व्यभिप्रायः । १२ ।

व्याख्यार्थ: यदि गुण तीसरा पदार्थ अर्थात् द्रव्य और पर्यायसे भिन्न पदार्थ होता तो तीसरा नय भी प्राप्त होता अर्थात् सूत्रमें तो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे दो नय ही कहे गये हैं यदि तीमरा होता तो देख पड़ता। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन क-थित दो नयोंसे अन्य कोई नय ही नहीं है। संमतिप्रनथमें कहा भी है।

गाथार्थ-श्री भगवान्ने द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक ये दो ही नय कहे हैं, फिर यदि द्रव्यपर्यायसे भिन्न गुण भी होता तो गुणार्थिक नय भी कहना योग्य था॥ १॥ और भगवान्ने जो गोतमादिकको सूत्र कहे हैं उनमें पज्जव संज्ञा कही है इसिलये गुण पर्याय ही कहलाते हैं ॥ २॥

रूपादिककी सूत्रमें गुणसंज्ञा नहीं कही गई है परंतु 'वण्णपज्जवा, 'गन्ध पज्जवा' इत्यादि पाठ पर्यायशब्दसे ही कहा है अर्थात् वर्णपर्याय, गुणपर्याय ऐसा ही कहा गया है, । और गुण शब्द वहांपर नहीं कहा ॥ और भी 'एग गुणकाल ए' एक गुणकालमें इत्यादि स्था- नोंमें जो गुण शब्द देख पड़ता है, वह गुणशब्द भी गणितशास्त्रमें सिद्ध पर्यायिवशेषका ही नाम है, इसिलिये उसको संख्याका वाचक ही समझना चाहिये और गुणास्तिक नयके विषय का वाचक नहीं। संमतिग्रन्थमें कहा भी है:——

"गाथार्थः — आर्थिक समय में ऐसा कहते हैं कि एक गुण, दशगुण, तथा अनन्तगुण रूपादि परिणाम कहे गये हैं, इस कारण गुणशब्द संख्याविशेषवाचक है।। १॥
और गुणशब्दके विना भी संख्याओं के विषयमें तनुपर्यायविशेष ऐसा प्रयोग किया है,
इस हेतुसे एक गुण यह समूहका धर्म संख्यापरक है न कि शक्तिपरक।। २॥ जैसे
दशसंख्याओं में दशगुण है, ऐसे ही एकमें एक गुण, शतमें शतगुण हैं, इसी प्रकार
समस्त संख्याओं में गुण शब्दका प्रयोग है ऐसे एक गुण द्रव्यस्थ गुण नहीं है।। ३॥
इस रीतिसे परमार्थ दृष्टिसे पर्यायसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है, इस कारण से द्रव्य
के सदश शक्तिस्पता गुणकी कैसे होसकती है।। १२॥

अथ केचन पर्यायस्य दलं गुण इति वदन्ते । गुणं शक्तिरूपमेव मन्वानश्च विवदन्ते तान् दृषयन्नाह ।

अब वादीगण गुणको पर्य्यायका कारण मानते हैं, और गुणको स्वतत्त्वशक्तिरूप मानते हुए परस्पर विरुद्ध विवाद करते हैं उनको दृषण देते हुए यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम्। पर्यायस्य दलं यहिं गुणो द्रव्येण किन्तदा। गुणपर्याय एवेयं गुणपरिणामकल्पना ॥ १३॥

सूत्रार्थ:—और यदि पर्याय का कारण (उपादान कारण) गुण हो तो पुनः द्रव्यका क्या प्रयोजन है ?। और गुणपर्य्याय यह जो कथन है सो तो गुणकी हीं परिणामरूप कल्पना है न कि अन्य कुछ ॥ १३ ॥

व्याख्या। यहिं गुणः पर्यायस्य दलं उपादानकारणं भवति । तदा द्रव्येण किमिति-किं प्रयोजनं द्रव्यप्रयोजनं गुणेनैव सिद्धमित्यर्थान् गुणपर्यायावेव पदार्थौ उपिद्द्रयतां तृती-यस्यासम्भवात् इति नियमः । पुनरत्र कश्चित्कथिय्यति । द्रव्यपर्याय १ गुणपर्याय २ रूपे कार्ये भिन्ने स्तस्ततश्च द्रव्य १ गुणरूप २ कारणे अपि भिन्ने स्तः। इति कल्पनया वादी असत्यः । कथं—कार्ये कारणोपचारात् कार्यमध्ये कारणशब्दप्रवेशो जायते । तथा कारणभेदे कार्यभेदः सिद्ध्यति । अथ च कार्यभेद्सिद्धौ कारणभेद्सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयनाम दृषणमुत्पद्यते । तस्मात् गुणपर्यायस्तु गुणपरिणामस्यैव पटान्तरभेद्कल्पनारूपः । तत एव केवलं सुम्भावना परन्तु परमार्थतो न हि । अथ च द्रव्यादि नामत्रयमिप भेदोपचारेणैव क्षेयम् । १३ न

व्याख्यार्थ: यदि गुण पर्थ्यायका उपादान कारण हो तो द्रव्यसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् द्रव्यका प्रयोजन गुणसे ही चल जायगा तब अन्य पदार्थ मानने की क्या आ-वश्यकता है ? और द्रव्यका कार्य्य गुणसे हो गया तो गुण, तथा पर्य्याय, इन्ही दोनों पदार्थोंका उपदेश करना चाहिये, क्योंकि तृतीयका असंभव है ऐसा नियम होना चाहिये अब इस विषयमें यदि कोई ऐसा कहै कि द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय ये होनों कार्य्य भिन्न २ रूपके हैं, इसिलये द्रव्य तथा गुण ये कारण भी भिन्न २ रूपके होना चाहिये। इस प्रकार कल्पनावादी भी मिथ्या हैं। क्योंकि कार्य्यमें ही उपचारसे कारण की कल्पना होती है इसिलये कार्य्यमें कारण शब्दका प्रवेश होता है। और भी प्रथम कारणका भेद सिद्ध होने पर कार्य्यका भेद सिद्ध होता है, और ऐसे ही कार्य्यका भेद सिद्ध हो जावे तब कारणका भेद सिद्ध हो सकता है; इस प्रकार कारणके भेद सिद्ध होनेमें कार्य्यभेद सिद्ध कारण होगा, तथा कार्य्यके भेद सिद्ध होनेमें कारणका भेद सिद्ध होनों कार्र्य होनों कारणका भेद सिद्ध होना कारण होगा, इस रीतिसे तुम्हारे मतमें अन्योन्याश्रय नामका दूपण भी आता है। इसिलये गुणपर्याय यह जो कथन है सो तो गुणकी ही परिणामरूपमे कल्पना हे क्योंकि कल्पनामात्रस ही पर्यायमे गुणके भेदका संभव है, और परमार्थहिष्टसे तो गुणका पर्यायसे भेद है ही नहीं, किन्तु परमार्थमें द्रव्य गुण तथा पर्याय ये तीनों नाम भी भेदके उपचारसे ही कल्पित किये हैं. ऐसा जानना चाहिये॥ १३॥

सूत्रम् । एकानेकस्वरूपेण भेदा एवं परस्परम् । आधाराधेयभावेन कल्पनां च विभावय ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ:—इस पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्य एक ही है, गुण पर्य्याय अनेक हैं, इस री-तिसे परस्पर अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षासे भेदकी कल्पना मात्र जानो, और इसी पूर्वोक्त रीतिसे आधाराधेयभावकी कल्पना भी निश्चय करो॥ १४॥

व्याख्या । एवममुना प्रकारेण द्रव्यमेकं, गुणपर्यायाऽनेके, इत्थं भावना कार्या । परस्परमन्योन्यं भेदभावकल्पना कर्तव्येत्यर्थः । च पुनः अनयैव दिशा आधाराध्यभावेन कल्पनां विभावय । आधाराध्यप्रमुखभावानामपि स्थभावेन भेदान् विचार्य मनिस ह्रोयम् । यतः-परस्परावृत्तिधर्माणः परस्परभेदान् ज्ञापयन्तीति भावः । १४ ।

व्याख्यार्थ:—इस पूर्वोक्त रीतिसे कल्पना मात्रसे गुण, पर्व्यायकी सिद्धि होनेसे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्य एक है कल्पना अथवा विवक्षासे गुण पर्व्याय अनेक हैं; इस प्रकार द्रव्य, गुण तथा पर्व्यायके परस्पर कल्पित स्वरूपसे भेदकी भावना करनी चाहिये। और इसी रीतिसे आधार, आधेय आदि भावसे भी कल्पना को जानो अर्थात् कल्पित स्वभावके ही भेदसे आधार, आधेय इत्यादि भावोंके भी स्थायीभावसे भेदोंको विचार कर मनमें निश्चय करो, क्योंकि परस्पर आवृत्तिशील धर्म, अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे में आनेवाले धर्म ही परस्परके भेद को ज्ञाप्रिक्त करते हैं यह ताल्पर्य है॥ १४॥

अथ आधाराधेयभावयोर्द्देशन्तेन उपिद्शन्ता । क्रिंग हो है । अब आधार आधेय भावके विषयमें दृष्टाना होरा छ पेदेश देते हुए यह सूत्र कहते हैं।

2970

सूत्रम् । घटादिद्रव्यमाधार आधेयौ तु गुणादिकौ । एकाक्षलक्ष्यारूपाचा द्यक्षगम्यं घटादिकम् ॥ १५॥

सूत्रार्थ:—घट आदि द्रव्य तो आधार हैं और गुण आदि आधेय हैं; इनमें आधेय रूप आदि तो एक इंद्रियके विषय हैं, और घट आदि द्रव्य दो इन्द्रियोंके विषय हैं॥१५॥

व्याख्या । घटादिद्रव्यमाधारः द्रव्यं घटादिकमाधारो ह्रपादीनां । तथा हि-घटे ह्रपाद्या आधृतास्तिष्ठन्तोति । अथ गुणपर्यायह्रपरसादयो नीलपीताद्यश्चाधेयाः द्रव्ये स्थिताः । एवमाधाराधेयभावेन द्रव्यात् गुणपर्यायौ भेदेन स्थितौ । तथा ह्रपाद्यो गुणपर्याया एकेन्द्रियगोचरा एकेन्द्रियविषया इत्यर्थः । यथा ह्रपं चक्षुरिन्द्रियगोचरं चक्षुर्मात्रप्राह्यगुण-त्वात् । रसो हि रसनाविषयो रसनामात्रप्राह्यगुणत्वादित्यादि । अथ घटादि द्रव्यं तु द्वीन्द्रियन्विषयं चक्षुःस्पर्शाभ्यां घटो गृह्यते द्रव्यत्वात् । एतन्नेयायिकाभिमतं । स्वमते तु गन्धादिपर्यायद्वारा व्राणेन्द्रयादिकेनापि द्रव्यप्रत्यक्षमस्ति । न हि चेत् कुसुमं व्रापयामीत्यादिज्ञाने श्रान्तित्वं जायते । एवमनेकेन्द्रियप्राह्यद्रव्यात् गुणपर्याययोभेदो ज्ञातव्यः । गुणपर्याययोरन्योन्यं भेदस्तु सहभावी कमभावी च करूपनीयः । सहभावी गुणः कमभावी पर्याय इति । अन्यच पर्यायो द्विविधः । सहभावी क्रमभावी च । सहभावी गुण इर्त्याभिधीयते । पर्यायशच्देन तु पर्यायसामान्यस्य स्वव्यक्तिव्यपिनोऽभिधानान्न दोप इति । तत्र सहभाविनः पर्यायाः गुणाः । यथात्मनो विज्ञानव्यक्तिशक्त्याद्यः । क्रमभाविनः पर्यायास्त्वात्मनो यथा सुखदुःखशो-कहर्षाद्यः । इति भेदकरूपनम् । १५ ।

च्याख्यार्थ:—घट आदि द्रव्यरूप पदार्थ आधार हैं, क्योंकि घट आदिमें रूप आदि रहते हैं। इसिलिये रूपादिक रहनेका स्थान घट आदि द्रव्य आधार अर्थात् रूपादिका धारण करनेवाला है; और रूप, रस आदि गुण तथा नीलपीतादि पर्याय ये सब आधेर्य हैं, अर्थात् घट आदि द्रव्यमें रूपादि गुण रहते हैं, इसिलिये आधेय हैं, अर्थात् द्रव्यमें ये गुणपर्याय स्थित हैं। इसप्रकार आधार आधेयमावसे द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्नरूपसे स्थित हैं; और रूपादि गुणपर्याय एक इन्द्रियसे प्राह्म हैं, अर्थात् ये एक २ इन्द्रियसे जाने जाते हैं। जैसे रूप नेन्न इन्द्रियका विषय है, क्योंकि केवल नेन्न इन्द्रियमात्रसे जो प्राह्म गुण हो उसको रूप कहते हैं; तथा रस जिव्हा इन्द्रियका विषय हे, क्योंकि जिव्हा इन्द्रियमात्रसे प्रहण करने योग्य गुण है। और घट आदि द्रव्य तो दो इन्द्रियके विषय हैं, क्योंकि घट नेत्र तथा स्पर्शन (त्वक्) इन दोंनों इन्द्रियोंसे जाना जाता है, क्योंकि वह द्रव्य है। यह कथन नैयायिकमतके अनुसार है, और निज अर्थात् जैनमतमें तो

⁹ चटाई पर देवदत्त है, स्थालीमें पकाता है, तिलमें तैल है, घटमें रूप है. यहां चटाई, स्थाली, तिल तथा घट आधार हैं।

२ जो वस्तु उनमें वा उनपर है वह आधेय है। चटाईहप आधारका आधेय देवदत्त, स्थालीका चांवल, तिलका तैल और घटका रूप आधेय है।

गन्ध आदि द्रव्यके पर्यायद्वारा घाण आदि इन्द्रियोंसे भी द्रव्यका प्रत्यक्ष होता है। यदि ऐसा न मानो, तो "पुण्पं घापयामि,, में तुमको फूल सुंघाता हूं, इत्यादि ज्ञानमें भ्रम होगा। इसप्रकार अनेक इन्द्रियग्राह्य (जानने योग्य) द्रव्यसे एक इन्द्रियग्राह्य गुण-पर्यायका भेद जानना चाहिये। और गुण तथा पर्यायका परस्पर भेद तो सहभावी तथा कमभावी कल्पनासे समझ लेना चाहिये। सह अर्थात् द्रव्यके साथ २ भावी होनेवाला जो गुण है, सो सहभावी. जैसे पुद्रलमें रूपादि और जीवमें ज्ञान आदि उपयोग। और कम अर्थात् वारी २ से भावी होनेवाला जो पर्याय, सो कमभावी. जैसे अजीव मृत्तिका द्रव्यमें पिंड कुसूल आदि, सुवर्णमें कटक कुंडल आदि, ओर जीव द्रव्यमें नर नारक तथा सिद्धादि पर्याय समझना। और भी पर्यायके दो भेद हैं; एक तो सहभावी (साथ होनेवाला) पर्याय और दूमरा क्रमभावी अर्थात् क्रमसे होनेवाला पर्याय। इनमेंसे साथ होनेवाले पर्यायको ही गुण कहते हैं। यहांपर पर्यायशब्दसे पर्याय सामान्यका ग्रहण हे, अर्थात् निज आधारभृत व्यक्तिमात्रमें व्यापक होके रहनेवाला पर्याय गुणशब्दसे कहा जाता हे, इसिलये ऐसा कहनेसे कोई दोष नहीं है। उनमें सहभावी पर्याय गुण हें, जैसे आत्माके सुख दु:ख हर्ष तथा शोक आदि; इस रीतिसे गुणपर्यायके परस्पर भेद कल्पना करनी चाहिये॥ १५॥।

सूत्रम् । सञ्ज्ञासङ्ख्यालक्षणेभ्यो विभागं द्रव्यादीनां यो विदित्वा मिथोऽत्र । राज्ञान्ते श्रीतीर्थनाथप्रणीते श्रद्धां कुर्यानिश्चलस्य बोधः ॥ १६॥

सूत्रार्थ:—संज्ञा (वस्तुके नाम) संख्या (पदार्थ गणना) तथा असाधारण धर्म वचन आदि लक्षणद्वारा जो द्रव्य आदिके विभागको परस्पर जानकर श्रीभगवान् तीर्थनाथ-रचित सिद्धान्तमें श्रद्धा करेगा, उस भव्य जीवके अचल बोध होगा ॥ १६॥

इति श्रीभोजविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां द्वितीयोऽध्यायः

व्याख्या। संब्हा नाम तत्कृतो विभागो यथा—द्रव्यनाम १ गुणनाम २ पर्यायनाम ३ चेति । सङ्ख्या गणना तत्कृतो विभागो यथा द्रव्याणि पट्, गुणा अनेके, पर्याया अनेके । लक्षणं त्वसाधारणधर्मवचनं तत्कृतो विभागो यथा द्रवति तांस्तान्पर्यायानागच्छतीति द्रव्यम् । गुणनामेकस्मादन्यस्य भिन्नकरणं गुणः । परिगमनं सर्वतो व्याप्तः पर्यायः । एव-मेतेषां द्रव्यगुणपर्यायाणां परस्परं भेदोऽस्ति । एवं सञ्ज्ञासङ्ख्यालक्षणभ्यो विभागं भेदं विदित्वा द्रव्यादीनां यो मिथः परस्परम् अत्र राद्धान्ते सिद्धान्ते श्रीतीर्थनाथप्रणीते श्रीभगवद्धापिते श्रद्धानास्थां कुर्यात् । तस्य भव्यस्य निश्चलो निःप्रकम्पो बोधः सम्यत्त्वं लभत इति ज्ञयम् ॥१६ ॥ इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां भेदप्रदर्शनो द्वितीयोऽध्यायः । २ ।

च्याख्यार्थ:— संज्ञा अर्थात् वस्तुओं का नाम उस नामकृत विभाग जैसे द्रव्य नाम १ गुण नाम २ तथा पर्याय नाम इत्यादिसे । संख्या अर्थात् गणना उस गणनाजनित विभागसे, जैसे जीव, पुद्गल, धर्म आदि छह द्रव्य हैं. गुण अनेक हैं, तथा पर्याय भी अनेक हैं, इस विभागसे और असाधारण धर्म वचन लक्षण हे अर्थात् लक्ष्य पदार्थका ऐसा धर्म वर्णन करे, कि वह धर्म अन्य पदार्थों ने मिले; वह ही असाधारणधर्मको कहनेवाला लक्षण है। उसकर किया हुआ विभाग जैसे "उन उन पदार्थों को जो प्राप्त हो वह द्रव्य है" यह द्रव्यका लक्षण है। "एक समूह वा एक जातिक पदार्थों में से जो एक किसीको पृथक् करें वह गुण है" यह गुणका लक्षण है, ऐसे ही "जो सर्वत्र व्याप्त हो, जो सर्वत्र गमन करें वह पर्याय है" यह पर्यायका लक्षण है। इसप्रकार संज्ञा, संख्या, तथा लक्षणके द्वारा द्रव्य, गुण तथा पर्यायका परस्पर भेद है। इस रीतिसे संज्ञा संख्या और लक्षणोंसे द्रव्य आदिके परस्पर भेदको जानकर श्रीभगवान् तीर्थनाथ द्वारा भाषित इस स्याद्वादक्रपी सिद्धान्तमें जो श्रद्धा करें उस मनुष्यके निश्चल (अकंपायमान्) बोध (सम्यक्त्व)की प्राप्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये॥ १६॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायामाचार्योपाधिधारिपण्डितठाकुरप्रसाद्-शर्म्भप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयाध्याये ये तीर्थिका द्रव्यादीनां भेदमङ्गीकुर्वन्ति । अभेदपक्षमाश्रित्य तान् दूपयन्नाह ।

अब जो शास्त्रकार द्रव्यादिका सर्वथा भेद ही अंगीकार करते हैं उनके मतको अभेद पक्षका आश्रय करके इस तृतीय अध्यायमें दृषित करते हैं।

सूत्रम् । एकान्तेनोच्यते भेदो द्रव्यादीनां मिथो यदा । स्याद्गणगुणिनोरेव भावोच्छेदोऽन्यद्रव्यवत् ॥१॥

सूत्रार्थ:—यदि एकान्ततः अर्थात् सर्वथा द्रव्य, गुण, तथा पर्यायोका परस्पर मेद ही कहते हो, तो अन्य द्रव्यके तुल्य गुणगुणी भावका उच्छेद (अभाव) हो जावेगा। व्याख्या। यदा द्रव्यादीनां द्रव्यगुणपर्यायाणामेकान्तेन एकान्तपक्षेण मिथः परस्परं भेद उच्यते। तदा अन्यद्रव्यवत् परद्रव्येणैव स्वद्रव्यविषयेऽपि गुणगुणिनोरेव भावोच्छेदो गुणगुणिभावस्य व्युच्छित्तिर्भवेत्। यथा जीवद्रव्यस्य गुणा ज्ञानाद्यस्तेषां गुणी जीवद्रव्यम्, पुद्रलद्रव्यस्य गुणा क्रपाद्यस्तेषां गुणी पुद्रलद्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदोऽस्ति। तथा निजगु- पेभ्यो ज्ञानादिभ्योऽपि भेदोऽस्ति। तद्वत् अयमस्य गुणी। एतस्य एते गुणा इत्ययं व्यवहारोऽपि विद्युप्येत। तस्मात् कारणात् द्रव्यपर्यायाणामभेद एव सम्भवति। एतादृशो भेदनयविचारो गुरोरूपदेशात् भव्याङ्किनो धारयन्ति। १।

व्याख्यार्थ: जब द्रव्यादिका अर्थात् द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंका एकान्तपक्षसे परस्पर मेद कहते हो, तो परद्रव्यकी तरह स्वद्रव्यके विषयमें भी गुण और गुणींक भा-वका उच्छेद (सर्वथा अभाव) हो जायगा । जैसे जीवद्रव्यके ज्ञानादिक गुण हैं, और उनका गुणी जीवद्रव्य है। ऐसे ही पुद्रल द्रव्यके गुण रूप आदि हैं और पुद्रल द्रव्य उनका गुणी है। इसप्रकार जो व्यवस्था शास्त्रमें प्रसिद्ध है वह गुण और गुणीके सर्वथा भेद अंगीकार करनेसे लुप्त होती है। क्योंकि जैसे जीवद्रव्यका पुद्गलद्रव्यके गुणोंसे भेद है । वैसे ही निजगुणोंसे भी भेद है । उस ही प्रकार इसके यह गुणी हैं तथा इस द्रव्यके यह गुण हैं यह जो व्यवहार है वह भी लुप्त होता है। इसलिये द्रव्य, गुण तथा प-र्यायोंके अभेद ही संभवता है। ऐसा भेदनयका विचार गुरूके उपदेशसे भव्य जीव धारण करें ॥ १ ॥

अथ पुनरप्यभेदमाश्रित्य युक्तिं कथयन्नाह ।

अब पुनः अभेदका आश्रय करके युक्तिको दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

गुणपर्याययोर्द्रव्ये भेदसम्बन्ध ईरितः। स्त्रम् । अनवस्था प्रबन्धः स्याद्धेदकल्पनया भृशम् ॥ २॥

सूत्रार्थ:---गुण और पर्यायका द्रव्यके विषयमें अभेद संबंध ही सिद्धान्तमें कहा गया है क्योंकि भेद कल्पनासे अत्यंत अनवस्थाका प्रबन्ध हो जाता है ॥ २ ॥

व्याख्या । गुणपर्याययोरन्योन्यं द्रव्ये द्रव्यविषये अभेदसम्बन्ध एवास्ति । यदि च द्रव्यविषये गुणपर्याययोः समवायनाम्ना भिन्नः सम्बन्धः प्रकल्पते । तदाऽनवस्थादो-पनिबन्धनं निष्पद्यते । गुणगुणिनोरिव प्रथकसमवायो लक्ष्यते । पुनस्तस्य समवायस-म्बन्धस्यापि अन्यः सम्बन्धो युज्यते । पुनस्तस्यापि अन्यतरः । एवं प्रकल्पयतोऽवस्थितिः कुत्रापि न भवति । एवं च भेदकल्पनया भृशमद्यर्थमनवस्थाप्रबन्धः अस्थितियुक्तिप्रसङ्गश्च जायते । तस्मात् कारणात् समवायस्य स्वरूपसम्बन्धमेवाभिन्नतया यदङ्गीचकर्थ । तर्हि गुणगुणिनोः स्वरूपसम्बन्धमङ्गीकुर्वतां को दोपः । किं च भवतां विघटते । यच नवीनस-म्बन्धकल्पनगौरवं विधत्थ । उक्तं च—

''प्रिकियागीरवं यत्र तं पक्षं न सहामहे । प्रिकियालाघवं यत्र तं पक्षं रोचयामहे" ॥ १ ॥ ऋजुमार्गेण सिद्ध्यतोऽर्थस्य वकेण साधनायोगान् । समवायस्य स्वरूपसम्बन्धभिन्नकरणे गुणगुणिनोश्च स्वरूपसम्बन्धाङ्गीकरणे च को विशेषो निरर्थकनवीनसम्बन्धाविष्करणेन च गौरवापत्तिरिति दिक् । २ ।

व्याख्यार्थः—स्याद्वादसिद्धान्तमें द्रव्यके विषयमें अर्थात् द्रव्यके साथ गुण और पर्यायका परस्पर अभेद संबंध ही है। और यदि द्रव्यके विषयमें गुण और पर्यायका समवाय नाम एक भिन्न संबंध कल्पित करते हो, अर्थात् गुण और पर्याय यह दोनों ही द्रव्यमें समवाय संबंधसे रहते हैं ऐसा मानोगे तो वह अनवस्थारूप दोषका

कारण होता है। क्योंकि जैसे तुम्हारे मतमें गुण तथा गुणी जैसे भिन्न २ लक्षित होते हैं उनके तुल्य समवाय भी तो सबसे पृथक् भासता है। और जैसे गुण, गुणी द्रव्यमें सम-वाय संबंधसे रहते हैं ऐसे ही समवाय संबंध भी उनमें किस संबंधसे रहेगा इससे उस समवायका भी अन्य संबंध मानना योग्य है। और फिर उस समवाय संबंधका भी अन्य संबंध कल्पना करना चाहिये, इसप्रकार कल्पना करते हुए तुम्हारी स्थिति कहीं भी न होगी। इसप्रकार भेदकी कल्पनासे अत्यंत अनवस्थाका प्रबंध और अस्थिति युक्तिका प्रसंग होता है । इसकारण यदि समवायका अन्यसंबंध न मानकर अभेटसे स्व-रूपसंबंध ही अङ्गीकार किया हो तो गुण तथा गुणीके स्वरूपसंबंध स्वीकार करनेवालोंको क्या दोष है ? और तुम्हारा इसमें क्या विगाड होता है जो नवीन समवाय संबंध स्वी-काररूप कल्पनाका गौरव करते हो ? अन्यत्र कहा भी है "जिस पक्षमें प्रक्रियाका गौरव है उस पक्षको हम नहीं सहते हैं, और जिस पक्षमें प्रक्रियाका लाघव है उस पक्षको प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं"। क्योंकि जो अर्थ सरल मार्गसे सिद्ध होता है उस अ-र्थको वक्रमार्गसे साधना योग्य नहीं है। और समवायके जुटा स्वरूप संबंध करनेमें तथा गुणगुणीके स्वरूप संबंध स्वीकार करनेमें क्या विशेष (फर्क) है? और व्यर्थ नवीन संबंधके प्रकट करनेमें गौरव होता है (अर्थात् गुण और गुणीका भेद मानना और उनका समवायसंबंध मानना पुनः अनवस्थादोपसे भयभीत होके समवायका संब-न्धांतर न मानकर उसका स्वरूपसंबंध ही स्वीकार करना इसकी अपेक्षा गुणगुणीके केवल स्वरूपसंबंधके माननेमें ही लाघव है क्योंकि स्वरूपसंबंध तो तुमको भी मानना पडता ही है) इस प्रकार संक्षेपसे सर्वथा गुणगुणीके भेदें माननेवालेके मतमें दृषण दर्शाया है ॥ २ ॥

पुनरभेदपक्षिणो दुपयन्नाह ।

अब भेदवादीके पक्षको दोप देते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

सूत्रम्। खर्णे कुण्डलतां प्राप्तं घटो रक्तत्वमीयिवान्। इति व्यवहृतिने स्याद्यद्यभेदो भवेत्र हि॥३॥

सूत्रार्थ: —यदि द्रव्य, गुण तथा पर्यायका अभेद न होता तो "सुवर्णद्रव्य कुण्डल-द्शाको प्राप्त हुआ और घट रक्तत्व (गुणद्शा) को प्राप्त हुआ" यह व्यवहार लोकमें नहीं हो सक्ता ॥ ३ ॥

व्याख्या । स्वर्णे कुण्डलतां कुण्डलभावं प्राप्तं । कनके कुण्डलाकारतां गतेपि नामान्तरेण

१ जाति व्यक्तिका, गुण गुणीका, अवयव अवयवीका, किया कियावान्का तथा नित्यद्रव्य विशेषका, भेद नैयायिक मानते हैं और इनका समवायसंबंध भी नैयायिक मानते हैं उनके मतमें यह दोष है।

न भेदापत्तिः । तथा च घटो रक्तत्वमीयिवान् । पूर्वावस्थया घटः श्यामवर्णः पुनरिप्नपाका-द्रक्तत्वं प्राप्तस्तथापि श्यामे घटे रक्ततां प्राप्तेऽपि घटान्तरता न जाता । वर्णाख्यगुणभेदा-द्रव्यभेदो न जात इति व्यवहारो लोकप्रसिद्धिरूप आचारो न घटते । यद्यभेदस्वभाव-व्यवहारो द्रव्यादीनां न भवेत् । अतो द्रव्याद्यस्त्रयोऽभिन्ना एव प्रकल्पन्ते नामान्तरेण न शङ्कनीयमिति भावः । ३ ।

व्याख्यार्थ: सुवर्ण कुण्डल अर्थात् कर्णके आभूपणपनेको प्राप्त हुआ, यहां सुवर्ण कुंडलके आकारको प्राप्त होगया है तो भी कुंडल इस नाममात्रसे सुवर्ण और कुंडलका भेद नहीं होता, तथा घट रक्तत्वदशाको प्राप्त हुआ, यहां पूर्व अपकदशामें घट श्याम वर्णका था और अग्निके द्वारा पकनेसे रक्तपनेको प्राप्त हुआ, तो भी अर्थात् श्यामघटके रक्तता प्राप्त होनेपर भी वह घट अन्यघट वा अन्य पदार्थताको नहीं प्राप्त हुआ अर्थात् वर्णनामा गुणके भेदसे द्रव्यका भेद नहीं हुआ और यदि अभेदस्वभावसे द्रव्यगुण-पर्यायोंका व्यवहार न हो तो पूर्वकथित सुवर्ण घट आदिमें यह व्यवहार अर्थात् लोक प्रसिद्ध आचार नहीं घट सकता है । इसिलिये द्रव्य आदि तीनों पदार्थ अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय ये अभिन्नरूप ही कल्पित किये जाते हैं इनके जुदे २ तीन नाम होनेसे यह शंका न करनी चाहिये कि यह भिन्न हैं यह भाव है ॥ ३॥

पुनर्वाधकं कथयति।

फिर अभेद वादीके मतमें बाधकका कथन करते हैं।

सूत्रम् । स्यात् स्कन्धदेशयोर्भेदात्स्कन्धेऽपि द्विगुणात्मता । प्रदेशगुरुताभावास्कन्धाभेदप्रबन्धता ॥ ४ ॥

सूचार्थ: स्कंघ तथा देशके भेट्से स्कंघमें द्विगुणता होनी चाहिये परंतु देशसे स्कंघमें अधिक गुरुता नहीं है, इस हेतुस देशसे स्कंघका अभेदरूप ही प्रबन्ध है ॥ ४ ॥

व्याख्या । स्कन्धदेशयोर्भेदात् स्कन्धिवपयेऽपि द्विगुणात्मता द्विगुणभारारोपो भवेत् । स्कन्धोऽवयवी, देशोऽवयवः अनयोर्भेदकल्पनया द्विगुणो भारः स्कन्धमध्ये भवत् द्विष्ठः स्कन्धो भवेत् । यतः —शततन्तुपटे शततन्तुपु यावान् भारोऽस्ति तावानेव हि पटे भारो युज्यते तन्तुपटयोरभेदात्। भेदिवचारे पटोऽन्यः तन्तवोऽन्ये एवमनयोर्भेदस्तिस्मन्सिति द्विगुणगुरुतापि युक्ता । अथ च कश्चित्रैयायिको नवीन एवं यदि कथयति । यतः —अवयवभारात् अवयविभारोऽत्यन्तं छघीयानस्ति । तस्मात् तन्मते द्विप्रदेशादिस्कन्धमध्ये कुत्रापि उत्कृष्टगुरुत्वं नो भवितुर्महति द्विप्रदेशादिस्कन्ध एकप्रदेशायपेक्षया अवयविधर्मत्वात् । अन्यच परमाणुमध्ये मान्याष्टगुरुत्वमाननात् रूपादिकविशेपोऽपि परमाणुमध्ये मान्यः स्यात् । द्विप्रदेशादिकमध्ये न मान्यः स्यात् । अभेदेन यस्य बन्धो यदा मन्यते तदा प्रदेशस्य यो भारः स एव स्कन्धस्य भारत्वेन परिणमयत्येव । यथा तन्तुरूपं पटरूपतया परिणमिति । तदा गुरुताया वृद्धेश्च दोषः कथ्यमानोपि न लगेदिति भावः । ४।

व्याख्यार्थ: स्कंध (अवयवी) तथा देश (अवयव) का यथार्थमें भेद होनेसे स्कं-धके विषयमें द्विगुणरूपता होगी अर्थात् स्कंधमें दुना बोझ प्राप्त होगा यहांपर सूत्रमें स्कंध-शब्दसे अवयवीरूप अर्थका ग्रहण है। और देशशब्दसे अवयवका इन दोनो अवयवी तथा अवयवोंकी भेद्कलपनासे अवयवीमें दूना बोझ होनेसे वह अवयवी अवयवोंकी अपेक्षा दूना बोझल होजावेगा क्योंकि सो तंतु (सूत) से बुने हुए वस्त्रमें उतना ही भार युक्त है, जितना कि उन सो तन्तुओंमें है। क्योंकि तंत्रु और पटके अभेद है, और यदि तंत्रु और पटके भेद विचारें, तो पट अन्य है तंतु अन्य हैं । इसप्रकार इन दोनोंका भेद होते हुए अवयवी पटमें दुना भारीपन भी होना उचित है। अब यहांपर यदि कोई नवीन नैया-यिक ऐसा कहता है, कि अवयवके भारसे अवयवीका भार बहुत हलका है, तो इस हेतुसे उसके मतमें दोप्रदेश यक्त अवयवीमें कहीं भी अवयवकी अपेक्षासे अधिक भारीपन न होना चाहिये, क्योंकि दोप्रदेश आदियुक्त स्कंधमें एक प्रदेश आदिकी अपेक्षासे अवयवी धर्मपना है, और एक प्रदेशवाले परमाणुमें दृष्टगुरुत्वकी अपेक्षा अधिक गुरुत्व माननेसे परमाणुमें रूपा-दिकी अधिकता भी मानी जायगी। और द्विप्रदेशादि स्कंधमें न मानी जायगी। और जब जिसका संबंध अभेदसे मानते हैं तो प्रदेश (अवयव)का जो भार है वह स्कंध (अवयवी)के भी भारपनेसे परिणत होता ही हैं। जैसे-तंतुका रूप पटरूपतासे परिणमनको प्राप्त होता है, अर्थात् जो तंतुका रूप है वह ही पटका रूप होता है; तब इसप्रकारसे गुरुता अथवा प्रदेश वृद्धिका जो दोप कहा हुआ है सो भी नहीं लग सक्ता है। यह सूत्रका तात्पर्य है ॥ ४ ॥

अब जो द्रव्यादिकोके अभेद मानते हैं उनको उपालंभ देते हुए कहते हैं॥

सूत्रम् । चेद्भिन्नद्रव्यपर्यायमेकरूपं गृहादिकम् । भाषसे न कथं द्रव्यं गुणपर्यायवत्तदा ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ:—यदि भिन्न द्रव्योंके पर्याय गृहादिकको एक रूप कहते हो तो द्रव्य गुण पर्यायोंवाला है ऐसा क्यों नहीं कहते ? ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थ:—यदि भिन्न २ द्रव्योंके पर्याय रूप अर्थात् पापाण, काष्ट जल आदि जो भिन्न २ बहुतसे द्रव्य हैं, उनके पर्यायभूत गृह (घर) आदिको "यह घर एक रूप है" इसप्रकारकी बुद्धिस एक ही कहता है, तो द्रव्यको गुणपर्यायवाला क्यों नहीं कहता है अर्थात् एक द्रव्यमें गुण तथा पर्यायका अभेद होय; ऐसा विवेक क्यों नहीं कहता है ? क्योंकि जो आत्मा द्रव्य है वह ही आत्माका ज्ञान आदि गुण है, और

१ तात्पर्य यह है कि अवयव मिलके अवयवी बनता हैं तो वह अवयवींसे भिन्न है इससे अपनी तथा अवयवोंकी गुरुता (भारीपन) मिलाके दूना होगया।

देव नर आदि पर्याय हैं यह अनादि सिद्ध व्यवहार है जो द्रव्यादिकोंका अभेदभाव अंगीकार तुम नहीं करते तो वह ठीक नहीं क्योंकि द्रव्योंमें अभेदता अवश्य ही है । यद्यपि
द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसे नाम पृथक् २ होनेके कारण द्रव्य भिन्न है गुण भिन्न है, और
पर्याय भी भिन्न ही है इस युक्तिसे भिन्नताका भान लक्षित (प्रतीत) होता है, तथापि द्रव्य
घट है और गुणसे शुक्क घट, नील घट रक्त घट या श्याम घट है तथा पर्यायसे विशाल
आकारमें परिणत शंखके तुल्य श्रीवासहित और महान् उद्रवाला यह घट है इत्यादि
गुण तथा पर्यायोंसे घट भिन्न नहीं है ॥ ९ ॥

अर्थ द्रव्यादीनामभेदं येऽङ्गीकुर्वन्ति तान उपालम्भं दद्न्नाह ।

व्याख्या । यदापि भिन्नद्रव्यपर्यायं पापाणकाष्ठजलादिकानि द्रव्याणि वहूनि तेषां पर्यायं गृहादिकं भवनादिकमेकरूपमेतद्वृह्मित्याकारिकया बुद्ध्या एकमेव भाषते तर्हि द्रव्यं कथं गुणपर्यायवन्न भाषते । एकस्मिन द्रव्यं गुणपर्याययोरभेदो भवेत् । एताहशं विवेकं कथं न कथयित । यत आत्मद्रव्यं यदित्त स एवात्मगुणः स एवात्मपर्यायश्चेतीहशव्यवहारोनादिक्ति । वत्तेते । यस्माद्वव्यादीनामभेदभावं नाङ्गीकुरूपे तदसन् । एतपामभेदता एव वर्तते । यद्यपि द्रव्यं भिन्नं गुणो भिन्नः पर्यायोपि भिन्न एव द्रव्यगुणपर्यायनामत्वात् इति युक्त्या भिन्नताभानं लक्ष्यते तथापि द्रव्यं घटः गुणेन शुक्को घटो नीलो घटो रक्तो घटः । श्यामो वा पर्यायण पृथुवुञ्जाद्याकारपरिणतः कम्बुभीवः पेटोद्रः द्रव्यादिगुणपर्यायाभ्यां घटो भिन्नो नास्ति ॥ ५॥

सृत्रम् । नियतव्यवहारं यद्रव्यं तद्नयोः सतोः । परिणलेकरूपत्वाचत्र वैकप्रकारकाः ॥ ६॥

सूत्रभावार्थः—जो द्रव्य यह नियतव्यवहार होता है वह इन दोनोंके विद्यमान होनेपर होता है, तथा परिणाममें तीनोंकी एकरूपता होनेसे द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों एक ही प्रकारके अर्थात् एक ही हैं॥ ६॥

व्याख्या । यज्जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमित्यादिनियतव्यवहारं द्रव्यं व्यवस्थासिहतव्यवहारो भवति । तहुणपर्याययोरभेदान सतोविद्यमानयोरनयोभेवेन् । यथा ज्ञानादिगुणपर्यायभयोऽभिन्नोऽजीवश्चेति यदित्यं न स्यात्तदा द्रव्यात्सामान्यात् विशेषसंज्ञा न भवत् । अतः कारणात् द्रव्य १ गुण २ पर्यायाः ३ इति नामत्रयम्।
परन्तु स्वजात्याद्येकत्वव्यवहार एव त्रिषु तिष्ठति परिणत्येकरूपत्वात् परिगमनं यथात्मद्रव्यं तस्य च ज्ञानादिगुणाः परिणामिवस्तुषु तेषां पर्याया एतत्सर्वमिष एकमेति यतो रत्नं १ तस्य कान्तिः २ व्वरापहारत्यक्षणा तच्छक्तिः ३ एतत्रयमिषपिणित्येकरूपत्वम् । तथैव द्रव्य १ गुण २ पर्याय ३ इत्येकरूपत्वमेव तस्मात्परिणत्येकरूपत्वात् द्रव्याद्य एकप्रकारकास्त्रयः॥६॥

च्याख्यार्थः-- जो जीव द्रव्य, अजीव द्रव्य, इत्यादि नियत व्यवहार अर्थात् द्रव्य,

[ी] यह पाट भाषार्थक पीछे किसी मुलसे दिया गया है। पाठक ध्यानसे परी

इस प्रकार व्यवस्थासिहत व्यवहार होता है, वह गुण और पर्यायोंके अभेदसे है इस कारण इन गुण पर्यायोंके विद्यमान होनेपर ही होवे है। जैसे ज्ञानािं गुण पर्यायोंसे अभिन्न जीन है और रूपािंद गुण पर्यायोंसे अभिन्न अजीव द्रव्य है। यदि ऐसा न होवे तो गुण पर्यायोंसे रिहत सामान्य द्रव्यसे मनुष्य जीव, देवजीव, मुक्तजीव, तथा रक्त घट पीत घट इत्यादि विशेषसंज्ञा न होवें। इस कारणसे द्रव्य, गुण, पर्याय यह तीन नाम हैं, परन्तु स्व स्वभाव आदि एकपनेका व्यवहार ही तीनोंमें रहता है क्योंकि परिणतिमें एकरूप है। परिणमन जैसे आत्मा द्रव्य है उसके ज्ञानािंद गुण परिणाम हे यहां ज्ञानािंद गुणसहित द्रव्यमें ही आत्मा यह व्यवहार होता है और ऐसे ही परिणामी वस्तुओंमें उनके जो पर्याय हैं उन पर्यायोंसे युक्तमें द्रव्य व्यवहार होता है, यह सब एक ही है। क्योंकि रत्न, उसकी कान्ति तथा ज्वरको नाश करनेवाली उसकी शिक्त यह तीनों भी परिणतिमें एक रूप हैं। उस ही प्रकार द्रव्य गुण तथा पर्याय यह एकरूप उससे ही हैं अर्थात् परिणतिमें एक रूप होनेसे द्रव्यादिक तीनों एक प्रकारवाल है। ६॥

पुनरभेदं नाङ्गीकुर्वन्ति । तेषु एव दोषसम्भवमाह् ।

फिर भी जो अभेदको नहीं मानते हैं उनमें ही दोपकी उत्पत्तिको कहते हैं ।

सूत्रम् । न द्येतेषां यदाभेदस्तदा कार्यं कुतो भवेत् । नोत्पद्यते ह्यसद्वस्तु दादाशृंगवद्वकैः ।

सूत्रभावार्थः—यदि इन द्रव्यादिकोंका अभेद नहीं है तो इनसे कार्य कैसे होता है क्योंकि जैसे सुसेके (खगांशके) सींग उत्पन्न नहीं होता है वैसे असत् पदार्थ उत्पन्न नहीं होना चाहिये॥ ७॥

व्याख्या। यदि एतेषां द्रव्यादीनामभेदो न तदा कार्य कुनो भवेत् । अपि तु द्रव्यगुण-पर्यायाणामभेदो नास्ति । तदा कारणकार्ययोगिप अभेदो न भवेत् । तदा च मृत्तिका-दिकारणभ्यो घटादिकार्य कथं निष्पत्स्यते कारणे कार्यशक्ते सत्यामव कार्यात्पत्तिनिया-मकत्वमसद्विद्यमानं वस्तु न निष्पयते निश्चयेन दाशञ्जङ्गवत । यथा दाशविपाणिमत्य-सद्वस्तु असत्परिणतितत्त्वात् कार्ये निष्पत्त्यभाव एव दृश्यते अयमत्र भावः । यदि कारण-मध्ये कार्यसत्ताङ्गीकियते । तदा अभेदः सहजमेव आगातः ॥ ७॥

च्याख्यार्थ:—यदि इन द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंका अभेद नहीं है तो कार्य केसे उत्पन्न होता है अर्थात् अभेदके विना कारणसे कार्य नहीं हो सकता, और यदि द्रव्य गुण तथा पर्यायोंका अभेद नहीं हे, तो कारण कार्यका भी अभेद न होना चाहिये। और जब कारण कार्यका अभेद न हुआ तो मृत्तिकादिरूप कारणोंसे घट आदि कार्य कैसे उत्पन्न होंगे ? क्योंकि कारणमें कार्य शक्तिकी सत्ता ही कार्यकी उत्पत्तिमें नियामिका है क्योंकि जो पदार्थ जहां अविद्यमान है वहांसे वह पदार्थ कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता है यह

निश्चय है। शराशृंगके समान। जैसे शरा (खर्गोरा)का सींग यह असत् (अविद्यमान) वस्तु है क्योंकि असत् परिणतिपना है, अर्थात् शराह्मप कारणमें सींगह्मप कार्यकी शक्ति नहीं है। इससे शरामींगह्मप कार्यकी उत्पक्तिका अभाव ही देखा जाता है। यहांपर आश्य यह है कि यदि कारणमें कार्यकी विद्यमानता स्वीकार करते हो तब तो कार्यकारणका अभेद सहजमें ही प्राप्त हुआ अर्थात् कार्य अपने प्रकट होनेके पूर्व कारणह्मपसे ही था और उत्पन्न होनेपर भी केवल उस द्रव्यका पर्यायमात्र होगया, यथार्थमें वह कारणसे अभिन्नह्मप ही है। जसे वट आदि कार्य मृत्तिकासे उत्पन्न होते हैं तो भी मृतिकासे भिन्न नहीं हैं॥ ७॥

कारणे कार्योत्पत्तिक्षणात्पूर्वमेव यदि कार्यसत्तास्ति । तदा कार्यद्शेनं कथं न जायते । इत्थं शङ्का समुत्पन्ना तदुपरि कथयति ।

अब यदि कारणमें कार्यके उत्पत्तिक्षणकं पूर्व भी कार्य विद्यमान है, तो मृत्तिका आदि कारणमें घट आदि कार्य क्यों नहीं दीख पडते। ऐसी शंका वादीके उत्पन्न हुई उसपर यह आगेका सत्र कहतें हैं—

शङ्कापनोदं करोति ।

अव अग्रिम काव्यसे शङ्काको दूर करते हैं।

सूत्रम् । द्रव्यरूपा तिरोभावाच्छक्तिः कार्यस्य या सती । गुणपर्याययोगिकीवात्सा व्यक्तितां व्रजेत् ॥ ८ ॥

सृत्रभावार्थ:—कार्यके कारणमें तिरोमावसे जो द्रव्यरूप शक्ति विद्यमान रहती है वह गुण और पर्यायके आविभीवसे प्रकटताको प्राप्त होती हैं ॥ ८॥

व्याख्या। कार्य यावन्नोत्पन्नं तावत्कारणे कार्यस्य द्रव्यक्तपा तिरोभावादन्तर्गतत्वाद्या च कार्यत्वेनालक्ष्या इक्तिः सती विद्यमाना तिष्ठति। सा च इक्तिः सकलसामग्रीसान्निध्यो पगता गुणपर्याययोगविर्भावात्प्रकटनाद्वयक्तितामाविर्भावतां व्रजेन्। तस्माद्त्र कार्य दृश्यते। तिरोभावाविर्भावार्वाप नियामको कार्यपर्यायो विशेषत्वेन होयाः। तेनाविर्भावस्य सद्सद्वि-कल्पदृपणं न लगति। परन्त्वनुभवानुसारित्वेन पर्यायकल्पना। अथ च कार्यस्य घटस्य तिरोभावादद्श्वनाद्वव्यक्त्पा मृत्पिण्डक्ष्पा या शक्तिः सती विद्यमाना तिष्ठति सा सामान्य-शक्तिगविर्भावात्कारणकलापाडुणपर्याययोः रक्तत्वपृथुवुत्रत्वकम्बुप्रीवत्वादिकयोः। रक्तोऽयं घटो योऽयं मृत्पिण्डात्समुत्पन्न इति कार्यादेशेन रक्तो घट इति जातः। कार्णे कार्योग्पचारादित्यर्थः॥ ८॥

च्याख्यार्थ:-कार्य जबतक उत्पन्न नहीं हुआ तबतक कारणमें कार्यके छिपे रहनेसे

⁹ यद्यपि कारणमें कार्य है तथापि जिन पदार्थीसे वह प्रकट होता है उनके विना उसकी प्रकटता नहीं होती इस कारण मृत्तिकांके पिण्डमें घटकी हव्यम्पताकी विद्यमानता होनेपर भी कुंभकार, चाक आदि साम-श्रीके विना प्रकटता नहीं होती. 3 अत्र "क्षेत्री" इति पाठः सम्यसामाति.

जो कार्यपने करके नहीं देखनेमें आती हुई द्रव्यह्म शक्ति विद्यमान रहती है वह ही शक्ति जब सम्पूर्ण सामग्रीकी समीपताको प्राप्त होती है तब गुण और पर्यायके प्रकट होनेसे स्वयं भी प्रकाशित होती है उससे यहां कार्य देखा जाता है यहांपर तिरोभाव तथा आविर्भावोंको भी कार्यके पर्यायकी समानतासे नियामक समझने चाहियें क्योंकि इस प्रकार आविर्भावके सत् तथा असत्पक्षके विकल्गोंसे जो दूपण लगता है वह नहीं लगता परन्तु भाविर्भाव तथा तिरोभावमें अनुभवके अनुसार पर्यायकी कल्पना की गई है। भावार्थ—घट ह्मप कार्यके न देख पड़नेसे द्रव्यह्मप अर्थात् मृत्तिकाके पिण्डह्मप जो शक्ति विद्यमान रहती है वह ही सामान्यशक्ति कुंभकार चाक दण्ड चीवर (चाकपरसे घटके उतारनेका धागा) आदि कारणोंके समूहसे रक्तत्व आदि गुण और पृथुवुक्षत्व, कम्बुग्रीवत्वादि पर्यायोंमें प्रकट होती है तब यह घट रक्त (लाल) है जो कि मृत्तिकाके पिण्डसे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार कार्यके आदेशसे रक्त घट है ऐसा व्यवहार हुआ क्योंकि कारणमें कार्यका उपचार है। ८॥

अथ स्रोकद्वयेन नेयायिकमतं प्रकटियत्वा समाधत्ते ।

अब दो श्लोकोंके द्वारा नैयायिकका मत प्रकट करके उसका समाधान करते हैं।

सृत्रम् । नैयायिकोऽसतो ज्ञानमतीतविषयं भवेत् । यथा तथा सतः कार्यमपि निष्पद्यते ध्रुवम् ॥ ९ ॥ इत्थमाह सृषा तचासङ्गतविषयं न हि । पर्यायार्थतयानित्यं नित्यं द्रव्यार्थिकेनयत् ॥ १० ॥ युग्मम्

सूत्रभावार्थ:—जैसे असत् (अविद्यमान) घट आदिका ज्ञान अतीत अर्थात् भूत-पदार्थके विषयवाला होता है उस ही प्रकार अविद्यमान घटआदि कार्य भी निश्चय करके उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ ऐसा जो नैयायिक कहता है वह मिथ्या है क्योंकि भूत-विषयघटादि असत् नहीं है क्योंकि जो पर्यायार्थिक नयसे अनित्य है वह द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है ॥ १० ॥ युग्मम् ।

व्याख्या । यथा असतो घटादेर्ज्ञानमतीतिविषयं भवेत्तथा घटादिकार्यमसदिष मृत्तिकादि-दलसामध्या निष्पद्यते । असतो ज्ञांपरिस्त तर्ज्ञसत उत्पत्तिः कथं न भवित । पुनः घटस्य कारणं दण्डादि कथ्यतेऽस्माभिस्तत्र लाघवोऽस्ति । भवतां गते घटाभिव्यक्तेर्ण्डादिकं कारण-मस्ति तत्र गौरवं जायते । अन्यचाभिव्यक्तेः कारणं चक्षुरादीन्द्रियमस्ति परन्तु दण्डादिकं नास्ति । ततः कारणाद्वेदपक्ष एव । द्रव्यघटाभिव्यक्तेः कारणं दण्डाभावः । घटाभिव्यक्तौ कारणं

⁹ यद्यपि मृत्पिण्ड भी मृत्तिकारूप द्रव्यका कार्य अथवा पर्यायरूप ही है तथापि घटका कारण है इसिल्ये उसको कारण माना है और यथार्थमें सभी कार्य वा पर्याय कारण रूप ही है सामग्रीसमृहसे विशेष पर्यायरूप होनेसे कारणमें कार्यका उपचार किया गया है.

चक्षुरादि तत्र गौरवं न घटते ॥ ९॥ नैयायिकोऽसतो द्रव्यान् उत्पत्तिरित्थमाह । तदसन् । किं तार्ह । अतीतिविपयो घटादिः सर्वथासन्न विद्यते । तच्च पर्यायार्थतो घटो नास्ति तत्र द्रव्यार्थतो नित्योऽस्ति । नष्टो घटोऽपि मृत्तिकारूपोऽस्ति । यदि सर्वथा न भवेत्तार्हे शशस्य क्रमेन् । तथा च-सर्वथासन्नथीं ज्ञाने भासते यः स कथं सदूपतां यातीति विरोधापत्तेः । तस्माद्यत्किञ्चिद्धत्विपयमस्ति तदसन्नास्ति । किन्तु सन्नेव प्रवर्तते । तत्रेयं योजना यद्वस्तु नित्यं द्रव्यार्थिकेन वर्त्तते । तत्र पर्यायार्थतया क्रत्यभावेनानित्यं भासते । परमार्थतस्तु द्रव्यसमवायि भूतविषयं वस्तु कारणोद्येन कार्यतामापन्नं छक्ष्यं जायते । अतः सत एवोत्पत्तिर्नासतो भावस्येति नियम इति ॥ १० ॥

व्याख्यार्थ:--जैसे असत् अर्थात् अविद्यमान घटआदि पदार्थीका ज्ञान अतीत विषय अर्थात् भूत पदार्थके विषयवाला होता है वैसे ही असत् अर्थात् कारणमें अविद्यमान ही घट आदि कार्य मृत्तिका तथा कुम्भकार आदिक सामग्रीके समूहसे उत्पन्न होता है क्योंकि जब असत् पदार्थका ज्ञान होता है तो अविद्यमान पदार्थकी उत्पत्ति केसे नहीं होती है अर्थात् होती ही है और जो हम दण्ड आदिकको घटका कारण कहते हैं इसमें लावव है और आप जैनियोंके मतमें दण्ड आदिक ही घटकी प्रकटताका कारण है उसमें गौरव होता है और घटकी प्रकटताका कारण तो नेत्र आदिक इन्द्रिय है परंत् दण्ड आदिक नहीं। इसिलिये कारणसे कार्यका भेद जो हम मानते हैं सो ही सत्य है तथा द्रव्यरूप घटकी अभिव्यक्तिका कारण दण्डका अभाव है न कि दण्ड, और घटके प्रकट होनेमें नेत्र आदिकको जो कारण माना है सो गौरवको नहीं घटित करता है ॥ ९ ॥ नेया-यिक असत् घट आदि कार्यकी द्रव्यसे उत्पत्ति कहता है वह असत्य है। तो सत्य क्या है इस जिज्ञामामें कहते हैं कि अतीत विषयवाला घट आदि सर्वथा असत् नहीं क्योंकि वह अतीत विषयवाला घट पर्यायार्थनयसे नहीं है परन्तु द्रव्यार्थिक नयसे उसमें नित्य है भावार्थ घट नष्ट होगया है तोभी मृत्तिकारूपमे विद्यमान है यदि वह घट सर्वथा न होवे तो सुस्सेके सींगकी समताको प्राप्त होजाय और जो सर्वथा अविद्यामान पदार्थ ज्ञानमें भासता है वह पदार्थ विद्यमानताको कैसे प्राप्त होता है क्योंकि इस प्रकार माननेमें विरोध आता है इसिलिये जो कुछ भूत विषय है वह सर्वथा असत् नहीं है किन्त सद्रप होकर ही प्रवर्तता है यहां पर यह योजना करनी चाहिये की जो वस्तु द्रव्यार्थिक नयसे नित्य वर्त्तती है उस वस्तुमें आकारका अभाव होनेसे पर्यायार्थनयसे अनित्यपना भासता है और परमार्थसे तो द्रव्यमें समवायी भूतविषय पदार्थ है सो कारणके उदय होनेसे कार्यपनेको प्राप्त होकर देखनेमें आता है इस कारण सत् पदार्थकी ही उत्पत्ति

⁹ दंड आदिके न होनेपर भी घट आदि पदार्थोंकी अभिव्यक्ति होती है इसलिये दण्डके अभावको अभि-व्यक्तिमें कारण कहा है.

होती है और अविद्यमान पदार्थकी नहीं होती ऐसा नियम है ॥ १० ॥ इस प्रकारका युग्म श्लोकोंका अर्थ है ।

अथ सर्वथा अविद्यमानोऽथों ज्ञानविपये भासत इतीत्यं ये कथयन्ति। तेपां वाधकं द्र्ययित। अब जो ऐसा कहते हैं कि सर्वथा अविद्यमान पदार्थ ही ज्ञानमें भासता है उनके म-तमें बाधक दिखाते हैं

सूत्रम् । अर्थोसन् भासते ज्ञातुस्तदाज्ञानमयं जगत् । स्वभावेन भवेत्सर्वं योगाचारमतं भवेत् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थ:—जब असत् पदार्थ ज्ञाताके ज्ञानमं भासता है तो सम्पूर्ण जगत् स्व-भावसे ज्ञानरूप ही हो जाय और तत्र तृतीय बौद्ध योगाचारका मत सिद्ध होजावे ॥११॥

व्याख्या । यदि ज्ञानिवपयेऽसन्नथोंऽतीतप्रमुखो भासत इतीहरामङ्गीकुरुपे । तद् सर्व जगज्ज्ञानाकारमेवास्ति । वाह्याकारा अनाद्यविद्यावासनया असन्त एवावभासन्ते । यथा स्वप्नेऽस्त्रत्यांभासनवत् । वाह्याकाररहितं शुद्धं ज्ञानन्तु वुद्धस्यैव भवति । एवं यदि कथयसि तर्हि योगाचारनामा तृतीयो वुद्ध उत्तिष्ठते । तस्मादेवं वितर्कय । असतो ज्ञानं न भवेत्सत एव वस्तुनिक्तरोभावशक्त्यन्तरितस्य कारणकछापाविभावव्यक्तर्दश्चाकारत्वं जायते । इति सर्वन्वस्तु द्रव्यात्मना नोत्पद्यते विपद्यते वा परिस्फुटमन्वपदर्शनात् । छ्नपुनर्जातनस्वादि-प्वन्वयदर्शनेन व्यभिचार इति न वाच्यम् । प्रमाणन वाह्यमानस्यान्वयस्यापरिस्फुटत्वात् । न च वस्तुतोऽन्वयः प्रमाणविरुद्धः सत्यप्रत्यभिज्ञानसिद्धत्वात् । ततो द्रव्यात्मना स्थितिरेव सर्वस्य वस्तुनः । पर्यायात्मना तु सर्वं वस्तृत्पद्यते विपद्यते चास्यिळितपर्यायानुभवसद्भावात् । न चैवं शुक्के शक्के पीतादिपर्यायानुभवेन व्यभिचारस्तस्य स्वळनक्तपत्वात् । नश्चरस्य नाशे तद्धेत्नां वैयर्थ्यं न हि स्वहेतुः स एवाप्रवान् । स्वभावे भावे भावान्तरव्यापारः फळवाँस्वदनु-परेतिप्रसक्तेः ? ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ: —यदि भूतकालविषयक पदार्थ ज्ञानमें असत् भासता है इस प्रकार तू मानता है तो सब जगत् ज्ञानाकार ही होगा क्योंकि अनादिकालसे चली आती हुई अविद्याकी वासनासे बाह्यके आकार तो जैसे स्वप्नमें असत् पदार्थका भासन होता है वैसे ही जागृत द्शामें भी अविद्यमान ही भासते हैं परन्तु वाह्य आकारसे शृन्य गुद्धज्ञान तो बुद्धके मतमें ही है इसिल्ये ऐसा जो तुम कहते हो तो बौद्धमतके ४ भेदोंमें तीसरा जो योगाचार नामक भेद है उसका मत खडा होता है इस कारण ऐसा विचारो कि असत् पदार्थका भान नहीं होता किन्तु तिरोभाव शक्तिसे छिपे हुए सत् पदार्थकी कारणोंके समृहसे प्रकटता होनेके कारण देखनेमें आनेयोग्य आकारपना उत्पन्न होता है। इस कारण द्व्यक्ष्पसे

१ त्रिप्वपि पुस्तकेष्वेवसेव पाटः ।

न तो सब पदार्थ उत्पन्न होते और न नाराको प्राप्त होते हैं क्योंकि प्रत्येक पर्यायमें द्रव्यका अन्वय (संवंध) स्पष्टरीतिसे देखा जाता है और काटेहुए तथा फिर उत्पन्नहुए नख आदिमें जो असत् पदार्थका अन्वय देखते हैं उससे आपके मतमें व्यभिचार होगा ऐसा कहना चाहिये क्योंकि जो अन्वय प्रमाणसे बाधित है वह अस्पष्ट है और वास्तवमें अन्वय प्रमाणके विरुद्ध नहीं है क्योंकि सत्य प्रत्यभिज्ञानसे सिद्ध है इस कारण द्रव्यरूपसे सब वस्तुकी विद्यमानता ही है न कि उत्पत्ति अथवा नारा तथा पर्यायरूपसे तो सब पदार्थ उत्पन्न होता है और नाशको प्राप्त होता है क्योंकि जो पर्याय जिस द्रव्यमें सत्रूपसे विद्यमान है उस पर्यायका ही अस्विलित (निश्चल) रूपसे अनुभव होताहै और ऐसे शुक्क शंखमें जो पीत आदि पर्यायोंका कामल आदि नेत्रके रोगोंके वशसे अनुभव होजाताहै उससे व्यभिचार नहीं होता क्योंकि वह अनुभव स्खलनहूप (चलायमान) है भावार्थ ने-त्रके रोगसे शुक्रशंखमें पीत (पीट) वर्णका जो अनुभव होता है वह नेत्र रोगके दूर होने-पर आप ही चलायमान (नष्ट) होजाता है और शंखमें जो पीतादि पय्यीयका अनुभव . ह वह तो अस्खलन (अविचल) रूप नहीं है अर्थात् विचलरूप है क्योंकि शंखमें निर्दोप दशामें जो शुक्काकार भासता है उसका विनाश तथा नेत्रके दोप दशामें जो पीताकर भासता है उसकी उत्पत्ति आदि नहीं कर सकता, किन्तु दोष निवृत्त होनेसे वह स्वयं नष्ट होजाता है और उसके नाशमें उसके हेतुओंकी व्यर्थता नहीं है, क्योंकि जो कृत्रिम स्वभाव वस्तुमें श्राप्त है उसमें दूसरे पदार्थका व्यापार फलवान् नहीं होता किन्तु जिस कारण (दोपादि)से वह उत्पन्न हुआ है उसकी निवृत्तिसे वह पर्याय नष्ट होता है अन्यथा अनुपपत्ति है ॥ ११ ॥

अथ दृष्टान्तेन दृढयन्नाह ।

अब दृष्टान्तसे उक्त कथनको दृढ करते हुए कहते हैं।

स्त्रम् । ज्ञातोऽधुना मया कुम्भ इत्यतीतार्थना हि या। वर्त्तमानस्य पर्यायात्सा भवेदक्तमानता ॥ १२॥

सृत्रभावार्थ:—इस समय मेने भूत घटको जाना इस प्रकार जो अतीतार्थता हुई है वह वर्त्तमानकी पर्यायसे वर्त्तमानता होती है ॥ १२ ॥

व्याख्या । यदि असतो ज्ञानं भवेत्तार्ह् अधुना मया अतीतो घटो ज्ञात इत्याकारिका प्रतीतिः कथं जायते । तत्र हि- अतीतो घटो मया सांप्रतं ज्ञात एवं यो बोधो जायते । तत्र द्रव्यात्सतोऽतीतघटस्य विषये वर्त्तमानज्ञेयाकाररूपपर्यायादधुनातीतघटो ज्ञात इति ज्ञान-भानतास्ति । अथवा नैगमनयादतीतार्थविषये वर्त्तमानार्थारोपः क्रियते । तस्मात्सर्वथासतो वस्तुनो ज्ञानं न भवति । अधुना मया कुम्भो ज्ञात इत्यतीतार्थता हि यासीत् सातीतार्थता वर्त्तमानस्य पर्यायाद्वर्त्तमानता भवेत् ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ: —यदि सर्वथा असत् पदार्थका ज्ञान होवे तो इस समय मैने अतीत घट-को जाना इस आकारकी प्रतीति कैसे होती है। क्योंकि उस समयमें अतीत घटको मैंने इस समय जाना इस प्रकार जो बोध होता है उसमें द्रव्यमें विद्यमान अतीत घटके विषयमें वर्त्तमान ज्ञेयके आकाररूप पर्यायसे इस समयभूत घटको जाना ऐसा ज्ञानका भान है। अथवा नैगमनयकी अपेक्षासे भ्तपदार्थके विषयमें वर्त्तमान पदार्थका आरोप किया जाता है। इस कारण यह सिद्ध हुआ कि असत् पदार्थका ज्ञान सर्वथा नहीं होता है क्योंकि इस कालमें घटको भैने जाना ऐसे जो घटकी भूत पदार्थरूपता थी वह अतीतार्थता वर्त्त-मान द्रव्यका पर्याय होनेसे वर्त्तमानता होती है। १२।

फिर भेदभावना कहते हैं।

सूत्रम्। चेद्धर्भेणासता धर्मी कालेऽप्यसति रोचते। तदा सदा शशाशुङ्गं किन्न ज्ञापयसि दुतम्॥ १३॥

सूत्रार्थ:—यदि अतीत कालमें भूत घटरूप धर्मा अविद्यमान आकारसे भासता है ऐसा तुमको रुचता है तो तुम सदा निःशङ्क (शङ्कारहित) होकर सुस्सेके सींगको भी क्यों नहीं जनाते ॥ १३॥

व्याख्या । धर्मी अतीतो घटोऽसता धर्मेणाविद्यमानाकारेण असित काले अतीते काले घटा-भावकालेऽपि सिद्ति भासते । अथवा धर्मी अतीतो घटः असता धर्मेण इयाकारेण असित काले भासते । इत्थं यदि तव चेतिस रोचते तत्सर्वमतीतानागतवर्त्तमानकाले निर्भय-मदृष्टशङ्कारिद्तिं यथा भवति तथा शशरूङ्गमिप कथं न ज्ञापयसि । एतदेव ज्ञापयतु-भिष्टमेवेति ॥ १३ ॥

च्याख्यार्थ:—धर्मा अर्थात् भूतकालका घट असत् धर्म अर्थात् अविद्यमान आकार रूपसे असत् काल अर्थात् घटाभावकालमें (विद्यमानरूपसे) भासता है। अथवा धर्मी भूतघट असत् धर्म अर्थात् अविद्यमान ज्ञेय आकारसे अविद्यमान कालमें भासता है ऐसा पक्ष यदि तुद्धारे चित्तमें रुचता है तो तुम निर्भय अर्थात् नहीं देखनेमें आते हुए पदार्थको हम कैसे जनाते हैं इस प्राकारकी शंकारहित जेसे होय तसे सदा अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमानकालमें अविद्यमान सुस्सेके सींगको भी क्यों नहीं जनाते हो क्योंकि जब तुमने मृत्तिकासे असत् घटकी उत्पत्ति तथा भूतकालके असत् घटका भान मान लिया है तो असत् श्राश्रंगको भी सिद्ध करके जनादेना तहारे इष्ट ही है॥ १३॥

सूत्रम्। ततोऽसतो हि नो बोधो नैव जन्म च जायते। कार्यकारणयोरैकां द्रव्यादीनामपि अय॥ १४॥

सृत्रार्थ:—इस पूर्वोक्त हेतुसे अविद्यमान पदार्थका ज्ञान नहीं होताहै और न उत्पत्ति ही होती है इस कारण तुम कार्य, कारणकी तथा द्रव्य, गुण, पर्यायकी एकता-को भी स्वीकार करो ॥ १४॥

व्याख्या । हि निश्चितमसतोऽविद्यमानस्यार्थस्य नो बोधः । च पुनर्जन्माप्युत्पत्तिरिप न भवति । सत एव ज्ञानं सत एवोत्पत्तिरित्याद्याः । एवमपि निश्चयेन कार्यकारणयोरभे-दोऽस्ति । तदृष्टान्तेन द्रव्यगुणपर्यायादीनामप्यभेदं श्रयाङ्गीकुरु ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थ:—इस पूर्वोक्त कथनसे निश्चय कर अविद्यमान पदार्थका ज्ञान नहीं होता और अविद्यमान पदार्थकी उत्पत्ति भी नहीं होती अर्थात् विद्यमान पदार्थका ही ज्ञान और उसकी ही उत्पत्ति होती है, यह आशय है। इस प्रकार भी निश्चयसे कार्य और कारणका अभेद है। उसी दृष्टान्तसे तुम दृष्य गुण तथा पर्याय आदिके भी अभेदको स्वीकार करो

सत्रम्। नैयायिको भेदनयं प्रकाशते। साङ्ख्योऽप्यभेदं प्रकटीकरोति वै॥ विस्तारयन् जैनवरो द्वयं खयं। प्राप्नोति सर्वत्र जयं सुनिर्भयम्॥ १५॥

सृत्रार्थ:—नैयायिक द्रव्य आदिके सर्वथा भेदको प्रकाशित करता है, और सांख्य-वादी निश्चयकर अभेदको प्रकट करता है और जैनियोंमें श्रेष्ठ पुरुप अथवा श्रेष्ठ जैनमत तो अपेक्षासे भेद तथा अभेदको स्वयं निभेय होके विस्तारता हुआ सब वादियोमें जयको प्राप्त होता है ॥ १९॥

व्याख्या। नैयायिको द्रव्यादीनां भेदमङ्गीकुरुते। यत उत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं तिष्ठतीति क्षणेन गुणानां पृथगुत्पादात्। द्रव्यं हि तावित्रर्गुणमुत्पद्यते, पश्चाक्ततममेवता गुणा उत्पद्यन्ते, समकाछोत्पत्तों तु गुणगुणिनोः समानसामग्रीकत्वाद्धेदो न स्यात्कारणभेदस्य कार्यभेदिनय-तत्वादिति भेदे नयं नैयायिको वक्ति। साङ्घथोऽपि द्रव्यादीनामभेदमङ्गीकरोति। यतो गुण-गुणिनोः समानकाछीनं जन्म सद्येतरिवषाणवत्पौर्वापर्याभावात्। न हि स एव तस्यैव पूर्वभावी पश्चाद्भावी च भवति। अतो यदैव द्रव्यं जायते तदैव तद्गतरूपादयोऽपि जायन्त इति द्रव्यादीनां साङ्घयमतेऽभेदता। जैनस्तु द्रव्यादीनां भेदमपि द्रव्यगुणपर्यायत्वाद-भेदमपि। द्रव्यं तदेव गुणस्तदेव पर्यायः यथा घटः द्रव्येण मृद्गुणेन रक्तः, पर्यायेण कम्बु-ग्रीवः, इत्यमेद इत्येतद्वयमण्यङ्गीकुर्वाणः सर्वत्र जयं प्राप्नोति। उक्तं च—

अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः । नयानशेषानविशेषमिच्छन्न पक्षपाती समयक्तथा ते ॥ १ ॥

य एव दोषाः किस्र नित्यवादे विनाशवादेऽपि समास्त एव । परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु जयत्यभृष्यं जिनशासनं ते ॥ २ ॥

तस्माद्भेदनयपक्षस्याभिमानमभेदनयोऽपाकरोति । अथ नयद्वयस्वामिनं निर्द्दिशति । अस-त्कार्ये दृश्यत इति नैयायिकाभिमतम् । सदिति सांख्याभिमतम् । सद्सदिति जैनाभिमतं पक्षपातरहितमिति ॥ १५ ॥

इति श्रीभोजविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ:--नैयायिक द्रव्यादिक (द्रव्य, गुण, पर्याय) का भेद मानता है, क्योंकि " उत्पन्न हुआ द्रव्य क्षणभर गुणरहित रहता है" इस नैयायिकके कथनसे गुणोंकी उत्पत्ति भिन्न क्षणमें होती है। भावार्थ-नैयायिक ऐसा कहता है कि-द्रव्य प्रथम निर्गुण उत्पन्न होता है फिर उसमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले गुण उत्पन्न होते हैं, समान काल (एक ही समय) में द्रंव्य तथा गुणकी उत्पत्ति होनेपर तो समान सामग्रीके होनेसे गुण और गुणी (द्रव्य) का भेद न होवे क्योंकि कारणका भेद कार्यके भेदका नियासक होता है। अर्थात् कारणका मेद होनेसे कार्यका मेद अवश्य होता है यदि कारणका मेद न हो तो कार्यका भी मेद नहीं होता इसिंठिये जब गुण और गुणीकी सामग्री ही एक है तो उनका भेद न होगा । और सांख्य द्रव्य आदिका अभेद मानता है क्योंकि यह इसके पहले उत्पन्न हुआ यह इसके पीछे उत्पन्न हुआ इस प्रकारके पूर्वापरभावका अभाव होनेसे पशुके दक्षिण तथा वाम-सींगकी भांति गुण और गुणीकी उत्पत्ति एक समयमें होती है, और वह ही द्रव्य उसहीके पूर्वभावी तथा पश्चाद्भावी नहीं होता है। इसिलये जब दत्य उत्पन्न होता है तब ही उसमें प्राप्त रूपादिक गुण भी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार द्रव्य आदिकी सांख्यमतमें अभेदता है और जैन तो द्रव्य गुण तथा पर्यायपनेसे द्रव्य आदिके भेदको भी और अ-भेदको भी मानते हैं और जो द्रव्य है वही गुण है, वही पर्याय है, जैसे कि घडा द्रव्यसे मृत्तिका है, गुणसे लालरंगका है, पर्यायसे शङ्खर्कासी ग्रीवाका धारक है, इस प्रकार अभेद मानते हैं। ऐसे भेद अभेद इन दोनोंको स्वीकार करते हुए जैन तो सब जगह विजयको प्राप्त होते हैं। सो ही कहा है कि-

हे जिनेंद्र जैसे अन्यमतावलिम्बयोंके प्रवाद परम्पर पक्ष तथा प्रतिपक्षपनेसे ईर्षाके धारक हैं उस प्रकार सब मतोंको समानतासे चाहता हुआ आपका जिनशासन पक्षपाती नहीं है ॥ १॥

(भावार्थ:—कोई सर्वथा भेद मानता है, कोई सर्वथा अभेद मानता है इस कारण दोनोंके सिद्धान्त परस्पर ईपीके धारक हैं। और अपेक्षासे भेद तथा अभेद इन दोनोंको स्वीकार करनेवाला जनसिद्धान्त दोनों वादियोंको समान देखता है। किसीसे ईपी नहीं करता)

तथा और भी कहा है कि-

जो दोष सर्वथा नित्यवादमें हैं वे ही सर्वथा एकान्त रूपसे अनित्यवादमें भी हैं, इसिलये परस्पर एक दूसरेके ध्वंस करनेवाले कंटक (कंटक तुल्यमतों) में अनेकान्तवादी होनेसे प्रवल भाषका जिनशासन विजयको प्राप्त होता है। २। इसिलये सर्वथा भेदनय पक्षके अभिमानको अभेद नय दूर करता है। अब भेद तथा अभेदमतके स्वामीका नाम दिखलाते हैं। कार्य असत् (अविद्यमान) दीखनेमें आता है और कार्य कारण तथा गुण-

गुणीका परस्पर भेद है, यह तो नेयायिकको इष्ट है। सत् कार्य देखनेमें आता है और कार्य कारण तथा गुणगुणीका सर्वथा अभेद है, यह सांख्यवादीको अभीष्ट है। और क-थंचित् सत् एवं कथंचित् असत् कार्य देखनेमें आता है तथा कार्य कारण और गुण गुणीका कथंचित् अभेद है, यह पक्षपात रहित मत जैनको अभीष्ट है। १५॥

इति द्विवेद्यपनामकपण्डितठाकुरप्रसादवैयाकरणाचार्यप्रणीतभाष्यानुवादसमलङ्कृतायां द्वयानुयोगतर्कणायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्या०—अथ परवादी वक्ति द्रव्यादीनां भेदाभेदी द्वौ कथं मान्यों स्त इत्याशङ्कितं प्रत्यु-त्तरयन्नाह ।

अर्थ:—अब अन्यमतावलम्बी वादी कहता है कि द्रव्यआदिकोंके भेद अभेद ये दोनों धर्म किस प्रकारसे मान्य हैं ऐसे आशङ्काके प्राप्त होनेपर वादीको प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं।

सूत्रम्। भेदाभेदौ कथं मान्यौ परस्परिवरोधिनौ कुत्राप्येकत्र न स्यातामन्धकारातपौ यथा॥१॥ इत्थमाशक्कितं शिष्यं गुरुराह जिनोक्तिभिः सर्वत्राप्यविरोधेन धर्मौ द्वावेकसंश्रयौ॥२॥

सूत्रार्थ:—हे गुरो! जैसे कहीं भी अन्धकार और प्रकाश एक अधिकरणनें नहीं रहते हैं वैसे ही परस्पर विरोधके घारक भेद और अभेद ये दोनों एक वस्तुमें कसे मान्य हो सकते हैं ॥ १॥

इस प्रकार आशङ्काको प्राप्त हुए शिष्यके प्रति श्रीगुरु महाराज श्रीजिनभगवान्की उक्तियों द्वारा कहते हैं कि हे शिष्य ! सब ही स्थान तथा वस्तुओं एक द्रव्यमें रहनेवाले दोनो धर्म विरोधरहित हैं ॥ २ ॥

व्याख्या। अहो भेदाभेदौ कथं केन प्रकारण मान्यौ कीहरौ तो परस्परिवरोधिनो। यत्र भेदः स्यात्तत्राभेदो न यत्रासेद्सत्र भेदो न इत्यमनयोरन्योऽन्यं विरोधोऽस्ति। द्वांकत्र न तिष्ठतः। यथान्धकारातपावष्येकत्र स्थायिनो कदापि न भवतस्त्रथैवैतावपीट्यथः। तथा चोक्तमाचाराङ्गे "वितिगित्थ समावन्नेणं अप्याणणं न छभते समाहिति" तद्र्यं शिद्धतं शिष्यं गुरुः प्रवचनिवन्द्वीस्याद्वाद्वाणीभिः कथयित स्म । अहो शिष्यं यद्वद्वटस्य घटाभावस्य च यद्यप्यन्योऽन्यं विरोधः सम्भाव्यते। परन्दवनयोभेदाभेद्योः परस्परं विरोधो नास्ति। यतः कारणात्सर्वत्र स्थानेषु वस्तुषु च भेदाभेद्छक्षणौ धर्मावविरोधेन विरोधाभावेन चकाश्रय- वृत्त्याश्रयाश्रयाश्रयभावेन च दश्यते। अत उक्तमेकसंश्रयावेकस्मिन्द्रव्ये संश्रय आधारो ययो- स्तावेकसंश्रयाविति। सत्यं तुत्यौ द्वौ तथाप्यभेदाख्यः स्थाभाविकस्सत्यः, पुनभेद उपाधिकोऽ- सत्यश्रेत्थं शिद्धतः कश्चित्कथयिष्यति तदा तद्प्यसम्भवमनुभवगोचरं च न। तत्कथं व्यवहारण परापेक्षत्वं द्वयोरिप। गुणादीनां भेदः गुणादीनामभेदश्चेति वचनादिवरोध एव भेदाभेद्यौ- रेकत्र समाश्रितयोर्कातव्य इति ध्येयम्।।

व्याख्यार्थ:—परस्पर विरोधधारक मेद और अमेद ये दोनो धर्म द्रव्यादिकमें किस प्रकारसे मानने योग्य होवें क्योंकि जहां मेद हो वहां अमेद नहीं रहता है, ऐसे ही जहां जिस बस्तुका अमेद हो वहां मेद नहीं रहता है, इस प्रकार आपसमें विरोध है। इसिलये मेद और अमेद ये दोनो एक ही द्रव्यादिकमें नहीं रहते हैं। अर्थात् जैसे अन्धकार और प्रकाश एक जगह रहनेवाले कभी भी नहीं होते हैं वैसे ही ये मेद अमेद भी एक स्थलमें रहनेवाले नहीं हैं। और वैसे ही आचाराक्रमें कहा है कि "वितिगित्थ समावन्नण अप्पाणेणं न लभते समाहिति" इस प्रकार शक्काको प्राप्त हुए शिष्यको गुरु अर्थात् प्रवचनके ज्ञाता पुरुष श्रीस्याद्वादके वचनों द्वारा कहते भये कि अहो शिष्य! यद्यि घट और घटाभावका परस्पर विरोध संभावित होता है। परन्तु इन मेद तथा अभेद रूप दोनो धर्मोंका परस्पर विरोध नहीं है। क्योंकि सब स्थानोंने तथा वस्तुओंने मेद अभेदरूप दोनो धर्म विरोधरहिततासे तथा आश्रयाश्रयिभावसे देख पहते हैं। इस ही कारण मूल सूत्रमें "एकसंश्रयो" यह पद दिया है अर्थात् एक द्रव्यमें है संश्रय (आधार) जिनका ऐसे मेद और अभेद सर्वत्र विना किसी विरोधके रहते हैं।

"यह यद्यपि सत्य है कि भेद तथा अभेद ये दोनो तुल्य हैं तथापि अभेद स्वाभीविक और सत्य है और भेद औपीधिक तथा असत्य है" इस प्रकार शिक्कित होके कोई कहेगा तो वह उसका कथन भी असम्भव है और अनुभवके गोचर नहीं है। सो कैसे कि व्यवहारसे दोनो ही परकी अपेक्षा करनेवाले हैं। उससे गुणादिकका भेद तथा गुणादिकका अभेद है इस वचनसे एक आश्रयमें रहनेवाले भेद तथा अभेदका अविरोध ही जानना चाहिये। ऐसा भाव है।। २॥

व्या०—पुनर्विरोधमपाकुर्वन्नाह ।

अर्थ:-फिर भेद, अभेदके विरोधको दूर करते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । एकत्र जनतारूढ्या यत्प्रत्यक्षेण रुभ्यते । रूपादीनामिवैतेषां भेदादि तत्कथं भ्रमः ॥ ३॥

सूत्रार्थ:—जब एक घटादि द्रव्यमें लोकविदित व्यवहारसे जो प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा-रूपादिकका भेद अभेद प्राप्त होता है तब इन द्रव्यआदिका भेद अभेद है, इसके माननेमें अम कैसे होता है अर्थात् विरोध क्यों करते हो ॥ ३ ॥

व्याख्या। एकस्मिन् स्थाने घटादिद्रव्यविषये जनतारूढ्या सर्वछोकविदितव्यवहारेण छोकसाक्षित्वेन वा प्रत्यक्षप्रमाणेन रक्तत्वादिगुणपर्यायाणां यद्भेदाभेदत्वं छभ्यते तत्कथं श्रम

⁹ स्वाभाविक अर्थात् स्वयंसिद्ध तात्पर्य यह है कि मृत्तिका और घटमें अभेदतो स्वयंसिद्ध है क्योंकि घट दशामें तथा उसके आगे पीछे भी मृत्तिका ही है इसलिये अभेद स्वाभाविक सत्य है।

२ घटरूप उपाधिसे उत्पन्न भेद औपाधिक (वनावटी) है इस लिये असत्य है।

इति । तेषां रूपादीनामिवैतेषां द्रव्यादीनामिष भेदादि वर्त्तते । तत्र विरोधः किमर्थं कियते । यथा रूपरसादीनामेकाश्रयवृक्तित्वानुभवाद्विरोधो न कथ्यते । तथैव द्रव्यादीनामिष भेदा-भेदयोरिष विरोधो न भवेत् । निश्चयेन ज्ञानं चश्चषा विश्वष्टं सुस्थमेव जायते । उक्तं च-न हि प्रत्यक्षदृष्टेऽर्थे विरोधो नाम जायते । तथा प्रत्यक्षदृष्टार्थे दृष्टान्तस्थाप्यभावतः । उक्तं च-केदमन्यत्र दृष्टत्वमहो निपुणता तव । दृष्टान्तं पठसे यक्त्वं प्रत्यक्षेऽप्यनुमानवत् ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

च्याख्यार्थः एक स्थानमें अर्थात् घटादि द्रव्यके विषे जनसमूहकी रूढिसे अर्थात् सब लोकके विदित व्यवहारसे अथवा सब लोकोकी साक्षीसे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा जब घटआदि द्रव्यमें रक्तत्वआदि गुण पर्यायोंका मेद और अभेद उपलब्ध होता है, तब उनके विरोधके विषयमें भ्रम कैसे होता है। जैसे रूपआदिके मेद आदि हैं ऐसे ही इन द्रव्यगुणपर्यायोंके भी भेद अभेद हैं इसमें विरोध क्यों करते हो, जैसे एक घट अथवा आम्रके फल आदि अधिकरणमें अनुभवसिद्ध रूप रसआदिका भेद अभेद है वहांपर तुम विरोध नहीं कहते हो ऐसे ही द्रव्यपर्याय आदिके भेद अभेदका कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि निश्चयकर नेत्रद्वारा विचाराहुआ अर्थात् देखा हुआ ज्ञान सत्य ही होता है ऐसा कहा भी है कि प्रत्यक्षसे देखेहुए पदार्थमें विरोध नहीं होता, और प्रत्यक्षसे दृष्टाक्तका भी अभाव है क्योंकि ऐसा अन्यत्र कहां देखा हु अहो, यह तुह्यारी निपुणता है कि प्रत्यक्षमें भी अनुमानकी भांति दृष्टाक्तको भी पढते हो अर्थात् प्रत्यक्षरूपसे जो भेदाभेद दृष्ट है उस अनुभवको अनुमानके समान अन्यकार तथा प्रकाशका दृष्टान्तद्वारा छिपाते हो ॥ ३॥

व्या०—अथ भेदाभेदयोः प्रत्यक्षस्याभिलापं पुद्गलद्रव्येण दर्शयन्नाह ।

अर्थ:--अब भेद अभेदकं प्रत्यक्षका अभिलाप पुदुल द्रव्यसे द्शीते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । पूर्व इयामो घटः पश्चाद्भेदाद्वक्तो भवन्स्वयम् । घटत्वेन विरोधित्वं नैव वक्ति कदाचन ॥ ४॥

सूत्रार्थः—जो घट पूर्व अवस्थामें इयाम पर्यायवाला है वही पश्चात् मेद स्वयं रक्त पर्याय युक्त होता हुआ घटत्वके साथ कभी विरोधपनेको नहीं कहता है ॥ ४ ॥

व्याख्या । यो हि घटः पूर्वावस्थायां इयामभावोऽस्ति स एव घटः पश्चात्पाकादिपरिणतः सन् स्वयमात्मना रक्तो रक्तवर्णी भवन् सन् भिन्नत्वेन व्यपदेशं लभन्नपि घटत्वेन कालद्वये-ऽपि पूर्वावस्थाइयामरूपेण परावस्थारक्तरूपेण च घटभावेन भेदाभेदौ न कथयतीति । अतो घटत्वेन विरोधित्वं पूर्वं इयामो य एव घटः पश्चाद्रक्तो जातः स घटो न इति विरोधिभावं न वक्ति । अर्थान् इयामोऽपि घटः रक्तोऽपि घटः, घटत्वेनाविरोध एव । कदाचन पूर्वपरपर्याय-गुणादानविभक्तोऽपि घटस्तु घट एव । एवं इयामावस्थायां रक्तावस्थायामवस्थाकृतभेदाद्वट-भेदो न जातस्तदात्र द्रव्यादीनां परस्परं भेदाभेदौ मावधारय । घटदृष्टान्तेन द्रव्यादीनामप्य-न्योन्यमैक्यं विद्धि न कदापि भिन्नभावभानं जानीहि ॥ ४॥

व्याख्यार्थः — जो घट पूर्वकालमें अर्थात् परिपाक दशाकी पूर्व अवस्थामें स्यामभाव है वही घट पश्चात् परिपाक दशामें परिणत होकर स्वयं अपने निज स्वरूपसे रक्त वर्णको प्राप्त होता हुआ और रक्तघट इस भिन्न नामको प्राप्त होता हुआ भी दोनो कालमें ही पूर्वका-लकी स्यामरूप अवस्थासे तथा उत्तरकालकी रक्तरूप अवस्थासे घटत्वके साथ मेद तथा अभेदको नहीं कहता है अर्थात् परिपाक दशाके पूर्व दयाम घट और पाकोत्तर रक्त घट होनेपर भी घटत्वरूपमें इस कारण कोई विरोध नहीं है। घटत्वके साथ जो घट पूर्व स्याम था वही घट पीछे रक्त हुआ तब वह घट नहीं है ऐसा विरोध नहीं कहता अर्थात् इयाम भी घट था रक्तभी घट है यद्यपि रक्तत्वका तथा इयामत्वका पर्यायह्यपसे भेद है परन्त घटत्व रूपसे दोनो दशामें अभेद है इस रीतिसे घटत्वके साथ भेद अभेदमें कोई विरोध नहीं है अर्थात् कभी पूर्व स्याम घट और उत्तरकालमें रक्त घट इस प्रकार पूर्वपर पर्याय गुणके ब्रहणसे यद्यपि विभक्त (कथंचित् गुण पर्याय कृत भेद्विशिष्ट) भी है तथापि घट तो वह ही है इस रीतिसे जब इयामावस्थामें तथा रक्तावस्थामें इयाम तथा रक्त अवस्थाकृत भेद होनेपर भी घटका भेद न हुआ तब द्रव्य गुण पर्यायके भी परस्पर एकान्त भेद तथा एकान्त अभेदको मत निश्चय करो अर्थात् घटके दृष्टान्तसे दृव्यादिककी परस्पर एकता जानो इनके भी कदापि भिन्न भावका मान मत जानो अर्थात् जैसे घटत्व सब दशामें है ऐसे ही सब गुण यथ्यीय दशामें वही मृत्तिकारूप द्रव्य है और द्रव्यरूपता किसी गुण पर्यायसे जैसे भिन्न नहीं है ऐसे ही गुण पर्याय भी द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं और द्रव्यदेशमें ही गुण पर्यायकी उपलब्धि होनेसे भी द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है ॥ ४ ॥

व्या०-अथात्मद्रव्ये भेदाभेद्योरनुभवं दर्शयन्नाह ।

अर्थ:-अब आत्मद्रव्यमें भेद तथा अभेद दर्शाते हुए आचार्य यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । बालत्वे मनुजो योऽभूत्तारूण्ये सोऽन्य इष्यते । देवदत्ततयाप्येको ह्यविरोधेन निश्चयम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ:—बात्य अवस्थामें जो मनुष्य था वह योवन अवस्थामे अन्य ही होजाता है परन्तु देवदत्त रूपसे वह वाल्य योवन आदि सब अवस्थाओंमें एक ही है ॥ ५ ॥

व्याख्या । वालभावे पुरुषो योऽभूद्वालावस्थामापत्र इत्युच्यते। तथा स एव पुमान् तरुण-भावे यौवने अन्य इप्यते, यौवनावस्थामापत्रो वालाद्वित्रस्तरुण इत्यर्थः। तथा च देवदत्त-तया देवदत्तभावेन मनुष्यत्वपर्यायेण भिन्नत्वं नास्ति । यो हि देवदत्तो वालः स एव देव-दत्तस्तरुणो मनुजन्यवहाराद्वित्रो न । तस्मादत्रैकस्मिन्देवदत्तविपये वाल्यतारुण्यभावेन भेद-स्तथा देवदत्तभावेनाभेद इति एतद्विरोधेन निर्धायताम् । उक्तं च पुरिसम्मि पुरिससदे जम्भाई मरणकालपुज्ञते । तस्सओ वालाईया पुज्ञवभीत्या बहुवियप्पा । १ । इति ॥ ५॥

व्याख्यार्थः —वालभावमें जो मनुष्य था उस समय वह बाल्य अवस्थाको प्राप्त हुआ

ऐसा कहा जाता है और वह ही मनुष्य जब तरुण हुआ तब अन्य माना जाता है अर्थात् यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ मनुष्य बालपनेसे भिन्न तरुण कहाजाता है सो यद्यपि बाल्य अवस्था तथा तरुण अवस्थाकृत उस मनुष्यमें भेद है तथापि देवदत्तपने-रूप मनुष्यपर्यायसे उसमें भिन्नता नहीं है क्योंकि जो देवदत्त बालक था वह ही देवदत्त अब तरुण होगया परन्तु मनुष्यव्यवहारसे भिन्न नहीं इस प्रकार यद्यपि बाल तरुण पर्यायसे वह भेदसहित है तथापि देवदत्तभावरूप व्यवहारसे भिन्न कदापि नहीं है अर्थात् देवदत्तभावसे अभेद सहित है इस कारणसे एक ही देवदत्तमें बाल्यतारुण्यभावसे भेद तथा देवदत्तरूप मनुष्यपर्यायसे अभेद विना विरोधके है ऐसा तुम निश्चयसे जानो "ऐसा कहाभी है कि "मनुष्यमें वा पुरुष शब्दमें जन्मसे आदि लेके मरण पर्यन्त उसके बाल्या-वस्थाको आदि लेके अनेक प्रकारके विकल्प (भेद) होते हैं अर्थात् वाल्य, शैशव, किशोर योवन तथा जरा आदि अनेक भेद होते हैं तथापि देवदत्तादि नामरूप मनुष्यपर्या-यसे अभेद ही है ॥ १॥ ९॥

व्या०—अथ यत्र भेदो भवेत्तत्राभेदो न भवत्येव भेदो व्याप्यवृत्तिरस्ति तत एताहशीं प्राचीननैयायिकशङ्कां निराकुर्वन्नाह ।

अर्थ:—अब "जहां मेद रहता है वहां अभेद नहीं रहता क्योंकि मेद व्याप्यवृत्ति है अर्थात् धर्ममेद प्रयुक्त धर्मीका भी भेद सिद्ध है" ऐसी प्राचीन नैयायिककी आशंकाको । निराकरण करते हुए उसके मतका उद्घाटन करते हैं।

सूत्रम्। धर्मभेदो यदा ज्ञाने धर्मिभेदो न दृश्यते। जङ्चेतनयोरेको धर्मी तद्भित्रधर्मयोः॥६॥

सूचार्थ:—यदि ज्ञानमें धर्म अर्थात् स्यामत्व रक्तत्व आदिका भेद भासता है और धर्मी घटका भेद नहीं देख पड़ता है तो परस्पर भिन्न धर्मके धारक जड चेतन द्रव्यमें धर्मी द्रव्यका अभेद लेके जड चेतन एक होजांयगे ॥ ६॥

व्याख्या । इह यदि ज्ञाने ज्ञानिवपये रयामो न रक्त इति रयामत्वरक्तत्वधर्मयोर्भेदो भासते । परन्तु धर्मिणो घटस्य रयामत्वे रक्तत्वे वर्त्तमानस्य भेदो भिन्नत्वं न भासत इत्थं प्रतिपादयसि तिई जडचेतनयोर्भिन्नधर्मयोर्धर्मी एकद्रव्यं नु भविष्यति । अथ च जडचेतनयोर्भेदो भासते तत्र जडत्वचेतनत्वधर्मयोरेव भेदोण्यस्ति । परन्तु जडचेतनद्रव्ययोर्भेदो नास्ति । एवमवस्थया धर्मिणः प्रतियोगित्वेनोर्छेखोऽपि स्थानद्वयेऽपि सदशोऽस्ति । अथ च प्रत्यक्ष-सिद्धार्थे वाधकं तु नावतरत्येव । उक्तं च-"नानुपलव्धार्थे न्यायः प्रवक्तते अपि तु संदिग्धेथें" इत्युक्तत्वात् । एवं धर्मभेदो अनुभवे तव भासते धर्मिभेदं न कथयसि तदा भिन्नधर्मयोर्जड-चेतनयोरको धर्मी अपि लभ्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थ:-यहांपर यदि ज्ञानके विषयमें अर्थात् अनुभवमें स्याम घट रक्त नहीं है

और रक्त घट स्थाम नहीं है इस प्रकार स्थामत्व तथा रक्तत्व धर्मका भेद ज्ञानमें भासता है परन्तु स्थामत्व तथा रक्तत्व दोनों दशामें वर्तमान धर्मी घटकी भिन्नता नहीं भासती ऐसा यदि तुम प्रतिपादन करते हो अर्थात् धर्मके भेदसे धर्मीका भेद नहीं मानते हो तो जड और चेतन जो भिन्न धर्म हैं उनका धर्मी एक द्रव्य निश्चयसे होजायगा। कदाचित् कहो कि जड चेतनका जो भेद भासता है वहां जडत्व और चेतनत्व इन दोनों धर्मीका ही भेद हे परन्तु जड, चेतन द्रव्योंका भेद नहीं है इस प्रकार अवस्थासे धर्मीका प्रंतियोगीरूपसे (अर्थात् जड चेतन नहीं है और चेतन जड नहीं है) उन्होंख (कथन) करनेपर भी जड चेतन तथा स्थाम और रक्त घट भी सहश हैं और प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थमें कोई वाधकका-प्रसंग भी नहीं होता क्योंकि अनुपलब्ध अर्थात् अनुभव प्रमाणसे अप्राप्त बस्तुमें न्याय नहीं प्रवृत्त होता किन्तु संदिग्ध बस्तुमें न्यायकी प्रवृत्ति होती है ऐसा कहा है इस रीतिसे धर्मका भेद आपके अनुभवमें भासता है धर्मीका भेद तुम नहीं कहते हो तो भिन्न धर्मके धारक जड और चेतनका एक धर्मी प्राप्त होता है यह ही कारिकाका आश्य है ॥ ६ ॥

सृत्रम्। भेदाभेदौ च तत्रापि दिशन् जैनो जयस्रसम्। रूपान्तरात्पृथयृपेऽप्यभेदो भुवि संभवेत्॥७॥

सूत्रार्थ:—वहां भी भेद तथा अभेदका उपदेश करता हुआ जैनमत अतिशय करके सर्वेत्कृष्ट वर्त्तता हे क्योंकि रूपान्तर अर्थात् द्रव्यरूपसे पृथक् जो जीवादि भासते हैं वहां भी संसारमें अभेदका संभव है ॥ ७ ॥

व्याख्या । च पुनस्तत्रजडचेतनयोर्मध्ये भेदाभेदौ कथयन जैन एव अलमत्यर्थ जयित सर्वोत्कृष्टत्वेन प्रवर्त्तते । कथं तद्यतो भिन्नरूपा ये जीवा जीवादयस्तेषु रूपान्तरद्रव्यत्वपदार्थ-त्वादिभ्यश्चाभेदोऽपि जगत्यायाति । एतावता भेदाभेदयोः सर्वत्र व्यापकत्वं कथितम् । रूपान्तराद्वव्यत्वपदार्थत्वलक्षणाद्विन्नरूपं जीवाजीवादिकेऽपि व्यापकत्वादभेदोऽपि भुवि जगत्यां संभवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थ:—फिर जहां जड चेतनमें नैयायिक भेदमात्र कहता है वहां भी जड तथा चेतनके मध्यमें भेद अभेद दोनोंको कहता हुआ जैनमत ही अतिशयकर सर्वोत्कृष्ट-पनेसे वर्त्तता है सो कैसे कि भिन्न रूप जो जीव अजीव आदिक हैं उनमें रूपान्तर द्रव्यत्व पदार्थत्व आदिसे अभेद भी जगत्में आता है इस कथनसे भेद अभेदके, सब जगह

१ जब इयाम तथा रक्त इन अवस्थाओंका कथन होता है तब वहां "क्यामघटो रक्तो नास्ति" इयामघट रक्त नहीं है और रक्त होनेपर "रक्तो घटः क्यामो नास्ति" रक्त घडा क्याम नहीं है ऐसा प्रतियोगीरूपसे धर्मी घटका भी भान होता है यह नैयायिकका आशय है।

२ नैयायिकका अभिप्राय यह है कि जब धर्मका भेद है तब धर्माका भेद अवस्य है क्योंकि धर्माके भेदार्थ ही धर्मका भेद है।

व्यापकत्व कहा अर्थात् तुम्हारे मतसे भिन्नरूप जीव पदार्थ हैं उनमें भी रूपान्तर अर्थात् द्रव्यत्व, पदार्थत्व लक्षणसे व्यापकता होनेके कारण जगत्में अभेद भी संभव होता है ऐसा अर्थ है भावार्थ—तुमने सर्वत्र धर्मभेदसे भेदको ही व्यापक कहा है परन्तु जीव और अजीव दोनों द्रव्य होनेसे द्रव्यत्वरूपसे हमारे मतमें जड चेतनमें भी अभेद व्यापक होनेसे विद्यमान है यद्यपि जडत्व तथा चेतनत्व पर्यायरूपसे भिन्न हैं परन्तु उन ही दोनोंमें व्यापक द्रव्यत्वसे अभेद भी जगत्में संभव है ॥ ७॥

सूत्रम् । यस्यभेदोऽप्यभेदोऽपि रूपान्तरमुपेयुषः । एवं रूपान्तरोत्पन्नभेदाच्छतनयोदयः ॥ ८॥

सूत्रभावार्थ:—जिस वस्तुका भेद भासता है उसी वस्तुका रूपान्तरको प्राप्त होते हुए अर्थात् भेदयुक्त वस्तु जब दूसरे स्वरूपमें परिवर्त्तित हो जाता है तब, उसीका अभेद भी हो जाता है एवं रूपान्तरसे अन्य रूपान्तरमें उत्पन्न भेद तथा पुनः उससे भी रूपान्तरमें अभेद इस रीतिसे अन्य अन्य उत्पन्न गुणपर्यायद्वारा जो भेदसे अभेद है उस-हीसे सैंकडों नयोंका उदय है ॥ ८॥

व्याख्या । यस्य वस्तुनो भेदसास्यैव रूपान्तरमुपेयुषः रूपान्तरसिहतस्याभेदोऽपि भवेस्था स्थासकोशकुशूलाद्यो घटस्य भेदाः सन्ति पुनस्त एव स्थासाद्यो मृद्दव्यविशिष्टानार्पतः
स्वपर्याया अभेदा रूपान्तरसंयुक्तत्वादभेदाः, तेषामेव रूपान्तराद्भेदो भवेत् । यथा स्थासकोशकुशूलादिपर्यायविशिष्टमृद्दव्यत्वेन तस्यैव भेदः । एवमस्य भेदस्थाभेदोऽस्ति यः स एव
शतसंख्यमूलनयानां हेतुरस्ति । यत्तु सप्तनयानां ये सप्तशतसंख्यामिता भेदा जायन्ते ते
चानयैव रीत्या द्रव्यपर्यायस्थापणयानपणया च शतारनयचक्राध्ययनमध्यगताः पुरासन् । ते
चाधुना द्वादशारनयचक्रमध्ये विधिविधिविधिरित्यादिरीत्या एकैकिस्मिन्नयान्तरे द्वादश द्वादश
भेदाः समुद्भवन्ति । अतः सम्यगुक्तपाठपिठतपरिकलनाप्रसिद्धिमवधार्य भङ्गयोजना विधेयेत्यर्थः। यस्य भेदोऽस्ति तस्यैव रूपान्तरेणाभेदोऽप्यस्ति तस्यैव भेदः पुनस्तस्याभेद एवं शतनयावतारः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—जिस वस्तुका तुमको वर्त्तमान पर्यायको छेके भेद भासता है वही वस्तु जब रूपान्तर सिंहत होजाती है तब उसका अभेद भी होजाता है जैसे निज निज पर्या- यसे योजित स्थास, कोश, तथा कुशूलआदि सब घटके भेद हैं पुनः वे ही स्थास कोश कुशूलआदि जब अपने २ पर्यायसे न योजित किये जांय अर्थात् पर्यायकी विवक्षा न की जाय तो मृत्तिकारूप द्रव्यसहित होनेसे अथवा केवल मृत्तिकारूपकी विवक्षा

⁹ पर्थायरूपसे पिंड कुशूल घटादिका भेद रहते भी द्रव्यलरूप सर्वत्र अनुगत होनेसे पिंड कुशूलादिमें भेद महीं है, मैथायिक भी पृथिवी जलादिके परस्पर भेद रहते भी नौ (१) द्रव्योमें द्रव्यल एक ही मानते हैं और प्रमेयलादि धर्मसे तो पदार्थका अभेद मानते हैं।

करनेसे अभिन्नरूप हैं अर्थात् उनका भेद नहीं है क्योंकि अब रूपान्तरसंयुक्त होगये अब पुनः उनहीका रूपान्तर होनेसे पुनः भेद भी हो जाता है जैसे स्थास कोश कुशूल आदि पर्यायसिहत मृत्तिकाद्रव्यत्वसे उसीका भेद है इस प्रकार इस भेदका जो अभेद है वह ही अभेद शतसंख्याक (सो १००) मूल नयोंका कारण है। और जो नैगम सङ्ग्रह आदि सात नयोंके सातसो (७००) भेद होते हैं वह सब भेद भी इसी रीतिसे द्रव्य पर्याप्यके अर्पण तथा अनर्पणसे अर्थात् कदाचित् द्रव्यार्थिक योजनासे और कदाचित् उसकी अविवक्षा करके पर्यायकी योजनासे शतारनयचक्राध्ययनके मध्यगत पूर्वकालमें थे वे ही अब द्वादशारनयचक्रके मध्यमें "विधिर्विधिर्विधिः" इत्यादि रीतिसे एक एक नयके वीचमें बारह बारह भेद होते हैं इसलिये सम्यक् प्रकारसे कथित पाठमें पढी हुई संख्याकी प्रसिद्धिको अवधारण कर मंगोंकी योजना करनी चाहिये तात्पर्य यह कि जिसका पर्याय आदिकी अपेक्षासे भेद है उसका पुनः रूपान्तरमें प्राप्त होनेसे अभेद और पुनः उस भेदका अभेद एवं शत (१००) नयका अवतार होता है।। ८।।

व्याख्या । अथ ते नयभेदाश्चिकीर्षिता अतस्तानेव दर्शयन्नाह ।

व्यारुयार्थः—यहां उन नयोंके भेद करनेकी इच्छा करी इसिलिये अब उन ही भेदोंको दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । तथा क्षेत्रादिभिः सप्तभङ्गीकोटिः प्रजायते । संक्षेपादिह बोधाय सप्तभङ्गी प्रतायते ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थ:—उसी प्रकार सप्तभंग भी क्षेत्र कालादिकी अपेक्षासे अवान्तर भेद प्रभेद आदिके निरूपणसे कोटि (करोड) भङ्ग होजाते हैं परन्तु यहां संक्षेपसे बोध होनेकेलिये केवल सप्तभङ्गीका विस्तार करते हैं॥ ९॥

च्याख्या। यथा द्रव्यादिविशेषेण भंगा जायन्ते तथैव क्षेत्रादिविशेषेणापि भंगा अनेके संभवन्ति। यतः स्वतो विविश्वितो घटो द्रव्यमस्यापेश्वया क्षेत्रादिघटः परद्रव्यमिति। एवं प्रत्येकं प्रत्येकं सप्तभङ्ग्योऽपि कोटिशो निष्पद्यन्ते। तथापि लोकप्रसिद्ध्या यः कम्बुप्रीवादि-पर्यायोपेतो घटो द्रव्यं वर्त्तते तस्येव स्वतस्त्वमङ्गीश्वत्य स्वत्रभङ्गीं व्याक्करते। तथा हि स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेश्वया घटोऽस्येव। १। परद्रव्यक्षेत्रकालभावापेश्वया घटो नास्त्येव। २। एकदा युगपदुभयविवश्वया घटोऽवाच्य एव एकशव्येन पर्यायद्वयं मुख्यक्तपेण वक्तुमशक्यत्वात् । ३। एकोंऽशः स्वरूपेण विवक्ष्यतेऽपरोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा अस्ति नास्ति घटः। ४। एकोंऽशः स्वरूपेणापरोंऽशो युगपदुभयक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटोऽस्ति परमवाच्य इति । ५। एकोंऽशः परक्षपेणापरोंऽशो युगपदुभयक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । ६। एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । ६। एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेणे विवक्षयते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेणे विवक्षयते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । एकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः स्वरूपेणैनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनको विवक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणे विवक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकों विवक्षपेणेनकोंऽशः परक्षपेणेनकों परक्षपेणेनकों विवक्षपेणेनकों विवक्षपेणेनकों विवक्षपेणेनकों विवक्यते विवक्षपेणेनकों वि

१ यहां "रूपान्तरसंयुक्त" इस पदसे दूसरे आकारमें परिणत होनेसे तात्पर्य है।

घटः स्याद्रस्येव । १ । स्यान्नास्येव । २ । स्याद्वाच्य एव । ३ । स्याद्स्येव स्यान्नास्येव । ४ । स्याद्वाच्य एव । ५ । स्यान्नास्येव स्याद्वक्तव्य एव । ६ । स्याद्स्येव स्यान्नास्येव स्याद्-वक्तव्य एवेति । ७ । इति प्रयोगः इति ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थ: — जैसे द्रव्य पर्याय आदि विशेषसे भङ्ग होते हैं वैसे ही क्षेत्र काल आदि विशेषसे भी अनेक भङ्गोंका संभव है क्योंकि स्वतः विवक्षित घट द्रव्य है इसी द्रव्य घटकी अपेक्षासे क्षेत्रआदिका घट परद्रव्य है ऐसे ही प्रत्येक प्रत्येक अर्थात् हर एकके प्रति सप्तभंगियें भी किरोडों सिद्ध होती हैं तथापि लोककी प्रसिद्धिसे जो कम्बुग्रीवादि पर्यायसहित घटद्रव्य है उसी घटका स्वतस्त्व अर्थात् निजस्वरूप कालादि अङ्गीकार करके स्वरूपेसे घटका अस्तित्व और पररूपेसे घटका नास्तित्व है ऐसा निश्चय करके सप्तमंगोंका व्याख्यान करते हैं जैसे कि-अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे "घटः अस्त्येव" घट है ही । १ । परके द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावकी अपेक्षासे "घटः नास्ति एव" घट है ही नहीं । र । और एक कालमें ही अस्ति तथा नास्ति की विवक्षासे घट अवौच्य ही है क्योंकि एक शब्दसे अस्ति नास्ति रूप दोनों पर्याय एक कालमें प्रधानतासे नहीं कहे जा सकते। ३। तथा घटका एक अंश तो उसके निज स्वरूपआदिसे विवक्षित करते हैं और इसरा अंश पररूपसे विवक्षित करते हैं तब "अस्ति नास्ति घटः" अथीत् घट है भी और नहीं भी है ऐसा चतुर्थ मंग होता है। ४। तथा घटका एक अंश तो उसके स्वरूपसे विवक्षित करते हैं और अन्य अंश एक ही कालमें उभयरूपसे विविक्षित करते हैं तो ''घटः अस्ति परन्त अवाच्यः" अर्थात् घट है परन्त वह अवाँच्य है। इस पंचम भंगकी प्रवृत्ति होती है। ५। तथा एक अंश तो पररूपसे और एक अंश उभयरूपसे एक कालमें विवक्षित करते हैं ''तो घटोनाँस्ति अवाच्यः" घट नहीं है और अवाच्य है इस छठे भंगकी प्रवृत्ति होती है । ६। और जब एक अंश तो घटका स्वरूपसे विवक्षित करते हैं और एक अंश पररूपसे विवक्षित करते हैं तथा एक अंश एककालमें अस्ति नास्ति इस उभयरूपसे विवक्षित करते हैं तब ''घर्टः अस्ति नास्ति अवाच्यः" घट है नहीं है अवाच्य है यह सप्तम भंग होता है (७) अब सप्तभंगीका प्रयोग इस प्रकार है कि कथंचित् घट है ही । १ । कथंचित् (किसी अपेक्षासे) घट नहीं ही है। २। किसी अपेक्षासे घट अवाच्य ही है। ३। किसी अपेक्षासे घट है ही

⁹ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे। २ परके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे। ३ कथन वा निरूपण करनेके अयोग्य। एक वस्तुकी एक कालहींमें स्वरूपसे सत्ता और पररूपसे असत्ता प्रधानतासे कहनेको असमर्थ हैं इसलिये वह अवाच्य है। ४ खरूपसे अस्तित्व अंश और पररूपसे नास्तित्व अंश कहनेसे यह चार भंग होता है। ५ कहनेके इष्ट। ६ निजरूपसे सत्ता मानकर भी अस्ति नास्ति इस उभयरूपसे अवाच्य है। ७ अन्य द्रव्य क्षेत्रादिसे घटका असत्त्व और उभयरूपसे अवाच्य है इसलिये "स्यान्नास्ति अवाच्यः" यह छठा भंग है। ८ निजद्रव्य क्षेत्रादिसे घटका सत्त्व परद्रव्य क्षेत्रादिसे असत्त्व तथा अस्ति नास्ति उभयरूपसे अवाच्य इस अभिप्रायसे यह सातवां भंग है।

किसी अपेक्षासे नहीं ही है। ४। कथंचित् घट है ही कथंचित् घट अवक्तव्य ही है। ५। कथंचित् घट नहीं ही है कथंचित् अवक्तव्य ही है। ६। तथा किसी अपेक्षासे घट है ही किसी अपेक्षासे है ही नहीं और कीसी अपेक्षासे अवक्तव्य ही है। ७।॥ ९॥

अथास्याः सप्तभङ्गया भेदाभेदौ योजयति ।

अब इस सप्तभैङ्गीके भेद तथा अभेदकी योजना करते हैं।

सूत्रम् । पर्यायार्थनयाद्भित्रं वस्तु द्रव्यार्थतोऽष्टथक् । क्रमार्षितनयद्वन्द्वाद्भित्रं चाभिन्नमेव तत् ॥ १०॥

सूत्रार्थ:—पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे संपूर्ण वस्तु भिन्न २ हैं और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अभिन्न हैं तथा कमसे पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंकी योजनासे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न ही हैं ॥ १०॥

व्याख्या । पर्यायार्थिकनयात्सर्वे वस्तु द्रव्यगुणपर्यायस्थिः कथंचिद्भिन्नमस्ति । १ । द्रव्यार्थिकनयात्कथंचिद्भिन्नमेव । गुणपर्यायौ हि द्रव्यस्वैवाविभावतिरोभावरूपावित्युक्तन्त्वात् । २ । अनुक्रमेण यदि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोर्पणं क्रियते तदा कथंचिद्भिन्नं कथंचि-द्रभिन्नं च कथ्यते । ३ ॥ १० ॥

व्याख्यार्थ:—पर्यायाधिक नयकी अपेक्षासे द्रव्य गुण तथा पर्य्यायरूपसे संपूर्ण पदार्थ भिन्न हैं। १। और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे कथंचित् सब पदार्थ अभिन्न ही हैं क्योंकि गुण और पर्याय तो द्रव्य ही के आविभीव तथा तिरोभावरूप हैं ऐसा प्रथम कह चुके हैं। २। और अनुक्रमसे यदि पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंकी योजना करते हैं तो कथंचित् भिन्न अर्थात् पर्यायसे भिन्न और द्रव्यार्थिकरूपसे अभिन्न कहे जाते हैं॥ ३॥ १०॥

सूत्रम् । यद्येकदोभयादानं तदावाच्यं भवेच तत् । एकदैवैकदाब्देन नार्थद्रयप्रकादानात् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ:—और यदि एक समयमें ही पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंका ग्रहण करें तो अवाच्य होता है क्योंकि एक शब्दसे एक ही क्षणमें दो विरुद्ध अर्थीका प्रकाश नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

व्याख्या। यद्येकवेलं नयद्वयार्थविवक्षा जायते। तदा त्ववाच्यमेव लभते। यत एकेन शब्देनैकस्मिन् क्षणेऽर्थद्वयकथनासंभवात्। सांकेतिकशब्देनैकमेव संकेतरूपं निरूपणीयं स्यात्परन्तु रूपद्वयशब्दं कथयितुमशक्य एव। पुष्पदन्तादिशब्दा अप्येकोक्तया चन्द्रसूर्ययो-व्यक्तिं वदन्ति परन्तु भिन्नोक्त्या कथयितुमशक्या इह तूभयनयार्थी मुख्यतयैव भिन्नोक्त्या

⁹ सप्तानां वाक्यविशेषाणां समाहार इति सप्तभङ्गी अर्थात् सात प्रकारके भङ्ग अर्थात् वाक्योंका जो एकत्र समावेश है उसका नाम सप्तभङ्गी है।

उच्चारयितुं योग्यो तद्योग्यत्वं तु यन्नेनापि न भवति । तस्मादेकदा नयद्वयार्थविवक्षयावाच्य इति । ४ । ।। ११ ।।

व्याख्यार्थ:—यदि एक कालमें ही दोनो नयोंसे दोनों अर्थोंकी विवक्षा उत्पन्न हो अर्थात् एक समयमें पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंसे पर्याय तथा द्रव्य रूप दोनों अर्थोंके कथनकी इच्छा हो तब तो पदार्थ अवक्तव्य द्राको ही प्राप्त होता है; क्योंकि एक शब्दसे एक ही क्षणमें द्रव्य पर्याय अथवा स्वरूप पररूपादि अर्थका कथन असंभव हें सांकेतिक शब्दसे जो संकेतरूप एक अर्थ है वह ही उस शब्दसे निरूपणीय (कथनयोग्य) होता है परन्तु दो अर्थरूप शब्दका तो कथन करनेको वह शब्द असमर्थ ही है और पुष्पदन्त आदि शब्द भी एक ही उक्तिसे अर्थात् समूहालम्बन ज्ञानसे सूर्य चन्द्रकी व्यक्तिको कहते हैं परन्तु भिन्न २ अर्थात् पृथक् २ सूर्य तथा चन्द्रादिरूप अर्थ कहनेको असमर्थ हैं अर्थात् पृथक् २ दो अर्थ एक शब्दसे एक ही क्षणमें कहनेको अशक्य हैं और यहां तो उभय अर्थात् पर्यार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंके प्रतिपाद्य पर्याय तथा द्रव्यरूप अर्थ मुख्यता (प्रधानता) से भिन्न २ उक्तिसे उच्चारण करनेके योग्य हैं और एक ही कालमें उन दोनों अर्थोंके उच्चारण करनेकी योग्यता तो यत्नसे भी नहीं होती इस कारणसे एक कालमें एक शब्दसे दो नयके अर्थकी विवक्षासे अवाच्य ही है। ४।॥११॥

अथ पश्चमभङ्गोहेखं करोति।

अब पञ्चम भंगका प्रतिपादन करते हैं।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकसंकल्पात्पश्चाद्वयविवक्षितात् । भिन्नमवाच्यं वस्त्वेतत्स्यात्कारपदलाञ्छितम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थ:—प्रथम पर्य्यायार्थिक नयके संकल्प (विवक्षा) करके पश्चात् दो-नोंकी विवक्षा होनेसे यह पदार्थ स्यात् कार इस पदसे चिन्हित अर्थात् स्यात् भिन्न है और स्यात् अभिन्न है अवाच्य है तात्पर्य यह कि प्रथम पर्यायार्थिक नयकी विवक्षा की और पश्चात् द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंकी विवक्षा की तब वह वस्तु पर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् भिन्न है और उभय नयकी अपेक्षासे कथंचित् अवाच्य है। ५॥ १२॥

व्याख्या । प्रथमं पर्यायार्थकल्पना तत एकदोभयनयार्पणं कियते तदा भिन्नमवक्तव्यमिति स्यात्कशंचिद्धिन्नमवक्तव्यमिति पञ्चमभङ्गोद्धेखः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:-प्रथमतो पर्य्याय नयकी कल्पना की और उसके अनन्तर द्रव्यार्थिक

⁹ यह "स्यात्" शब्द संभावनार्थक कथंचित् वाचक अव्यय है जिसके पूर्व यह लगाया जाता है उस वस्तुको किसी अपेक्षासे कहता है।

तथा पर्यायार्थिक एतत् उभय नयकी विवक्षा की "तब स्यात् भिन्नं स्यात् अवक्तव्यं च" अर्थात् वस्तु कथंचित् भिन्न कथंचित् अवक्तव्यं है यह पञ्चम भंगका वर्णन हुआ ।५। ॥१२ अथ पष्टभङ्गोङ्गेखः ।

अब षष्ठ ६ भंगका प्रतिपादन करते हैं।

स्त्रम् । द्रव्यार्थेनोभयादानादभिन्नं तद्वाच्यकम् । युगपन्नयद्वयादानाद्भिन्नमभिन्नमवाच्यम् ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थ: प्रथम द्रव्यार्थिक नयकी कल्पना करके उसके साथ पश्चात् उभय नयकी योजना की "तब स्यात् अभिन्नः स्यात् अवक्तव्यः" अर्थात् कथंचित् अभिन्न और कथंचित् अवक्तव्य इस पष्ट भंगकी प्रवृत्ति हुई और पुनः क्रमसे उभय नयकी विवक्षा की पश्चात् एक कालमें ही उभय नयकी विवक्षा की तब कथंचित् भिन्न, अभिन्न अवक्तव्य इस सप्तम भंगकी सिद्धि हुई।। १३।।

व्याख्या। तत्रादौ द्रव्यार्थिकनयकल्पना। तत एकदोभयनयार्पणं क्रियते। तदा कर्थ-चिद्धिन्नमवक्तव्यिमिति कथ्यते । इति षष्टः । पुनरनुक्रमेण प्रथमं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकेति नयद्वयकल्पना विधीयते । ततश्चैकदोभयनयार्पणं क्रियते तदा कथंचिद्भिन्नमभिन्नमव-क्तव्यमिति भंगः सप्तमः समुत्पद्यत इति ॥ ७॥ १३॥

व्याख्यार्थ:—षष्ठ ६ मंगमें आदिमें केवल द्रव्यार्थिक नयकी विवक्षा की और उसके पश्चात् एक कालमें ही पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंकी विवक्षा की तब कथंचित् अभिन्न तथा अवक्तव्य यह पष्ठ नय सिद्ध हुआ और प्रथम अनुक्रमसे पर्या-यार्थिक नयकी और उसके पश्चात् द्रव्यार्थिक नयकी विवक्षा की और पुनः एक समयमें ही द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इस उभय नयकी योजना की तब "स्यात् भिन्नम् अभिन्नम् अवक्तव्यं च" अर्थात् कथंचित् भिन्न कथंचित् अभिन्न और कथंचित् अवक्तव्य इस सप्तम मंगकी उत्पत्ति हुई। ७।॥ १३॥

सूत्रम् । इमां सप्तभङ्गीं दृढाभ्यासयुक्तः सदा योऽभ्यसेत्तत्त्वदृष्ट्या विचार्य । क्रमाम्भोजसेवामवाष्याईतीं स भवेन्मुक्तियोग्योऽचिराद्भव्यजन्मा ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—इस सप्तभंगी नयका जो मनुष्य हढ अभ्यासमें तत्पर होकर तत्त्व-दृष्टिसे विचार करके सदा अभ्यास करेगा वह भव्य जन्मधारी प्राणी श्रीजिनभगवान्के चरणकमलकी सेवा भक्तिको पाकर शीव्र मुक्तिके योग्य होगा ॥ १४ ॥

व्याख्या । एवमेका भेदपर्यायेऽभेदपर्याये च सप्तभङ्गीयोजना कृता पुनिरत्थमेव सर्वत्र योजयितव्या । अथ शिष्यः प्रश्नयति । यतः स्वामिन् यत्र नयद्वयविषयस्यैव विचारणा भवेत्तत्रैकस्य मुख्यभावेनापरस्य गौणभावेन सप्तभङ्गी समुत्पद्यताम् परन्तु यत्र प्रदेशप्रस्थका दिविचारेण सप्त ७ षट् ६ पञ्च ५ प्रमुखनयानां भिन्न २ विचारा भवन्ति तत्र त्वधिकभङ्गा एव जायन्ते तदा सप्तभङ्गया नियमः कुत्र स्थिरो भवति । सप्तभङ्गीनियमस्वत एव नियामको न दृश्यते । इति पृष्टो गुरुराह । भो शिष्य भवदुक्तं सस्यं परमार्थतस्तु । एवं यत्त्वया गौणमुख्यव्यवहारो द्शितस्तत्र त्वेकस्यैव नयार्थस्य मुख्यतया विधिरन्येषां तु सर्वेषामेव निषेधः । एवं विधिनिपेधौ गृहीत्वाऽनेकं भङ्गाः क्रियन्ते । अस्माभिस्तु इत्थं ज्ञायते । उक्तं च सकलनयार्थप्रतिपादकतापर्यायाधिकरणं वाक्यं प्रमाणवाक्यमिति । एतल्लक्षणत्वात्तादृशे स्थाने स्थात्कारपद्लाञ्चित्रतसकलनयार्थसमूहालम्बनमेकस्मिन् भङ्गेऽपि निषिद्धं नास्ति तस्माद्यश्चनपर्यायस्य स्थाने २ भङ्गतार्थसिद्धः संमतित्रन्थविषये दृशितास्ति । तथा च तम्ब्रन्थगाथा

एवं सत्तवियप्पो वयणपहोहोइ अत्थ पजाए । वंजणपजाए पुण सविअप्पो निव्विअप्पोय । १ ।

अस्पार्थः । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सप्तविकल्पः सप्तप्रकारवचनमेव सप्तमंगीरूपवचनपन्थाः स चार्थपर्यायो योऽस्ति नास्तित्वादिविपय एव भवति । पुनर्व्यञ्जनपर्यायो घटकुम्भादिशब्द्वाच्यता तत्र विपये सविकल्पविधिरूपिनिविकल्पकविधिरूपे द्वे एव भङ्गे सः । परन्तु वक्तव्यादिभङ्गो न भवति । यस्मात्कारणादवक्तव्यश्वद्विषयं क्षुवतां विरोधोत्पत्तिः । अथवा स्विकल्पकशब्दसमिभिरूढनयमते भवति । अपि च निर्विकल्पकशब्दैवंभूतनयमते त्वित्थं भङ्गद्वयं ज्ञात्तव्यम् । अर्थनयाः प्रथमे चत्वारस्तु व्यञ्जनपर्यायमेव नानुजानन्ति तस्मात्कारणात्तेषां नयानामिह प्रवृत्तिनास्ति । अत्राधिक्यन्त्वनेकान्तव्यवस्थातो ज्ञातव्यम् । तदेवमेकत्र विपये प्रतिस्वमनेकनयविप्रतिपत्तिस्थले स्थात्कारपद्लाञ्चित्तत्ववत्रयार्थप्रकारकसप्तधालम्बनवोधजनक एक एव भङ्ग एष्टव्यो । व्यञ्जनपर्यायस्थले भङ्गद्वयम् । यदि च सर्वत्र सप्तमङ्गीनियम एवाश्वासस्तदा चालनीयन्यायेन तावत्रयार्थनियेषवेधको द्वितीयोऽपि भङ्गस्तन्मूलकान्त्रान्ये तावत्कोटिकाः पञ्चभङ्गाश्च कल्पनीयाः । इत्थमेव निराकाङ्कसकलभङ्गप्रतिपत्तिनिर्वाद्विति युक्तं पश्यामः । अयं विचारः स्याद्वादपण्डितेन सृक्ष्मवुद्धिमता चेतसि धार्यः । अथ फलितार्थे कथयति । इमां व्यावर्ण्यमानां सप्तमङ्गीं तन्त्वदृष्ट्या विमृश्यातिप्रौढियुक्तो यो भव्योऽभ्यासीकुर्यात्स आईतीं जैनीं चरणपङ्कजभक्ति प्राप्याचिरात्स्तोककालेन कतिपयभवन्वहणेन मोक्षं गच्छेत् ॥ १४ ॥

इति श्रीभोजविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

ट्याख्यार्थ:—इस रीतिसे एक वस्तुमें मेद पर्याय तथा अमेद पर्यायमें एक सप्त-भङ्गीकी योजना की, और इस ही प्रकार सर्वत्र योजना करनी चाहिये अब शिष्य गुरुसे प्रश्न करता है कि हे स्वामिन् जहांपर केवल दो ही नयोंके विषयका विचार हो वहांपर एककी प्रधानतासे और दूसरेकी गौणतासे सप्तभङ्गी उत्पन्न हो परन्तु जहांपर प्रदेश, प्रस्थ, (अवयव, अवयवी) आदिके विचारसे सप्तम पष्ठ तथा पंचम आदि नयोंके भिन्न भिन्न विचार होते हैं वहां पर तो अधिक ही भङ्ग होंगे उस समय सप्तमंगीका अर्थात् सात ही मंग हैं यह नियम कहां स्थिर होगा और इसी हेतुसे सप्तभंगीका नियम नियामक नहीं देख पडता इस प्रकार पूछे हुए श्रीगुरुमहाराज कहते हैं की है शिष्य, परमार्थसे तेरा कहना सत्य है क्योंकि जो तुमने गौण मुख्य व्यवहारका प्रदर्शन किया है वहां तो एक ही नयके अर्थकी मुख्यतासे विधि है और अन्य सब ही नयोंका निषेध है और इस प्रकारसे विधि और निषेधको मुलभागुमें प्रहण करके पुनः अनेक भगं किये जाते हैं ऐसी हमारी सम्मति है और ऐसा कहा भी है कि ''संपूर्णनयोंके अर्थकी प्रतिपादकताके अर्थात् जिसकेद्वारा संपूर्ण नयोंके अर्थका कथन कियाजाय उसके पर्य्यायाधिकरण वाक्यको प्रमाणवाक्य कहते हैं'' इस प्रकारके लक्षणसे जहां संपूर्ण पदार्थोंका विवेचन होता है वहां स्याद्वादसे चिन्हित अर्थात् स्यात् शब्दसे युक्त सम्पूर्ण नयोंके अर्थीके समूहका धारण करना एक भंगमें भी निषद्ध नहीं हैं इस कारणसे व्यंजनपर्यायके स्थानमें तो केवल दो भंगोंसे अर्थकी सिद्धि होती है ऐसा सम्मतिय्रंथमें दशीया है और उस यन्थकी गाथा यह है इस प्रकार सप्तविकल्पसहित वचन (नय)का मार्ग अर्थ पर्यायमें होता है और व्यञ्जन पर्यायमें तो सविकल्प विधिरूप तथा निर्विकल्प विधिरूप दो ही भंग होते हैं इसका विशेष विवरण यों है कि इस प्रकार पूर्वीक्त रीतिसे सप्त विकल्प अर्थात् सप्त (सात) प्रकारके भेदसहित जो वचन है सो ही सप्तभङ्गीरूप वचनका मार्ग है वह अर्थ पर्यायमें अर्थात् अस्तित्व नास्तित्व आदिके विषयमें ही होता है और व्यञ्जनपर्याय जो घट कुम्भ आदि शब्दोंकी वाच्यता है वहांपर सविक-कैल्प विधिरूप तथा निर्विकल्प विधिरूप दो ही भंग होते हैं परन्त अवक्तव्यत्व आदि भंग यहां नहीं होता क्योंकि अवक्तव्य शब्दविषयको कहनेवालोंके विरोधकी उत्पत्ति होती है अथवा सविकल्पक शब्द समिमिस्ड नयके मतमें अवक्तव्यत्व आदि मंग होता है और निर्विकल्पक शब्द एवंर्भूत नयमें तो इस प्रकार दो ही मंग जानने चाहियें और पहले चार जो अर्थनय हैं वे तो व्यञ्जन पर्यायको ही नहीं जानते हैं इसलिये उन नयोंकी यहां प्रवृत्ति नहीं है यहांपर विशेष वर्णन अनेकान्त व्यवस्थासे जानना चाहिये इस कारण पूर्वोक्त प्रकारसे एक विषयमें प्रतिवस्तुमें जहां अनेक नयोंकी विप्रतिपत्ति हो वहांपर स्थात्कार (स्थात्) पदसे लांछित उत्तने नयार्थका प्रकारवाला सात प्रकारका आलम्बनरूप जो बोध उस बोधको उत्पन्न करनेवाला अर्थात् सात प्रकारके नयार्थोंके प्रकारतः विशेषता वा अनुयोगिता सम्बन्धसे अपनेमें रखनेवाला जो ज्ञान उस ज्ञानका

१ भेदसिहत अर्थात् पर्ध्यायरूप भेदयुक्त । २ भेदशून्य द्रव्य नयसे सब भेदशून्य है।

३ अनेक प्रकारके अर्थबोध करनेकी ऑर झुकनेसे समिमिस्ट नय कहलाता है जैसे परमैश्वर्ययुक्त होनेसे इन्द्र समर्थ होनेसे शक्र और शत्रुके नगरको विदीर्ण करनेसे पुरन्दर कहलाते हैं ऐसे ही उन उन पर्व्याय रूपताको प्राप्त होनेसे द्रव्य विविधरूप संयुक्त होनेसे पर्याय इत्यादि ।

४ जिस रूपसे है उसीसे बोध कराँवे वह एवंभूत नय हे जैसे ऐश्वर्ययुक्त हो वही इन्द्र, समर्थ होनेसे शक ऐसे ही पर्यायोंमें जावे वह द्रव्य अनेक आकारयुक्त होनेसे पर्याय समझना चाहिये।

उत्पादक एक ही मंग इष्ट करना चाहिये और व्यञ्जनपर्यायस्थलमें पूर्वोक्त दो ही मंग समझने चाहियें और यदि सर्वत्र (अर्थ तथा व्यञ्जनपर्याय) स्थलमें सप्तमंगी नियमपर ही विश्वास है तो उस स्थलमें चालनी न्यायसे उतने ही नयार्थों के निषेधका बोधक भी दूस-रा मंग और उसीको मूलाधारमें आश्रय करके उसी कोटिके अन्य पांच मंगोकी भी कल्पना करनी चाहिये क्योंकि इसी प्रकारसे निराकांक्ष संपूर्ण मंगोंकी प्रतिपत्ति (बोध) निर्वाह होता है इसलिये हम इस ही सिद्धान्तको युक्तियुक्त देखते हैं और यह विचार सूक्ष्म बुद्धिके धारक स्याद्वादमतज्ञाता पुरुषको अपने चित्तमें धारण करलेना चाहिये अब इस चतुर्देशवें (१४) सूत्रका फलितार्थ कहते हैं कि—इस वर्ण्यमान सप्तमंगीको तत्त्वदृष्टिन विचारपूर्वक विवेचन करके अतिप्राँडतायुक्त जो भव्य अभ्यास करेगा वह जिन भगवान्के चरणकमलोंकी सेवाको प्राप्त करके अचिर काल अर्थात् थोडेसे भवोंको ग्रहण करके मोक्षको प्राप्त होगा ॥ १४॥

इति श्रीवैयाकरणाचार्योपाधिधारकपं० ठाकुरप्रसादद्विवेदिविरचितभाषाटीकासमल-ङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमाध्याये नयप्रमाणयोर्विवेचनं करोति अब इस पंचम अध्यायमें नय तथा प्रमाणका विचार करते हैं।

सत्रम् । एकोऽर्थस्तु त्रिरूपः स्यात्सत्प्रमाणावलोकितः । मुख्यवृत्त्योपचारेण जानीते नयवाद्वित् ॥ १॥

सूत्रभावार्थः एक ही पदार्थ सत्प्रमाणसे दृष्ट होनेपर तीन प्रकारका होजाता है और नयवादका जाननेवाला इस त्रिरूपताको मुख्य तथा उपचार वृत्तिसे जानता है ॥ १ ॥ व्याख्या । एकोऽर्थः घटपटादिर्जीवाजीवादिर्वा त्रिरूपः, रूपत्रयोपेतो झेयो यथा द्रव्य-गुणपर्यायरूपः तथा हि घटादयो हि मृत्तिकादिरूपेण द्रव्याणि, घटगतरूपरसाद्यात्मकत्वेनानेके गुणाः, घटादिरूपेण सजातीयद्रव्यत्वेन पर्यायाः । एवं जीवादीनामिष झेयम् । एकोऽर्थिसि-रूपः स च कीदशः सत्प्रमाणावलोकितः सत्प्रमाणं स्याद्वाद्स्तेनावलोकितो दृष्टः । यतः प्रमाणेन सप्तभङ्गात्मकत्वेन त्रिरूपत्वं मुख्यद्वारा झेयम् । नयवादी होकांशवादी स च मुख्यवृत्त्या तथोपचारेणकस्मिन्नर्थे त्रिरूपत्वं जानाति । यद्यपि नयवादिना एकांशवचनेन शक्तिरूप एकोऽर्थः कथ्यते। तथापि लक्षणारूपोपचारेणानेकेऽप्यर्था झायन्ते । एकदा वृत्तिद्वयं न भवेत् परं निश्चयो नास्ति । गङ्गायां मत्स्यघोषावित्यादिस्थलेष्विव वृत्तिद्वयस्थापि मान्यत्वात । तद्विद-

⁹ चालनीमें जलआदि डालोगे तो वह किसी न किसी ओरसे निकल जायगा रुकेगा नहीं ऐसे ही द्रव्या-थिंक नयसे अभेद सिद्ध करोगे तो पर्यायार्थिक निमित्तक भेदका निषेध होगा, भेद मानोगे तो अभेदका निषेध होगा दोनोंको एक कालमें लोगे तो वाक्यताका निषेध होगा इसी प्रकार किसीका निषेध और किसीका विधान होता रहेगा और सप्त भङ्ग वन जांयगे.

हापि मुख्यत्वेतामुख्यत्वेत चातन्तधर्मात्मकवस्तुज्ञापनायैकस्य नयशब्दस्य वृत्तिद्वयमङ्गीकु-वतां विरोधो नास्ति । अथवा नयात्मकशास्त्रस्य क्रमेण वाक्यद्वयेनाप्यर्था ज्ञायते । अथवा एकशब्दवोधशब्देनैकवोधार्थः एवमनेके भंगा ज्ञेयाः ॥ १ ॥

ट्याख्यार्थ:-एक पदार्थ घट पटआदि अथवा जीव अजीवआदि तीन प्रकारका अर्थात् तीन रूपसंयुक्त होता है; प्रत्येक वस्तुको त्रिरूपसहित जानना चाहिये, और त्रिरूपता द्रव्य, गुण और पर्यायसे है जैसे घटआदि वस्तु मृत्तिकारूपसे द्रव्य हैं १ घटा-दिके रूप रसादिसे विवक्षा करो अर्थात यह स्याम है, यह रक्त है, यह पीत है इस रीतिसे वे गणरूप हैं २. और घटआदिरूप सजातीय द्रव्यत्वरूपसे विवक्षा करनेपर वे पर्य्याय हैं ३ । इस प्रकार घटादिके तीन रूप होगये और ऐसे ही जीवादिकोंको भी जानना चा-हिये अर्थात् जीव आत्मरूपसे द्रव्य है १, ज्ञान दर्शनादिकी विवक्षासे गुण है २ और देव मनुष्यादि पर्यायकी विवक्षासे पर्यायरूप है ३, अब वह एक पदार्थका त्रिरूप कैसा है कि-सत्प्रमाणसे अवलोकित (दृष्ट) है अर्थात् समीचीन (उत्तम) स्याद्वादह्रप प्रमा-णसे विचारित होनेसे पदार्थकी त्रिरूपता स्पष्टतासे भासती है, क्योंकि सप्तमंगीरूप जो प्रमौण है, उससे वस्तुकी त्रिरूपता मुख्यवृत्तिसे जानी जाती है, और नयवादी अर्थात् एकअंशवादी जो है वह मुख्यवृत्ति तथा उपचारसे भी एक पदार्थमें त्रिरूपताको जान-ता है। यद्यपि नयवादी एक अंशको कहनेवाले वचनसे शक्ति हैं। एक ही अर्थको कहता है, तथापि उपचारसे अर्थात् लक्षणांशक्तिसे अनेक अर्थोंको भी वह जानलेता है। यद्यपि एक कालमें ही दो वृत्ति अर्थात् अभिधा और लक्षणाशक्ति नहीं होसकती परन्तु यह सिद्धान्त निश्चित नहीं है क्योंकि ''गङ्गायां मत्स्यघोषों'' गंगाने मत्स्य तथा अहीरोंका ग्राम है, इत्यादि स्थलके तुल्य अन्यत्र भी एक कालमें ही दो शक्ति (अभिधा तथा लक्षणा) मान्य हैं। उसी प्रकारसे यहां भी मुख्यता तथा गौणतासे अनन्त धर्मस्वरूप वस्तुको जनानेके

९ संपूर्णरूपसे पदार्थके खरूपको जो सिद्ध करे वह सम्यग्ज्ञानरूप सप्तभंगी नय यहां प्रमाण पदसे विवक्षित है क्योंकि " सकलादेशः प्रमाणाधीनः " संपूर्ण आदेश प्रमाणके आधीन है.

२ वस्तुके खरूपके किसी अंशके प्रतिपादनको नय कहते हैं क्योंकि "विकलादेशो नयाधीनः" खंड, आदेश नयके, आधीन होता है॥

३ जो अर्थको मुख्यवृत्तिसे प्रकाश करे वह अभिया, लक्षणा तथा व्यंजना ये तीन प्रकारकी शब्दमें शिक्त है और वाच्य, लक्ष्य, तथा व्यक्त्य, ये अर्थ भी तीन ही प्रकारके हैं, इसके अनुरोधसे शब्द भी वाचक लक्षक और व्यंजक इन भेदोंसे तीन प्रकारके हैं।

४ तात्पर्यकी अनुपपत्तिसे लक्षणाशक्तिसे वाक्यार्थ होता है '' गङ्गायां घोषः '' गङ्गा नाम अभिधा शिक्तिसे प्रवाहका है उसमें प्राम नहीं रहसकता है, इसलिये गंगापदकी गंगापदमी लक्षणा की. तब गंगा शब्द लक्षणाशिक्तिसे गंगापटका बोधक हुआ तब अन्वय बनगया क्योंकि गंगाप्तटमें अहीरोंका प्राम रह सकता है। ऐसे ही लक्षणासे एक नय अन्यार्थका भी बोध करावेगा तो पदार्थकी त्रिरूपताका बोधक हो जायगा।

५ यहां मत्स्यकेलिये तो गंगामें वाचकताशक्ति और घोषकेलिये लक्षणा है।

िलये एक ही नयशब्दकी दो वृत्ति स्वीकार करनेवालोंको कोई विरोध नहीं है। अथवा नयप्रतिपादक शास्त्रके कमसे दो वाक्योंसे भी अर्थ जान सकते हैं। अथवा एकार्थबी-धक एक शब्दसे एक अर्थका बोध होता है और अन्य अर्थका अन्य शब्दसे, इस रीतिसे अनेक भंग भी समझलेने चाहियें॥ १॥

अथोक्तमेवार्थं शब्दत्वेन ज्ञापयन्नाह । अब पूर्वोक्त विषयको ही सूत्रद्वारा प्रकाशित करते हैं।

सूत्रम् । द्रव्यार्थिकनयो मुख्यवृत्त्याभेदं वदंस्त्रिषु । अन्योन्यमुपचारेण तेषु भेदं दिशस्यलम् ॥ २ ॥

मूत्रभावार्थ:—द्रव्यार्थिकनय मुख्यवृत्ति अर्थात् वाचकता शक्तिसे द्रव्य, गुण, पर्याय तीनोंमें सृत्तिकारूपसे अभेद प्रकाश करता हुआ लक्षणाशक्तिसे उन तीनोंमें परस्पर भेद भी पूर्णरूपसे दर्शाता है ॥ २ ॥

व्या०—द्रव्याधिकनयो मुख्यवृत्त्या मुख्या प्रधाना शव्दाधिकथनपरा वृत्तिव्यापारो यस्य स तस्य भावस्तत्ता तया शव्दाधादेशकत्वेन त्रिपु द्रव्यगुणपर्यायेष्वभेदं भेदाभावं वद्न कथयन् सन् यतो गुणपर्यायभ्यां भिन्नस्य मृद्रव्यस्य विषये घटादिपदस्य शक्तिरस्तीत्येतेषामन्योन्यमभेदं प्रकटयन्पुनः स एव द्रव्याधिकनयस्तेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु चान्योन्यं परस्परमुपचारेण लक्षणया भेदं भेदत्वमलमत्यर्थे दिशति । यतो द्रव्यं भिन्नं कम्बुप्रीवादिपर्यायेषु च तस्य घटादिपदस्य लक्षणावगम्यते । किं च मुख्यार्थवाघे तथैव मुख्यार्थसंबन्धे च सित तथाविधव्यवहारप्रयोजनेऽनुसृत्य तत्र लक्षणा प्रवर्त्ततेऽदुर्घटत्वान् । उक्तं च-मुख्यार्थवाघे तथोगे रूढितोऽर्थप्रयोजनात् । अन्योऽर्था लक्ष्यते यत्सा लक्ष्णारोपितिक्रिया । १ । इति ॥२॥

व्याख्यार्थः — द्रव्यार्थिक नय मुख्यवृत्तिसे अर्थात् शब्दार्थके कथनमें तत्पर व्यापार वाली अभिधाशक्तिसे शब्दके अर्थीका प्रकाश करनेसे द्रव्य, गुण तथा पर्याय इन तीनोंमें अभेद (भेदाभाव)को कहता हुआ अर्थात् गुण और पर्यायसे भिन्न मृत्तिका रूप द्रव्यके कथनमें घटादि पदकी शक्ति है इस रीतिसे इन तिनोंमें परस्पर अभेद प्रकाश करता हुआ पुनः वही द्रव्यार्थिक नय उन ही द्रव्य, गुण तथा पर्यार्थीमें उपचार (लक्षणाशक्ति)से भेदको भी पूर्ण रीतिसे प्रकट करता है, क्योंकि द्रव्य भिन्न है और कम्बुग्रीवत्वआदि पर्यायोंमें उस घटआदि पदकी लक्षणाशक्ति निश्चित होती है। और मुख्य अर्थके बाधमें तथा मुख्य अर्थके संबन्ध रहते उसी प्रकारके व्यवहार तथा प्रयोजनका अनुसरण करके लक्षणाशक्ति प्रवृत्ति होती है अगेर ऐसा कहा भी है—मुख्यार्थके बाध होनेपर उस मुख्य अर्थसे संबन्ध रखनेवाले अर्थमें ही रूढिसे अर्थ प्रयोजनसे

⁹ प्रयोजनवश लक्षणाके अनेक भेद हैं परन्तु मुख्यतः एक प्रयोजनवती और दूसरी निरुढा लक्षणा है. प्रथममें गंगाशब्दका गंगातट रूप अर्थ करनेसे यह प्रयोजन हैं कि—अहीरांका ग्राम अतिपवित्र तथा शै- त्यादि धर्मयुक्त है। दूसरी निरूढा लक्षणा कुशलआदि शब्दोंमें समझनी चाहिये अर्थात् कुशलका अर्थ कु- शलानेवाला है. परन्तु रूढिसे वह चतुरके अर्थमें वर्त्तता है यही निरूढा लक्षणा है।

जहां अन्य अर्थ लिक्षत हो उस आरोपित क्रियाको लेके प्रवृत्त होनेवाली शक्तिको लक्षणाशक्ति कहते हैं जैसे कहा भी है कि—"गुरूयार्थवाधे तद्योगे रुढितोऽर्थप्रयोजनात्।। अन्योथीं लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपितिक्रिया।।१॥ भावार्थः—गुरूय अर्थका बाध होनेपर तथा उसका योग होनेपर अर्थ प्रयोजनसे जिससे रूढीसे भिन्न अर्थ लिक्षत हो वह लक्षणा होती है ॥ १॥ जैसे "गङ्गायां घोषः " यहां गंगाका मुख्य अर्थ प्रवाह है परन्तु उस मुख्य अर्थमें घोष (अहीरोंके ग्राम) की अधिकरणता (आधारता)का बाध है इसिलिये गंगासे संबन्ध रखनेवाले अन्य अर्थ गंगातटमें गंगाशब्दकी लक्षणा हुई तब "गं-ङ्गायाम्" इस पदंका अर्थ "गंगातटे" (गंगाजीके तटपर) "घोषः" ग्राम है यह अन्यय बनगया ऐसे ही यहां भी समझलेना ॥ २॥

अथोक्तमेव द्रढयन्नाह।

अब पूर्वोक्त अर्थको ही दढ करते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । पर्यायार्थिक एवापि मुख्यवृत्त्यात्र भेदताम् । उपचारानुभूतिभ्यां मनुतेऽभेदतां त्रिषु ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः - और पर्य्यायार्थिक नय भी यहां मुख्यवृत्तिसे तो भेद भाव ही मानता है, परन्तु उपचार तथा अनुभवसे तीनोंमें अभेद मानता है ॥ ३ ॥

व्याख्या। पर्यायार्थिकनय एवापि एवमेव प्रकारेणोक्तलक्षणेन सुख्यवृत्त्या प्रधानव्या-पारेणात्र द्रव्यगुणपर्यायेषु भेदतां भेदभावं ज्ञापयति । यत एतस्य नयस्य मते मृदादिपदस्य द्रव्यमिस्यथः। १। ह्रपादिपदस्य गुण इस्यथः। २। घटादिपदस्य कम्बुमीवपृथुबुभादिपर्याय इस्यथः। ३। इत्थं त्रयाणामपि मिथो नामान्तरकल्पना भिन्ना भिन्ना प्रदर्शिता। अतो द्रव्यगुण-पर्यायाणां प्राधान्येन भेदोऽस्तीति ध्येयम्। तथा पुनक्षचारानुभूतिभ्यासुपचारो लक्षणा, अ-नुभूतिरनुभवः, उपचारश्चानुभूतिश्च ताभ्यां पर्यायार्थिकनयोऽप्यभेदतामभेदभावं द्रव्यादिपु त्रिषु मनुते। यतो घटादि मृद्दव्याद्यभित्रमेवास्ति लक्षणया ज्ञानेन चेति । इमां प्रतीतिं घ-टादिपदानां मृदादिद्रव्येषु लक्षणाप्रवृत्त्याङ्गीकुर्वतां न कदापि क्षतिरिति भावार्थः॥ ३॥

व्याख्यार्थ:—पर्यायार्थिक नय भी इस ही पूर्वोक्त प्रकारसे अर्थात् मुख्यवृत्ति (प्रधान व्यापार) से इन द्रव्यादि तीनोंमें अर्थात् द्रव्य गुण पर्यायोंमें भेदभाव ही ज्ञापित करता है। क्योंकि इस नयके मतसे मृत् (मृत्तिका) आदि पदका द्रव्य यह अर्थ है। १। स्याम रक्त तथा पीतादि पदोंका गुण यह अर्थ है। २। और घटआदि पदका कंबुप्रीव (शंखके तुत्य गलेसहित) तथा विशाल उद्दर सहितआदि पर्याय अर्थ है। ३। इस प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय तीनोंकी नामान्तरकल्पना परस्पर भिन्न २ प्रदर्शित की गई है, इससे यह सिद्ध हुआ कि—पर्यायार्थिक नयके अनुसार द्रव्य, गुण, पर्याय प्रधानतासे भिन्न २ हैं ऐसा निश्चय करना चाहिये। और पुनः उपचार तथा अनुभवसे पर्यायार्थिक

नय भी द्रव्यादि तीनों पदार्थों अभेद अर्थात् भेदाभाव ही मानता है। क्योंकि मृत्तिका के बिना घट अनुपपन्न है, इसिलये लक्षणा तथा ज्ञानसे घटआदि पदार्थ मृत्तिकारूप द्रव्यसे अभिन्न ही हैं। घटआदि पदोंकी मृत्तिकाआदि द्रव्योंमें इस प्रतीतिको लक्षणा प्रवृत्तिसे माननेवालोंके कोई भी दोष नहीं है, यह सूत्रका तात्पर्य है ॥ ३ ॥

अथ पुनर्भेद्मेव द्शियन्नाह ।

अब पुनः भेदको ही दशीते हुए कहते हैं !

सूत्रम् । गृह्णाति यो नयो धर्मौ मुख्यामुख्यतया तथा । तस्यानुसारतस्तेषां वृत्त्योपचारकल्पनम् ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थ:—जो नय मुख्यता तथा गौणतासे भेद अभेदरूप धर्मीको प्रहण करता है वहां उसीके अनुसार द्रव्य, गुण, पर्यायोंकी वृत्तिसे उस उपचारकल्पनाका वि-धान होता है ॥ ४ ॥

व्याख्या। यो हि नयो द्रव्यार्थिकोऽथवा पर्यायार्थिकः धर्मी भेदाभेदात्मकौ प्राधान्यगौण-तया गृह्णाति ऊहाख्यप्रमाणेन धारयति । तस्य नयस्य द्रव्यार्थिकस्य वा पर्यायार्थिकस्य मु-ख्यतया साक्षात्सङ्केतेन तथा वा व्यवहितसङ्केतन चानुसृद्ध तेषां द्रव्यगुणपर्यायाणां वृत्त्या तदुपचारकस्पनं विधीयते । यथा गङ्गापदस्य साक्षात्सङ्केतः प्रवाहरूपार्थविषयेऽस्ति तस्मात्प्र-वाहेण शक्तिः । तथा "गङ्गातीरे घोषः " गङ्गासङ्केतव्यवहितसङ्केतोऽस्ति । ततश्च यथोप-चारस्तथा द्रव्यार्थिकनयस्य साक्षात्सङ्केतोऽभेदे नास्ति । तत्र शक्तिभेदेन व्यवहितसङ्केतोऽस्ति ततश्चोपचरितत्वं तु पर्यायार्थिकनयस्यापि शक्तयोपचारं गृहीत्वा भेदाभेदनयविषयेऽपि यो-जनीयम ।। ४।।

व्याख्यार्थ:—जो नय द्रव्यार्थिक हो अथवा पर्यायार्थिक हो भेद तथा अभेद स्वरूप धर्मको प्रधानता अथवा गौणतासे ग्रहण करता है अर्थात् जहां ऊहा नामक (कल्पना स्वरूप) प्रमाणसे धारण करता है वहांपर उसी द्रव्यार्थिक वा पर्यायार्थिक नयकी मु- ख्यता अर्थात् साक्षात्संकेत तथा गौणता अर्थात् व्यवहितसंकेतके अनुसार द्रव्य, गुण पर्यानीकी वृत्ति (शक्ति) से उपचार कल्पनाका विधान होता है। तात्पर्य यह कि द्रव्या- थिंकनय प्रधानता (साक्षात् सङ्केत)से अभेदको प्रतिपादन करता है परन्तु वह गौणता (व्यवहित संकेत)से अभेदको भी कहेगा, ऐसे ही पर्यायार्थिक नय प्रधानता (साक्षात्संकेत)से भेदको और गौणता (व्यवहित संकेत)से अभेदक्रप धर्मको कहता है। जैसे गंगापदका प्रधानतासे साक्षात्संकेत प्रवाह (जलकी धारा) रूप अर्थमें है, इसलिये मुख्यतासे तो प्रवाहरूपसे ही शक्ति है तथा गंगातीरमें घोष है यहां तीरक्रप अर्थमें गंगा- संकेतसे व्यवहित संकेत है, इसलिये गंगापदसे गंगातीर साक्षात्रूप अर्थ उपचारसे हु- आ। अब ऐसे ही द्रव्यार्थिक नयका संकेत तो अभेदक्रप अर्थमें है, और उस नयकी

भिन्न शक्ति (लक्षणा शक्ति) से व्यवहित संकेत अर्थात् भेदरूप अर्थमें वृत्ति है, इस लिये भेदरूप अर्थ प्रतिपादनके अर्थ द्रव्यार्थिकनयकी उपचारसे प्रवृत्ति हुई। ऐसे ही पर्यायार्थिक नयकी भी मुख्य शक्ति तथा उपचार शक्तिको ग्रहण करके भेदाऽभेद नय विषयमें योजना करलेनी चाहिये, अर्थात् पर्यायार्थिक नय मुख्यवृत्ति अर्थात् वाचकता शक्तिसे भेदरूप अर्थको कहता है और उपचार अर्थात् लक्षणा शक्तिसे अभेदरूप अर्थको को भी कहता है।। ४।।

कश्चित्कथयति एको नय एकमेव विषयं गृह्णाति तहूषयति।

कोई प्रतिवादी कहता है कि एक नय एक ही विषय (भेद अथवा अभेदमें किसी एक अर्थ)को ग्रहण करता है। उस सिद्धान्तको अग्रिम श्लोकसे दृषित करते हैं।

सूत्रम्। यो भिन्नविषयो ज्ञाने सर्वथा नेति चेन्नयः। तदा स्वतस्त्रभावेन स स्यान्मिथ्यात्विगोचरः॥ ५॥

सूत्रभावार्थः—जो नय है वह ज्ञानमें निजसे भिन्न नयके विषयको गौणतासे भी स-र्वथा नहीं कह सकता ऐसा यदि मानो तो वह नय स्वतंत्रतासे मिथ्यात्त्वियोंके गोचर होगा॥ ५॥

व्याख्या । यो नयः ज्ञाने ज्ञानविषये भिन्नविषयो नयान्तरस्य मुख्यार्थः सर्वथा अमुख्य-त्वेनापि न भासते । तदा स नयः स्वतन्त्रभावेन सर्वथा नयान्तरिवमुखत्वेन मिण्यात्विगो-चरो मिण्यादृष्टिभिविवेचनीयः कुदृष्टिपरिगृहीतः स्यात् । एतावता दुर्णय एव भवति । प-रन्तु सुनयो न भवति । एवं ज्ञेयम् । अनुभवेन विचार्यमाणः कश्चित्रयः भिन्नविषयत्वात्रया-न्तरमुख्यार्थत्वात्सर्वथा अमुख्यत्वाद्षि न भासते । तदा स्वतन्त्रत्वेन (नयान्तरिवमुख्यत्वेन) च मिण्यात्विनां पार्थे स नयो निरन्तरं तिष्ठतीति भावः ॥ ५॥

च्याख्यार्थ:— जो नय है वह ज्ञानमें भिन्नविषय अर्थात् अपनेसे भिन्न दूसरे नयके मुख्य अर्थको सर्वथा गौणतासे भी नहीं भासित करता है ऐसा मानोगे तो वह नय स्वतं-त्रतासे सर्वथा अर्थात् अन्य नयोंसे विमुख होनेसे मिथ्यादृष्टियोंद्वारा विवेचन करने योग्य होवे अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंसे ग्रहण कियाहुआ होवे भावार्थ—दुर्न्नय ही होवे और सुनय नहीं, ऐसा समझना चाहिये। भावार्थ यह है कि—अनुभवसे विचाराहुआ कोई नय भिन्न विषय-को अर्थात् अन्य नयके मुख्य अर्थको गौणतासे भी सर्वथा नहीं कहता है तो वह नय स्व-

⁹ अनेकान्तवादमें वस्तुका स्वरूप ही अनेकान्त है तब नयखरूप अनेकार्थक क्यों न होगा क्योंकि प्रमाण और नयसे ही तो बस्तुकी विवेचना होती है, यदि वह नय भेद अभेदादि अनेकार्थप्रतिपादक उपनारसे-भी न रहा किन्तु किसी एक ही अर्थका प्रतिपादक रहा तब वह नय कुट्छियोंका अर्थात् जैनमतसे भिन्न मता-तुयायी जनोंका ही विषय रहा; और कुट्छियोंसे गृहीत होनेके कारण वह दुष्ट नय होगया न कि मुनय अर्थात् स्याद्वादके अनुकूल वह उत्तम नय नहीं होसकता।

संत्रभावसे अर्थात् अन्य नयसे विमुख होनेसे मिध्यादृष्टियोंके ही निकट निरन्तर रहता है न कि स्याद्वादियोंके निकट ॥ ९ ॥

सूत्रम् । विशेषावश्यकेऽयुक्तः संमितावर्थ एष च ॥ भेदाभेदोपचाराद्याः संभवन्ति नयादिह ॥ ६ ॥

मूत्रभावार्थ:— भेद, अभेदआदिके उपचारआदि स्याद्वादमें नयसे ही होते हैं; यही अर्थ अर्थात् यही अभिपाय विशेषावश्यक तथा संमतिप्रन्थमें कहा है ॥ ६ ॥

व्याख्या । अयमर्थो विशेषावश्यके तथा संमतियन्थमध्य उक्तोऽस्ति । तथा च तद्राथा-"दोहिं विणयेहिं णीयं सत्थं मुलण्ण तहवि मिच्छत्तं । जस्स विसय पहाणं तणेणं अणुण्णा-निरवेक्खं । १ । " " स्वार्थप्राही इतरांशाप्रतिक्षेपी सुनय" इति सुनयलक्षणम् । "स्वार्थ- । ब्राही इतरांशप्रतिक्षेपी दुर्णय '' इति दुर्णयलक्षणम् । एवं नयात्रयविचाराच भेदाभेद्प्रा-ह्यच्यवहारः संभवति । तथा नयसङ्केतिवशेपाद्वाहकवृत्तिविशेषरूप उपचारोऽपि संभवेत् । तसाद्भेदाभेदयोर्भुख्यत्वेन प्रत्येकनयविषयो सुख्यासुख्यत्वेनोभयनयविषयरूप उपचारश्च मुख्यवृत्तिवन्नयपरिकरो भवेत परन्तु नयविषयो न भवति । अयं च सरलः पन्थाः श्वेता-म्बर्प्रमाणशास्त्रसिद्धो ज्ञेयः । नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्त्रदितरांशौदा-सीन्यतः स प्रतिपत्तरभिप्रायेण विशेषो नय इति । अत्रैकवचनमतत्रं तेनांशावंशा वा येन प-रामर्शविशेषेण श्रुतप्रमाणप्रतिपन्नवस्तुनो विषयीक्रियते तदितरांशौदासीन्यापेक्षया स नयो-्रभिधीयते । तद्तिरांशप्रतिक्षेपे तु तदा भासतां भणिष्यते । प्रत्यपाद्याम च स्तुतिद्वात्रिंशतिके " अहो चित्रं चित्रं तय चरितमेतन्मुनिपते, स्वकीयानामेषां विषमविषयव्याप्तिवशिनाम् । वि-पक्षापेक्षाणां कथयसि नयानां सनयतां, विपक्षक्षेष्त्रणां पुनरिह विभो दुष्टनयताम् । १।" प-°चाशतिके च–''निश्शेपांशजुषां प्रमाणविषयीभूयं समासेदुषां, वस्तूनां नियतांशकल्पनपराः सप्तश्रताः सङ्गिनः । औदासीन्यपरायणास्तदपरे चांशे भवेयुर्नया, श्रेदेकांशकलङ्कपङ्ककलुषास्ते स्यः सदा दुर्ण्याः । १। " इति ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थ: —यह अभिप्राय विशेषावश्यकनामक प्रन्थ और सम्मित प्रन्थमें कहा है और उस प्रन्थकी गाथाका अभिप्राय यह है कि "यद्यपि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों मूल नयोंसे शास्त्र जानाजाता है तथापि जो नय अपना ही विषय प्रधान रखता है और परस्परकी अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् दूसरे नयके मुख्य अर्थकों गोणतासे भी नहीं कहता उसको मिथ्यात्व (दुनिय) जानना चाहिये। १। तथा स्वार्थका प्राही हो और अन्य अर्थका निषेधक न हो वह सुनय है अर्थात् निज प्रधानशक्ति जो अपने अर्थको कहे उसको तो प्रहण करे और अन्य नयके अर्थका तिरस्कार न करे किंतु उपचारसे उस दूसरे नयके अर्थका भी कथन करे वह सुनय है। यही सुनयका लक्षण है। और जो केवल स्वार्थनात्रका प्राही हो और अन्य अर्थका निषेधक हो वह दुनिय है। यह दुनियका लक्षण है। इस प्रकार नय अर्थात् नयके विचारसे द्रव्य, गुण, पर्यायोंमें भेद तथा अभेदको प्रहण

करने योग्य व्यवहारका संभव है। और नयके संकेत विशेषसे ग्राहक जो शक्तिविशेष है उसरूप उपचारका भी संभव है। इसिलिये भेद तथा अभेदमें मुख्यतासे प्रत्येक नयका विषय है अर्थात् एक अर्थकी प्रतिपादकता प्रत्येक नयमें है। और मुख्यता तथा अमु-रूयता-(गौणता)से द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके विषयहूप जो उपचार है वह मुख्य वृत्तिके सदश नयका परिकर होता है परन्तु नयका विषय नहीं होता-यह सरल मार्ग श्वेताम्बर मतके प्रमाण (न्याय) शास्त्रसे सिद्ध है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि श्रुतनामक प्रमाणसे विषयमें कियेहुए पदार्थका अंश जिसके हुए अन्य अंशकी उदासीनतासे प्राप्त किया जाय वह प्रतिपत्ता (बोद्धा)के अभिप्रायसे जो विशेष है सो नय कहलाता है। 'श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशः' यहां पर "अंशः'' यह जो एक वचन दिया गया है वह स्वाधीन नहीं है इस कारण 'अंशो अंशाः वा' इस प्रकार द्वि-वचन बहुवचन लगाकार जिस परामर्श (ज्ञान) विशेषसे श्रुत प्रमाणद्वारा प्रहण किए-हुए पदार्थका एक अंश दो अंश अथवा बहुतसे अंश विषयगोचर किये जावें और उससे भिन्न अंश वा अंशोंको उदासीनतासे विषयी किये जांय वह नय कहाजाता है। और जो वस्तुके विवक्षित अंशसे भिन्न अंश वा अंशोंका प्रतिक्षेप अर्थात् निषेध करे उसको आगे नयाभास कहेंगे । और स्तृति द्वात्रिंशतिकामें प्रतिपादित भी किया है कि हे मुनीन्द्र ? हे विभो श्रीजिनेन्द्र शापका यह चरित अत्यन्त विस्मयको उत्पन्न करता है वह चरित क्या है कि-आप अपने इन विषम विषयव्याप्तिके वशीभूत हुए जो नय विपक्षकी अर्थात अपने स्वीकृत अर्थसे विमुख अन्यनयोंसे विवक्षित अर्थकी अपेक्षा रखते हैं अर्थात गोण-तासे उनका भी कथन करते हैं उन नयोंके सुनयता कहते हो और जो अन्य नयद्वारा स्वी-कृत अर्थ है उसको निषेध करनेवाले जो नय हैं उनको दृष्ट नय (दुर्नय) कहतेहो॥१॥ और पश्चाशतिक नामक ग्रन्थमें भी प्रतिपादित किया है कि-संपूर्ण अंशोंको अर्थात अ-नन्त धर्मीको धारण करनेवाले और प्रमाणकी विषयीभूतताको प्राप्तहए पदार्थीके नियत अंश (धर्म) कल्पना करनेमें तत्पर सात सङ्गी हैं उनमें जो अपने कल्पित अंशसे भिन्न अंशमें उदासीनताको धारण करते हैं वे नय होते हैं और जो एक अपने ही अंशकी कल्पनारूप कलङ्क पङ्क (दोषमय कर्दम)से मलीन हों अर्थात् एक ही अपने कल्पित अर्थ को तो खीकार करें और अन्य अंशोका निषेध करें तो वे सातों सदा दर्नय होते हैं ॥२॥६॥

पुनर्भावं कथयन्नाह ।

पुनः नयके भावको कहते हुए यह सूत्र कहते हैं।

स्त्रम् । ये मार्गे सरलं त्यक्त्वोपनयान्कल्पयन्ति वै । तत्त्रपश्चं विबोधाय तेषां जल्पः प्रतायते ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः - जो इस सरल श्वेताम्बरमतानुसारी नयमार्गको त्यागकर उपनयों-

की कल्पना करते हैं; उनका प्रपन्न केवल शिष्योंकी बुद्धिको विवादिनी करनेवाला है। तथापि ज्ञानके अर्थ उन उपनयोंके कथनका विस्तार करते हैं॥ ७॥

व्याख्या। ये च केचन कल्पकाः सरहं सममेतदुक्तलक्षणं मार्ग नयनिगमपन्थानं त्यक्ता विमुच्य उपचारादि ग्रहीतुमिच्छयोपनयान्नयानां समीप उपनयास्तान् कल्पयन्ति । दिगम्बर्शाखे हि द्रव्यार्थिकः १ पर्यायार्थिकः २ नैगमः ३ सङ्ग्रहः ४ व्यवहारः ५ ऋजुसूत्रम् ६ शब्दः ७ समिमिरूढः ८ एवंभूतः ९ इति नव नयाः स्मृता उपनयाश्च कथ्यन्ते नयानां समीपसुपनयाः सङ्ग्तव्यवहारः १ असङ्ग्तव्यवहारः २ उपचरितसङ्ग्तव्यवहार—३ श्चेत्युपनयाखेधा इति । तत्प्रपश्चं तद्विस्तारं शिष्यबुद्धिद्वन्द्वनमात्रमेवास्ति । तथापि विबोधाय समानतन्नत्वेन परिज्ञानाय तेषां नयानां जल्प उद्यापः प्रतायते स्वप्रक्रियया उच्यत इत्यर्थः ॥ ७ ॥

च्याख्यार्थ:—जो कोई कल्पक (कल्पना करनेवाले) इस पूर्वीक्त सरल नयनिगममार्गको त्यागकर उपचारआदिक ग्रहण करनेकी अभिलाषासे उपनयोंकी अर्थात् नयोंके समीप होनेवाल जो उपनय हैं; उनकी कल्पना करते हैं; भावार्थ—दिगम्बरोंके न्यायशास्त्रामें द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नैगम १ संग्रह ४ व्यवहार ५ ऋजुसूत्र ६ शब्द ७ समिस्छ ८ और एवंभूत ९ ये नौ (९)नय मानेगये हैं; और सद्भृतव्यवहार १ असद्भृतव्यवहार २ तथा उपचरितसद्भृतव्यवहार ये तीन (३) प्रकारके उपनय (उपनयका अर्थ है; नयके समीप रहनेवाले क्योंकि—उप अव्ययका समीप अर्थ है; इसलिये उपका नय शब्दके साथ अव्ययीभाव समास है) कहेगये हैं। उनका विस्तार केवल शिष्योंकी बुद्धिको विवादशील करनेवाला है। तथापि दिगम्बरशास्त्रको हमारे समान ही होनेसे उन नयोंके ज्ञानकेलिये उनका जल्प (कथन) करते हैं; अर्थात् इन नय तथा उपनयोंका निरूपण हम हमारी प्रक्रियाके अनुसार करते हैं; इस प्रकार श्लोकका अर्थ है।। ७॥

सूत्रम्। नया न्यायानुसारेण नव चोपनयास्त्रयः। निश्चयव्यवहारौ हि तद्ध्यात्ममतानुगौ॥८॥

सूत्रभावार्थ:—न्यायके अनुसार नय नौ (९) हैं; और उपनय तीन हैं; तथा एक अध्यात्मनामक मत है; उसके अनुसार निश्चय और व्यवहार ये दो ही नय हैं॥ ८॥

व्याख्या। न्यायानुसारेण तन्मतीयग्रन्थगताभिप्रायेण नया नव सन्ति पूर्वोक्ता क्षेयाः। तथोपनयास्त्रय एव सन्ति। तेप्युपनयाः सङ्ग्तव्यवहारादयस्त्रय इति। तथा चाध्यात्माऽपि मतभेदः कश्चिद्स्ति। तत्र च तद्ध्यात्ममतानुगौ तच्छैलीपरिशीलिनौ नयो निश्चयेन द्वावेव कथितौ तत्रैको निश्चयोऽपरो व्यवहारनयश्चेति द्वावेव नाधिकौ। अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः। यथा "जीवः शिवःशिवो जीवो नान्तरं शिवजीवयो"रिति। भेदोप- चारतया वस्तु व्यविष्ट्यत इति व्यवहारः। यथा "कर्मबद्धो भवेजीवः कर्ममुक्तस्तदा शिव" इति।। ८।।

च्याख्यार्थ:—न्यायके अनुसार अर्थात् दिगम्बरमतके प्रन्थोंमें प्राप्त अभिप्रायसे नव संख्याक (गिनतिमें नौ) (९) नय हैं। इनके नाम पूर्वश्लोकमें गिना चुके हैं; वहांसे जानने चाहियें। तथा उपनय तीन ही हैं, वे उपनय भी पूर्वकथित सद्भूतव्यवहारादि तीन समझने चाहियें। और अध्यात्मनामक कोई मतभेद है। उनमेंसे उस अध्यात्ममतकी शैलीके अनुसार निश्चयसे दो ही नय कहेगये हैं; उनमें एक तो निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय है। इनसे अधिक नहीं; अभेद तथा अनुपचारसे जिसके द्वारा वस्तु निश्चय करी जाती है; वह निश्चयनय है। जैसे—"जीव: शिव: शिवो जीवो नान्तरं शिवजीवयो: । १॥" "जीव शिव(सिद्ध)रूप ही है; शिव जीवरूप ही है; शिव और जीव इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है; " इस वचनमें अनुपचारसे जीव और शिवका अभेद दर्शीया गया है। और भेद तथा उपचारसे जिसकेद्वारा वस्तुका व्यवहार हो उसको व्यवहार नय कहते हैं। जैसे "कम्मबद्धो भवेज्जीव: कम्मीमुक्तस्तदा शिव: । १।" " कर्मोंसे जो बंधा हुआ होता है; वह जीव है; और जब वह जीव कर्मोंसे मुक्त होता है; तव शिवरूप है; " इस वाक्यमें कर्मबन्धनद्वारा जीव और शिवका भेद दर्शीया है।। ८॥

अथ नवसु नयेषु प्रथमो द्रव्यार्थिकनय उक्तोऽतस्तस्य भेदा दश तेषु प्रथमभेदं विव-रिषुराह ।

अब पूर्वोक्त जो नौ (९) नय हैं; उनमें द्रव्यार्थिक नय सबसे प्रथम कहागया है; इसिलये उसके दश भेद दिखाकर उन १० भेदोंमें से प्रथम भेदका विवरण करनेकी इच्छाबाल आचार्य अग्रिम स्होक कहते हैं।

सूत्रम् । द्रव्यार्थिकनयस्त्वाचो द्र्याधा समुदाहृतः । इ्युद्धद्रव्यार्थिकस्तत्र ह्यकर्मोपाधितो भवेत्॥९॥

सूत्रभावार्थः—नयोमेंसे प्रथम द्रव्यार्थिकनय जो है; वह दस प्रकारका कहागया है, उन दसों भेदोंमें कर्मकृत उपाधियोंसे रहित शुद्ध द्रव्यार्थिकनय प्रथम (पहला) है ॥ ९ ॥

व्याख्या । द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकादिक्रमेण नया नव वर्त्तन्ते तेषु आद्यः प्रथमो द्रव्यार्थिकन्य आद्यो द्राधा द्राप्रकारः समुदाहृतः । तत्र च प्रथमो द्रव्यार्थिकनयः शुद्धद्रव्यार्थिक इति अकर्मोपाधितः कर्मणामुपाधितो रहितः शुद्धद्रव्यार्थिकः कथ्यते । सङ्गव्यम् । लक्षणंत्वि-दम्—सीदित स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्रोतीति सत् उत्पाद्व्ययधौव्ययुक्तं सत्, अर्थ-क्रियाकारि च सत् । यदेवार्थिकियाकारि तदेव परमार्थसत् । यज्ञ नार्थिकियाकारि तदेव परतो-ऽप्यसिद्ति निज २ प्रदेशसमूहैरखण्डवृत्तात्स्वभावविभावपर्यायाद्ववित, द्रोष्यित, अदुद्ववित द्रव्यम् । गुणपर्यायवद्वव्यम्, गुणाश्रयो द्रव्यं वा । यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ-दवए द्र्यए दोरवयवो विकारो गुणाण संदावो द्व्यं भव्यं भावस्स भूयभावं च जं जोगं । १ । द्र-

वित तांस्तान्पर्यायान् प्राप्नोति मुश्वित वा। १। दृयते स्वपर्यायैरेव प्राप्यते मुश्वित वा। २। द्वः सत्ता तस्या एवावयवो विकारो वेति द्रव्यम्। ३। ४। अवान्तरसत्तारूपाणि द्रव्याणि मन् हासत्ताया अवयवो विकारो भवत्येवेति भावः ॥ गुणा रूपरसादयस्तेषां संद्रावः समूहो घटा-दिरूपो द्रव्यम्। ५। तथा भवनं भावस्सत्तिभीविष्यतीति भावस्तस्य भाविनः पर्यायस्य योग्यं यद्भव्यं तद्पि द्रव्यम्, राजपर्यायार्हकुमारवत्। ६। तथा भूतं हि पश्चात्कृतो भावः पर्यायो यस्य तद्पि द्रव्यमिति दिक्। तदेव द्रव्यमर्थः प्रयोजनं यस्यासौ द्रव्यार्थिकः। अस्यथे ठक् प्रत्यः। शुद्धः कमौंपाधिरहितश्चासौ द्रव्यार्थिकश्च शुद्धद्रव्यार्थिक इति।। ९।।

व्याख्यार्थः -- द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिकादि क्रमसे जो नय कहेगये हैं; उनमेंसे प्रथम नय द्रव्यार्थिक नय है; उसके दश भेद हैं, उनमें कर्मोंकी उपाधिसे शून्य प्रथम द्रव्यार्थिकनय शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहाजाता है । यहांपर "सद्रव्यम् " जो सत् है; वह द्रव्य है । जो अपने गुण पर्यायोंको व्याप्त करे सो सत् है, उत्पाद (उत्पत्ति) व्यय (नारा)धौव्य (ध्रुवता वा नित्यता)से जो युक्त हो उसको सत् कहते हैं। क्योंकि---उत्पादव्यय-थीं व्ययुक्तं सत्, यह तत्त्वार्थ शास्त्रका सूत्र है। जो अर्थ क्रियाका करनेवाला है; वह सत् कहलाता है; क्योंकि—जो पदार्थ अर्थिकयाकारक (प्रयोजनसिद्ध करनेवाला) है; वही परमार्थमें सत् है । और जो पदार्थ अर्थिकिया नहीं करता वह परसे भी असत् है। ये सब सत्के लक्षण हैं ॥ जो निज २ प्रदेशसमूहोंकेद्वारा अखण्डवृत्त स्वभाव तथा विभाव पर्यायसे द्रवता है; द्रवेगा अथवा द्रवागया सो द्रव्य है। जो गुण तथा पर्याय-वाला है; उसको द्रव्य कहते हैं; अथवा जो गुणोंका आश्रय है; वह द्रव्य कहलाता है। यही विषय विशेषावश्यक सूत्रकी वृत्तिमें कहा है कि--जो द्रवाता है, अथवा द्रवा जाता है, सत्ताका अवयव है, सत्ताका विकार हे, गुणोंका संद्राव (समूह) है; जो भावका भ-व्य है; जिसका पर्याय पहले कियागया है; सो सब द्रव्य है; अर्थात् ये सब पृथक् २ द्र-व्यके लक्षण हैं; (यह तो गाथाका भावार्थ है; और आगे इस ही गाथाकी व्याख्या करते हैं) जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त हो अथवा त्यागे सो द्रव्य है । १ । जो अपने पर्यायोंसे प्राप्त किया जाय वा छोडा जाय वह द्रव्य कहलाता है। २। द्वे नाम सत्ताका है; उसहीका जो अवयव हो सो द्रव्य है। ३। अथवा सत्ताहीका जो विकार हो उसको द्रव्य कहते हैं। ४। भावार्थ—अवान्तर (मध्यमें होनेवाले) जो सत्तारूप द्रव्य हैं; वे महासत्ताके अवयव अथवा विकार होते ही हैं । गुण जो रूप रसआदि हैं; उनका जो संद्राव (संमेलन वा समूह) घटआदिरूप पदार्थ है; वह भी द्रव्य है। पं। जो हो-गा सो भाव है; उस भावी पर्यायके योग्य जो पदार्थ है; वह भी द्रव्य है। जैसे राजकुमारमें

^{9 &}quot;इका अर्थ सत्ता धातुवोंको अनेकार्थक मानके किया है तब हु शब्दसे॥ तस्य विकारः -पा. धाइ। १३४ इस अधिकारमें" दोश्च। पा० धाइ। १६२। इस सूत्रसे यत् प्रत्यय होनेसे हु × यं = द्रो × यं = द्रव्यम्। ऐसे द्रव्य शब्द सिद्ध हुआ।

राजापर्यायकी योग्यता है; अतः वह राजकुमार राजारूप पर्यायका द्रव्य है। ६। और ऐसे ही जिसका भाव (पर्याय) पूर्वकालमें कियागया है; वह भी द्रव्य है। ७। ये सब द्रव्यके लक्षण हैं। यही पूर्व अनेक प्रकारसे व्याख्यात द्रव्य ही है; प्रयोजन जिसका उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। द्रव्यार्थिक इस शब्दमें व्याकरणकी रीतिसे प्रयोजन है; इस अर्थमें " उक् " प्रत्यय है; और उसको इक आदेश होनेसे द्रव्यार्थ + इक — होकर द्रव्यार्थिक ऐसा शब्द सिद्ध होता है। शुद्ध अर्थात् कर्मों की उपाधिसे रहित ऐसा जो द्रव्यार्थिकनय है; उसको शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते हैं॥ ९॥

अथ तस्य द्रव्यार्थिकस्य शुद्धताया विषयं दर्शयन्नाह ।

अब उस द्रव्यार्थिकनयकी शुद्धताका विषय दर्शाते हुए यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । यथा संसारिणः सन्ति प्राणिनः सिद्धसन्निभाः । शुद्धात्मानं पुरस्कृत्य भवपर्यायतां विना ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थ:— जो संसारकी पर्यायताको ग्रहण करके अन्तरङ्गमें विद्यमान शुद्ध आत्माको आगे करके कथन करता है; वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय है; जैसे संसारके प्राणी सिद्धोंके समान हैं ॥ १० ॥

व्याख्या । प्राणा द्रव्यभावभिन्नाः सन्ति एपां ते प्राणिनः । संसारो गतिचतुष्काविभीवः सोऽस्ति येषां ते संसारिणः । यथा येन प्रकारेण शुद्धात्मत्वादिलक्षणेन सिद्धसन्निभा अष्टकमिनिर्मुक्तजीवनिभा विद्यन्ते । किं कृत्वा सन्ति शुद्धात्मानं मूलभावं तथा सहजभावं शुद्धात्मानं स्वरूपं पुरस्कृत्याये कृत्वा कथं विना केन विना भवपर्यायतां भवः संसारस्तस्य पर्यायो भावस्त्ता भवपर्यायता तां विना । एतावता या चानादिकालिकी जीवस्य संसारावस्था वर्तते सा प्रस्तुतापि न गण्यते । अविद्यमानोऽपि वाह्यकारेण सिद्धाकारस्तथापि गृह्यतेऽन्तरिविद्यमानत्वान् । तदायमात्मा शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सिद्धसम एवास्तीति भावः । अत्र भावमात्र-परा द्रव्यसङ्ग्रह्माथा । मग्गणगुणठाणेहिं चउदशाहं हवंति तह अशुद्धणया । विण्णेया । संसारी सब्वे सुद्धाहु सुद्ध णया । १ ॥ १० ॥

व्याख्यार्थ:—जैसे भैव जो संसार उसका जो पर्याय अर्थात् भाव उसका जो भाव है; उसके विना अर्थात् संसारकी पर्यायताके विना शुद्ध आत्माको अर्थात् मूल भाव अथवा सहजभावरूप शुद्ध आत्माके स्वरूपको आगे करके, नरक, तिर्थक्, म-नुष्य और देव इन चारों गतियोंके अविभीवको संसार कहते हैं; वह संसार जिनके होय अर्थात् जिन जीवोंके पूर्वोक्त नरकआदि चार गतियोंमेंसे किसी एक गतिका आविभीव (प्रकटता) है; वे संसारी कहलाते (द्रव्यप्राण और भावप्राणरूप दोनों प्राण जिनके हैं; वे प्राणी हैं;) ऐसे जो संसारी प्राणी वे सिद्धोंके समान है; अर्थात् ज्ञानावरणआदि

⁹ न्यास्यां खण्डान्वयसे है परन्तु न्यास्यार्थ अच्छी प्रकारसे अर्थका वोध होनेकेलिये दण्डान्वयके अनुसार लिखा गया है।

भाठों कमोंसे रहित जीवोंके समान विद्यमान हैं। तात्पर्य यह कि—जब जीवके जो भना-दिकालसे संसारकी अवस्था विद्यमान है; उसकी तो प्रस्तुतकी भी गणना (गणती) न की जाय और वाह्य आकारसे अविद्यमान जो सिद्ध स्वरूप है; उसको अभ्यन्तरमें विद्य-मान होनेसे प्रहण करें तब यह आत्मा शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे सिद्धोंके समान ही है; यहां पर भावमात्रसे शुद्ध आत्माका बोध करनेमें तत्पर द्रव्यसङ्गहकी गाथा भी है उसका भा-वार्थ यह है; कि—चतुर्दश १४ गुणस्थान तथा चतुर्दश मार्गणस्थानके भेदसे चतुर्दश १४ प्रकारके संसारी जीव अशुद्धनयकी विवक्षासे होते हैं और शुद्धनयकी विवक्षा भावमात्रके ग्रहण करनेसे तो सब जीव शुद्ध ही समझने चाहियें। १।॥१०॥

अथ द्वितीयभेद्मुपदिशन्नाह् ।

अब दूसरे भेदका उपदेश करते हुए कहते हैं।

सत्रम् । उत्पादव्यययोगौंणे सत्तामुख्यतया परः । शुद्धद्रव्यार्थिको भेदो ज्ञेयो द्रव्यस्य नित्यवत् ॥ ११ ॥

सृत्रभावार्थ:— उत्पाद (उत्पत्ति) और व्यय (नाश) इनकी गौणता माननेसे तथा सत्ता (ध्रुव अथवा नित्यरूप)की मुख्यता माननेसे सत्तामाहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्रव्यकी नित्यताके समान समझना चाहिये ॥ ११ ॥

व्याख्या । उत्पादस्य व्ययस्य च गौणतायां तथा सत्ताया ध्रुवात्मकतायाश्च मुख्यतायामपर इति द्वितीयो भेदः गुद्धद्रव्यार्थिकस्य क्षेयः । यत उत्पादव्यययोगीँणत्वेन सत्तामाहकः ग्रुद्ध- द्रव्यार्थिको नाम द्वितीयो भेदः । २ । अस्य मते द्रव्यं नित्यं गृह्यते। नित्यं तु कालत्रयेऽप्यिव-चिलतस्वरूपं सत्तामादायैवेदं युज्यते । कथं पर्यायाणां प्रतिक्षणं ध्वंसिनां परिणामित्वेनानि-त्यत्वोपल्य्येः । परन्तु जीवपुद्गलादिद्रव्याणां सत्ता अव्यभिचारिणी नित्यभावमवलंब्य त्रिकालाभिचलितस्वरूपावितष्ठते । ततो द्रव्यस्य नित्यवदिति द्रव्यस्य नित्यत्वेन द्वितीयो भेदः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:—पर्यायादिके उत्पाद और व्ययकी गोणतासे निवक्षा करनेपर तथा ध्रुव (नित्य) स्वरूप सत्ताकी मुख्यतासे निवक्षा करनेपर अपर अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिक नयका दूसरा भेद जानना चाहिये। क्योंकि—जब उत्पत्ति और नाश गोण हुए तब केवल सत्तामात्रका ग्राहक वह नय रहा इसलिये यह द्रव्यार्थिकनयका सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नामवाला दूसरा भेद है। इस नयके मतमें द्रव्यका नित्य स्वरूपसे ग्रहण होता है। और नित्य जो है; सो भूत, भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालोंमें अनिचलितस्वरूप है; और यह त्रिकालमें अनिचलितस्वरूप नित्य सत्ताको ग्रहण करके ही ठीक होता है। क्योंकि—क्षण क्षणमें निनाशशील पर्यायोंके परिणामीपना है; अतः उन पर्यायोंने अनित्य-ताकी उपलब्धि होती है; परन्तु जीव पुद्गलआदि द्रव्योंकी जो सत्ता है; वह सदा अ-

व्यभिचारिणी है अर्थात् नित्यभावका आश्रय करके तीन कालमें अविचित्रतस्वरूप (अटलरूप) रहती है। इसलिये द्रव्यके नित्यपनेसे यह सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिक नामक द्रव्यार्थिकनयका द्वितीय मेद सिद्ध होगया ॥ ११ ॥

अथ तृतीयभेदमुपिदशनाह । अब तृतीय भेदको दशीते हुए कहते हैं ।

ं सूत्रम् । कल्पनारहितो भेदः शुद्धद्रव्यार्थिकाभिधः । तृतीयो गुणपर्यायादभिन्नः कथ्यते ध्रुवम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थ:—जो गुण तथा पर्यायसे अभिन्न है वह भेदकी कल्पनासे रहित गुद्ध द्रव्यार्थिक नामवाला द्रव्यार्थिकनयका तीसरा भेद कहा जाता है ॥ १२ ॥

व्याख्या । भेदकल्पनया रहितः कल्पनारहितस्तृतीयो भेदः शुद्धद्रव्यार्थिकनामास्ति । ३ यथा जीवद्रव्यं पुद्गहादिद्रव्यं च निजनिजगुणपर्यायेभ्यश्चाभिन्नमस्ति । यद्यपि भेदो वर्त्तते द्रव्यादीनां गुणपर्यायेभ्यस्तथापि भिन्नविषयिण्यर्पणा न कृता । अभेदाख्यैवार्पणा कृता अतःकारणाद्यद्भव्यं तत्तद्भव्यजन्यगुणपर्यायाभिन्नं तिष्ठति यदेव द्रव्यं तदेव गुणो यदेव द्रव्यं तदेव पर्यायो महापटजन्यखण्डपटवत्तदात्मकत्वात् । अत्र हि विवक्षावशाद्भिन्नाभिन्नत्वं श्रेयमिति ॥ १२ ॥

च्याख्यार्थ:—भेदकी कल्पनासे रहित होनेसे कल्पनारहित तृतीय भेद शुद्धद्रव्याधिंक नामक है; अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके तीसरे भेदका नाम "कल्पनारहित शुद्धद्रव्याधिंक है। जैसे जीव द्रव्य तथा पुद्गलआदि द्रव्य अपने अपने गुण तथा पर्यायोंसे अभिन्न
है, यद्यपि द्रव्यआदिके गुण तथा पर्यायोंसे भेद भासता है; तथापि भेदके विषयवाली अपणा नहीं की, अभेदनामक ही अर्पणा की। इस हेतुसे जो द्रव्य है; वह उस द्रव्यसे उत्पन्न होने योग्य गुण और पर्यायोंसे अभिन्नरूप स्थित है; क्योंकि—जो द्रव्य है; वही गुण है;
जो द्रव्य है; वही पर्याय है; तदात्मकपनेसे, जैसे कि—महापट (बहे वस्त्र)से उत्पन्न खण्ड पट (छोटा वस्त्र) भावार्थ—एक बहे वस्त्रको फाड़कर उसमेंसे छोटा वस्त्र निकालें तो वास्त्रवमें वह छोटे वस्त्ररूप पर्याय बहे वस्त्ररूप द्रव्यसे अभिन्न ही है; क्योंकि—वह छोटा वस्त्र
बहे वस्त्रस्वरूप ही है; ऐसे ही जितने गुण और पर्याय हैं; वे तदात्मकतासे द्रव्यक्तप ही हैं।
यहां द्रव्य और पर्यायका भेद तथा अभेद विवक्षाके वशसे जानना चाहिये अर्थात् जब
द्रव्यस्त्रपसे विवक्षा करेंगे तब तो द्रव्यपनेसे सब गुण, पर्याय अभिन्न हैं; और जब पर्यायक्रपसे विवक्षा करेंगे तब सब गुण पर्याय द्रव्यसे भिन्न हैं।। १२।।

अथ चतुर्थभेदमाह । अब चतुर्थभेदका कथन करते हैं ।

सन्त्रम् । कर्मोपाधेरशुद्धाख्यश्चतुर्थो भेद ईरितः । कर्मभावमयस्त्वात्मा क्रोधी मानी तदुद्भवात् ॥ १३ ॥ सूत्रभावार्थः कर्मोंकी उपाधिके कारण अग्रुद्धद्रव्यार्थिक चतुर्थ भेद कहागया है; क्योंकि-कर्मोंकी प्रकृतिमय होनेसे क्रोधादिकी उत्पत्तिद्वारा आत्मा, क्रोधी मानी इ-त्यादि व्यवहारयुक्त होता है ॥ १३॥

व्याख्या । कर्मोपाधेः सकाशात् कर्ममिश्रजीवद्रव्यस्याशुद्धत्वं जायते । ततः कर्मोपाधेर शुद्धद्रव्यार्थिकश्चतुर्थो भेदः कथितः । यतः कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिक इति भेदः । अस्य च लक्षणं कथयति । यथा कर्मभावमयः कर्मणां ज्ञानावरणादीनां भावाः प्रकृतयस्ते प्र-चुरा यत्रेति कर्मभावमय आत्मा ताह्मपूपो लक्ष्यते । येन कर्मणा आगत्यात्मा निरुद्धाते तदा तत्तत्कर्मस्वभावतुल्यपरिणतः सन् व्यवह्रियते । यतः क्रोधोद्याज्ञीवः क्रोधीति व्यपद्श्यते मानकर्मोद्याज्ञीवो मानीति व्यपद्श्यते । एवं यदा यद्रव्यं येन भावेन परिणमित तदा तद्रव्यं तन्मयं कृत्वा क्षेयम् । यथा लोहोऽप्रिना परिणतो यदा काले प्राप्यते तदा अग्निरूप एवोद्घाव्यते न तु लोहरूपः । एवमात्मापि मोहनीयकर्मोद्येन यदा क्रोधादिपरिणतः स्थात्त-दा क्रोधादिरूप एव बोद्धव्यः । अत एवाष्टावात्मनो भेदाः सिद्धान्ते व्याख्याता इति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थ:-- कर्मोंकी उपाधिसे अर्थात् आत्मा जब कर्मोंको ग्रहण करता है; तब वह कर्मोपाधिसहित कहाता है: और कर्मोंसे मिलित होनेसे जीवद्रव्यके अग्रद्धता उ-त्पन्न होती है, इस कारण कर्मरूप उपाधिसे अगुद्ध चोथा भेद द्व्यार्थिक कहागया है. क्योंकि कमींपाधिकी अपेक्षा रखनेसे इस चतुर्थ भेदका नाम अशुद्धद्रव्यार्थिक है। इस-का लक्षण कहते हैं; कि-जैसे कर्मभावमय जब आत्मा होता है; अर्थात कर्म जो ज्ञानाव-रण दर्शनावरणआदि हैं; उनकी जो प्रकृतियें हैं; वे जब आत्मप्रदेशमें प्रचुर (अधिक) रूपसे एकत्र हो जाती हैं; उस समय आत्मा है; वह तादक्रूप अर्थात् कर्मस्वरूप छ-क्षित होता है; अर्थात् जो जो कर्म आकर आत्माको रोकते हैं; अर्थात् आत्मा जिस २ कर्मरूपी बंधनसे बद्ध होता है तब उस उस कर्मके स्वभावके तुल्य व्यवहारमें लाया जा-ता है: क्योंकि-क्रोधके उदयसे जीवको क्रोधी कहते हैं; एवं मानकर्मके उदयसे जीव मानी कहाजाता है। इसी प्रकार जब जो द्रव्य जिस भावसे परिणत होता है तब उस-को उस भावरूप करके जानना चाहिये। जैसे अग्निमें गिराहुआ लोह जब अग्निस्वरूपसे परिणत हुआ मिलता है; अर्थात् साक्षात् अग्निके समान बन जाता है; तब उसको अग्नि-रूप ही कहते हैं: निक-लोहरूप। ऐसे ही आत्मारूप द्रव्य भी मोहनीयआदि कर्मी-के उदयसे जब कोधादिरूपसे परिणत होवे तब उस आत्माको कोधादिरूप ही जानना चाहिये। इस ही कारणसे जैनसिद्धान्तमें आत्माके आठ भेद वर्णन किये गये हैं अर्थात इस अशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे आठ कर्मोंकी उपाधिवश जीवके आठ ८ भेंद्र शास्त्रमें कहे गये हैं ॥ १३ ॥

१ जब आत्माके क्रोधादि कर्मका उदय आता है; तब आत्मा उनका खरूप ही बनजाता है; उनसे अपने खरूपको अलग नहीं करसकता किन्तु तन्मय हो जाता है; इसीसे क्रोधीआदि शब्दोंद्वारा व्यवहत होता है।

अथ पश्चमभेदमाह । अब पंचम (पांचवें) भेदका निरूपण करते हैं ।

/ सूत्रम् । उत्पादव्ययसापेक्षोऽज्ञुद्धद्रव्यार्थिकोऽग्रिमः । एकस्मिन्समये द्रव्यमुत्पादव्ययधौव्ययुक् ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थ:—उत्पत्ति और नाशकी अपेक्षासहित होनेसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक पं-चम (पांचवां) भेद कहागया है; क्योंकि—एक ही समयमें द्रव्य उत्पत्ति, नाश तथा ध्रौव्य (नित्यता)से संयुक्त है ॥ १४ ॥

व्याख्या । उत्पाद्व्ययसापेक्षः पश्चमो भेदोऽशुद्धद्रव्यार्थिको क्लेयः । यत उत्पाद्व्ययसापे-क्षः सत्तात्राहकोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः पश्चम इति । ५ । यथा एकस्मिन्समये द्रव्यमुत्पाद्व्य-यप्नौव्यरूपं कथ्यते । कथं तद्यः कटकाद्युत्पाद्समयः स एव केयूरादिविनाशसमयः । पर-न्तुं कनकसत्ता कटककेयूरयोः परिणामिन्यावर्जनीयैव । एवं सित त्रैलक्षण्यप्राहकत्वेनेदं प्रमाणवचनमेव स्थान्न तु नयवचनमिति चेन्न । मुख्यगौणभावनैवानेन नयेन त्रैलक्षण्यप्रह-णानमुख्यनयं स्वस्वार्थप्रहणे नयानां सप्तभङ्गीमुखेनैव व्यापारात् ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थ:—उत्पत्ति तथा नाशके सापेक्ष अर्थात् उत्पत्ति और नाशकी अपेक्षा रखनेवाला अशुद्धद्रव्यार्थिक पांचवां भेद जानना चाहिये क्योंकि—उत्पत्ति और व्ययके सापेक्ष तथा सत्ताका प्राहक जो है; उसको अशुद्धद्रव्यार्थिक पांचवां भेद मानागया है । ५। जैसे एक कालमें द्रव्य उत्पाद (उत्पत्ति) व्यय (नाश) तथा धोव्य (नित्य) खरूप कहा जाता है। यदि यह कहो कि—ये तीनो (उत्पाद, व्यय तथा धोव्य) खरूप एक ही कालमें तथा एक ही पदार्थमें कैसे होते हैं; तो उसकी व्यवस्था इस प्रकार है; कि—जैसे युवर्ण द्रव्यमें जो समय कटक (कड़ा) आदिरूप पर्यायकी उत्पत्तिका है; वही समय के-पूर (बाजू) आदि पूर्व पर्यायके विनाशका भी है; परन्तु कटक और केयूर दोनोंमें जो सुवर्णकी सत्ता है वह परिणामिनी नहीं है; किन्तु सुवर्णरूपता पूर्व पर पर्यायोमें एक ध्रुव (नित्य) खरूपसे विद्यमान है; अब कदाचित् ऐसी शंका करो कि—उत्पाद, व्यय और धौव्यरूपका प्राहक होनेसे यह प्रमाणवचन ही हुआ न कि—नयवचैन? सो नहीं कह सकते; क्योंकि—मुख्य तथा गौण भावसे ही इस पंचम नयकेद्वारा उत्पाद व्यय धौव्यरूप तीन लक्षणोंका प्रहण होनेसे अपने अपने अर्थके प्रहणमें मुख्य नय है; और पर अर्थमें नहीं क्योंकि—सब नयोंका सप्तभंगीनयके द्वारा ही व्यापार होता है ॥ १४॥

⁹ संपूर्णरूपसे वस्तुको सिद्ध करनेवाला प्रमाण कहलाता है; अतः यहां जब द्रव्यके तीनों खरूपोंका कथन करिया तो यह प्रमाण है।

२ नय वस्तुके एक ही अंशको मुख्यतासे कहता है।

३ प्रश्नत नय भी वस्तुकी अनेकान्तखरूपता दर्शानेकेलिये सप्तभंगीको लेकर ही प्रश्नत होता है ।

अथ षष्ठभेदमाह ।

अब द्रव्यार्थिकनयका षष्ठ (छठा) भेद कहते हैं।

सूत्रम् । भेदस्य कल्पनां गृह्वन्नशुद्धः षष्ठ इष्यते ।

यथात्मनो हि ज्ञानादिगुणः ग्रुद्धः प्रकल्पनात् ॥ १५ ॥

स्त्रभावार्थः—भेदकी कल्पनाको ग्रहण कहते हुए अगुद्ध द्रव्यार्थिकनामा छठा ६ भेद माना जाता है, जैसे आत्माके ज्ञानादि गुद्ध गुणोंकी कल्पना भेदको कहती है १५ व्याख्या। अगुद्धद्रव्यार्थिकः षष्ठो भेदो भेदस्य भेदभावस्य कल्पनां गृह्णन् सन् जायते। यथा हि ज्ञानाद्यो गुणाः गुद्धा आत्मनः कथ्यन्त इत्यत्र षष्ठीविभक्तिभेदं कथयति। भिक्षोः पान्त्रमितिवन्। परमार्थतस्तु गुणगुणिनोभेदं एव नास्ति। तस्मात्किल्पतो भेदोऽत्र झेयो न तु साहजिकः।। १५॥

व्याख्यार्थ:—मेदभावकी कल्पनाको ग्रहण करता हुआ अशुद्धद्रव्यार्थिक छठा ६ भेद उत्पन्न होता है; जैसे कि—आत्माके शुद्ध ज्ञानादि गुण कहेजाते हैं; "आत्मनः गुणाः" (आत्माके गुण) यहांपर पष्ठी विभक्ति भेदको कहती है; जैसे कि—'' भिक्षोः पात्रम् " भिक्षुका पात्र यहांपर भिक्षुकसे पात्रको जुदा दिखलाती है; परन्तु यथार्थमें भिक्षुकके पात्रके समान ज्ञानादि गुण तथा गुणी आत्माके भेद नहीं है, इसलिये यहां कल्पित भेद समझना चाहिये न कि—स्वाभाविक क्योंकि—गुण और गुणी कहीं जुदे २ नहीं मिलते॥ १५॥

अथ सप्तमभेदं कथयति ।

अब सप्तम (सातवें) भेदको कहते हैं।

सूत्रम् । अन्वयी सप्तमश्चैकस्वभावः समुदाहृतः । द्रव्यमकं यथा प्रोक्तं गुणपर्यायभावितम् ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थ:—अन्वयी द्रव्यार्थिक सप्तम भेद कहा गया है; जैसे कि-गुण तथा पर्यायोंसे युक्त द्रव्य एक ही स्वभाव कहा है ॥ १६॥

व्या०—अन्वयद्रव्यार्थिकः सप्तमो भेद एकस्वभाव उक्तः। यथा द्रव्यं चैकं गुणैः पर्या-यैश्च भावितं वर्त्तते द्रव्यमेकं गुणपर्यायस्वभावमस्ति। गुणेषु रूपादिषु पर्यायेषु कम्बुप्रीवादिषु द्रव्यस्य घटस्यान्वयोऽस्ति। यतस्तत्सन्त्वे तत्सन्त्वमन्वयः। अथवा सित सद्भावोऽन्वयो यथा सित दण्डे घटोत्पित्तः।अत एव यदा द्रव्यं ज्ञायते तदा द्रव्यार्थादेशेन तद्नुगतसर्वगुणपर्याया अपि ज्ञायन्ते। यथा सामान्यप्रसासन्त्या परस्य सर्वा व्यक्तिरप्यवगन्तव्या। तथात्रापि ज्ञेयमित्यन्वयद्वव्यार्थिकः सप्तम इति ॥ १६॥

व्याख्यार्थ:—अन्वयद्रव्यार्थिक नामवाला सप्तम भेद एकस्वभाव कहा गया है; जैसे एक ही द्रव्य गुण और पर्यायोंसे युक्त है; अर्थात् एक द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव है। रूप आदिक गुणोमें और कंबुग्रीवआदि पर्यायोमें द्रव्य जो घट है; उसका अन्वय है; क्योंकि—

जिसके होते जिसकी विद्यमानता हो अर्थात् गुण पर्यायोंके रहनेपर घटआदि द्रव्यका जो अवश्य रहना है; वह अन्वय कहलाता है; अथवा जिसके रहते जिसकी उत्पत्ति हो वह अन्वय है; जैसे दंडकी सत्तामें घटकी उत्पत्ति होती है; "अर्थात् दृण्ड कारण होय तब ही तो घट (कार्य) उत्पन्न हो अन्यथा नहीं" यह भी अन्वय कहा जाता है। द्रव्यस्व-रूपका संपूर्ण गुण पर्यायोंमें अन्वय है; इसी कारण जब द्रव्यस्वरूप ज्ञात होता है; तब द्रव्यार्थके आदेशसे उस द्रव्यके साथ अनुगत जितने गुण और पर्याय हैं; वे भी जाने जाते हैं। जिस प्रकारसे कि—सामान्यकी प्रत्यासत्तिसे किसी एक घटआदि व्यक्तिका ज्ञान होने-से उस जातिसहित संपूर्ण व्यक्तियें जानी जाती हैं। ऐसे ही यहां भी एक स्वभावके अन्वयसे यह अन्वय द्रव्यार्थिक सप्तम नयभी जानलेना चाहिये॥ १६॥

अथाष्ट्रमभेदोत्कीर्त्तनमाह । अब अष्टम भेदके कीर्तनको कहते हैं।

सूत्रम् । स्वद्रव्यादिकसङ्घाही श्वष्टमो भेद आहितः । स्वद्रव्यादिचतुष्केभ्यः सन्नर्थो दृइयते यथा ॥ १७॥

सूत्रभावार्थ:—स्वकीय द्रव्य क्षेत्रादिका ग्राहक होनेसे स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक यह अष्टम भेद कहागया है; जैसे स्वद्रव्यादि चतुष्ट्यकी अपेक्षासे घटआदि पदार्थ सदृपसे ही हृष्ट होता है ॥ १७ ॥

व्याख्या—खद्रव्यादिप्राहको द्रव्यार्थिकोऽष्टमो भेदः कथितः। यथार्थो घटादिः खद्रव्यतः खक्षेत्रतः खकालतः खभावतः सन्नेव प्रवर्त्तते। खद्रव्याद्धटः काञ्चनो मृन्मयो वा ॥ १॥ खक्षेत्राद्धटः पाटलिपुत्रो माथुरो वा । २। खकालाद्धटो वासन्तिको प्रैष्मो वा ।३। खभावा-द्धटः इयामो रक्तो वा । ४। एवं चतुष्विपि घटद्रव्यस्य सत्ता प्रमाणसिद्धैवास्ति। खद्रव्यादि-प्राहको द्रव्यार्थिकोऽष्टमो भेद इति ज्ञेयम् ॥ १७॥

व्याख्यार्थ:—अपने द्रव्यआदिको ग्रहण करनेवाला अष्टम द्रव्याधिक भेद कहा गया है। जैसे घटआदि पदार्थ अपने द्रव्यसे १, अपने क्षेत्रसे २, अपने कालसे ३, तथा अपने स्वभावसे सत् (विद्यमान) रूप ही प्रवृत्त होताहै। स्व (निज) द्रव्यसे घट सुवर्ण-का बनाहुआ है; अथवा मृतिकासे बनाहुआ है; १, अपने क्षेत्रसे घट पटनेका वा मथुराका है; २, अपने कालसे घट वसन्त ऋतुका अथवा ग्रीष्म ऋतुका है; ३, अपने भावसे घट स्थाम वा रक्त है; ४, ऐसे स्वकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव इन चारोमें घटद्रव्यकी सत्ता प्रमाणसे सिद्ध है। इसलिये "स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय" यह अष्टम भेद जानना चाहिये॥ १७॥

⁹ सबपर रहनेवाला सामान्य धर्म, तहूप प्रत्यासत्ति अर्थात् एक प्रकारकी व्यक्ति अर्थात् जैसे एक प्रकारकी घटआदि व्यक्तियोंपर रहनेवाले तिर्यक् सामान्यसे सब व्यक्तियोंका बोध होता हैं; ऐसे ही हव्यरूपके अन्व-यसे सब गुण पर्यायोंका ज्ञान होता है ॥

अथ नवमभेदमाह । अब नवम भेदको कहते हैं।

सूत्रम् । परद्रव्यादिकग्राही नवमो भेद उच्यते । परद्रव्यादिकेभ्योऽसन्नर्थः संभाव्यते यथा ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थ:—परद्रव्यभादिका ग्रहण करनेवाला नवम ९ भेद कहा जाता है, जैसे परद्रव्यभादिकी अपेक्षासे पदार्थ (घट) असत् रूपसे संभावित होता है ॥ १८ ॥

व्याख्या तेषु द्रव्यार्थादिषु परद्रव्यादिमाहको द्रव्यार्थिको नवमः (९) यथार्थो घटादिः परद्रव्यादिचतुष्ट्यभ्योऽसन् वर्त्तते । घटापेक्ष्या परद्रव्यं पटोऽतस्तन्त्वादिभ्यो घटोऽसन्निस्त । १। परक्षेत्राद्यथा घटो माथुरो वर्त्तते न काशीजः किन्तु घटक्षेत्रं मथुरा तदपेक्षया काशीभिन्ना अत एव परक्षेत्रात्काशीलक्षणादसन् घटः ।२। परकालाद्यथा घटो वसन्ते निष्पन्ने निष्पने निष्पने निष्पने निष्पने निष्पने निष्पने निष्पने । वसन्तिको घटः, वसन्तापेक्ष्या ग्रैष्मो भिन्नस्ततो ग्रीष्मकालजाद्वासन्तिको घटोऽसन् । ३। परमावाद्विविधतदयामादिभावापेक्षया रक्तो घटोऽसन्वर्तते । ४। एवं परद्रव्यादिनमाहको द्रव्यार्थिको नवमः । ९।। १८।।

च्याख्यार्थ:—उन द्रव्यार्थआदिमें परद्रव्यआदिका ग्राहक होनेसे परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनामक नवम भेद है। जैसे घटआदि पदार्थ परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-रूप चतुष्ट्यकी अपेक्षासे असत् (अविद्यमान)रूप ही वर्तता है। घटकी अपेक्षासे परद्रव्य पट है, इस हेतुसे तन्तु (सूत)आदिसे घट असत् है; अर्थात् पटादिरूपसे घट नहीं है। १। इसी रीतिसे परक्षेत्रकी अपेक्षासे भी जैसे घट मथुरामें बना हुआ है; न कि—काशीमें उत्पन्न हुआ और घटका क्षेत्र(स्थान)जो मथुरा है; उसकी अपेक्षा काशी भिन्न है; इस ही कारण काशीरूप जो परक्षेत्र है; उसकी अपेक्षासे घट नहीं है। २। परकालकी अपेक्षासे जैसे घट वसन्तकालमें उत्पन्न हुआ इसकारण घट वासन्तिक हुआ और इस वसन्त ऋतुकी अपेक्षासे ग्रीष्म ऋतु भिन्न है; अतः ग्रीष्म(गर्मी)के—कालमें उत्पन्न हुए घटसे वसन्त समयमें उत्पन्न हुआ घट असत् है। ३। ऐसे ही परभावसे भी विवक्षित स्थामआदि भावकी अपेक्षासे रक्त घट असत् है। १। ऐसे परद्रव्यआदिका ग्राहक नवमां द्रव्यार्थिकनय है।। १८॥

अथ दशमभेदोत्कीर्त्तनमाह ।

अब दशम भेदका कथन करते हैं।

⁹ सप्त भंगोमें स्यादिस्त और स्यानास्तिका निरूपण प्रथम करचुके हैं, उसका यही अभिप्राय है; कि ख-कीय द्रव्यादिकी अपेक्षासे तो घट है; परन्तु परकीय द्रव्यादिकी अपेक्षासे घट नहीं है; अर्थात् पदार्थके खरूपसे जैसे अस्तित्व पदार्थका खरूप भासता है; ऐसे ही परकीयरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे नास्तित्व भी पदार्थका खरूप ही है, यही स्याद्वादका रहस्य है।

२ जैसे परद्रव्यरूपसे घटकी असत्ताका भान होता है; ऐसे परकाल जो ग्रीष्म है; उसकी अपेक्षासे घट नहीं है, अर्थात् घटकी अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तो सत्ता है; और परद्रव्यादि चतुष्ट्यसे असत्ता है।

सूत्रम्। परमभावसङ्घाही दशमो भेद आप्यते। ज्ञानस्ररूपकस्त्वात्मा ज्ञानं सर्वत्र सुन्दरम्॥१९॥

सूत्रभावार्थः---परमभावका संग्राही यह द्रव्यार्थिकनयका दशम भेद प्राप्त है; जैसे कि-आत्मा ज्ञानस्वरूप है; क्योंकि-आत्माके सब गुणीमें सारभूत गुण ज्ञान ही है॥१९॥

व्याख्या—परमभावसङ्घाही परमभावप्राहको दशमो भेदः कथितः। १०। यथा ज्ञान-स्वरूपक आत्मा ज्ञानस्वरूपी कथितः। दर्शनचारित्रवीयंलेश्यादयो ह्यात्मनो गुणा अनन्ताः सन्ति, परन्तु तेषु एकं ज्ञानं सारतरं वर्त्तते। अन्यद्रव्येभ्य आत्मनो भेदो ज्ञानगुणेन दर्शयि-ष्यते तस्मात्कारणाच्छीद्योपस्थितिकत्वेनात्मनः परमस्वभावो ज्ञानमेवास्ते । इत्थमन्येपामपि परमभावा असाधारणगुणा प्रहीतव्याः। परमभावप्राहको द्रव्यार्थिकदशम इति । अत्रानेक-स्वभावानां मध्ये ज्ञानात्व्यः परमस्वभावो गृहीत इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः॥ १९॥

व्याख्यार्थ: परमभावका संग्रहण करानेवाला होनेसे परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक यह दशम भेद कहागया है; जैसे आत्मा ज्ञानम्बरूपी कहा है, यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य तथा लेश्याआदि आत्माके अनन्त गुण हैं; परन्तु उन सबमें एक ज्ञान गुण सबसे अधिक सारभूत है; क्योंकि हम अन्यद्रव्योंसे आत्माका भेद ज्ञानगुणसे ही दशीवेंगे, इस हेतुसे तथा सब गुणोमेंसे शीघ्र उपस्थित एक ज्ञान गुणकी ही होती है; इसलिये आत्माका परम (सर्वोत्तम) खभाव ज्ञान ही है। इसी रीतिसे अन्य द्रव्योंके भी असाधारण गुणरूप परम भावोंका ग्रहण करना चाहिये। इसलिये यह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक दशम १० भेद है। इस नयमें आत्माके अनेक खभावोंके बीचमेंसे ज्ञाननामक परम खभाव ग्रहण किया गया है॥ इस प्रकार नो नयोंमें प्रथम जो द्रव्यार्थिक है; उसके दश भेदोंका स्वरूप है॥ १९॥

अथाध्यायसमाप्तौ ज्ञानस्य मोक्षहेतोः प्रशंसामाह ।

अब पंचम अध्यायकी समाप्तिमें मोक्षका साक्षात् हेतु जो ज्ञान है; उसकी प्रशंसा कहते हैं।

सूत्रम् । ज्ञानारूयमेतन्मकरन्द्मिष्टं भव्यालयो वीतभया निपीय ॥ अहत्कमाम्भोजभवं सुगन्धं स्वभावसौहित्यमवाप्नुवन्ति ॥२०॥

सूत्रभावार्थ:—भव्य पुरुषरूपी भ्रमर सबको इष्ट श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंसे उत्पन्न, अत एव अतिसुगन्धताके धारक इस ज्ञानरूपी मकरन्द (पुष्परस)को निर्भय होके पीकर निजभावरूपी तृप्तिको प्राप्त होते हैं॥ २०॥

व्याख्या—भाव्यालयः भवाय अही भव्यास्त एवालयो भ्रमरा एतदुत्कृष्टज्ञानाल्यं मक-रन्दं मरन्दं निरीय पीत्ना स्वभावसीहित्यं स्वस्य आत्मनो भावः परमभावस्तदृपं सौहित्यं तृप्ति-स्तदवाप्नुवन्ति । कीदशा भव्यालयः वीतभया वीतं गतं भयं येषान्ते वीतभया दिवानिशमा-कस्मिकसाध्वसरहिताः कीदङ्मकरन्दमिष्टं वहभं भवविपाकत्वेन परमरुचिप्रदम् । पुनः कीटङ्मकरन्दमह्त्कमाम्भोजभवमर्हतां श्रीतीर्थंकराणां क्रमाश्चरणास्त एवाम्भोजानि कमलानि तेभ्यो भव उत्पत्तिर्यस्य तद्हृत्कमाम्भोजभवं जिनेश्वरचरणपङ्कजसंभवम् । पुनः कीटक् सुगन्धं शोभनो गन्धः आमोदो यस्य तत्सुगन्धिमिति पद्यार्थः। यथालयोऽम्भोजनवं सुगन्धिमष्टं मकरन्दं निपीय सौहित्यमवाप्नुवन्ति । तथा भव्या एतद्ज्ञानाख्यं परमभाविष्टं निपीय स्वभावमवाप्नुवन्ति । अन्यद्विशेपणस्तुल्यत्वं ज्ञेयम् । भव्यानामलिसादृश्यं ज्ञानस्य च मकरन्दसादृश्यं च युक्तोपमात्वं, जिनकमे कमलोपमान् साधम्यत्या चेत्यपि वोध्यम् । आसन्नसिद्धिकाः, परमक्षचिपरा इहासुत्रफलविरागा, इन्द्रियमात्रविपयावशा, नित्यसंवेगशान्तहृदया, विपाकलव्धनिसर्गवोधोदयेन परमभावेन ज्ञानेनाशेपकलुपकर्मसन्तानिर्नाशन्यविष्यावशा, वित्यसंवेगशान्तहृदया, विपाकलव्धनिसर्गवोधोदयेन परमभावेन ज्ञानेनाशेपकलुपकर्मसन्तानिर्नाशन-प्रकृतिशुद्धशुक्तुध्याननैर्मल्यविधृतशेषकर्मप्रकृतिशुभतयोत्कर्माणो, निजभावमनन्तचतुष्टयात्मकसौहित्यसंपूरितमनसं शिवावासमासाद्यन्तीति भावः ॥ २०॥

इति श्रीकृतिभोजविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां पञ्चमोऽध्यायः।

व्याख्यार्थ:---गया है भय जिनका वह वीतभय अर्थात् रात्रि दिन आकस्मिक भयसे रहित भव्यालि अर्थात मोक्षके अधिकारी भव्यजनरूपी भ्रमर, इष्ट (प्यारा) अर्थात भवकी विपाक-तासे उत्कृष्ट रुचिका देनेवाला, और श्रीजिनेन्द्रके चरणरूपी कमलोंसे जिसकी उत्पत्ति है: ऐसा तथा श्रेष्ट गन्धके धारक इस उत्कृष्ट ज्ञाननामक मकरन्द्(पुप्परस)को पीकर अपने आत्माका जो परमभावरूप सौहित्य (तृप्ति) है; उसको प्राप्त होते हैं; इस प्रकार पद्यका अर्थ है; तात्पर्य इसका यह है; कि-अमर जैसे कमलसे उत्पन्न इष्ट मकरन्दको पान-करके परमत्तिको पाते हैं; ऐसे ही भव्य जन इस ज्ञाननामक इष्ट परमभावको पीकर स्वभा-वको प्राप्त होते हैं। अन्य सब विशेषणोंसे ज्ञान तथा मकरन्दकी तुल्यता समझ लेनी चा-हिये । और भव्योंके भ्रमरका सादृश्य और ज्ञानको मकरन्द्का सादृश्य जो दिया है; यह उपमाके योग्य ही है। तथा जिन भगवान्के चरणोंके कमलकी जो उपमा दी है; सो भी साधर्म्यसे ही है: यह भी जानना चाहिये। समीप है; मुक्ति जिनकी ऐसे तथा ज्ञानकी प्राप्तिमें परम प्रीतिके धारक, इस लोक और पर लोकसम्बंधी खर्गादिकोंके सुखरूप फ-लोमें रागरहित, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी आधीनतासे मुक्त, निरन्तर संवेगसे शान्त-हृदयके धारक, विपाकसे प्राप्त स्वाभाविक ज्ञानके उदयरूप परम भाव जो ज्ञान है; उस-करके संपूर्ण मलिन कर्मोंके घाती या कर्मोंके नारा करनेसे प्रकट हुवा जो शुद्ध शुक्रध्यान उसकी निर्मलतासे नष्ट करी है; वाकिके कर्मोंकी अर्थात् चार अघाती या कर्मोंकी प्रकृति-ह्मप शुभश्रेणी जिन्होंने और अत एव कर्मरहित ऐसे भव्यजन अपने भावको अर्थात् अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनन्त वीर्यरूप अनन्तचतुष्टयलक्षणतृप्तिसे भरेहुए, अंतरहित ऐसे मोक्षस्थानको प्राप्त होते हैं; यह भाव है ॥ २०॥

इति श्रीपण्डितठाकुरप्रसादशास्त्रिविरचितभाषाटीकासमल ङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठाध्याये पर्यायार्थिकनयं विवृणोति । तत्रादौ पर्यायार्थिकः षड्विघोऽतस्तमेव कीर्त्त-यन्नाह । तत्रापि नमस्कारगर्भितं जिनवाक्यस्वरूपं प्ररूपयति ।

अब षष्ठ(छटे) अध्यायमें पर्यायार्थिकनयका विवरण करते हैं; उसमें आरंभमें पर्यायार्थिकके ६ भेद हैं; उनको ही दिखाते हैं, उसमें भी नमस्कार गार्भित जिनेश्वरकी वाणीके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

सूत्रम् । एकाप्यनाद्याखिलतत्त्वरूपा, जिनेशगीर्विस्तरमाप तर्कैः । तत्राप्यसत्यं त्यज सत्यमङ्गी, क्रुरु त्वयं वीयहिताभिलाषिन् ।

सूत्रभावार्थ:—यद्यपि अनादि तथा संपूर्ण तस्त्रोंको धारण करनेवाली जिनबाणी एक ही है; तथापि तर्कोंसे विस्तारको प्राप्त होगई अर्थात् अनेकरूप धारण करिलये हैं; अतः हे निज भात्माके हितको चाहनेवाले भव्य ! उस दिगम्बर मतमें भी जो असत्य है; उ-सका तो त्याग कर और जो सत्य है; उसको स्वीकार कर ॥ १ ॥

व्याख्या—एकापि जिनेशगीरहें द्वाणी अहेन्मुखान्निर्गच्छमाना अद्वितीया यथाभाषितं तथा श्रूयमाणा तथा अनाद्या आदिरहिता एकेन तीर्थक्कता यदुपिट्टं तद्नेकेषां पूर्वपूर्वतर-तीर्थक्कतामिष तथेव निरूप्यमाणत्वादादिरहिता। पुनः कीदृशी अखिलतत्त्वरूपा समस्त-तत्त्वमयी तर्केविचारै बहुभेदतां प्राप बहुप्रकारै बहुधा विस्तृता। यतो दिग्वाससां मतमिष जिनमतं धृत्वेतादृशनयानामनेकाकारतां प्रवर्त्तयति। अतस्तन्मतेऽपि यद्विमृश्यमानं सत्यं जायते तदेवाङ्गीकुरु, यचासत्यं तत्सर्वमिष त्यज स्वयमात्मना हे स्वीयहिताभिलाषिन् ! निजिहितकाङ्किन् ! शब्दान्तरत्वेन तन्मतमिष न द्वेपविषयीकर्त्तव्यम्। सर्वमप्यर्थेकत्वविवक्षया समञ्जसमेवेति॥ १॥

व्याख्यार्थ:—श्रीजिनेश अर्थात् अर्हत् भगवान्के मुखारिवन्दसे निःस्त वाणी एक (अद्वितीय) रूप ही है; अर्थात् जिस प्रकार श्रीजिनेश्वर भगवान्ने भाषण किया उसी प्रकारिस श्रूयमाण (सुननेमें) चली आती है; तथा अनादि अर्थात् आदिरिहत है; क्योंकि—एक तीर्थकरने जो उपदेश किया है; वह ही अनेक पूर्व पूर्व कालके जिनेश्वरोंने भी निरूपण किया है। पुनः वह जिनेशवाणी कैसी है; कि—संपूर्ण तत्त्वमयी है; अर्थात् उसमें सब तत्त्वोंका निरूपण है; तथापि अनेक प्रकारके तर्कों (विचारों) से अनेक भेदों को प्राप्त हुई है; अर्थात् अनेक प्रकारके तर्कों से बन्ति प्रति हुई है; क्योंकि—दिगम्बिरयोंका जो मत है; वह भी जिनमतको धारण करके इन द्रव्यार्थिकादि नयोंकी अनेक आकारताको प्रवृत्त करता है; इस कारण हे निजिहताभिलाषी भव्यजनो ! उनके मतमें भी जो विषय विचाराहुआ सत्य हो अर्थात् विचार करनेपर जो तुमको सत्य प्रतीत हो उसीको स्वयं भर्थात् अपने आत्मासे स्वीक़ार करो और जो उनके मतमें असत्य है; उस सबको त्यागो । शब्दभेद होनेसे दिगम्बरोंके मतसे भी द्वेष न करना चाहिये क्योंकि—अर्थके एकत्वकी विवक्षासे तो उनका भी सब कथन युक्त ही है ॥ १॥

अथ पर्यायार्थिकषड्भेदानाह । अब पर्यायार्थिकनयके ६ भेदोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकषड्भेदस्तत्राद्योऽनादिनित्यकः। पुद्गलानान्तु पर्यायो मेक्कौल इवाचलः॥२॥

सूत्रभावार्थ:—पर्यायार्थिक नय ६ भेदों सिहत है; उनमें पर्यायार्थिकका प्रथम भेद अनादिनित्यशुद्धपर्यायार्थिक है; जैसे पुद्गलोंका पर्याय मेरु पर्वतकी तरह अचल (अनादि नित्य)है ॥ २ ॥

व्याख्या। पर्यायाधिकश्चासौ षद् भेद्श्च पर्यायाधिकषद् भेदः पर्यायाधिको नयः पट् प्रकार इत्यर्थः तत्र तेषु पट्सु भेदेषु प्रथमो भेदोऽनादिनित्यशुद्धपर्यायाधिकः कथ्यते। न विद्यत आदिर्यस्थानादिः पूर्वकल्पनारहितः, उत्पत्त्यभावान्नित्य एव नित्यकः, "स्वार्थे कः" सदैकक्त्यभावोऽनश्चरत्वात्। अनादिश्च नित्यकश्चेति द्वन्द्वः। अयं च शुद्धपर्यायाधिकः प्रथमः। क इवाचलो भेरुरिव। यथा भेरुः पुद्रलपर्यायेण प्रवाहतोऽनादिनित्यकोऽस्ति, असंख्यातकाले अन्योन्यपुद्रलसंक्रमेणापि संस्थानतः स एव भेरुर्वत्तते। एवं रत्नप्रभादीनामपि पृथ्वीपर्याया ज्ञातन्या इति।। २।।

च्याख्यार्थ:—पर्यायार्थिकरूप जो षड्भेद इस प्रकारसे यहांपर कर्मधारय तत्पुरुष समास है; भावार्थ-पर्यायार्थिक वहा जाता है; नहीं है आदि जिसका उसको अनादि कहते हैं; पूर्व कल्पनाश्च्य होनेसे यह अनादि कहागया है; तथा उत्पत्तिके अभावसे यह नित्य कहागया है; नित्य ही जो है, उसको नित्यक कहते हैं; "नित्य एव नित्यकः" यहांपर खार्थ (नित्य शब्दकं अर्थ) में क प्रत्यय है, अर्थात् अनिनाशी होनेसे जो सदा एक स्वभाव है, वह नित्यक है; अनादि और नित्यक जो होय सो अनादिनित्यक है; यहांपर द्वनद्व समास है। यह शुद्ध पर्यायार्थिक प्रथम भेद है। किसके समान है; कि मेरु पर्वतके समान, जैसे मेरु पर्वत पुद्ध उपायि प्रवाहद्वारा अनादि और नित्य है, अर्थात् असंख्यात कालमें परस्पर पुद्ध लोका संक्रम होनेपर भी संस्थानसे वह ही मेरु है; न कि—अन्य। इसी प्रकार रक्षप्रभा भूमिआदि पर्याय भी नित्य तथा अनादि समझने चाहियं॥ २॥

अथ द्वितीयो भेदः पर्यायार्थिकस्य कथ्यते । अब पर्यायार्थिकका द्वितीय भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकः सादिर्नित्यः सिद्धस्ररूपवत् ।

सूत्रभावार्थः—सिद्धस्वरूपके तुत्य "सादिनित्यपर्यायार्थिक" यह पर्यायार्थिकनयका द्वितीय भेद है।

व्याख्या । पर्यायार्थिको द्वितीयः सादिरादिसहितः पुनर्नित्यःकिंवत् सिद्धस्वरूपवत् । यथा

सिद्धस्य पर्यायः सादिरस्त्युत्पत्तिमत्त्वात् । सर्वकर्मक्षयासिद्धपर्याय उत्पन्नः यस्तु नित्योऽवि-नश्वरत्वात् । सिद्धपर्यायः सदाकालावस्थितो लभ्यते । राजपर्यायसमं सिद्धपर्यायद्रव्यं भावनीयम् ।

च्याच्यार्थ:—द्वितीय पर्यायार्थिक सादि अर्थात् आदिसहित है; और सिद्धस्वरूपके समान नित्य है, जैसे उत्पत्तिमान् होनेसे सिद्धका पर्याय सादि है; यद्यपि संपूर्ण कर्मोंके क्षयसे सिद्ध पर्याय उत्पन्न हुआ है; तथापि वह अविनाशी होनेसे नित्य है; क्योंकि—सिद्ध पर्याय सदा कालमें अवस्थितरूप मिलता है, इसिलये राज पर्यायके समान सिद्धपर्याय द्वव्यकी भी भावना करनी चाहिये।

अथ तृतीयपर्यायार्थिकः ऋोकार्धेन पुनरमेतनऋोकार्धेनाह ।

अब तृतीय श्लोकके उत्तरार्द्धसे तथा चतुर्थश्लोकके पूर्वार्द्धसे पर्यायार्थिकका तृतीय भेद कहते हैं।

स्त्रम् । सत्तागौणतयोत्पाद्व्यययुक् सद्नित्यकः ॥३॥ एकस्मिन्समये यद्वत्पर्याया नश्वरो भवेत् ।

मूत्रभावार्थः—सत्ताको गौण माननेसे उत्पत्ति नाशसहित अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक यह तृतीय भेद है। ३॥ जैसे एक समयमें जिस पर्यायकी उत्पत्ति होती है; उसका समयानतरमें नाश भी होता है; अर्थात् एक समयमें पर्याय नाशशील भी है।

व्याख्या । सत्तागौणतया ध्रुवत्वेनोत्पाद्वययप्राहकः सद्नित्यकः संश्वासावनित्यकश्चा-नित्यग्रुद्धपर्यायार्थिकः कथ्यते । सन्छव्देन श्रुद्धमित्यर्थस्तद् अनित्यग्रुद्धपर्यायार्थिको भवति । कीदृश उत्पाद्वययपुक् उत्पाद्श्च व्ययश्चोत्पाद्वययो ताभ्यां युक् सिहतः । सतो हि वस्तुन उत्पाद्व्यययोः पर्यायेण भवतस्त्रसात्सत्तागौणतया सत्ताया अप्राधान्येन, उत्पाद्व्यययोः प्राधान्येन "अनित्यग्रुद्धपर्यायार्थिकः "॥ ३॥ तत्र हष्टान्तमाह ॥ यथैकस्मिनसमये पर्या-यो नश्चरः पर्यायो विनाशी भवेत । यद्वच्छव्दः यथा पर्यायवाचकः । अत्र हि नाशं कथयतः पर्यायस्योत्पादोऽप्यागतः परं ध्रोव्यं तु गौणत्वन्न न द्शितम् । प्राधान्याप्राधान्ययोः प्राधान्य-विधिवलीवान् । तस्माद्यस्य प्रधानत्वं तस्यैवोत्पत्तिनाशयोः समावेशः । सत्ता हि ध्रुवे नाशे च विचरन्त्यात्मनो गौणत्वव्यपदेशिवर्त्तमानत्वमुभयत्र निश्चिपतीति ।

व्याख्यार्थ:—सत्ताको गौण मानकर अर्थात् अध्वत्वका आरोप करके उत्पाद तथा व्यय (उत्पत्ति और नाश)का प्राहक सदिनत्य अर्थात् अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक तृतीय भेद कहाजाता है; "सदिनत्य" यहांपर जो सत् शब्द है; उसका शुद्ध यह अर्थ करते हैं; और नित्य अर्थ नहीं करते हैं; तब अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक यह अर्थ हुआ। कैसा है; यह उत्पाद और व्यय इन दोनों करके सिहत है; क्योंकि—विद्यमान वस्तुका उत्पाद तथा नाश पर्यायसे होता है; इसिलिये सत्ताकी अप्रधानतासे और उत्पाद तथा व्ययकी प्रधानतासे अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक यह तृतीय भेद कहा गया॥ ३॥ इसी विषयमें अग्रिम श्लोकके

पूर्वार्द्धसे दृष्टान्त कहते हैं; इस फोकमें 'यद्वत्' यह शब्द यथा (जैसे) शब्दके अर्थका वाचक है; इसिलये जैसे एक समयमें पर्याय विनश्वर (विनाशशील) होता है, यहांपर पर्यायका नाश कहतेहुएके पर्यायका उत्पाद भी आगया अर्थात् जैसे एक समयमें पर्यायका नाश होता है; ऐसे ही एक समयमें उसकी उत्पत्ति भी होती है; परन्तु ध्रोव्य(नित्यत्व) को तो गौणतासे नहीं दृशित किया क्योंकि—''प्रधान तथा अप्रधान इन दोनोंमें प्रधानविधि अधिक बलवान् होती है'' इस हेतुसे जिसकी प्रधानता है; उसीका उत्पत्ति और नाशमें समावेश है; और सत्ता जो है; वह तो ध्रुव और नाशमें विचरती हुई पर्यायकी उत्पत्ति तथा नाशदशामें अपने गोणत्वव्यपदेशमें वर्त्तमानताको निक्षिप्त करती है ॥ ३॥

अथ चतुर्थभेदमुपदिशन्नाह ।

अब चतुर्थ भेदका उपदेश करते हैं।

सूत्रम् । सत्तां गृह्णत् चतुर्थाख्यो नित्योऽशुद्ध उदीरितः ॥ ४ ॥ यथोत्पादव्ययभीव्यरूपै रुद्धः स्वपर्ययः ।

सूत्रम् । एकस्मिन्समये-

सूत्रभावार्थः—सत्ताको ग्रहण करता हुआ नित्य अगुद्ध पर्यायार्थिक चोथा भेद कहागया है ॥ ४ ॥ जैसे उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यरूप तीनों लक्षणोंसे रुद्ध स्वकीय पर्याय एक समयमें है ॥

व्याख्या। सत्तेति। सत्तां ध्रुवत्वं गृह्णन्नङ्गीकुर्वन चतुर्थाख्यश्चतुर्थो भेदो नित्याशुद्धपर्याया-र्थिक उदीरितः कथित इति स्रोकार्थः ॥ ४ ॥ अथामुमेव दृष्टान्तेन द्रुढयति। यथैकसमय-मध्ये पर्यायो रूपत्रययुक्त उत्पाद्व्ययधौव्यलक्षणै रुद्धः । किं च कोऽपि पर्यय, उत्तरचरो रूपादिः पाकानुकूलघटे स्यामवर्णः पूर्वचरो नष्टस्तत उत्तरो रक्तवर्ण उत्पन्नः रूपी घटः स्या-मो वा रक्तो वेति वितक्यमाणः सत्त्या तथाकारपरिणतपर्ययः प्राप्यत इति। अत्र हि पर्यायस्य शुद्धरूपं सत्ता सा यदि गृह्यते तदा नित्याशुद्धपर्यायार्थिको भवति। सत्तादर्शनमेवाशुद्धमिति।

च्याख्यार्थ:—सत्ता(ध्रुवत्व)को अंगीकार करता हुवा नित्य अशुद्ध पर्यायाधिक यह चतुर्थमेद कहा गया है। यह चतुर्थ श्लोकके उत्तरार्द्धका अर्थ है।। ४।। अब
पश्चम श्लोकके पूर्वार्द्धसे पूर्व विषयको दृष्टान्तसे दृढ करते हैं। जैसे एक समयमें पर्याय
उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यरूप तीनों लक्षणोंसे अवरुद्ध (युक्त) है; क्योंकि—पाकके अनुकृल घटमें जब पूर्वचर (पहला) श्यामवर्णरूपी पर्याय नष्ट हुआ तब उत्तरचर रूपादि
अर्थात् आगे होनेवाला रक्तवर्ण , उत्पन्न हुआ। यहांपर घट है; सो रूपवाला है;
परन्तु श्याम है; अथवा रक्त है; इस प्रकार जब उसके रूपका विचार कियागया
तब सत्तासे उस रक्त आकारको परिणत होकर रक्त पर्यायको प्राप्त होता है; अब
यहां रक्तपर्यायका उत्पाद श्यामपर्यायका व्यय (नाश) तथा घट द्वव्यका ध्रौव्य
इस प्रकार उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य स्वरूप तीनों लक्षणोंसे युक्त है। यहां पर्यायका

शुद्ध स्वरूप सत्ता है; वह सत्ता जब ग्रहण की जाती है; तब नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक यह चतुर्थ भेद सिद्ध होता है। यहांपर सत्ताका जो दर्शन है; सो ही अशुद्ध है; इस ित्ये यह नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाया।

अथ पश्चमभेदोत्कीर्त्तनं करोति । अब पंचम भेदका वर्णन करते हैं।

> ऽथातः पर्यायार्थिकपश्चमः॥ ५॥ कर्मोपाधिविनिर्मुक्तो नित्यः शुद्धः प्रकीर्त्तितः। यथा सिद्धस्य पर्यायैः समो जन्तुर्भवी शुचिः॥ ६॥

सूत्रभावार्थ:—अब इसके आगे पर्यायार्थिकका पंचम भेद ॥ ५ ॥ नित्यशुद्ध पर्यायार्थिक कहागया है। कैसा है; यह नय कर्मजनित उपाधियोंसे रहित है। जैसे संसारी जीव सिद्धके पर्यायोंके समान पवित्र है॥ ६॥

व्याख्या । अथातः परं पर्यायार्थिकप चमो होयः ॥ ५॥ नित्यगुद्धपर्यायार्थिकोऽस्ति । कीटशः कर्मोपाधिविनिर्मुक्तः कर्मणामुपाधिकानामन्यद्रव्याणां कुतिश्चत्सङ्गतानामुपाधिः साह-चर्यं तेन विनिर्मुक्तो रहितः कर्मोपाधिविनिर्मुक्तः । यथेति –यथाशव्देन दृष्टान्तिविषयीकरोति । यथा भवी भवः संसारोऽस्तीति भवी संसारी जन्तुः प्राणी सिद्धस्य कर्मोपाधिविनिर्मुक्तस्य सिद्धस्य पर्यायैः समः ग्रुचिर्निर्मुकः । संसारे संसरतः प्राणिनोऽष्टाविष कर्माण सिन्ति तानि च विचार्यमाणान्युपाधिक्षपणि वर्तन्ते । यद्वद्गेः ग्रुद्धद्रव्यस्याद्रेन्धनसंयोगजनितो धूम उपाधिक एव संभाव्यते । तद्वदिहापि विद्यमानान्यपि कर्माण्यनात्मगुणत्वेनौपाधिकानि सन्ति । अतस्तेभ्यो युक्तोऽप्ययुक्ततया विचिन्त्यमानः प्राणो सिद्ध एवेति कर्मोपाधिभावः सन्नपि न विवक्षणीयः । अथ च ज्ञानदर्शनचारित्राणि छन्नान्यपि बिद्धः प्रकटतया विवक्षितानि । ततो नित्रग्रुद्धपर्यायार्थिकभेदस्य भावना संपद्यते ॥ ६ ॥

च्याख्यार्थ:—अब इस चतुर्थभेदके पश्चात् पर्यायार्थकका पञ्चम भेद जानना चाहिये॥ ५॥ वह पंचमभेद नामसे "नित्यग्रद्धपर्यायार्थिक" है। वह कैसा है; कि—कम्मीपाधिविनिर्मुक्त हैं; अर्थात् कर्म जो किसी कारणवशसे संगत उपाधिक अन्य द्रव्य हैं; उनकी जो उपाधि (साहचर्य) अर्थात् आत्माकी साथ सहभाव हैं; उससे रहित है। जैसे भव (संसार)को धारण करनेवाला जो भवी अर्थात् संसारी जीव हैं; वह कर्मीकी उपाधिसे रहित ऐसे जो सिद्ध हैं; उनके समान शुचि अर्थात् निर्मल है। भावार्थ संसारमें अमण करनेवाले प्राणीके आठ कर्म हैं। और वे विचारे जाते हैं; तो उपाधि-रूप हैं; जैसे शुद्ध अग्ररूप द्रव्यका आई (गीले) इन्धनसे उत्पन्न धूम उपाधि-रूप ही संभावित है; ऐसे ही सहज शुद्धस्वभाव आत्मामें सब कर्म आत्माके निजगुण न होनेसे उपाधिजनित ही हैं, इसल्लिये यद्यपि संसारी आत्मा उन कर्मीसे युक्त है;

तथापि उसको जब उन कमोंसे अयुक्त (रहित) विचारा जाता है; तो वह सिद्ध ही है; तात्पर्य यह कि-संसारी जीवके कर्मरूप उपाधिभाव है; वह विद्यमान होते भी विवक्षित न किया जाय और उन कमोंसे ढके हुए भी जो ज्ञान, दर्शन चारित्ररूप सहजस्वभाव हैं; उनको वाह्यमें प्रकट रूपपनेसे कहें तब नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नामक पंचम भेदकी भावना सिद्ध होती है ॥ ६॥

अथ पर्यायार्थिकस्य षष्ठभेदोपकीर्त्तनमाह ।

अब पर्यायार्थिक नयके षष्ठ (छठे) भेदके निरूपणार्थ यह सूत्र कहते हैं।

सृत्रम् । अद्युद्धश्च तथानित्यपर्यायार्थिकोऽन्तिमः । यथा संसारिणः कर्मोपाधिसापेक्षिकं जनुः ॥ ७॥

सृत्रभावार्थ:—तथा अशुद्ध और अनित्य अंतिम पर्यायार्थिक है; जैसे संसारी प्राणीका जन्म इस संसारमें कर्मरूप उपाधिकी अपेक्षा रखता है ॥ ७ ॥

व्याख्या। कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धो विनश्वरत्वाद्नित्यः। एवमनित्यमादौ कृत्वा अशुद्धं ततो योजयित्वा पर्यायाधिकपदेन समुचार्यते तदा पष्टोऽन्तिमोभेदोऽनित्याशुद्धपर्यायाधिको निष्ण्यते। अथ तस्योदाहरणमाह। यथा संसारिणः संसारवासिजनस्य जनुर्जन्म कर्मोपाधिसा-पेक्षिकं प्रवर्तते। जन्ममरणव्याधयोर्वर्त्तमानाः पर्याया अनित्या उत्पत्तिविनाशशाखित्वात् पुनरशुद्धा कर्मसंयोगजनितत्वात्। भवस्थितानां प्राणिनां भवन्तीति। अत एव मोक्षार्थिनो जीवा जन्मादिपर्यायाणां विनाशाय ज्ञानादिना मोक्षे यतन्ते। तस्मात्कर्माण्यनित्यान्यशुद्धानि तैः सापेक्षिकं जन्माद्यप्यनित्यमशुद्धं चेत्थं योजनया निष्पन्नो नयोऽपि "अनित्याशुद्धपर्यान्याधिकः" कथ्यत इत्यर्थः॥ ७॥

व्याख्यार्थ: कर्मरूप उपाधिके सापेक्ष होनेसे अगुद्ध, विनाशी होनेसे अनित्य यह नय है, इस प्रकार प्रथम अनित्यशब्दकी तथा पुनः अगुद्ध शब्दकी योजना करके पश्चात् पर्यायार्थिक शब्दके साथ उचारण करनेसे यह अन्तिम मेद अनित्य अगुद्ध पर्यायार्थिक सिद्ध होता है। इसमें उदाहरण देते हैं; कि जैसे संसारी जीवका जन्म कर्मरूप उपाधिके सापेक्ष है। भावार्थ-संसारी जीवोंके जन्म मरणरूप जो व्याधियें हैं; उनमें वर्त्तमान जो पर्याय हैं; वे अनित्य हैं; क्योंकि-इन पर्यायोंका स्वभाव उत्पन्न तथा विनाश होनेका है; और कर्मोंके संयोगसे उत्पन्न होते हैं; इस कारण वे पर्याय अगुद्ध भी हैं। इसीसे मोक्षार्थी जीव जन्म मरणआदि पर्यायोंका नाश करनेके अर्थ ज्ञान आदि द्वारा मोक्षके विषयमें प्रयत्न करते हैं। इस कारणसे कर्म अनित्य तथा अगुद्ध हैं; और उन कर्मोंकी अपेक्षा रखनेवाले जन्मआदि भी अगुद्ध हैं; और इस प्रकारकी (अनित्य तथा अगुद्धकी) योजनासे सिद्ध हुआ जो नय है; वह भी अनित्य अगुद्ध पर्यायार्थिक कहा जाता है॥ ७॥

अथ नैगमादिनयानां भेदानाह ।

द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयोंके भेदोंको निरूपण करके अब नेगमसंग्रहआदि नयोंके भेदोंको कहते हैं।

सूत्रम् । नैगमो बहुमानः स्यात्तस्य भेदास्त्रयस्तथा । वर्त्तमानारोपकृते भृतार्थेषु च तत्परः ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थ: नैगमनय बहुमान अर्थात् सामान्य विशेषआदि अनेकरूपका आही है; और उसके तीन भेद हैं; उनमें भूतार्थके विषयमें जो वर्त्तमानका आरोप करनेके लिये तत्पर है; वह नैगमनयका प्रथम भेद हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या । नैगमो नयो बहुमानः सामान्यविशेषादिबहुरूपज्ञानस्य प्राही कथ्यते । नैकै-मानैर्गम्यते मीयत इति नैकगमः ककारलोपान्नगम इति व्युत्पत्तिः । तस्य नैगमनयस्य भेदाः प्रकारास्त्रयः । तत्रश्च तत्र च त्रिषु भेदेषु प्रथमो भेदोऽयं भूतार्थेषु तत्परः भूतार्थविषयेषु वर्त्तमानारोपकृते वर्त्तमानरोपकरणाय तत्परो लीन ईहशो नैगमो भूतादिनैगमः प्रथमो न्नेयः ॥ ९॥

व्याख्यार्थ:—सामान्य तथा विशेषआदि बहुतक्ष्प ज्ञानका ग्राही होनेसे यह नैगमनय बहुमान कहा जाता है। इस नैगम शब्दकी सिद्धि यों मानी है; कि—न एकगम—नैकगम, पुनः ककारका छोप करनेसे नैगम ऐसा हो गया; नहीं जो एक अर्थात् अनेक प्रकारसे जिसका मान किया जाय वह नैगम है। इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति है; इस नैगमनयके तीन (भूतनगम, भावीनगम तथा भावीवर्त्तमाननगम) मेद हैं; और उन तीनों भेदोंमेंसे जो प्रथम भेद हैं; वह भूतपदार्थमें वर्त्तमानका आरोप करनेमें तत्पर है; ऐसा भूतादि नैगम, नैगमनयका प्रथम भेद जानना चाहिये॥ ९॥ अथास्थोदाहरणमाह।

अब इस प्रथम भेदका उदाहरण कहते हैं।

सूत्रम् । भ्रृतादिनैगमस्त्वाद्यो यथा वीरजिनेश्वरः । दीपोत्सवदिने चास्मिन्गतो मोक्षं निरामयः ॥ १०॥

सूत्रभावार्थः — भूतादिनैगम प्रथम मेद है, जैसे इसी दीपमालिकाके दिन सब विकारशून्य भगवान् श्रीवीर (वर्द्धमान) जिनेश्वर मोक्षको गये हैं॥ १०॥

व्याख्या । यथा श्रीवीरिजनेश्वरोऽस्मिन्दीपोत्सविदने निरामयः कर्मप्रपश्चरिहतो मोक्षं गतः । अत्र ह्यतीतायां दीपमालायां प्रभोर्मोक्षकल्याणकं जातम्, परन्त्वस्मिन्निति पदेनाद्यानु-भवत्वं कल्पितम्, अतीतदीपमालायां वर्त्तमानदीपमालाया आरोपः कृतः । वर्त्तमानदिन-विषये भूतदिनस्यारोपस्तु तत्कालीनदिने देवागमनादिकमहाकल्याणकभाजनेऽसत्युद्भृतदिने देवागमनादिमहाकल्याणकभाजने सति चातस्मिन्तद्ध्यारोप आरोपः, असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवत् । अन्यश्चारजतभूतायां शुक्तौ रजतारोपविद्त्यारोपस्तु द्रव्यविषयी, अतोऽत्र प्रगुणोऽपि नानुसन्धेयः । किञ्च काळावच्छेदेन विचार्यमाणः पदार्थः काळान्तरेण प्रदर्शनी-यस्तेनात्र भूतकाळो हि तत्सदृशनामवर्त्तमानकाळमुपळक्ष्य स्मर्थतेऽतो भूते वर्त्तमानारोपप्र-तीतिकृत्पद्यते । अथवातीतदीपोत्सवे वर्त्तमानदीपोत्सवस्थारोपं कुर्वन्ति, पुनश्च वर्त्तमानदिने भूतदिनस्थारोपं कुर्वन्ति, कस्मैचित्कार्याय, तत्कार्यान्त्वदम्—यदा भगवतो निर्वाणं जातम्, तदानेकसुरसम्पातो जातः, सुराद्यागमनमद्दामहोत्सवादिविरचनेन च तदिनप्रतीतिर्जाता अतः प्रतीतिप्रयोजनाय भूते वर्त्तमानारोपः । यथा "गङ्गायां घोषः" अत्र गङ्गायामिति पदेन गङ्गात्वरे गङ्गाया आरोपः कियते । तत्तु शैत्यपावनत्वादिप्रत्यायनप्रयोजनाय । तद्वदिहापि घटमानमस्ति । यदि वीरस्य सिद्धिगमनेनान्वयानुभावकत्वात्प्रकर्षभक्तिलामाय प्रतीतिर्विचन्त्यते, तर्वि तत्त्वदिनसमुदितप्रतीतियुक्तं वर्त्तमानदिनमप्यन्वयेनारोप्यते "तत्सच्चे तत्सच्चमन्वय" इति वचनन्यायाभ्यां समन्वेतव्यम् । वस्तुतस्तु "वर्त्तमानारोपकृते" वर्त्तमानारोपाय "भूतार्थेषु" भूतविषयेषु तत्परो लीनो भूतनेगमः प्रथमः । यथा दीपोत्सवदिनमद्य वर्त्तते, अत्र वीरेण शिवं प्राप्तमित्रतीतिद्रनळित्वीर्त्वाणकर्याणकत्वं वर्त्तमानतन्नामदिनप्राप्तावारोपितं महाकल्याणकप्रतीतिप्रयोजनायेति दिक् । अळङ्कारनिपुणैरत्रार्थेऽळङ्कारप्रनथोऽपि द्रष्टव्यः ॥ १०॥ १०॥ १०॥

व्याख्यार्थ:- जैसे संपूर्ण रोगोंसे अर्थात् कर्मरूप प्रपंचोंसे रहित होकर श्रीमहा-वीर जिनेश्वर इस दीपोत्सव(दीपमालिका)के दिनमें मोक्षको गये हैं। यहांपर महावीर भगवान्का मोक्ष कल्याणक अतीत दीपमालिका अर्थात् कई दीपमालिकाके पूर्व जो दीपमालिकाका दिन हैं; उसमें हुआ है, परन्तु ''अस्मिन्'' इस पद्से आजके ही दिनका अनुभव कल्पित किया गया है; इसिलये अतीत दीपमालिकामें वर्त्तमान दीपमालि-काका आरोप किया, और वर्त्तमान दिनके विषयमें भूत दिनका आरोप तो उस दिन (वर्त्तमान दीपमालिकाके दिन)को देवताओंके आगमनरूप महाकल्याणकका भाजन न होनेपर और भूत दिन (जिस दिन श्रीवीरभगवान मोक्षको गये उस दिन)को देवताओं के आगमनका भाजन होनेपर अर्थात् वर्त्तमान दिनमें तो देवआदि आके प्रभुके मोक्ष सम्बन्धी महाकल्याणक नहीं करते और भूत दिन (जिस दिन मोक्ष गये उस दिन) देवोंने आके महाकल्याणक किया था ऐसा व्यवहार दृष्ट होता है; इस लिये आरोप होता है, अर्थात् वर्त्तमानमें ही भूतका आरोप होता है; क्योंकि-जो वह नहीं है: उसमें उसका जो धारण करना है; उसको आरोप कहते हैं; इसलिये यहां वर्तमान दीपमालिकामें भूत दीपमालिकाका महाकल्याणक नहीं है; तथापि इसमें उसकी धारण करिलया अतः यह आरोप हुआ और जिस रज़् (डोर)में सर्प नहीं है; अर्थात् जो रज्जू सर्परूप नहीं है; उसमें सर्पका आरोप करलेना अर्थात् उस रज्जुको भ्रमसे सर्प मान लेना अथवा जो सींप चांटीरूप नहीं है: उसमें चांटीका आरोप

करना इस प्रकारका जो आरोप है; वह तो द्रव्यके विषयमें है । इसलिये यहांपर प्रगुणका अनुसंघान भी नहीं करना चाहिये. किन्तु जिस पदार्थका कालावच्छेदसे विचार कियाजाय तो उसको अन्य दूसरे कालसे ही दिखलाना चाहिये। इस कारण यहांपर भूत काल जो है; उसके सदृश नामके धारक वर्त्तमानकालको पाकर उस भूतकालका सारण किया जाता है। इस कारण भूतमें वर्त्तमानकालके आरोपकी प्रतीति उत्पन्न होती है। अथवा अतीत (गये हुए) दीपोत्सवमें वर्त्तमान दीपोत्सवका आरोप इस नैगमनयसे करते हैं। और वर्त्तमान दिनमें भूत दिनका आरोप करते हैं। और यह आरोप किसी कार्यकेलिये किया जाता है। और वह कार्य यह है; कि— जिस समय भगवान्का निर्वाण हुआ उस समय अनेक देवताओंका यहांपर समागमन हुआ और उस दिन जो देव आदिका आगमन हुआ तथा उन्होंने आके जो महा-महोत्सव आदिकी रचना की जिससे उस दिनकी प्रतीति उत्पन्न हुई । इसिलये प्रतीति-रूप प्रयोजनकेलिये भूतमें वर्त्तमानत्वका आरोप कियागया है । जैसे कि---''गंगामें घोष (अहीरोंका ग्राम) है" यहांपर गंगाजीके तटमें गंगारूप अर्थका आरोप किया जाता है; और वह आरोप शैत्य (ठंडापन) पावनत्व (पवित्रपना) धर्मके अधिकता द्योतनरूप प्रयोजनकेलिये किया गया है, इसी प्रकार यहां भी प्रयोजन संघटित हो सकता है। यदि श्रीमहावीरस्वामीके मुक्तिमें जानेसे उसके अन्वयको प्रीतिआदिके विषयमें अनुभवका हेतु होनेसे अधिक भक्तिके लाभार्थ प्रतीतिका विचार किया जाय तो उस दिनमें सम्यक प्रकारसे उद्यको प्राप्त प्रतीतियुक्त वर्त्तमान दिवस भी अन्वयसे आरोपित किया जाता है। और उस कल्याण दिनकी मत्ताहीसे भक्तिआदि लाभकी जो सत्ता है: सो ही अन्वय है। क्योंकि "तत्सन्वे तत्सन्वमन्वयः" अर्थात "उसके होनेपर उसकी सत्ता अर्थात् कारणके रहनेपर कार्यकी सत्ता" इत्यादि वचन तथा न्यायसे यहां आरोपका अन्वय करना चाहिये। और यथार्थमें तो भूत पदार्थीमें वर्त्तमानके आरोपकेलिये जो तत्पर है; वही भूतनैगम प्रथम भेद है । जैसे आज दीपोत्सव दिन है: इसी दिन श्रीमहावीरस्वामीने मोक्षको प्राप्त किया है: यहां भूत दिनसे उपलक्षित श्रीवीरका मोक्ष कल्याणकको प्राप्त होना वर्त्तमानमें उसी (दीपोत्सव) नामक दिनको प्राप्त होनेपर महाकल्याणककी प्रतीतिके प्रयोजनकेलिये आरोपित है; यह संक्षेपसे भूतनैगमनयका मार्ग दर्शायागया है। और अलंकारशास्त्रमें प्रवीण जनोंको इस अर्थमें अलंकारका ग्रंथ भी देखना उचित है ॥ ९ ॥

अथ नैगमस्य द्वितीयभेद्मुदाहरति।

अब नैगमनयके द्वितीय भेदका उदाहरण कहते हैं।

सूत्रम् । भूतवन्नैगमो भावी जिनः सिद्धो यथोच्यते । केवली सिद्धवद्धर्त्तमाननैगमभाषणे ॥ १०॥

30

सूत्रभावार्थ:—भूतके साथ भावीनैगम द्वितीय भेद है। जैसे जिन भगवान् सिद्ध हैं, तथा वर्त्तमान नैगमके कथनमें सिद्धवत् आरोपसे केवली सिद्ध हैं। ऐसा भी व्यवहार होता है॥ १०॥

व्याख्या। भावी नैगमो भूतयुक्तो ज्ञेयः। भाविनि भूतवदुपचारो। यथा हि जिनः केवली सिद्धः सिद्धवज् ज्ञायते तदा भावी नैगमो भवति। असिद्धोऽपि जिनः सिद्धवज्ञीणंज्वलितरज्जुप्रायाघातिकर्मचतुष्ट्यसद्भावेऽपि शीघ्रभावितक्षयोपिश्यतावसिद्धोऽपि सिद्ध एवेति
ज्ञेयम्। अथ तृतीयभेदमाह। अनिष्पन्नमपि निष्पन्नतया व्यपदिश्यमानं भावि वर्त्तमानमिवान्वेषणीयमिति। यथा हि केवली केवलज्ञानकलितो भगवान् त्रयोदशगुणस्थानस्थितः सिद्धः कर्मदेषपोपविकलः संभाव्यते। वर्त्तमानदशायां हि जिनावस्था वर्त्तते, कियत्कालानन्तरं भाविनी सिद्धावस्थानुदिताप्यारोपबलाद्यं केवली सिद्ध इति भाविविषयो वर्त्तमानविषयतया गृहीतस्तस्मात् भाविनैगमः। अत्र हि किश्वित्सिद्धमुत किश्विदसिद्धमेतदुभयमपि जिनः सिद्धवद्वर्त्तमाननैगमाद् ज्ञेय इति॥ १०॥

व्याक्यार्थ:-अब भावी नैगमको भूत संयुक्त समझना चाहिये अर्थात भावीमें भूतके समान उपचार होता है। जैसे "जिन भगवान् जो केवली हैं; सो सिद्ध हैं; अर्थात् सिद्धकी तरह जाने जाते हैं" ऐसे व्यवहारमें भावीनैगम होता है। असिद्ध भी जिन सिद्धके समान हैं; अथीत् जीर्ण (पुरानी या जूनी) तथा अग्निसे प्रज्विलत रज्जू (रस्सी)-के सदृश जब अधातिया चार कर्मोंका अर्थात् आयुकर्म, गोत्रकर्म, और वेदनी इन अघातियाकर्मचतृष्ट्यके सद्भाव(विद्यमानता)में भी शीघतासे उन कर्मोंके नाशको उपस्थित होनेसे असिद्ध भी सिद्ध ही है। ऐसा समझना चाहिये। अब तृतीय भेदका वर्णन करते हैं-असिद्ध भी सिद्धि निकट होनेसे जब सिद्धतासे कहाजाता है; तब भावी भी वर्त्तमानके सदश जानना चाचिये; जैसे केवली अर्थात् त्रयोदश १३ वें सयोगकेवली नामक गुणस्थानमें विराजमान केवलज्ञानके धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान् सिद्ध अर्थात् कर्मरूप दोषोंकी जो पृष्टि है; उससे रहित संभावित होता है। भावार्थ-वर्तमान दशामें जिन अवस्था विद्यमान है, कुछ कालके पश्चात् सिद्ध अवस्था होनेवाली है; वह सिद्धावस्था इस वर्त्तमान जिन अवस्थामें उद्यको प्राप्त नहीं हुई है; तथापि आरोपके बलसे यह केवली (श्रीजिनेन्द्र) सिद्ध हैं: इस प्रकार भावी जो सिद्ध अवस्थारूप विषय है, वह वर्त्तमान विषयपनेसे ग्रहण कियागया इस कारण यह भावी नैगमनामक नैगमनयका तृतीय भेद है। यहांपर श्रीजिनेन्द्र किसी अंशमें तो सिद्ध और किसी अंशमें असिद्ध े ऐसे सिद्धासिद्धरूप हैं; तो भी वर्त्तमान नैगमसे उनको सिद्धके समान जानना चाहिये ॥१०॥

अथैतस्यैवोदाहरणं पक्षान्तरव्युदासाय प्रकटीकरोति । अब अन्य पक्षोंके निरासार्थ इसी नैगमका पुनः उदाहरण देते हैं ।

हसूत्रम् । आरोपाद्वर्त्तमानश्च यथाभक्तं पचलसौ । अत्र भूतकियां लात्वा भूतवाक्यं विलुप्यते ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थ:—आरोपसे भूत तथा भविष्यत् भी वर्त्तमानके तुत्य ही होते हैं; जैसे यह भात पकाता है; यहांपर भूत कियाको वर्त्तमानरूपसे ग्रहण करके भूतकालिक वाक्यका प्रयोग नहीं करते ॥ ११ ॥

त्र्याख्या । आरोपाद्वर्त्तमानो भवति यथा असौ देवदत्तो भक्तं पचतीति वर्त्तमानता परमत्र भक्तस्य कियन्तोऽवयवाः सिद्धाः सन्ति अथ च कियन्तश्चावयवाः सिद्ध्य-मानाः सन्ति । परन्तु पूर्वापरभूतावयविक्रयायाः सन्तानो ह्येकबुद्ध्यारोप्यमाणो वर्त्तमाना-रोपोऽस्तीति । कथयति अत्र हि कश्चित् । आरोपसामग्रीमिहिन्ना अवयवानां भूतिक्रयां छात्वा पचतीति स्थाने अपाक्षीदिति प्रयोगं न करोति यतस्तदुक्तिः । नैयायिकस्तु चरमिक-याध्वंसः पाक इत्यत्रातीतप्रत्ययविषयता तन्मते किश्चित्पक्तम् , किश्चिद्पक्कम् पच्यत इति प्रयोगान्न भवितुमईति तस्माद्त्र वर्त्तमानारोपनैगम एव भेदो ज्ञातव्यः । तेनैवात्र भूत-क्रियां छात्वा भूतवाक्यं विछ्प्यते तदसमञ्जसमेवेति ॥ ११ ॥

च्याख्यार्थ:—आरोपसे भूत तथा भावी भी वर्त्तमान हो जाता है। जैसे यह देव-दत्त मात पकाता है। यहांपर भातकी वर्त्तमानदशा प्रतीत होती है। परन्तु पाक-कालमें भातके कुछ अवयव तो सिद्ध (सीझे) हैं; और कितने ही अवयव सिद्ध होने (पकने)वाले हैं, तथापि पूर्व अपर अवयवभूत कियासमूहको एक वुद्धिमें आरोप करनेसे 'पचित' (पकाता है) यह वर्त्तमानत्वका आरोप है। ऐसा यहांपर कोई कहता है। और वह आरोपसामग्रीकी महिमासे अवयवोंकी भूतिकयाको करके 'पचैति' पकाता है इसके स्थानमें 'अपाक्षीत्' (पकाया) ऐसा प्रयोग नहीं करता है; इसीलिये उसका यह पूर्वोक्त कथन है। और नैयायिक तो अन्तिम कियाके नाशको पाक कहते हैं; अर्थात् तंडुलोंको चूल्हेपर रखनेसे आदिलेके जब तक अन्तिम किया चांवलोंके सब अवयवोंको पकाकर नष्ट न होजाय तब तक पाक मानते हैं। इसिलये 'पाक' यहांपर भूतकालकी विषयता है। उनके मतमें चांवलका कुछ अंश पक है; और कुछ अंश अपक है; इस दशामें "देवदत्तेन ओदनः पच्यते" देवदत्त चांवल पकाता है; यह प्रयोग देखनेमें आता है; सो नहीं हो सकता। क्योंकि—अभी तक अन्तकी कियाका नाश तो हुआ ही नहीं, इस हेतुसे पचित इस स्थलमें भावि नैगमसे वर्त्तमानका आरो-

^{9 &#}x27;'वर्त्तमाने लट्'' इस पाणिनीय ३।२।१२३। सूत्रसे वर्त्तमान कालमें लट्ट स्रकार होता है; और भूत-कालमें लुङ होता है: वर्त्तमानमें ''पचति'' भूतमें ''अपाक्षीत'' रूप होता है।

पहीं उत्तम जानना चाहिये इसीसे यहां भूतिक्रयाको लाकर जो भूतवाक्यका लोप किया जाता है; वह असमंजस ही है। ११॥

अथ सङ्ग्रहनयं विवृणोति । अब संग्रहनयका विवरण करते हैं ।

सूत्रम् । सङ्घहो द्विविधो ज्ञेयः सामान्याच विशेषतः । द्रव्याणि चाविरोधीनि यथा जीवाः समे समाः ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थ:—सामान्य तथा विशेषसे संग्रहनयके दो (२)भेद हैं; जैसे द्रव्य सव अविरुद्ध स्वभाव हैं, और सब जीव समान हैं॥ १२॥

व्याख्या । सङ्गृह्णातीति सङ्गृहः, अथवा सङ्गृद्धतेऽनेन सामान्यविशेपाविति सङ्गृहः । स च द्विविधः द्विप्रकारः । तयोरेकः सामान्यौघान् सामान्यसङ्गृहः १ द्वितीयो विशेषाद्यक्ते-र्विशेषसङ्ग्रहः २ इत्थं द्विभेदः । अथानयोः प्रत्येकमुदाहरणे द्रव्याणि धर्मास्तिकायादीन्य-विरोधीनि परस्परविरोधरहितानीत्यर्थः । एकद्रव्यसद्भावे द्रव्यपद्भमेव प्राप्यत इति प्रथ-मोदाहरणम् ॥ १॥ यथा च जीवाः सर्वेऽविरोधिनो जीवा हि संसृतिविषयिणः सिद्धिवि-पयिणश्चानन्ता वर्त्तन्ते तेपां निरुक्तिः —जीवति चैतन्यादिति जीवः । अथ च जीवप्राणधा-रणे तत्र प्राणा द्विधा द्रव्यभावभेदात्तत्र च द्रव्यप्राणा दश, भावप्राणश्चत्वारः । मोक्षप्राप्तौ यद्यपि द्रव्यप्राणानां कर्मजन्यानां सर्वेथा क्षयस्तथापि जीवनलक्षणा जीवस्य भावप्राणाः सहचारिणः कर्मासद्भावेऽपि भवन्ति सिद्धानामपि जीवत्वाद्भावप्राणा भवन्यतो सुक्ताः संसारिणश्च जीवाः । मुक्ताः पुनः पञ्चद्द्यभेदाः, संसारिणो देवनारकतिर्यञ्चनुष्यभेदाचतुर्घा तत्रान्तिमभेदयोः पश्चभेदास्तत्रापि मनुष्यस्य पश्चाशहश्चण एक एव भेदः, तिरश्च एक-रमादारभ्य पञ्च यावत् । अक्षभेदादेकाक्षद्यक्षच्यक्षचतुरक्षपंश्वाक्षभेदात्पञ्च भवन्ति । एवं भेदतोऽपि जीवाः सर्वेऽविरोधिनः सङ्ग्रहाद्विशेपसङ्ग्रहभेदः ॥ २ ॥ अथ च सङ्ग्रहस्वरूपमु-पवर्णयन्ति । सामान्यमात्रप्राही परामर्शः सङ्ग्रह इति, सामान्यमात्रमशेपविशेपरहितम् । स तु द्रव्यत्वादिकं गृह्णातीत्येवं शीलः । समेकीभावेन विशेपराशिं गृह्णातीति सङ्ग्रहः । अय-मर्थः स्वजातेर्रष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्गहणं स सङ्ग्रह इति । अनुभे-दानादर्शयन्ति । अयमुभयविकल्पः परोऽपरश्चेति । तत्र परसङ्ग्रहमाहुः । अशेपविशेषेष्वौ-दासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसङ्ग्रह इति परामर्श इति । अप्रे-तनेऽपि योजनीयमुदाहरति । विश्वमेकं सद्विशेपादिति यथेति । अस्मित्रनुक्ते हि सदिति ज्ञानाभिधानात्रवृत्तिलिङ्कानुमितिसत्ताकत्वेनैकत्वमशेषार्थानां संगृह्यते ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:—जो संग्रह करे अथवा जिसके द्वारा सामान्य तथा विशेष संग्रह कियें जावें उसको संग्रहनय कहते हैं। वह दो प्रकारका है। उनमें प्रथम तो सामान्य ओघसे सामान्यसंग्रहनामक भेद है; और द्वितीय विशेषसे व्यक्तिका संग्रह करनेसे विशेषसंग्रह भेद है। इस रीतिसे सामान्य संग्रह और विसेष संग्रह यह दो (२)भेद संग्रहनयके हुवे। अब इन दोनोंमेंसे प्रत्येकके उदाहरण यह हैं, जैसे धर्मास्तिकायआदि सब द्रव्य अवि-

रोधी अर्थात परस्पर विरोधरहित हैं। क्योंकि-एक द्रव्यके सद्धावमें छहों। द्रव्योंकी प्राप्ति होती है। यह प्रथम सामान्यसंग्रहका उदाहरण है। तथा जैसे संपूर्ण जीव अविरोधी हैं। और संसृतिविपयी (संसारी) तथा सिद्धिविपयी (मुक्त) जीव अनन्त हैं। और उनकी निरुक्ति(व्युत्पत्ति)अर्थात् जीव शब्दका अर्थ यह है; कि-जो चैतन्यसे जीता है; उसको जीव कहते हैं। अथवा जीव धातुका अर्थ है; प्राण धारण करना और वह प्राण द्रव्य तथा भाव भेद्से दो प्रकारके हैं। उनमें भी द्रव्यप्राण तो दश १० हैं; और भाव प्राण चार ४ हैं। और जब जीवके मोक्षकी प्राप्ति होती है; तब यद्यपि कर्मसे उत्पन्न हो-नेवाले जो दश १० द्रव्यप्राण हैं; उनका सर्वथा नाश हो जाता है; तथापि जीवके सह-चारी जीवनरूप चारों ४ भावपाण कर्मों के अभावमें भी जीवके होते हैं; अर्थात् सिद्धोंके भी जीवत्व होनेसे इसलिये उनके भाव प्राण हैं: इसलिये जीव मुक्त तथा संसारी ऐसे दो प्रकारके हैं। फिर मुक्त जीवोंके भी पनद्रह १५ भेदें हैं। और देव नारक तिर्यञ्च और मनुष्य इन भेटोंसे संसारी भी ४ प्रकारके हैं। उनमें भी अन्तके दो भेटोंके अर्थात् तियेश्व और मनुष्योंके पांच भेद हैं, उनमें भी मनुष्यका पश्चेन्द्रियत्वरूप एक ही भेद है, तिर्यञ्च एकसे लेकर पांच तक हैं; अर्थात् इन्द्रियजनित भेदसे अर्थात् एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय इन भेदोंसे पांच प्रकारके होते हैं । इस रीतिसे यद्यपि जीव भेदसहित हैं: तथापि सब जीव अविरोधी हैं: अर्थात जीवन धारण करनेमं किसी जीवका विरोध नहीं है। जीव द्रव्यविशेषका संग्रह करनेसे यह दूसरा भेद विशेष संग्रहनामक है । २ । अब संग्रहनयके स्वरूपका वर्णन करते हैं । सामान्यमात्रका ग्र-हुण करानेवाला जो ज्ञान सो संग्रह है; संपूर्ण विशेषोंसे जो रहित है; उसको सामान्यमात्र कहते हैं; और वह द्रव्यत्वआदिको प्रहण करनेवाले स्वभावका धारक है। तथा सम् अर्थात् ऐकीभावसे पिण्डीभूत विशेष राशिको जो यहण करे वह संयह है। तार्त्पय यह कि-स्वकीय जातिसे जो दृष्ट तथा इष्ट हैं; उनके द्वारा संपूर्ण विशेपोंको जो एक ही रूपसे ग्रहण करे वह संग्रह है। अब इस संग्रहनयकं भेदोंको दिखाते हैं। यह संग्रह दो वि-कल्पोंका धारक है। अर्थात् इसके दो भेद हैं। एक तो परसंग्रह और दूसरा अपरसंग्रह उनमें संपूर्ण विशेषोंमें उदासीन रहे और सत्तामात्रको शुद्ध द्रव्य माने ऐसा जो ज्ञान है; उसको परसंग्रह कहते हैं। आगे इसमें युक्त करने योग्य उदाहरण देते हैं। जैसे यह संसार सद्भूपसे एक है; अर्थात् सब संसार एक है, क्योंकि-सब संसारमें सत्पना एक ही है; उसमें कोई विशेष नहीं । और "विश्व एक है सत्में विशेष न होनेसे" ऐसा न भी कहें तो भी सत्तारूप ज्ञान सब पदार्थमें है, उस सत्स्वरूप ज्ञान तथा सत् शब्दके कथनकी

१ पन्द्रह कर्म भूमियोंमें उत्पन्न होके मुक्त होनेकी अपेक्षासे मुक्त जीवोंके पन्द्रह १५ मेद हैं।

सर्वत्र अनुवृत्तिरूप िंगसे अनुमानसिद्ध जो सर्वत्र सत्तारूप एकत्व है; उस सत्त्वरूप एकत्वसे संपूर्ण पदार्थोंका संग्रह होता है। तात्पर्य यह कि-इस परसंग्रहमें एक सत्रूपसे संपूर्ण वस्तुमात्रका ग्रहण होता है। इसीसे इस संग्रहनयके अनुसार यह कह सकते हैं; कि-यह संपूर्ण विश्व सत्स्वरूपसे एक है॥ १२॥

अथ संमहनयभेदं दर्शयन्नाह। अब इस पूर्वोक्त संम्रहनयके भेदक व्यवहारनयको दर्शाते हुए कहते हैं॥

सूत्रम् । सङ्घहभेदकव्यवहारोऽपि द्विविधः स्मृतः । जीवाजीवौ यथा द्रव्यं जीवाः संसारिणः शिवाः ॥ १३॥

सूत्रभावार्थ: संग्रहनयका भेदक जो विषय है; उसका दर्शक व्यवहारनय है; वह भी दो प्रकारका है; अर्थात् पूर्ववत् सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रह भेदक व्यवहार इस मांतिसे व्यवहारके दो भेद हैं; क्रमसे दोनोंके उदाहरण यह हैं; कि—जैसे जीव और अजीव ये दोनों द्रव्य हैं। जीव दो प्रकारके हैं; संसारीजीव और मुक्तजीव इन भेदोंसे॥ १३॥

व्याख्या। सङ्ग्रहस्य नयस्य यो भेदको विषयस्तस्य दर्शकः स व्यवहारनयः कथ्यते। व्यविद्यियते सङ्ग्रह्विपयोऽनेनेति व्यवहारः । सोऽपि द्विविधः द्विप्रकारः स्मृतः कथितः। तस्यैव पूर्वोदितस्य सङ्ग्रहनयस्य भेदवदस्यापि भेदभावना कर्त्तव्या। यत एकः सामान्यसङ्ग्रहभेदकव्यवहारः १ द्वितीयो विशेषसङ्ग्रहभेदकव्यवहारः २ एवं भेदद्वयम्। अथ तयो-रुद्दाहरणे । तत्राद्यस्योदाहृतिर्यथा—जीवाजीवौ द्रव्यम् । अत्र जीवस्य चेतनस्याजीवस्याचे-तनस्य सङ्ग्रहसामान्यविषयत्वाद्वव्यमित्येकैव संज्ञा, कथं—द्रवित तांस्तान्पर्यायान्गच्छतीति त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तद्वव्यमिति व्युत्पत्त्या स्वगुणपर्यायवत्त्वनोभयोरिप जीवाजीव-योर्द्रव्यपदं साधारणिस्त्यर्थाज्ञीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति सामान्यसङ्ग्रहभेदकव्यवहारः । १ । अथ जीवाः संसारिणः सिद्धाश्चात्र जीवानामनन्तानां चैतन्यवतां संसारित्वं सिद्धत्वं च विशेषव्यवहारोऽतो द्वितीयभेदो विशेषसङ्ग्रहभेदकव्यवहारः । २ । एवमुत्तरोत्तरविवक्षया सामान्यविशेषत्वं भावनीयम् ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थ:—इस संग्रहनयका जो भेदक विषय है; उसके दर्शकको व्यवहारनय कहते हैं। संग्रहनयके विषयका व्यवहार जिसके द्वारा हो वह व्यवहारनय है, यह व्यवहार शब्दकी व्युत्पत्ती है। वह व्यवहारनय भी दो प्रकारका कहा गया है, तात्पर्य यह है; कि – उसी पूर्वकथित संग्रहनयके भेदके समान इसकी भी भेदभावना करनी चाहिये क्योंकि—एक सामान्यसंग्रहनयका भेदक व्यवहारनय है। और द्वितीय विशेषसंग्रहका भेदक (विशेषसंग्रहके विषयको भिन्नरूपसे व्यवहार करनेवाला) व्यवहारनय है। इस प्रकार सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनय तथा विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय ये दो भेद

⁹ घट सत्, पट सत्, जीव सत्, है; तथा पुहल सत् है; इस प्रकारसे सत्की अनुवृत्ति सर्वत्र है। उस अनुवृत्तिहप लिंग हेतुसे सत् सर्वत्र है; ऐसा ज्ञान होता है।

हुये। २ । अब इन दोनों भेदोंके उदाहरण कहते हैं । उनमें सामान्यसंग्रहभेदक व्य-वहारनयका उदाहरण यह है; कि-जैसे जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं, यहांपर चेतन जीव तथा अचेतन अजीव, इन दोनोंके संग्रहका सामान्य विषय होनेसे दोनों द्रव्य हैं। यह व्यवहार होता है। यदि यह कहो कि-चेतन तथा अचेतन दोनोंके विरुद्ध धर्म होनेसे एक द्रव्य संज्ञा कैसे हुई ? तो इस रीतिसे है; कि-द्रुधातुका गमन अर्थ है; उससे यत प्रत्यय कहनेसे द्व + य = द्रो + य = द्रव्य शब्द सिद्ध होता है । जो उनसे अनेक पर र्यायोंमें प्राप्त हो वह द्रव्य है; अर्थात संप्रति पर्यायोंमें त्रिकालमें अनुगामी जो वस्तुका अंश है; वह सर्वत्र अनुगत होनेसे द्रव्य है। इस व्युत्पत्तिसे अपने गुण पर्यायोंसे युक्त होनेसे जीव अजीव दोनोंका द्रव्य इस साधारण पर्से ग्रहण होता है, क्योंकि-जीव द्रव्य भी देव, मनुष्य, तथा सिद्ध, पर्व्यायोंको प्राप्त होता है; परन्तु चेतन जीवरूपता सब पर्य्यायोंमें अनुगत है, अजीव मृत्तिका सुवर्णआदि दुव्य भी घट शराव तथा कुंडल क-टकआदि पर्यायोंमें प्राप्त होता है; किन्तु मृत्तिका तथा सुवर्ण अंश सर्वत्र अनुगत है, इसिलये द्रव्य यह पद दोनोंकेलिये सामान्यसंग्रह है; उसमें जीवद्रव्य तथा अजीव द्रव्य यह सामान्यभेदक व्यवहारनय है; (अर्थात् द्रव्य सामान्यमें जीव और इस व्य-वहारकेलिये इस नयने भेद कर दिया, इसी हेतुसे यह सामान्यसंग्रहमेदक व्यवहार नय प्रथम भेद हैं) और जीव संसारी तथा सिद्ध (मुक्त) दो प्रकारके होते हैं, इस क-थनमें चेतनत्वधर्मयुक्त जीव जो अनन्त संख्यायुक्त हैं, उनका संसारित्व तथा सिद्धत्व यह विशेष व्यवहार है, तात्पर्य यह है; कि-द्रव्य सामान्यमें जो विशेष द्रव्य जीव है; उस जीव सामान्य द्रव्यमें भी संसारित्व तथा सिद्धत्व यह विशेषव्यवहार हुआ, इस हेतुमें यह विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय द्वितीय भेद है । इसी प्रकार उत्तरोत्तर विवक्षाके अनुसार सामान्यविशेषकी भावना करते चला जाना चाहिये जहांतक व्यवहारका अन्त नहीं है: वहां तक बराबर सामान्यविशेषभाव लगा है। जैसे संसारी तथा सिद्ध ये दो भेद होनेपर भी पुनः संसारीको सामान्य मानकर उनके देव मनुष्य नारक तथा तिर्ध्यञ्च-अनेक भेद हैं, पुनः सामान्य देवोंके वैमानिक, व्यन्तर भवनवासीआदि अनेक भेद हैं, पुनः वैमानिकआदिके भी अनेक भेद हैं। ऐसे ही मनुष्यभादिके भेद, अवान्तर भेदका व्यवहार करते चले जावो। इस व्यवहार नयका यह प्रयोजन है; कि-सामान्य सं-ग्रहसे व्यवहार नहीं चलता क्योंकि-केवल द्रव्य कहनेसे लोक व्यवहार नहीं चलता. द्रव्य लावो वा ऐसा कहनेसे यह आकांक्षा अवस्य होती है; कौन द्रव्य, जीव वा अजीव:

९ इत्यसामान्यकी अपेक्षासे तो जीवद्रव्य विशेष है, परन्तु सब प्रकारके जीव जैसे मनुष्य जीव देव जीव द्रव्याविवक्षासे जीव भी सामान्य है। २ इसिलिये सब जीवकी अपेक्षासे जीव सामान्य तथा विशेष अ-पेक्षाभेदसे हैं।

उस जीवआदि द्रव्यमें भी कौन जीव संसारी अथवा सिद्ध, संसारीमें भी कौन मनुष्य मनुष्योंमें भी कौन मनुष्य जैन अथवा वैष्णव इत्यादि रीतसे सर्वत्र सामान्य विशेषभाव की व्यवस्था समझ लेना ॥ १३ ॥

अथ ऋजुसूत्रनयस्य भेदमाह ।

12

अब ऋजुसूत्रनामक चतुर्थ नयके भेदको कहते हैं।

सूत्रम् । स्वानुकूलं वर्त्तमानं ऋजुसूत्रो हि भाषते । तत्र क्षणिकपर्यायं सूक्ष्मः स्थूलो नरादिकम् ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थ:—अपने अनुकूल केवल वर्त्तमान कालवर्त्ती विषयको ऋजुसूत्र नय कहता है; उसमें भी सूक्ष्म क्षणिकपर्यायको और स्थूल मनुष्यआदिको कहता है॥१४॥

व्याख्या। हि निश्चितं ऋजुस्त्रो नयो वर्त्तमानं केवलमतीतानागतकालरहितं भाषते मनुते। तद्दि कीदृशं स्वानुकूलं स्वस्थात्मनोऽनुकूलं कार्यप्रत्ययं मनुते परन्तु परप्रत्ययं न मनुते। सोऽपि ऋजुस्त्रो द्विभेदो द्विप्रकार एकः स्क्ष्मऋजुस्त्रः, अपरः स्थूलऋजुस्त्रः। तत्र स्क्ष्मस्तु क्षणिकपर्यायं मनुते, क्षणिकाः पर्यायाः परतोऽवस्थान्तरभेदात्पर्यायाणां स्ववर्त्तमानतायां क्षणावस्थायित्वमेवोचितमिति। स्थूलस्तु मनुष्यादिपर्यायं वर्त्तमानं मनुतेऽ-तीतानागतादिनारकादिपर्यायं न मनुते। यो हि व्यवहारनयः कालत्रयवर्तिपर्यायप्राहक-स्त्रसात्स्थूलऋजुस्त्रो व्यवहारनयेन संकरत्वं न लभते। अथ च ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायि-पर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्राय ऋजुस्त्रनय इत्यतीतानागतकाललक्षणकोटिल्यवैक-ल्यात्प्राखलिमिति।। १४।।

व्याख्यार्थ:— निश्चयरूपसे ऋजुस्त्रनय भ्त भविष्यसे रहित केवल वर्त्तमान काल-को स्वीकार करता है; और वह भी अपने आत्माके अनुकूल कार्यके पत्ययको मानता है; न कि—पर प्रत्ययको । यह ऋजुस्त्र नय भी दो प्रकारका है; एक सूक्ष्म ऋजुस्त्र और दू-सरा स्थूलऋजुस्त्र । उनमेंसे सूक्ष्मऋजुस्त्र क्षणिक पर्यायको मानता है; क्योंकि—इस न-यकी अपेक्षासे सब पर्याय क्षणिक हैं; अन्यकी अपेक्षासे अवस्थान्तरका भेद होनेसे पर्यायों-की निजवर्त्तमानतामें क्षणिकस्थायिताका मानना ही उचित है । और स्थूलऋजुस्त्र व-त्तमान मनुष्यादि पर्यायको मानता है; और अतीत तथा अनागत (भविष्य) नारक आदि पर्यायको नहीं मानता है । जो व्यवहार नय है; वह त्रिकालवर्त्ती पर्यायोंका ग्राहक है; इस कारण उस व्यवहारनयके साथ स्थूलऋजुस्त्र संकर दोषताको नहीं प्राप्त होता क्योंकि—भूतभविष्यरूप कुटिलता दोषसे रहित ऋजु (सरल) केवल वर्त्तमानक्षणस्था-यी पर्यायमात्रको स्चित (ग्रहण) करनेरूप जिस नयका प्रधानतास अभिप्राय है; उस-को ऋजसन्न कहते हैं । अथ शब्दनयमाह । अब शब्दनयको कहते हैं।

। सूत्रम् । शाब्दिको मनुते शब्दं सिद्धं धात्वादिभिस्तथा । भिन्नं समभिरूढाच्यः शब्दमर्थं तथैव च ॥ १५ ॥

मूत्रभावार्थः—शब्दनय धातुआदिसे सिद्ध शब्दोंको स्वीकार करता है; परन्तु िंगवचनादिद्वारा शब्दभेदसे अर्थका भेद मानता है; और ऐसे ही समभिरूढनय अर्थ भेद होनेसे शब्दभेद अवश्य मानता है ॥ १५॥

व्याख्या। शाब्दिकः शब्दनयो धात्वादिभिः प्रकृतिप्रत्ययादिविभागेन व्युत्पन्नं शब्दं सिद्धं मनुते परन्तु लिङ्गवचनादिभेदेनार्थस्य भेदं मनुते। यथा—तटः, तटी, तटिमिति लिङ्गवयभेदाद्थेभेदः, तथा आपो जलमित्यत्र बहुवचनैकवचनभेदाद्थेभेदः इति । अयं हि शब्दनयः ऋजुसूत्रनयं प्रतीदं वक्ति यत्कालभेदेन त्वमर्थभेदं मनुपे तर्हि लिङ्गादिभेदेनार्थभेदं प्रस्तुतमिष कथं न मनुष इति । अथ समिभिरूढनयमाह । समिभिरूढाख्यो नयः शब्दं भिन्नं पुनश्चार्थमिपि भिन्नं मनुते । शब्दभेदेऽर्थभेद इति ब्रवन्नसौ शब्दनयं प्रतिक्षिपति । तथा हि—यदि भवां लिङ्गादिभेदेनार्थभेदमङ्गीकरोति तदा शब्दभेदेनार्थभेदमिप कथं नाङ्गीकरोति तसाद् घटो भिन्नार्थः, कुम्भो भिन्नार्थः, शब्दभेदाद्र्थभेद इति। शब्दार्थयोरैकयं यदस्ति तत्तु शब्दादिनयानां वासनया वर्त्तते शब्दनयस्यैव भेद इति क्रेय इति । अथ च पर्यायशब्देपु निकृत्तिभेदेन भिन्नमर्थ समिभरोहन् समिभरूढ इति । शब्दनयो हि पर्यायाभेदेऽप्यर्थभेदम-भिन्नति, समिभरूढस्तु पर्यायभेदे भिन्नानर्थानभिमन्यते । अभेदं त्वर्थगतं पर्यायशब्दानामु-पेङ्यत इति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थ:— राब्दनय धातु, प्रकृति तथा प्रत्ययआदिके विभागसे व्युत्पन्न राब्द-को सिद्ध मानता है; परन्तु लिंग, वचन, तथा धातुआदिके भेदसे अर्थका भेद मानता है। जैसे तटः यह पुछिंग, तटी यह स्त्रीलिंग तथा तटम् यह नपुंसकलिंगमें रूप होता है। यहां तीनों लिंगोंमें राब्दके स्वरूपमें भेद होनेसे अर्थका भेद मानता है। और आपः तथा जलम् ये दोनों राब्द यद्यपि पर्याय (एकार्थवाचक) हैं; तथापि अप् राब्द नित्य स्त्री लिंग ही हैं; और बहुवचन हैं; और जल राब्द नपुंसकलिंग तथा एकवचन हैं; इस हेतुसे (बहुवचन तथा एकवचनके भेदसे) अर्थ भेद है। और यह राब्दनय ऋजुस्त्र नय-के प्रति यह कहता हैं; कि—यदि तुम कालके भेदसे पदार्थका भेद मानते हो तो लिंग, वचनआदिके भेदसे उपस्थित जो पदार्थभेद हैं; उसको भी क्यों नहीं मानते ? अब सम-भिरूढनामक नय राब्दको भिन्न और अर्थको भिन्न मानता है; क्योंकि—राब्दका भेद होनेपर अर्थका भेद हैं; ऐसा कहता हुआ यह नय राब्दनयके प्रति आक्षेप करता है; सो ही दिखाते हैं; कि—यदि आप लिंगादिके भेदसे अर्थ भेद मानते हो तो राब्दके भेदसे अर्थके भेदको भी क्यों नहीं अङ्गीकार करते ? राब्दभेदसे अर्थभेद अवस्थ है; इसलिये घट

शब्द भिन्न अर्थवाचक है; और कुम्भशब्द भिन्नार्थवाचक है; क्योंकि—शब्दके घटभेदसे और कुम्भके अर्थमें भेद है; और शब्द तथा अर्थकी जो एकता है; वह तो शब्दआदि नयकी वासनासे है, अर्थात् वह एकता शब्दनयका ही भेद है; ऐसा समझना चाहिये और पर्याय शब्दोंमें व्युत्पत्तिके भेदसे अर्थके भेदको जो आरूढ करें वह समिस्टूढ कह-लाता है; यह इसका लक्षण है; जैसे—समर्थ होनेसे शक्त (शकनात् शकः) अनेक प्रकारके ऐश्वर्यांसे संयुक्त होनेसे इन्द्र (इन्दित ऐश्वर्य प्राप्नोतीति इन्द्रः) शत्रुवोंके नगरों-को विदारण करनेसे पुरंदर (पूः दारयतीति पुरन्दरः) इत्यादि समिस्टूढ नयके उदाहरण समझने चाहियें। शब्दनय तो पर्यायके अभेदमें भी ित्र वचनआदिके निमित्तसे अर्थभेद मानता है; और समिस्टूढनय तो पर्यायके अभेदमें भिन्न २ अर्थोंको स्वीकार करता है; जैसा कि—पूर्व उदाहरणोंसे दर्शा चुके हैं। और जो अर्थनिष्ट अभेद पर्यायवाचक शब्दोंका है; वह तो अर्थात् (अर्थसे) प्राप्त होगा जैसे शक्त, इन्द्रआदि शब्दोंका उन उन कार्योंसे भेद रहते भी उसी शचीके पतिरूप अर्थको सव कहते हैं॥ १५॥

अथैवंभूतनयं प्रकाशयन्ति । अब एवंभूतनयका प्रकाश करते हैं।

सूत्रम् । क्रियापरिणतार्थे चेदेवंभूतो नयो वदेत् । नवानां च नयानां स्युभेंदाः सिद्धिदृगुन्मिताः ॥ १६ ॥

सृत्रभावार्थ:—िकियाके परिणाम कालमें जो अर्थ हो उसको एवंभूत सप्तम नय कहता है; इस प्रकारसे द्रव्यार्थिकआदि नव ९ नयोंके भेद सिद्धि ८ और दक् (दृष्टि) २ " अङ्कानां वामतो गितः " इस न्यायसे २ और ८ अर्थात् अद्वाईस भेद हैं॥ १६॥

व्याख्या। यथा—एवंभूतो नयः शव्दानां प्रयृत्तिनिमित्तभूतिकयाविष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूत इति । समिभिक्त्वनयो हीन्द्नादिकियायां सत्यामसत्यां च वासवादेरथंसंन्द्रादिव्यपदेशमिभप्रेति, पर्श्वावशेपस्य गमनिकयायां सत्यामसत्यां वा गोव्यपदेशवत्त्रथा
कृदेः सद्भावान् । एवंभूतः पुनिरन्द्नादिकियापरिणतमर्थं तिक्कयाकालं इन्द्रादिव्यपदेशभाजमिभिन्यते । न हि कश्चिदिकयाशव्दोऽस्यास्ति । गौरश्च इत्यादिजातिशव्दाभिमतानामिप
कियाशव्दत्वाद्गच्छतीति गौः, आशुगामित्वादश्वः, इति कियापरिणतार्थं कियया परिणतमर्थं
वदेन् क्रियासमय एव मनुते । परन्तु क्रियासमयमुङ्ख्य न मनुत इति भावार्थः यथा
राजा इति सभायां सत्यां छत्रे शिरिस प्रियमाणं चामराभ्यां च वीज्यमाने सत्येव व्यपदेशं
लभते । अन्यत्र स्नानादिवेलायां सभाछत्रचामरादिभिस्तिचिहेरसद्भी राजापि नास्तीति ।
अथ च गुणशब्दा अपि शुक्को नील इत्यादयो गुणशब्दाभिमताः शब्दाः क्रिया एव,
शुचिभवनाच्छुक्को नीलनान्नील इति । देवदत्तो यज्ञदत्तः इति यद्दच्छाशब्दाभिमताः क्रिया

शब्दा एव "दण्डोऽस्यास्तीति दण्डो", विषाणमस्यास्तीति विषाणीत्यत्र क्रियाप्रधानत्वात् । पञ्चतयी तु शब्दानां व्यवहारमात्रा न निश्चयादित्ययं नयः स्वीकुरुते । उदाहरन्ति यथेन्दनमनुभविन्द्रः, शकनिक्रयापरिणतः शकः, पूर्दारणप्रवृत्तः पुरन्दर इत्युच्यते ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः — जैसे एवंभूतनय शब्दोंको प्रवृत्तिनिमित्त भूतिकयासे आविष्ट (युक्त) अर्थको ही वाच्यत्वरूपसे स्वीकार करता है; इसलिये यह एवंभूतनामक है; अर्थात् जि-स कियारूपमें परिणत अर्थ है; यही वाच्य है । और समभिरू दनय तो इन्द्रनादि क्रिया अर्थात् ऐश्वर्य साहित्य हो वा न हो बासवआदि शब्दोंकी इन्द्रआदि शब्द वा-च्यताको अंगीकार करता है; जैसे पशुविशेष(गो)में गमनआदि किया हो वा न हो गो व्यपदेश (कथन) होता है; क्योंकि-ऐसे ही रूढिका सद्भाव होता है; और एवंभूत नय तो इन्दन अर्थात् ऐश्वर्यआदिके साहित्यरूप कियामें परिणत जब अर्थ है; उस कियाके कालमें ही इन्द्रआदि नामको मानता है; और इस एवंभूतनयकी अपेक्षासे कोई अिकयाशब्द अर्थात क्रियावाचक न हो ऐसा शब्द नहीं है; क्योंकि-इस नयके अनुसार गो, अश्वआदि शब्द जो जातिवाचकरूपसे इष्ट हैं; वे भी क्रियावाचक हैं; जैसे गमन किया करनेसे गौ, और शीघ्र गमन करनेसे अश्व इस प्रकारसे कियापरिणत अर्थको क-हता है; और उस अर्थको भी कियाके समयमें ही मानता है; और कियाके समयको उहां-धन करके उस अर्थको नहीं मानता तात्पर्य यह है: कि-जैसे " राजते (शोभते) इति राजा " अर्थात् छत्र चामरआदिसे जो शोभित हो वह राजा है; यहांपर राजन् शब्दकी पूर्व कथित व्युत्पत्तिसे जब कोई मनुष्य सभामें स्थित होगा और उसके मस्तकपर छत्र धरा हुआ होगा और दो चमरोंसे झूल रहा (वीजित) होगा तभी वह राजा इस व्य-पदेशको प्राप्त होता है; और स्नानआदिके समयमें जब कि-सभा; छत्र, चामरआदि रा-जाके चिन्ह नहीं हैं; उस समय वही मनुष्य राजा नहीं है; और शुक्र, नील इत्यादिक शब्द गुणवाचकरूपसे अभीष्ट हैं; वे भी इस नयके अनुसार कियाशब्द ही हैं; जैसे गुचि होनेसे ग्रुक, नील रंग करनेसे नीलआदि भी कियाशब्द ही हैं। देवदत्त, यज्ञदत्त आदि जो यदच्छा (संज्ञा वा नामवाचक) शब्दरूपसे अभीष्ट हैं; वह भी कियाशब्द ही हैं: जैसे देव इसको देवे. इत्यादि कियारूपता इनमें भी विद्यमान है: तथा संयोगी द्रव्य-वाचक शब्द तथा समवायी द्रव्यवाचक शब्द अर्थात संयोग संबन्धसे द्रव्यवाचक और समवाय संबन्धसे द्रव्यवाचकत्वरूपसे जो इष्ट हैं, वह भी इस नयके अनुसार कियाशब्द ही हैं; जैसे-दंड है; जिसके वह दंडी तथा जिसके विषाण(शृंग)सींग है; वह विषाणी इत्यादि शब्दोंमें भी कियाकी प्रधानता है। और जाति, गुण, संज्ञा, द्रव्य, तथा किया इन पांच प्रकारसे जो शब्दोंकी प्रवृत्ति कही गई है; वह तो केवल व्यवहारनयसे है; न कि-निश्चयनयसे ऐसा यह नय मानता है; और इसी व्यवस्थासे अर्थात् संपूर्ण शब्दोंकी

कियावाचकताके अनुसार ही प्रवृत्ति है; ऐसा उदाहरण भी देता है; जैसे इन्द्र संज्ञा तभी हो सकती है; जब वह इन्द्रन (एश्वर्यको) अनुभव करता हो ऐसे ही शकन (सामर्थ्य संपादनरूप) कियामें जब परिणत है; तभी शक और इसी रीतिसे पुर (शत्रुके) दारणमें जब प्रवृत्त है; तभी पुरन्दर कहा जाता है ॥ १६ ॥

अथ व्याख्यासमाप्तिनयानां कृता तथैवाह्।

अब जो नो नयोंकी व्याख्याकी समाप्ति की है; उसीको कहते हैं।

सूत्रम् । नया नवैते कथितास्तथोपनयास्त्रयः सारतमाः श्रुतस्य । विज्ञाय तानेव बुधाः श्रयन्तां जिनक्रमाम्भोजयुगाश्रयं सत् १७

सूत्रभावार्थ:—यह शास्त्रके सारभूत नव ९ नय तथा तीन ३ उपनय कहे गये हैं; वुद्धिमान् उन्हीको पूर्णरूपसे जानकर सदृप (सर्वरूपसे समर्थ) श्रीजिनदेवके चरण कमलयुगलका आश्रय ग्रहण करें ॥ १७॥

व्याख्या । नवानां नवसङ्ख्याकानां नयानां द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नैगम ३ समूह ४ व्यवहार ५ ऋजुसूत्र ६ शब्द ७ समिमिक्ट ८ एवंभूत ९ मुखानां भेदाः प्रकाराः सिद्धि- ह्गुन्मिताः २८ प्रमिताः सर्वे स्युभवन्ति । तत्र द्रव्यार्थिको दशभेदः, पर्यायार्थिकः पङ्केदः, नेगमिक्षिभेदः, समूहो द्विभेदः, व्यवहारो द्विभेदः, ऋजुसूत्रो द्विभेदः, शब्द एकभेदः, समिमिक्ट एकभेद एवमेतेषां भेदा अष्टाविश्वतिः । अथान्यनमस्कारं प्रकृतप्रकृषणं नामो- त्कीर्त्तनमप्याह । एते पूर्वव्यावर्ण्यमाना नया नव संख्यया, तथा तेन प्रकारेणैवोपनया- स्वयोऽत्रे वक्ष्यमाणाश्च श्रुतस्य श्रीवीतरागदेवप्रणीतागमस्य सारतमा अतिशयन प्रधानाः सारतमा वर्त्तने । तदुक्तमावश्यकं निर्युक्ते । एएहिं दिष्ट्रिवाए पक्ष्वणा सुत्त अत्य कहणाय। इह पुण अपुणव्भवगमो अहिगारो तीहिं उस्सुन्नं । १ । इति तानेव नयान् विज्ञाय ज्ञात्वा द्वधाः सुधियः सत्सर्वतः समर्थ जिनकमान्भोजयुगाश्चयं श्रयन्तामित्यर्थः ॥ १७ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरनिर्भितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां पष्टोऽध्यायः । ६ ।

च्याख्यार्थ:—द्रव्याधिक १ पर्यायाधिक २ नैगम ३ सङ्ग्रह ४ व्यवहार ५ ऋजुसूत्र ६ शब्द ७ समिरु ८ तथा एवंभूत इन मुख्य नो नयोंके दक् (दृष्टि) तथा सिद्धि पार-मित अर्थात् अद्वाईस २८ सब अवान्तर भेद हैं; उनमें द्रव्याधिक के दश १० भेद, पर्यायाधिक के पट् (छ) ६ भेद, नगमके तीन ३ भेद, संग्रहके दो २ भेद, व्यवहारके दो २ भेद, ऋजुसूत्रके दो २ भेद, शब्दका एक १ भेद, समिरु हका एक १ भेद और एवंभूतनयका भी एक १ भेद हैं; इस प्रकार यह सब मिलकर अट्टाईस २८ भेद हैं। अब अन्तमें श्रीजिनदेवके चरणोंका आश्रयरूप नमस्कार तथा प्रकृतप्ररूपण और श्लेषसे अपने नामका भी कथन करते हैं। यह पूर्व प्रसंगमें व्याख्यात संख्यासे नौ ९ नय तथा जिनका कथन आगे करेंगे ऐसे तीन ३ उपनय यह सब श्रुतके अर्थात् श्रीवीतराग जिनदेवपणीत शास्त्रके अत्यन्त प्रधान विषय हैं; अर्थात् अतिउपयोगी हैं; सो ही आवश्यक

निर्युक्तिमें कहा है; कि-दृष्टिवादनामक अगमें सूत्र और अर्थके कथनकेलिये इनसे ही प्ररूपण है; और यहां मोक्षका अधिकार है; इसिलये अत्यन्तोपयोगी अर्थात् सारभूत हैं ॥ १ ॥ इस कारण इन नयोंको ही पूर्णक्ष्यसे जान कर बुद्धिमान् प्राणी सब प्रकारसे समर्थ श्रीजिनदेवके चरणकमलयुगलका आश्रय करें ॥ १७ ॥

इतिश्रीठाकुरप्रसादशास्त्रिप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथोपनयानां प्रकारमाह् । अब उपनयोंके भेद कहते हैं ।

। सूत्रम् । त्रयश्चोपनयास्तत्र प्रथमो धर्मधर्मिणोः । भेदाच्छुद्धस्तथाद्युद्धः सङ्गृतव्यवहारवान् ॥१॥

सूत्रभावार्थ:—तीन ३ उपनय हैं; उनमें प्रथम उपनय सद्भृतव्यवहार है; वह धर्म और धर्मीके भेदसे शुद्धसद्भृतव्यवहार तथा अशुद्धसद्भृतव्यवहार इन भेदोंसे दो प्रका-रका है ॥ १ ॥

व्याख्या । तत्रेत्यधिकारस्चकविषयसप्तमीयम् । नयानां समीपसुपनयास्त्रयिक्षसंख्याकाः । तेषु त्रिषु प्रथम आद्यो धर्मश्च धर्मा च तयोभेंदस्तसान् । धर्मधर्मिणोरसाधारणं कारणं धर्मः, स च धर्मोऽस्यास्तीति धर्मा तयोरितिद्वन्द्वसमासेन भेदान् द्विधा द्विप्रकारः । एतावता यः प्रथमो भेदो धर्मधर्मिभेदाज्ञातः सोऽपि द्विविधो क्षेय एकः शुद्धोऽपरो द्वितीयोऽशुद्धः । कथंभूतः शुद्धस्तथाशुद्धश्च सद्भृतव्यवहारवान सद्भ्यतेऽनेनित सद्भृतः, व्यवहिष्यत इति व्यवहारः, सद्भृतश्च व्यवहारश्च सद्भृतव्यवहारो । शुद्धाशुद्धौ तो विद्यतेऽस्येतिसद्भृतव्यवहारवान । शुद्धाशुद्धौ तो विद्यतेऽस्येतिसद्भृतव्यवहारः ।। १ ।। अशुद्धधर्मधर्मिणोभेदादशुद्धसद्भृतव्यवहारः ।। १ ।। सद्भृतस्त्वेकं द्रव्यमेवास्ति भिन्नद्रव्यसंयोगापेक्षा नास्ति । व्यवहारस्तु भेदा-पेक्षयेयेवं निरुक्तिः ।। १ ॥

च्याख्यार्थ:—तत्र (उसमं) यह जो सप्तमी विभक्ति है; वह अधिकारके ज्ञापन (जनाने) केलिये है; अधीत अब उपनयांका अधिकार है। नयोंके समीपवर्त्ता जो हों वह उपनय हैं; वह तीन अधीत तीन संख्यायुक्त हैं, उन तीनोंमेंसे प्रथम भेद धर्म तथा धर्मींके भेदसे हैं; धर्म और धर्मी इन दोनोंमें जो असाधारण कारण है; उसको धर्म कहते हैं; वह असाधारण कारणरूप धर्म जिसके हैं; उसको धर्मी कहते हैं। धर्म तथा धर्मिन् शब्दका द्वन्द्व समास करनेसे "धर्मधर्मिणोः" ऐसा पाठ बना है। इन धर्म धर्मींके भेदसे उत्पन्न हुआ प्रथम भेद दो प्रकारका है। अर्थात् धर्मींके भेदसे जो प्रथम भेद हुआ है; वह भी दो प्रकारका जानना चाहिये। एक ग्रुद्ध और दुसरा अग्रुद्ध । वह ग्रुद्ध और अग्रुद्ध कैसा है; कि—सद्भृतव्यवहारसे युक्त है। सद् जिसके द्वारा हो उसको सद्भृत

कहते हैं। जिसके द्वारा व्यवहार किया जाय वह व्यवहार कहलाता ह। सद्भृत तथा व्यवहार इन दोनों शब्दोंका द्वन्द्वसमास करके सद्भूतव्यवहार यह एक शब्द बना। यह शुद्ध तथा अशुद्ध सद्भृतव्यवहार जिसके हैं; वह सद्भृतव्यवहारवान् है। इनमेंसे शुद्ध धर्म धर्मांके भेदसे तो उत्पन्न शुद्धसद्भृतव्यवहार और अशुद्ध धर्म धर्मांके भेदसे उत्पन्न अशुद्धसद्भृतव्यवहारका भेद है। सद्भृत तो एक द्रव्य ही है; उससे भिन्न द्रव्यके संयोगकी अपेक्षा नहीं है। और जो व्यवहार है; वह भिन्न द्रव्यके संयोगकी अपेक्षा होता है। इस प्रकार सद्भृतव्यवहारशब्दकी व्युत्पत्ति (अर्थ) है॥ १॥

उदाहरणमाह् ।

अब शुद्धसद्भृतव्यवहारका उदाहरण देते हैं।

सूत्रम् । ज्ञानं यथात्मनो विश्वे केवलं गुण इष्यते । मतिज्ञानाद्योऽप्येते तथैवात्मगुणा भुवि ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—जैसे इस संसारमें आत्माका केवलज्ञान गुण है; वैसे ही मित ज्ञान आदि भी पृथ्वीपर आत्माके ही गुण हैं ॥ २ ॥

च्याख्या । यथा विश्वं जगत्यात्मनः केवलं ज्ञानं गुण इति पष्टीप्रयोगः । इदमात्मद्र-व्यस्य ज्ञानमिति । तथा मितज्ञानादयोऽथात्मद्रव्यस्य गुणा इति व्यवह्रियते । केवलज्ञानं यद्वर्त्तते स एव शुद्ध आत्मास्ति मत्यादयो ज्ञानानि केवलावरणविशेषिता व्यवहारा अशुद्धा लक्ष्यन्त इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ:—जैसे इस संसारमें आत्माका केवलज्ञान गुण है, "आत्मनः" यह षष्ठी विभक्तिका प्रयोग सूत्रमें किया है, अर्थात् यह केवलज्ञान आत्मद्रव्यका गुण है; इसी प्रकार मित ज्ञानआदि भी आत्मद्रव्यके ही गुण हैं; ऐसा व्यवहार लोकमें होता है। केवलज्ञान जो है; सो ही शुद्ध आत्मा है; केवलावरणविशिष्ट जो मित ज्ञानआदि हैं; वह व्यवहाररूप हैं; अतः अशुद्ध आत्मगुण हैं॥ २॥

सूत्रम्। गुणो गुणी च पर्यायः पर्यायी च स्वभावतः। स्वभावी कारकस्तद्वानेकद्रव्यानुगा विधाः॥३॥

सूत्रभावार्थः—गुण, गुणी १ पर्याय, पर्यायी २ स्वभाव, स्वभावी ३ कारक तथा कारकवान् ४ ये सब भेद एक द्रव्यकेही अनुगामी हैं॥ ३॥

व्याख्या। गुणो रूपादिः, गुणी घटः १ पर्ग्यायः मुद्राकुण्डलादिः, पर्ग्यायी कनकम् २ स्वभावो ज्ञानम्, स्वभावी जीवः ३ कारकश्चकदण्डादिः, कारकी कुलालः ४ अथवा गुणगुणिन् नौ १ कियाक्रियावन्तौ २ जातिव्यक्ती ३ नित्यद्रव्यविशेषो चेति ४ एवं एकद्रव्यानुगत-भेदा उच्यन्ते। ते सर्वेऽप्युपनयस्यार्थो ज्ञातव्याः। अवयवावयविनाविति। अवयवादयो हि यथाक्रममवयव्याद्याश्रिता एव तिष्ठन्तेऽविनश्चयन्तो, विनश्चद्वस्थास्त्वनाश्रिता एव तिष्ठन्त इत्यादि॥ ३॥

व्याख्यार्थ:— रूपआदि गुण हैं, घटआदि गुणी हैं; १ मुद्रा तथा कटक, कुंडल आदि पर्याय हैं, पर्यायी सुत्रण हैं; जिसमें कि—कटक, कुंडल आदि पर्याय रहते हैं; २ ज्ञान स्वभाव है, और उस ज्ञानस्वभावका धारक जीव स्वभावी है; ३ चक (चाक) दंडआदि कारक हैं: और कारकवान् या कारकी कुंभकार (कुंभार) है; ४ अथवा दृसरी रीतिसे गुण, गुणी १ किया, कियावान् २ जाति, व्यक्ति ३ तथा नित्यद्रव्य और उनके विशेष ऐसे ४ यह सब एक द्रव्यमें अनुगत भेद कहे जाते हैं। और उन सब गुण गुणीआदिको उपनयका अर्थ जानना चाह्ये। अवयवआदि यथा क्रमसे अवयवीआदिके आश्रय रहते हैं, परन्तु जबतक नाशको प्राप्त नहीं होते तभीतक अवयव अवयवीआदि आश्रय आश्रयीभावसे स्थित रहते हैं। और विनाशको प्राप्त होते हुए तो अनाश्रित ही रहते हैं॥३॥

अथासद्भुतन्यवहारं निरूपयति ।

अब असद्भृतव्यवहारका निरूपण करते हैं।

सूत्रम् । असद्भृतव्यवहारो द्रव्यादेरुपचारतः । परपरिणतिश्चेष, जन्यो भेदो नवात्मकः ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः — द्रव्यादिके उपचारसे परवस्तुके परिणमनके संसर्गसे उत्पन्न असद्भृत व्यवहार है; और वह नव ९ प्रकारका है॥ ४॥

व्याख्या । असद्भुतव्यवहारः स कथ्यते यः पर्दुव्यस्य परिण्यामिश्रितः, अर्थात् द्रव्यादे-र्धर्माधर्मादेरुपचारत उपचरणात्परपरिणतिश्लेपजन्यः परस्य वस्तुनः परिणतिः परिणमन तस्य श्लेषः संसर्गस्तेन जन्यः परपरिणतिश्लेषजन्योऽसङ्ग्तव्यवहारः कथ्यते । अत्र हि शुद्ध-स्फटिकसंकाराजीवभावस्य परराव्देन कर्म तस्य परिणतिः पञ्चवर्णादिरौदात्मिका तस्याः श्रेपो-जीवप्रदेशैः कर्मप्रदेशसंसर्गस्तेन जन्य उत्पन्नः परपरिणतिऋष्यजन्योऽसद्भतन्यवहाराख्यो द्वितीयो भेदः कथ्यते । स नवधा नवप्रकारो भवति । तथा हि-द्रव्ये द्रव्योपचारः १ गुणे गुणोपचारः २ पर्याये पर्यायोपचारः ३ द्रव्ये गुणोपचारः ४ द्रव्ये पर्यायोपचारः ५ गुणे द्रव्योप-चारः ६ गुणे पर्यायोपचारः ७ पर्याये द्रव्योपचारः ८ पर्याये गुणोपचारः ९ ॥ इति सर्वेऽप्य-सद्भुतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः । अत एवोपचारः प्रथम्नयो न भवति । मुख्याभावे सति प्रयो-जने निमित्ते चोपचारः प्रवर्त्तते । सोऽपि संवन्धाविनाभावः ऋषः संवन्धः । परिणाम-परिणामिसंबन्धः; श्रद्धाश्रद्धेयसंबन्धः, ज्ञानज्ञेयसंबन्धश्चेति । भेदोपचारतया वस्तु व्यव-ह्रियत इति व्यवहारः। गुणगुणिनोर्द्रव्यपर्याययोः संज्ञासंज्ञिनोः स्वभावतद्वतोः कारकत-द्वतोः कियातद्वतोर्भेदाद्भेदकः सद्भुतव्यवहारः । शुद्धगुणगुणिनोः शुद्धद्रव्यपर्याययो-शुद्धसद्भूतव्यवहारः । तत्र उपचरितसद्भूतव्यवहारः सोपाधिकगुणगुणि-नोर्भेदविषय उपचरितसद्भुतव्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः । निरुपाधिकगुण-गुणिनोर्भेदकोऽनुपचारी सद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः ३ शुद्धगुण-गुणिनोरशुद्धद्रव्यपर्याययोर्भेद्कथनमशुद्धसद्भृतव्यवहारः ४ इत्यादिप्रयोगवशाञ्ज्ञेयमिति ॥४॥ व्याख्यार्थ:-असद्भतव्यवहार उसको कहते हैं: कि-जो परवस्तुके परिणामसे मिश्रित

रहता है; अर्थात् धर्म अधर्मआदि जो द्रव्य हैं; उनके उपचारसे जो परवस्तुका परिणाम है; उस परिणामके संसर्गसे उत्पन्न असद्भृतव्यवहार कहा जाता है। यहांपर शुद्ध स्फटिकमणिके समान जीवभावका प्रहण है। उस जीवभावका परवस्तु कर्म है; उसकी परिणति पंचवर्णादि रोद्रात्मिका है; उस पंचवर्णादि रोद्रस्वरूप परिणतिका संबन्ध जीव-प्रदेशोंके साथ कर्मप्रदेशोंका संसर्ग होना है, उस परपरिणतिसे जन्य अर्थात् उत्पन्न असद्भृतव्यवहारनामक द्वितीय भेद कहा गया है । और वह असद्भृतव्यवहार नौ ९ प्रकारका है; जैसे द्रव्यमें द्रव्यका उपचार १ गुणमें गुणका उपचार २ पर्यायमें पर्यायका उपचार ३ द्रव्यमें गुणका उपचार ४ द्रव्यमें पर्यायका उपचार ५ गुणमें द्रव्यका उप-चार ६ गुणमें पर्घ्यायका उपचार ७ पर्घ्यायमें द्रव्यका उपचार ८ तथा पर्यायमें गुणका उपचार यह नो ९ भेद असद्भृतव्यवहारके हैं ॥ इस प्रकार इन सब भेदोंको असद्भृत-व्यवहारका ही अर्थ समझना चाहिये। असद्भृतमें अन्तर्भाव होनेसे ही उपचार प्रथग् नय नहीं होता है; क्योंकि-मुख्यके अभावमें प्रयोजन तथा निमित्तमें उपचारकी प्रवृत्ति होती है । और वह उपचार भी एक अविनाभाव(व्याप्ति)रूपसंबंध ही है। जैसे कि-परिणामपरि-णामिभावसंबन्ध, श्रद्धाश्रद्धेयभावसंबन्ध, तथा ज्ञानज्ञेयभावसंबन्ध । जिससे भेटके उपचारसे वस्तुका व्यवहार किया जाय सो व्यवहार है। जैसे गुण गुणीका, संज्ञा संज्ञी (नाम नामी)का, स्वभाव म्वभाववान्का, कारक कारकवान् तथा किया और कियावान्के . भेद रहनेपर भी जो अभेदक है: अर्थात् अभेद दर्शाता है; वह सद्भतव्यवहार है। और शुद्ध गुण गुणी, तथा शुद्ध द्रव्य और पर्यायका जो भेदका कथन है; वह शुद्धसद्भ तव्यवहार है । उसमें भी उपाधिसहित गुण गुणीके भेदविषयक जो है; वह उपचरितसद्भृतव्यवहार है, जैसे जीवक मित ज्ञानआदि गुण हैं। और उपाधिरहित गुण गुणीके भेदका कथन करनेवाला अनुपचरित सद्भृतव्यवहार है; जैसे जीवके केवलज्ञानआदि गुण हैं। यहां पूर्वमें तो जीव कर्मआदि उपाधिसहित है; उसका तथा उसके मित ज्ञानआदि गुणोंका भेद दर्शाया गया है, और अन्तके उदाहरणमें जीव कर्मादि उपाधियोंसे रहित विवक्षित है; अत एव उपाधिरहित जीव गुणी तथा केवलज्ञानआदि उसके गुणोंका भेद अनुपच-रितसद्भृत उपनयसे दर्शाया गया है। तथा शुद्ध गुण गुणी और अशुद्ध द्रव्य पर्यायके जो भेदका कथन है; वह अगुद्धसद्भातव्यवहार है ॥ इत्यादि अन्य भी प्रयोगके अनुसार समझ लेना ॥ ४ ॥

अथ नवभेदानसङ्क्तन्यवहारजन्यान्त्रिवृणोति। अब जो असङ्कृतव्यवहारसे उत्पन्न नो ९ भेद हैं; उनका विवरण करते हैं। सूत्रम् । द्रव्ये द्रव्योपचारो हि यथापुद्गरुजीवयोः।

गुणे गुणोपचारश्च भावद्रव्याख्यलेइययोः॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थ:—पुद्गलमें जीवका जो मानना है; सो तो द्रव्यमें द्रव्यका उपचार है; भावलेश्याके जो द्रव्यलेश्याका कथन करना है; सो गुणमें गुणका उपचार है॥ ५॥

व्याख्या । हि निश्चितं द्रव्ये गुणपर्यायवित वस्तुनि द्रव्योपचारः । द्रव्यस्य प्रस्तुतस्यो-पचार उपचरणमात्रधमः । यथेति दृष्टान्तः । श्रीजिनस्यागमे पुद्रलजीवयोरेक्यं जीवः पुद्रलक्ष्यः पुद्रलात्मकः । अत्र जीवोऽपि द्रव्यम्, पुद्रलोऽपि द्रव्यम्, उपचारेण जीवः पुद्रलम्य एवासद्भृतव्यवहारेण मन्यते न तु परमार्थतः । यथा च श्लीरनीरयोन्यायात् । श्लीरं हि नीरमिश्रितं श्लीरमेवोच्यते व्यवहारादेवमत्र जीवद्रव्ये पुद्रलद्रव्योपचारः ॥ १ ॥ पुनर्गुण गुणोपचारो गुणे क्पादिके गुणस्योपचारः । यथा भावलेद्याद्रव्यलेद्ययोक्ष्यचारः । भावलेद्या ह्याह्यात्मनोऽक्ष्पी गुणस्तस्य हि यत्कृष्णनीलादिकथनं वर्त्तते तद्धि पुद्रलद्रव्यजगुणस्योपचारो-ऽस्ति । अयं ह्यात्मगुणस्य पुद्रलगुणस्योपचारो ज्ञातव्यः ॥ ५ ॥

च्याख्याधी:—निश्चय करके द्रव्यमें अर्थात् गुणपर्यायवान् वस्तुमें प्रस्तुत द्रव्यका उपचार अर्थात् धर्ममात्रका आरोप करना। यथा इस शब्द हे दृष्टान्त कहते हैं। जैसे श्रीजिनदेवके आगममें पुद्गल और जीवकी एकता है; अर्थात् जीव पुद्गलरूप हे। यहां जीव भी द्रव्य है; और पुद्गल भी द्रव्य है; इसिलये उपचारसे जीव पुद्गलरूप ही है; ऐसा असद्भृतव्यवहारसे माना जाता है; न कि—परमार्थसे। यहांपर जीवको पुद्गलरूपता क्षीर नीरके न्यायसे है; अर्थात् व्यवहारसे जलिमिश्रत भी दुग्ध हो कहा जाता है; इसी प्रकार यहां भी जीवद्रव्यमें पुद्गल द्रव्यका उपचार (आरोप) है; तात्पर्य यह कि—जल दुग्धमें मिलकर दुग्धाकार हो जाता है; और दुग्धके ग्रहणसे ही उसका ग्रहण होता है; ऐसे ही पुद्गलमें मिलनेसे जीव भी पुद्गलाकार समझा जाता है। और गुण जो रूपआदि हैं; उनमें गुणका ही आरोप करना सो गुणमें गुणका उपचार है। जैसे भावलेश्यामें द्रव्यलेश्याका उपचार होता है। भावार्थ—भावलेश्या जो है; वह आत्माका अरूपी गुण है। उस आत्माके भावलेश्यानामक रूपरहित गुणको कृष्ण, नील इत्यादिरूपसे कहते हैं। और वह कृष्ण, नीलआदिरूप जो कथन है; सो पुद्गलसे उत्पन्न हुए गुणका उपचार है। इसको आत्माके गुणके पुद्गलके गुणका उपचार जानना चाहिये। क्योंकि— भावलेश्या तो आत्माका अरूपी गुण है; और कृष्ण नीलआदि पुद्गलके गुण हैं॥ ५॥

सूत्रम् । पर्याये किल पर्यायोपचारश्च यथाभवेत् । स्कन्धा यथात्मद्रव्यस्य गजवाजिसुखाः समे ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—पर्यायमें पर्यायका उपचार करना यह असद्भृतव्यवहारका तृतीय भेद है; जैसे आत्मद्रव्यपर्यायके तुल्य गज तथा अश्वआदि पर्यायस्कंध होते हैं ॥ ६ ॥

च्याख्या । पर्याये पर्यायविषये नरत्वादिके पर्यायस्य तदादिकस्यैवोपचारः । यथात्मद्रव्य-पर्यायस्य गजवाजिमुखाः पर्यायस्कन्धा उपचारादात्मद्रव्यस्य समानजातीयद्रव्यपर्यायास्तेषां स्कन्धाः कथ्यन्ते । ते चात्मपर्यायस्थोपरि पुद्रलपर्यायस्थोपचरणात्स्कन्धा व्यपदिइयन्ते व्युवहारात् ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थ:—पर्यायमें अर्थात् आत्मद्रव्यके मनुष्यआदि पर्यायमें मनुष्यआदि पर्यायका ही उपचार जो है; वह पर्यायमें पर्यायका उपचार कहलाता है। जैसे आत्मद्रव्यपर्यायके हस्ती (हाथी) अश्व(घोडा)आदि पर्यायस्कन्ध उपचारसे आत्माके समानजातीय (तुल्य) जो द्रव्य पर्याय हैं; उनके स्कन्ध (प्रदेश) कहे जाते हैं। और वह आत्माके पर्यायके ऊपर पुद्गलके पर्यायका उपचार करनेसे व्यवहारकी अपेक्षासे स्कन्ध-रूपसे व्यपदेशित होते हैं। २।॥६॥

अथ द्रव्ये गुणोपचारः।

अव द्रव्यमें गुणका उपचार दिखाते हैं।

सूत्रम् । द्रव्ये गुणोपचारश्च गौरोऽहमिति द्रव्यके । पर्यायस्योपचारश्च ह्यहं देहीति निर्णयः॥७॥

सूत्रभावार्थ:—और में गौर हूं यह तो आत्मद्रव्यमें गुणका उपचार है: तथा मैं देही हूं यह आत्माद्रव्यमें पर्यायका उपचार है ॥ ७ ॥

व्याख्या। यथाहं गौर इति ब्रुवनामहमित्यात्मद्रव्यम्, तत्र गौर इति पुद्गलस्योज्ज्वल-ताख्यो गुण उपचरितः। ४। अथ द्रव्यं पर्यायोपचारः। अथवा "अहं देहीति निर्णयः" इत्यत्राहमित्यात्मद्रव्यम्, तत्रात्मद्रव्यविषये देहीति देहमस्यास्तीति देही। देहमिति पुद्गल-द्रव्यस्य समानजातीयद्रव्यपर्याय उपचरितः। ५।॥ ७॥

च्याख्यार्थः—जेसे में गौरवर्ण हूं ऐसा कहनेवालोंकेलिये यहांपर "अहम्" यह आत्म-द्रव्य है; उसमें गौर इस पुद्रलके उज्ज्वल नाम गुणका उपचार किया गया है। अब द्रव्यमें पर्यायके उपचारका उदाहरण कहते हैं।—जेसे कि—मैं देही हूं अर्थात् में शरीर-वान् हूं ऐसा निर्णय करना यहां "अहं देही" (में देहवाला हूं) इस वाक्यमें "अहम्" पद्से आत्मद्रव्य विवक्षित है; उस आत्मारूप द्रव्यमें देही अर्थात् जिसके देह है; तो देह सहित होना यह पुद्रलद्रव्यके पर्यायका उपचार हुआ है।। ७।।

सूत्रम्। गुणे द्रव्योपचारश्च पर्यायेऽपि तथैव च। गीर आत्मा देहमात्मा दृष्टान्तौ हि कमात्तयोः॥८॥

सूत्रभावार्थ: --गुणमें द्रव्यका उपचार यह षष्ठ और पर्यायमें गुणका उपचार यह सप्तम असद्भूतव्यवहार उपनयके भेद हैं। "आत्मा गौर है" यह षष्ठ नयका और देह आत्मा है; यह सप्तमका क्रमसे दृष्टान्त है।। ८।।

व्याख्या । गुणे द्रव्योपचारश्च तथा पर्याये गुणोपचारश्चेवं द्वावुपनयासद्भृतव्यवहारस्य भेदौ । अथ तयोरेवानुक्रमेण दृष्टान्तो । यथा "अयं गौरो दृश्यते स चात्मा" अत्र गौर मुद्दिश्यात्मनो विधानं क्रियते यत्तदिह् गौरतारूपपुद्गलगुणोपर्यात्मद्रव्यस्योपचारपठन-

मिति । पर्याये द्रव्योपचारो यथा "देहमित्यात्मा" अत्र हि देहमिति देहाकारपरिणतानां पुद्गळानां पर्यायेपु विषयभूतेषु चात्मद्रव्यस्योपचारः कृतः । देहमेवात्मा देहरूपपुद्गळपर्यायविषय आत्मद्रव्यस्यापौद्गळिकस्योपचारः कृत इति सप्तमो भेदः । "अतित सातस्येन गच्छैति
तांस्तान्पर्यायानित्यात्मा" अत्र पर्यायाणां द्रव्यभावभेदितानां गमनप्रयोगो यद्यपीष्टस्तथाप्यसद्भूतव्यवहारविवक्षावळेनोपचारधर्मस्येव प्राधान्याद्वृहिः पर्यायावलम्बनेन कर्मजशुभाशुभपुद्गळपरिणतगौराख्यवणोऽपि लक्षित आत्मा भासते तदा गौर आत्मेति प्रतीतिर्जायते ।
अन्यथात्मनः शुद्धस्याकर्मणः कृतो गौरत्वध्वनिरत एवोपचारधर्मः देहमात्मेत्यत्र त्वौदारिकादिपुद्गळप्रणीतं देहमोद्यिकेनाश्रित आत्मा उपलक्ष्यते तदा देहमात्मेत्युपचारध्वनिः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:--गुणमें द्रव्यका उपचार, और पर्यायमें द्रव्यका उपचार यह दोनो क्रमसे षष्ठ तथा सप्तम असद्भतव्यवहार उपनयके भेद हैं, अब इन दोनोंके क्रमसे उदाहरण यह हैं। जैसे "यह जो गौर देखनेमें आता है; वह आत्मा ही है" इस वाक्यमें गौरको उद्देश्य करके आत्मारूप द्रव्यका जो विधान किया जाता है; वह गौरतारूप पुद्रल द्रव्यके गुणके ऊपर आत्मद्रव्यका उपचारपठन है। अब पर्यायमें द्रव्यका उपचार जैसे यह देह आत्मा है: इस वाक्यमें ''देहम्'' देह आत्मा है: ऐसा कहनेमें विषयभृत जो देहके आकार पुद्गलोंके पर्याय हैं; उनमें आत्मद्रव्यका उपचार किया गया है; भावार्थ देह ही आत्मा है; यहां देहरूप पुद्रल पर्यायके विषयमें अपोद्रलिक अर्थात् पुद्रलभिन्न जो आत्मद्रव्य है; उसका उपचार किया गया है; ऐसा पर्यायमें द्रव्यका उपचारहर सप्तम भेट हैं। ७। अब आत्मा शब्द निरन्तरगमनार्थक अतु धातुसे मन् प्रत्यय लगानेसे वनता है; इसिलये उन २ पर्यायोंमें जो निरन्तर गमन करे वह आत्मा है। यहांपर द्रव्यभावसे भेदको प्राप्त पर्यायोंका यद्यपि गमनरूपसे प्रयोग इष्ट हैं; तथापि असद्धत-ब्यवहार उपनयकी विवक्षांक वलसे उपचार धर्मकी ही प्रधानता है, इसलिये बाह्यदेशमें पर्यायोंका अवलम्बन करनेसे कर्मींसे उत्पन्न शुभ तथा अशुभ पुद्गलोंके परिणामरूप जो गौर(उज्ज्वल)नामा वर्ण है; वह भी देखा हुआ जब आत्मा भासता है; तब यह गौर आत्मा है; ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है, अन्यथा परमार्थमें गुद्ध तथा कर्मरहित आत्माके गौरपनेका कथन कहांसे हो सकता है। इसीलिये उपचार धर्म है। और ''देहमात्मा'' देह आत्मा है; यहांपर औदारिकआदि शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंसे शरीरकी **औदि**यकभावसे आश्रित आत्मा प्राप्त होता है; तत्र यह देह आत्मा है; ऐसे उपचारकी ध्वनि होती है।। ८॥

अथाष्ट्रमभेदोत्कीर्त्तनमाह । अब अष्टम भेदका निरूपण करते हैं।

सूत्रम् । गुणे पर्यायचारश्च मतिज्ञानं यथा तनुः । पर्याये गुणा्चारोऽपि ज्ञारीरं मतिरिष्यते ॥ ९ ॥ सूत्रभावार्थः—गुणमें पर्यायका उपचार जैसे मितज्ञान शरीर है, तथा पर्यायमें गुणका उपचार जैसे शरीर मितज्ञान है ॥ ९ ॥

व्याख्या। गुणे पर्यायोपचारः पर्यायचार इत्युपचारो वाच्यो भीमो भीमसेन इति वत्। यथा मितज्ञानं तदेव शरीरं शरीरजन्यं वर्त्तते ततः कारणादत्र प्रतिज्ञानरूपात्मकगुणविषये शरीररूपपुद्रलपर्यायस्योपचारः कृतः। ८। अथ नवमभेदोत्कीर्त्तनमाह । पर्याये गुणोपचारः। यथा हि पूर्वप्रयोगजमन्यथा क्रियते। यतः शरीरे तदेव मितज्ञानरूपो गुणोऽस्ति। अत्र हि शरीररूपपर्यायविषये मितज्ञानरूपाख्यस्य गुणस्योपचारः क्रियते । शरीरिमिति पर्यायस्तिमिन्वपये मितज्ञानाख्यो गुणस्तस्य चोपचारः कृतः । अत्र चाष्टमनवमिकरूपयोः समिविपमकरणेनोपचारो विहितस्तत्रापि सहभाविनो गुणः, क्रमभाविनः पर्यायाः, । सहभावित्वं च द्रव्येण क्रमभावित्वमपि द्रव्येणेव ज्ञेयमतो द्रव्यस्यैव गुणः, पर्याया अपि द्रव्यस्यैव। गुणपर्याययोः पर्यायगुणयोश्च परस्परमुपचारव्यवहारः कृतः । यत्रोपचारस्तत्र निद्र्शनमात्रमेव विसहशर्धित्वेन धर्मारोपवत् । किश्चमितज्ञानमात्मनः कश्चिदुद्वदितो गुणः। शरीरे च पुद्रलद्ववस्य समवायिकारणम्। यथा मृत्पिण्डे घटस्य समवायिकारणमितिवत् । एत्रं सत्युपचारो जायते परेण परस्योपचारात् स्वेन खेनोपचारासम्भवः । यथा मृत्पिण्डस्य घटेन, तन्त्नां पटेनेत्येवं सद्भूतव्यवहारो नवधोपिदृष्टः । उपचारबल्धेन नवधोपचाराः कृताः ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थ:-यहां गुणमें पर्यायका चार "गुणे पर्यायचारः" इस परसे पर्यायके उपचारसे तात्पर्य है: जैसे भीम और भीमसेन दोनोंसे एक ही अर्थ होता है: अर्थात जैसे भीमके कथनसे भीमसेनका बोध होता है; ऐसे ही यहां भी चार इस कथनसे उपचार अर्थसे तात्पर्य है; गुणमें पर्यायक उपचारका उदाहरण जैसे जो मतिज्ञान है; वही शरीर है; अर्थात् शरीरजन्य है; इसलिये यहां मतिज्ञानरूप गुणके विषयमें शरीररूप पुद्गल पर्यायका उपचार किया गया है। ८। अब नवम भेदका कथन करते हैं: पर्यायमें गुणका उपचार जैसे पूर्व प्रयोग जो मतिज्ञान है; वहां शरीर है; इसको विपरीत कर देनेसे जो शरीर है; वहीं मतिज्ञानरूप गुण है। यहां शरीररूप पर्यायके विषयमें मतिज्ञानरूप गुणका उप-चार है। क्योंकि—शरीर तो पर्याय है: उस शरीरके विषयमें मतिज्ञाननामक गणका उप-चार किया गया है। इन अष्टम, नवम, असद्भृतव्यवहारउपनयके भेदोंनें सम विषम कर-नेसे उपचार कियागया है। इनमें भी सहभावी जो हैं; वह गुण हैं; और जो क्रमभावी हैं; वह पर्याय हैं। और सहभावित्व अर्थात् साथ होना भी द्रव्यसे ही है; तथा क्रमभावित्व अर्थात् कमसे होना यह भी द्रव्यसे ही है, इस कारण द्रव्यके ही गुण हैं: और द्रव्यके ही पर्याय हैं। गुण तथा पर्यायका और पर्याय तथा गुणका परस्पर उपचार व्यवहार कियागया है। जिसमें जिसका उपचार होता है; उसमें उसका विसदशधर्मीके धर्मके आरोपके सदश दृष्टान्तमात्र दर्शाया जाता है। और मतिज्ञान जो है; वह आत्माका कोई उत्पन्न हुआ गुण है, तथा शरीर

पुद्गल द्रव्यका समवायीकारण है। जैसे मृत्तिकाके पिण्डमें घटकी समवायीकारणता है; और ऐसी दशा होनेपर ही उपचार होता है; क्योंकि—परके साथ परका उपचार होता है; और खके साथ ख(निज)का उपचार नहीं हो सकता है। जैसे मृत्पिण्डका घटके साथ तथा तंतुवोंका पटके साथ उपचार नहीं होता । इस रीतिसे असद्भृतव्यवहार नव ९ प्रकारसे निरूपण कियागया। और उपचारके बलसे उपचार भी नव ९ प्रकारके ही किये गये॥ ९॥

अथ तस्यैवासद्भूतव्यवहारस्य भेदत्रयं कथ्यते । अब उसी असद्भूतव्यवहारके तीन भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । असङ्कृतन्यवहार एवमेव त्रिधा भवेत् । तत्राद्यो निजया जात्याप्यणुभूरिप्रदेशयुक् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थ:—असङ्क्तव्यवहार पूर्व कथित प्रकारसे ही तीन प्रकारका होता है, उनमें आदि भेदका उदाहरण जैसे निज जातिसे परमाणु अनेक प्रदेशोंका धारक है ॥ १० ॥

व्याख्या । असङ्क्तव्यवहार एवं पूर्वोक्तरीक्षेव त्रिधा त्रिप्रकारो भवेत् । तत्र त्रिपु भेदे-घ्वाद्यो भेदो यथा परमाणुः बहुप्रदेशी कथ्यते । कथं तर्हि-परमाणुस्तु निरवयवोऽतो निर-वयवस्य सप्रदेशत्वं नास्ति तथापि वहुप्रदेशानां सांसर्गिकी जातिः परमाणोरस्ति । यथा हि द्वचणुकत्र्यणुकादिस्कन्धवन् ॥ १०॥

व्याख्यार्थ:—असद्भृतव्यवहार पूर्व कथित प्रकार से ही तीन प्रकारका होता है; उन तीनों भेदोंमेंसे प्रथम भेदका उदाहरण यह है; कि—जैसे परमाणु वहुप्रदेशयुक्त कहा जाता है। अब परमाणु अनेक देशभागी है; यह कथन केसे संगत हो सकता है; क्योंकि—पर-माणु तो निरवयव (अवयवरहित) पदार्थ है; इसिल्ये यद्यपि निरवयवको सप्रदेशता (प्रदेशसहितपना) ही नहीं है; तथापि बहुप्रदेशोंकी सांसर्गिकी अर्थात् संसर्गसिद्ध परमाणुके हैं; जैसे दो अणुवोंका स्कन्ध, तीन अणुवोंका स्कन्ध इत्यादि॥ १०॥

अथ द्वितीयो भेदश्च।

अब असद्भृतव्यवहारके द्वितीय भेदका भी कथन करते हैं।

सूत्रम् । विजात्यापि स पुवान्या यथा मूर्त्तिमती मतिः । मूर्तिमद्भिरपि द्रव्यैर्निष्पन्ना चोपचारतः ॥ ११ ॥

सृत्रभावार्थ:—विजातिसे भी वही असद्भृतव्यवहार प्रवृत्त होता है, जैसे मूर्तिमान् | द्रव्योंके उपचारसे मतिज्ञान मूर्तिमान् सिद्ध होता है, अर्थात् "मतिमूर्तिमती" ऐसा व्यवहार दृष्ट है; यह अन्य अर्थात् द्वितीय असद्भृत व्यवहार है॥ ११॥

व्याख्या । यथा स एवासङ्क्तो विजात्या वर्त्तते । यथा वा मूर्तिमती मतिः । मतिर्ज्ञानं

मूर्त्तं कथितं तत् मूर्त्तविषयलोकमनस्कारादिकेभ्य उत्पन्नं तस्मान्मूर्तं वस्तुतस्तु मितिज्ञान-मात्मगुणस्तस्य चापोद्गलिकस्य मूर्त्तिमत्पुद्गलगुणोपचारः कृतः । स तु विजात्या असङ्गत-व्यवहारः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:—जैसे वही असद्भृतव्यवहार विजाति अर्थात् अन्यजातिसे भी है। जैसे मित मूर्तिमती है; अर्थात् मितज्ञान मूर्त (आकारसंयुक्त) कहा गया है। वह मूर्त विषय लोक तथा मनस्कारभादिसे उत्पन्न हुआ है; इस कारण मूर्त है। यथार्थमें तो मितज्ञान आत्माका गुण है; अतः वह अपौद्गलिक है; अर्थात् पुद्गलसे उत्पन्न हुआ नहीं है; उस अपौद्गलिक मितज्ञानके मूर्तिमान् पुद्गलगुणका उपचार किया गया है; और यह उपचार चेतन धर्मके विजातीय मूर्तिमान् पुद्गल गुण है; इस कारण विजातिसे असद्भूत व्यवहार है॥ ११॥

अथ तृतीयमाह ।

अब असङ्ग्तव्यवहारका तृतीय भेद कहते हैं।

सूत्रम् । खजात्या च विजात्यापि, असङ्कृतस्तृतीयकः । जीवाजीवमयं ज्ञानं व्यवहाराद्यथोदितम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थ:—स्वजातिसे तथा विजातिसे तृतीय असद्भृतव्यवहार प्रवृत्त होता है। जैसे व्यवहारसे जीव तथा अजीवमय ज्ञान कहा गया है॥ १२॥

व्याख्या । स एव पुनरसद्भृतव्यवहारः खजात्या विजात्या च मंबिन्धतः कथितः । यथा जीवाजीविवययं मित्रज्ञांनम् । अत्र हि जीवो मित्रज्ञानस्य खजातिरस्त्यात्मनो ज्ञानमयत्वान्, अजीवो मित्रज्ञानस्य विजातिरिस्त । यद्यपि मित्रज्ञानस्य विजातिरिस्त । यद्यपि मित्रज्ञानस्य विजातिरिस्त । यद्यपि मित्रज्ञानादि-विषयीभूतघटोऽयमिति ज्ञानम् । तथापि विजातिर्ज्ञडचेतनसंबन्धान् । अनयोर्जीवयोर्विपय-विपयिभावनामा उपचिरतसंबन्धोऽस्ति । स हि स्वजातिविजात्यसङ्गृतव्यवहारोऽस्ति तद्भानमेव ज्ञेयम् । स्वजात्यंशे किन्नायं सद्भृत इति चेद्विजात्यंशे विषयतासंबन्धस्योपचिरतस्यै-वानुभवादिति गृहाणेति । व्यवहाराद्यथोदितं तथा विचारयेति पद्यार्थः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:—स्व (निज) जाति तथा विजाति (परजाति)से संबन्धयुक्त होनेसे तृतीय असद्भृतव्यवहार कहा गया है । जैसे "मतिज्ञान जीव अजीव विषयक है" इस वाक्यमें जीव तो मतिज्ञानका स्वजाति है; क्योंकि—आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। और अजीव मतिज्ञानका विजाति है। यद्यपि "अयं घट;", यह घट है; यह ज्ञान मतिज्ञानआदिका विषयभूत है; तथापि यह विजाति है; क्योंकि—इस ज्ञानमें जड तथा चेतनका संबन्ध है। इन जीव तथा अजीवका विषयविषयीभावनामक उपचरित संबन्ध है; और वहीं सजातिविजातिसंबन्धी असद्भृतव्यवहार है। इसिलये असद्भृतका ही भान होता है; ऐसा समझना चाहिये। यदि ऐसा कहो कि—स्वजात्यंशमें यह सद्भृत क्यों नहीं है तो यह

शंका नहीं कर सकते क्योंकि— विजातीय अंश (जडता अंश) में विषयता संबन्धसे उपचरितका ही अनुभव होता है; ऐसा अंगीकार करो, अर्थात् व्यवहारसे जैसा कहागया है; वैसा विचारो यह श्लोकका अर्थ है ॥ १२ ॥

अथोपचरितासङ्कृतस्य लक्षणमाह ।

अब उपचरितअसद्भृतव्यवहारनामक तृतीय उपनयका लक्षण कहते हैं।

सूत्रम्। यश्चैकेनोपचारेणोपचारो हि विधीयते। स स्यादुपचरिताद्यसद्भृतव्यवहारकः॥ १३॥

सूत्रभावार्थ:—जो एक उपचारके द्वारा दृमरे उपचारका विधान किया जाता है; वह उपचरितअसद्भृतव्यवहार कहा जाता है ॥ १३ ॥

व्याख्या । यश्च पुनरेकेनोपचारेण कृत्वा द्वितीय उपचारो विधीयते । स ह्यपचिरतोपच-रितो जात उपचरितासद्भूतव्यवहार इति नाम लभते । इत्यर्थः ॥ १३ ॥

च्याख्यार्थ:—जो कि—एक प्रकारसे उपचार करके पुनः द्वितीय उपचारका विधान किया जाता है, वह उपचिरतोपचिरत होगया अर्थात् उसका उपचार होगया । वह उपचिरत है; आदिमें जिसके ऐसा असद्भृतव्यवहार अर्थात् उपचिरतअसद्भृतव्यवहार नामको प्राप्त होता है। यही सूत्रका तालर्थ्य है॥ १३॥

अथोदाहरणमाह ।

अब इसका उदाहरण कहते हैं।

सूत्रम्। स्वजात्या तं विजानीत योऽहं पुत्रादिरस्मि वै। पुत्रमित्रकलत्राचा मदीया निखिला इमे॥ १४॥

सूत्रभावार्थ:—तुम खजातिसे उपचरित असद्भूतव्यवहार उसको जानो कि- जो मैं निश्चयसे पुत्रआदि हूं,और यह सब पुत्र, मित्र, स्त्रीआदि मेरे हैं; ऐसा मानता है ॥ १४॥

व्याख्या । तमुपचिरतासद्भृतं स्वजात्या निजशक्त्योपचिरतसंबन्धेनासद्भृतव्यवहारं जानीत । संबन्धकरूपनं यथा "अहम् पुत्रादिः" अहमित्यात्मपर्यायः, पुत्रादिरिति परपर्यायः, अहं पुत्रादिरिति सम्बन्धकरूपनम् । पुनः पुत्रमित्रकलत्राद्या निखिला इमे मदीयाः संबन्धिनः अत्र "अहं मम" चेत्यादि कथनं पुत्रादिषु तद्धयुपचिरितेनोपचिरितम् । तत्कथं-पुत्रादयो ह्यात्मनो भेदाः स्ववीर्यपरिणामत्वादभेदसम्बन्धः परम्पराहेतुतयोपचारितः । पुत्रादयस्तु शरी-रात्मकपर्यायरूपेण स्वजातिः, परन्तु करूपनमात्रम् । न चेदेवं तिहं स्वशरीरसंबन्धयोजनया सम्बन्धः कथितः पुत्रादीनां, तथैव मत्कुणादीनामिष पुत्रव्यवहारः कथं न कथित इति॥१४॥

व्याख्यार्थ:—स्त्रजातिसे अर्थात् निजशक्तिसे उपचरित संबन्धसे उस असद्भृतव्यव-हारको जानो; संबन्धकी कल्पनाका उदाहरण जैसे "अहं पुत्रादिः" पुत्र आदि मैं ही हूं। यहांपर अहम् यह आत्माका पर्याय है, और पुत्रादि यह परपर्याय है, और "अहं पुत्रादिः' में ही पुत्रशादि हूं, यह संबन्ध कल्पना है । पुनः यह पुत्र, मित्र; स्त्रीआदि सब मेरे हैं; अर्थात् यह सब मेरेसे ही संबन्ध रखनेवाले (मेरे संबन्धी) हैं; अब यहां पुत्र आदिके विषयमें "अहम्" में और "मम" मेरे यह जो कथन है; सो उपचरितसे उपचार किया गया है, सो कैसे कि—निज वीर्यके परिणाम होनेसे पुत्रआदि अपने आत्माके ही भेद हैं; इसलिये पुत्रादिमें भेद होते हुए भी परंपराके हेतुसे अभेद संबन्धका उपचार कियागया और पुत्रादि निजशरीरकी पर्यायह्मपतासे तो अपनी जाति है; परन्तु कल्पनामात्रसे ही में तथा मेरे यह व्यवहार होता है; यदि ऐसा नहो (यदि पुत्रादिमें अपना अंशमानना कल्पना मात्र न हो) तो अपने शरीरकी योजनासे जो पुत्रादिकका सम्बन्ध कहा गया है; उसी प्रकार मत्कुण (खटमल) आदिसे भी शरीरका संबन्ध है; उनमें पुत्रादि व्यवहारका कथन क्यों नहीं करते ॥ १४॥

अथ विजात्यासद्भूतव्यवहारः।

अब विजातिसे असद्भृतव्यवहारका निरूपण करते हैं।

सूत्रम् । विजात्या किल तं वित्थ योऽहं वस्त्रादिरद्धतः। वस्त्रादीनि ममैतानि वप्रदेशादयो द्विधा॥ १५॥

सूत्रभावार्थः—उसको विज्ञातिसे उपचरित असद्भृतव्यवहार जानो कि—जो मैं वस्त्र आदि हं, और वस्त्रआदि मेरे हैं; ऐसा मानता है; तथा वप्न (पर्वतोंपर क्रीडाका स्थान) प्रदेशआदि मैं हूं; तथा वप्न प्रदेशआदि मेरे हैं; इत्यादि मानता है; सो स्वजातिवि- जात्युपचरितासद्दभूतव्यवहार है ॥ १५ ॥

व्याख्या। विजात्युपचिरतासद्भृतव्यवहारं प्रकटयित। किल इति सत्ये, तमसद्भृतव्यवहारं विजात्योपचिरतं विजानीत। यश्चाहं वस्नादिः, अहमिति सम्वन्धिवचनं वस्नादिरिति-सम्बन्धवचनमहं वस्नादिरित्युपचिरतम् । सर्वोऽपि व्यतिकरोऽसद्भूतव्यवहारः सम्बन्धसम्बन्धिकरपनत्वात्। अथ चैतानि वस्नादीनि मम सन्ति "अत्र हि वस्नादीनि पुद्रलपयोयाणि ममिति सम्बन्धयोजनया भोज्यभोजकभोगभागिकोपचारकरपनमात्रपराणि भवन्तीति निष्कर्षः । अन्यथा वरुकलादीनां वानेयानां पुद्रलानां शरीराच्छादनसमर्थानामपि मम वस्नाणीत्युपचारसम्बन्धकरपनं कथं न कथ्यते । वस्नादीनि हि विजातिषु स्वसम्बन्धोपचिरतानि सन्तीति भावः । पुनः वप्रदेशाद्यो द्विधेति" वप्नादिरहम्, वप्रदेशाद्यो ममेति कथ्यता स्वजातिविजात्युपचिरतासद्भृतव्यवहारो भवेत् । कथं वप्नदेशाद्यो हि जीवाजीवात्मकोभयसमुदायरूपाः सन्ति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थ: विजातिसे उपचरित असद्भृतव्यवहारको प्रकट करते हैं। सूत्रमें जो "किल" पद है; वह सत्य अर्थका वाचक है; इसिलये सत्य प्रकारसे उसको विजातिसे उपचरित असद्भृतव्यवहार जानो। जो 'अहं वस्त्रादि' मैं वस्त्रआदि हूं; यहां पर अहं यह जो पद है; वह संम्बधीका वाचक है; और वस्त्रादि यह सम्बंध वाचक

है; और वस्रभादि में हूं यह उपचारसे कथन है, अर्थात् वस्नादिमें मत्त्व (आत्मत्व) उपचारसे माना गया है। सम्बंध तथा सम्बधीकी कल्पना होनेसे यह सब व्यतिकर (जडमें आत्मबुद्धि तथा आत्मामें वस्नादि उलटा ज्ञान) असद्भृतव्यवहारका विषय है; और यह वस्त्रआदि सब मेरे हैं; यहांपर वस्त्रआदि पुद्गल पर्याय हैं; उनमें मेरे हैं; इस सबम्धकी योजनासे भोज्य भोजक वा भोग भोगीके उपचारकी कल्पना मात्रमें तत्पर हैं, अर्थात् वस्त्रआदि भोज्य हैं; और आत्मा उनका भोग करनेवाला है; इस कल्पनाके विधायक हैं। यदि ऐसा न हो तो वृक्षोंके बल्कल (छाल) वा उनके अन्य पत्रादि जो शरीरके आच्छादनमें समर्थ हैं; तो भी उनमें ये मेरे वस्त्र हैं; अथवा ये मैं हूं इत्यादि उपचार सबन्धकी कल्पना क्यों नहीं कहते। अतः जिन वस्त्रोंमें भोज्य भोजक भाव है; वह ही वस्त्रआदि विजातीय आत्माआदिमें निज संबन्धसे उपचरित हैं; यह तात्पर्य है। अब 'वप्रदेशादयो द्विधा' इस वाक्यकी व्याख्या करते हैं। वप्रआदि में हं और वप्रआदि देश मेरे हैं, ऐसा कहनेवालोंको स्वजातीय तथा विजातीय उपचारसे असद्भृतव्यवहार है, क्योंकि—वप्र, देशआदि जीव तथा अजीव इन दोनोंके समुदाय-रूप है॥ १५॥

अथ संक्षेपमाह।

· अब संक्षेपसे नय तथा उपनयके विषयका उपसंहार करते हैं।

सूत्रम् । इत्थं समे चोपनयाः प्रदिष्टाः स्याद्वादमुद्रोप्निषत्स्वरूपाः।

विज्ञाय तान् शुद्धियः श्रयंतां जिनक्रमाम्भोजयुगं महीयः १६ सूत्रभावार्थः—इस रीतिसे स्याद्वादशैठीसे रहस्यभूत नय तथा उपनय दोनोंका समानरूपसे उपदेश किया है; शुद्धबुद्धिके धारक उनको जान कर सर्वपूजनीय जिन भगवानके चरणकमलका आश्रय लें।। १६॥

व्याख्या । इत्थमनया दिशा समे नयाश्च पुनः उपनयाः प्रदिष्टाः कथिताः । कीदृशास्ते स्याद्वादस्य श्रीजिनागमस्य या मुद्रा शैठी तस्या उपनिपत्स्वरूपा रहस्यरूपाः सन्ति । तान् सर्वानिप विज्ञाय ज्ञात्वा ग्रुद्धियः निर्मेछवुद्धयः श्रयन्तामङ्गीकुर्वतां कि जिनक्रमाम्भोजयुगं वीतरागचरणकमछं श्रयन्तामित्यर्थः ॥ १६ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरिवनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ व्याख्यार्थः—इस पूर्वोक्त दिशासे अर्थात् पूर्वकथित रीतिके अनुसार समानरूपसे नय तथा उपनय दोनोंका निरूपण किया है, वह नय तथा उपनय केसे हैं; कि-श्रीजिनदेव प्रणीत स्याद्वादकी जो मुद्रा अर्थात् शेली है; उसके रहस्य (सार) भूत हैं; इस हेनुसे निर्मलवृद्धि जन उन सब नय तथा उपनयोंको भेद प्रभेदसहित जानकर सर्व पूजनीय श्रीजिन भगवान्के चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करें यही सूत्रका तात्पर्य है॥१६॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारक पं० ठाकुरप्रसादप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ अथाष्ट्रमाध्यायं विवृणोति । अब अष्टम अध्यायका विवरण करते हैं ।

सूत्रम् । निश्चयव्यवहारौ हि द्वौ च मूलनयौ स्मृतौ । निश्चयो द्विविधस्तत्र शुद्धाशुद्धविभेदतः॥१॥

सूत्रभावार्थ:— निश्चय तथा व्यवहार यह दो ही मूल नय हैं, इनमें गुद्ध अगुद्धके भेदसे निश्चयनय दो प्रकारका है, अर्थात् गुद्धनिश्चयनय, और अगुद्धनिश्चयनय, यह निश्चयनयके दो भेद हैं ॥ १ ॥

व्याख्या । हि निश्चितमध्यात्मभाषायां मूलनयौ द्वौ स्मृतौ तौ च निश्चयव्यवहारौ निश्चिनोति तत्त्वमिति निश्चयः १ व्यविह्यत इति व्यवहारः २ तत्रापि निश्चयो नामा द्विविधो द्विप्रकारः । एकः शुद्धनिश्चयनयः, द्वितीयोऽशुद्धनिश्चयनयः । एवं द्विप्रकारो क्षेयः ॥ १ ॥

व्याख्यार्थ: — सूत्रमें जो 'हि' शब्द है; उसका अर्थ निश्चय है, इसिलये निश्चय रूपसे अध्यात्मभाषाके अनुसार मूलभूत नय निश्चय तथा व्यवहार यह दो ही हैं। इनमें तत्त्वका जो निश्चय करें उसको निश्चय कहते हैं, तथा जो व्यवहार कियाजाय वह व्यवहारनय है, उनमें भी निश्चयनामक नय दो प्रकारका है; एक तो शुद्धनिश्चयनय है; और दृसरा अशुद्धनिश्चयनय है, इस रीतिसे निश्चयनय दो प्रकारका है॥ १॥

सूत्रम् । यथा केवलज्ञानादिरूपो जीवोऽनुपाधिकः । शुद्धो मत्यादिकस्त्वात्माशुद्धः सोपाधिकः स्मृतः ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे उपाधिरहित जीव केवलज्ञानआदिरूप है, यह शुद्धनिश्चय नय है, और उपाधिसहित जीव मतिज्ञानआदिरूप है; यह अशुद्धनिश्चयनय है ॥ २ ॥

व्याख्या। यथा हि केवलज्ञानादिक्षो जीवोऽनुपाधिक उपाधिः कर्मजन्यस्तेन विहीनोऽनुपाधिकः गुद्ध इति गुद्धनिश्चयभेदेन प्रथमः । अत्र हि केवलज्ञानमासाद्य गुद्धगुणमयान्तमकरूपेण जीवस्याभेदो दर्शितः । तथा च मितज्ञानादिक आत्मा अगुद्धनिश्चयभेदेन द्वितीयः । अत्र ह्यात्मनः सोपाधिकस्यावरणक्ष्यजितज्ञानविकस्पेनात्मा मितज्ञानी अगुद्ध उपलक्ष्यते सोपाधिकत्वान् केवलज्ञानाख्यो गुणः गुद्धगुणस्तदुपेत आत्मापि गुद्धस्तन्नामनयोद्याच्लुद्धनिश्चयनयः । मितज्ञानादिगुणोऽगुद्धस्तदुपेत आत्माथ गुद्धस्तदाख्यया नयोष्यगुद्धनिश्चयनयः । मितज्ञानादिगुणोऽगुद्धस्तदुपेत आत्माथ गुद्धस्तदाख्यया नयोष्यगुद्धनिश्चयनयः आत्ममात्रपरः, गुद्धशब्दः कर्मावरणविशिष्टः । आवरणक्षये गुद्धः सित तिस्मन्त्रगुद्धः ॥ २ ॥

च्याख्यार्थ:—जैसे केवलज्ञानआदिरूप अर्थात् केवलज्ञानमय जीव अनुपाधिक है, अर्थात् कर्मोंसे उत्पन्न हुई जो उपाधि है उससे रहित है; भावार्थ शुद्ध है। यह शुद्ध निश्चयके भेदसे प्रथम भेद दर्शीया गया है। और मतिज्ञानआदिक आत्मा है, यह अशुद्धनिश्चयके भेदसे द्वितीय नय है । इस भेदमें उपाधिसहित आत्माके मित्राना-वरणीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न जो ज्ञान है; उसके भेदसे आत्मा मित्रानी है; अर्थात् मित्रान जीव है; ऐसे अशुद्ध उपलक्षित होता है; क्योंकि—वह मित्रान सोपाधिक है, अर्थात् कर्मजन्य है । भावार्थ—केवलज्ञाननामक जो गुण है; वह शुद्ध गुण है, इसिलये उस शुद्ध गुणसे युक्त आत्मा भी शुद्ध है; और शुद्धनामक नयके उद्यसे शुद्ध निश्चय नय है । मित्रानआदि जो गुण है; वह अशुद्ध गुण है, इस कारण उस अशुद्ध गुणसे युक्त आत्मा भी अशुद्ध है; और उस नामसे नय भी अशुद्ध निश्चय है । निश्चय शब्द आत्मामात्रमें तत्पर है; और शुद्ध शब्द कर्मके आवरणविशिष्ट है; अर्थात् कर्मके आवरणका क्षय होनेपर शुद्ध है; और उस आवरणकी विद्यमानतामें अशुद्ध है; यह शुद्ध और अशुद्ध शब्दका विवेचन हुआ और शुद्ध अशुद्ध इन दोनोंके साथ निश्चय शब्द इसिलये लगा है; कि—केवलज्ञान भी आत्माका गुण है; और मित्रान भी आत्माहीका गुण है; इस कारण शुद्ध भी निश्चयनय है; और उपाधिकी सत्तासे अशुद्ध भी निश्चयनय है ॥ २ ॥

अथ व्यवहारस्य भेदं दर्शयति । अब व्यवहारनयके भेदको दर्शाते हें।

सूत्रम् । सङ्कृतश्चाप्यसङ्कृतो व्यवहारो विधा भवेत् । तत्रैकविषयस्त्वाद्यः परः परगतो मतः॥३॥

सूत्रभावार्थः—सद्भृत और असद्भृत इन दो भेदोंसे व्यवहार भी दो प्रकारका होता है; अर्थात् एक सद्भृतव्यवहारनय और दृसरा असद्भृतव्यवहारनय। उनमें प्रथम तो एक द्रव्यके आश्रित सद्भृतव्यवहार है; और दृसरा असद्भृतव्यवहार परद्रव्याश्रित है ॥३॥

व्याख्या । व्यवहारोऽपि सद्भूतः पुनरसद्भूत इति भेदाभ्यां द्विश्वा द्विप्रकारः । तत्र आद्यः प्रथम एकविषय एकद्रव्याश्रितः सद्भूतव्यवहारः । अपरः परविषयः परद्रव्याश्रितः सद्भूतैव्यवहार इति ॥ ३ ॥

च्याख्यार्थः — व्यवहारनय भी नियश्चयके सदृश सद्भृत तथा असद्भृत इन दोनों भेदोंसे दो प्रकारका है । उनमें प्रथम सद्भृतव्यवहार तो एक द्रव्यविषयक है, अर्थात् एक द्रव्यके आश्रयसे रहता है । और द्वितीय असद्भृतव्यवहार परद्रव्यके आश्रयसे रहता है ॥ ३॥

सूत्रम् । उपचरितसङ्कृतानुपचरितभेदतः । आद्यो द्विधा च सोपाधिगुणगुणिनि द्र्शनात् ॥ ४ ॥

त्रिष्विप पुस्तकेष्वयमेव पाठो विद्यते परत्त्वस्य स्थाने "असङ्कृतव्यवहारः" इति पाठः सम्यगाभाति ।

सूत्रभावार्थः—उपचरितसद्भृत और अनुपचरितसद्भृत इन दोनों भेदोंका कारण प्रथम जो सद्भृतव्यवहार है; वह भी दो प्रकारका है; उनमें सोपाधिक गुण गुणीके भेदसे प्रथम भेद होता है ॥ ४ ॥

व्याख्या । उपचरितसङ्क्तभेदेनानुपचरितसङ्क्ष्तभेदेन चाद्य एकद्रव्याश्रितसङ्क्ष्रतव्यव-हारो द्विधा द्विप्रकारः । तत्र च सोपाधिकगुणगुणिभेदात्प्रथमो भेदो भवति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—उपचित्तसद्भूतभेदसे तथा अनुपचित्तसद्भूतभेदसे आदि जो एक द्रव्यके आश्रित सद्भूतव्यवहार है; वह दो प्रकारका है, उनमेंसे उपाधिसहित गुण और गुणीके भेदसे प्रथम भेद अर्थात् उपचित्तसद्भूतव्यवहारनय होता है।। ४॥

सूत्रम् । यथोपचारतो लोके जीवस्य मतिरूच्यते । अनुपचरितसङ्कृतोऽनुपाधिगुणतद्वतोः ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे छोकमें उपचारसे यह कहा जाता है; कि-जीवका मित-ज्ञान है । और अनुपचरितसङ्गृतव्यवहार वह है; जो उपाधिरहित गुण गुणीको प्रदर्शन करे॥ ५॥

व्याख्या । यथा जीवस्य मितज्ञानम् । अत्र हि मितिरुपाधिः कर्मावरणकलुषितात्मनः सकलज्ञानत्वेन ज्ञानमिति कल्पनं सोपाधिकमुपचारतो जातिमदम् । अथ द्वितीयभेदमाह । उपाधिरहितेन गुणेनानुपाधिक आत्मा यदा संप्राते तद्नुपाधिकगुणगुणिनोर्भेदाभिन्नोऽनुप-चित्तसद्भतोऽपि द्वितीयो भेदः समुत्पद्यत इति ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थ:—उपचिरतसद्भतका उदाहरण—जैसे जीवका मितज्ञान इत्यादि लो-कमें व्यवहार होता है; इस व्यवहारमें उपधिरूप कर्मके आवरणसे कलुषित आत्माका म-लसिहत ज्ञान होनेसे जीवका मितज्ञान यह उपाधिसहित कल्पना उपचारसे हुई है, इस लिये सोपाधिक होनेसे यह उपचिरत सद्भतव्यवहारनामक प्रथम भेद है । अब द्वि-तीय भेदको कहते हैं। उपाधिरहित गुणके साथ उपाधिशून्य आत्मा जब संपन्न होता है; तब अनुपाधिक (उपाधिसे वर्जित) गुण गुणीके भेदसे भिन्न (भेदको प्राप्त हुआ) अनुपचिरतसद्भतनामक व्यवहारनयका दूसरा भेद भी सिद्ध होता है ॥ ५॥

अथास्योदाहरणमाह ।

अत्र इस अनुपचरितसद्भूतव्यवहारका उदाहरण कहते हैं।

सूत्रम् । केवलादिगुणोपेतो गुण्यात्मा निरुपाधिकः । असद्भृतव्यवहारो द्विधैवं परिकीर्त्तितः ॥ ६॥

सूत्र भावार्थः केवलज्ञानआदिगुणसहित गुणी आत्मा उपाधिरहित है । और असद्भृतव्यवहार भी पूर्वोक्त सद्भृतव्यवहारकी भांति दो प्रकारका कहा गया है ॥ ६ ॥ व्याख्या। केवलादिगुणोपेतः केवलज्ञानसहितः कर्मक्षयाविर्भृतप्रभृतानुभवभावात्मको जीवो निरुपाधिकगुणोपेतो निरुपाधिकं गुणी भवति । आत्मा हि संसारावस्थायामष्टकर्भ-

जित्तावरणपरिस्फुटप्रभावभावितः सोपाधिकगुणैर्मत्यादिभिस्तद्वानिति सोपाधिक आत्मेति व्यपदेशभाग्भवित । अत्र तु तद्भावे तदभावात्रिरुपाधिकगुणगुणिभेदभावनासमुत्पादादनु-पचिरतसद्भृतभेदोऽपि समुत्पत्रः । केवलादिरिति केवलस्यैकत्वादादिरिति तदुत्थानन्तगुणो-द्यात्केवलादिरिति कथनम् । अथासद्भृतव्यवहारस्यापीत्थमेव भेदद्वयं प्रकटयन्नाह । अस-द्भृतव्यवहारोऽप्येवं पूर्वोक्तसद्भृतविहिधा द्विःप्रकारः परिकीर्त्तितः कथित इति ।। ६ ।।

च्याख्यार्थ:—जैसे केवलादिगुणके युक्त (केवलज्ञानरूप गुणसे सहित) आत्मा अर्थात् कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न जो प्रभूत (महा) अनुभव है; उस महानुभवस्वरूप भाव मय जो जीव है; वही उपाधिरहित केवलज्ञानसे संयुक्त निरुपाधिक आत्मा है। क्योंकि-भारमा संसारमयी अवस्थामें अष्ट प्रकारके जो कर्म हैं; उन कर्मींसे उत्पन्न आवरणोंके अप-कट प्रभावसे सहित हुआ उपाधिसहित गुण जो मतिआदिक ज्ञान हैं; उनसे मतिज्ञानी अर्थात् उपाधिसहित आत्मा इस नामका भागी होता है। और यहांपर कारणके अभा-वसे कार्यका भी अभाव होता है; इस न्यायसे उपाधिसहित मतिज्ञानादि गुणोंके अभा-वसे उपाधिसहित गुणी आत्मा भी नहीं रहता इसलिये उपाधिसे वर्जित गुण गुणीके भेदकी भावनाकी सम्यक प्रकारसे उत्पत्तिसे "अनुपचरितसद्भुत" यह नयका भेद सिद्ध होता है। और सूत्रमें जो " केवलआदिगुणसहित गुजी आत्मा निरुपाधिक है " इस वाक्यमें "केवल" पदके आगे "आदि" पद दिया है; वह कैसे संगत होसकता है; क्यों कि-केवलज्ञान तो एक है ? इसका उत्तर यह है; कि-यद्यपि केवलज्ञान एक ही है; तथापि केवलज्ञानसे उत्पन्न जो अनन्त सुख, अनन्त वीर्यभादि गुण हैं; उन गुणोंकी विवक्षासे " केवलादि " यहांपर आदि पद दिया है; अर्थात् केवलज्ञानके सहचारी अनन्त गुण सहित निरुपाधिक आत्मा यह अभिप्राय "आदि" इस पदका है ॥ अब असद्भातव्य-वहारके भी इसी प्रकार दो भेदोंको प्रकट करते हुए कहते हैं ॥ असद्भृत व्यवहार नय भी पूर्वोक्त सद्भूतनयके समान दो ही प्रकारका कहा गया है ॥ ६ ॥

अथैतस्यासद्भूतन्यवहारस्य भेदद्वयं सोदाहरणपूर्वकं प्रकटयन्नाह ।

अब इस असद्भूतव्यवहारके उदाहरणसहित दोनों भेदोंको प्रकट करते हुए आ-चार्य इस अग्रिम सूत्रको कहते हैं।।

सूत्रम् । असंश्लेषितयोगेऽज्यो देवदत्तधनं यथा । स्यात्संश्लेषितयोगेऽन्यो यथास्ते देहमात्मनः॥७॥

सूत्रभावार्थः — असंमिलित योगमें जहां संबन्धकी कल्पना होती है; वहांपर प्रथम मेद अर्थात् उपचरितअसद्भृतव्यवहार होता है। जैसे देवदत्तका धन । और संमिलित (मिले हुए) योगमें जहां संबन्धकी कल्पना होती है; वहां द्वितीय भेद अर्थात् अनुपचरित असद्भृतव्यवहारनय होता है; जैसे आत्माके देह स्थित है।। ७॥

व्याख्या। अत्र द्वयोरिष भेदयोर्मध्ये अध्यः अग्रेमवोऽध्यो मुख्यः प्रथमः असंश्लेषितयोगे किल्पितसम्बन्धविषय उपचिरतासद्भूतव्यवहारो भवेत्। यथा देवदत्तधनम्, इह धनेन देवदत्तस्य संबन्धः स्वस्वामिभावरूपश्च जायते तद्षि किल्पितत्वादुपचिरतम्। यतो देवदत्तः पुनर्धनश्चेकद्रव्यं न हि तस्माद्भित्रद्रव्यत्वाद्सद्भूतभावनाकरणेनासद्भूतव्यवहार इति। तथा द्वितीयोऽन्यः संश्लेषितयोगे कर्मजसंबन्धे भवति। यथा आत्मनो जीवस्य देहिमित्यास्ते तिष्ठति। अत्र ह्यात्मदेहयोः संबन्धे देवदत्तधनसंबन्धमिव कल्पनं नास्ति विपरीतभावना निवर्त्यत्वादावज्ञीवस्थायित्वादनुपचिरतं तथा भिन्नविपयत्वादसद्भूतव्यवहार इति।।॥।

व्याख्यार्थ:—यहां इन दोनों भेदोंके अर्थात् उपचित्तअसद्भृतव्यवहार तथा अनुपचित्तअसद्भृतव्यवहारके मध्यमें अग्र्य, आगे (प्रथम) होनेवाला मुख्य भेद अर्थात्
पिहला भेद संश्ठेष (संबन्ध)का योग न होनेपर अर्थात् किल्पत संबन्ध माननेपर उपचरित्तअसद्भृतव्यवहार होता है; जैसे "देवदत्तका धन" यहांपर देवदत्तका धनके साथ खस्वामिभावरूपसे संबन्ध माना गया है; वह भी किल्पत होनेसे उपचित्त (उपचारसे
सिद्ध) है। क्योंकि—देवदत्त और धन यह दोनों एक द्रव्य नहीं हैं, इस हेतुसे अर्थात् भिन्न
द्रव्य होनेसे देवदत्त तथा धनमें सद्भृत (यथार्थ) संबन्ध नहीं हैं, अत एव असद्भृतभावना करनेसे उपचित्तअसद्भृतव्यवहार है। और अन्य (द्वितीय) भेद जहां मिलित
योग हैं; अर्थात् कर्मजनितसंबन्ध है; वहां होता है। जैसे "जीवके देह स्थित हैं" यहांपर
आत्मा तथा देहका संबन्ध देवदत्त तथा उसके धनके संबन्धके तुत्य किल्पत संबन्ध नहीं
हैं, क्योंकि—विपरीर्तभावनासे निवर्तनीय यहांपर यह यावज्जीव स्थायी होनेसे अनुपचित्त
हैं; तथा जीव और देहके भिन्न विषयपनेसे असद्भतव्यवहार है।। ७।।

अथोक्तविषयस्वामित्वमाह ।

अब उक्तविषयके खामित्वका वर्णन करते हैं ।

सूत्रम् । नयाश्चोपनयाश्चेते तथामूलनयाविष । इत्थमेव समादिष्टा नयचकेऽपि तत्कृता ॥ ८॥

सूत्रभावार्थ:—नय, उपनय तथा मूलर्नैय जैसे हमने इस प्रन्थमें निरूपण किये हैं, इसी प्रकारसे नयचक्रनामक ग्रंथमें नयचक्रकारने भी वर्णन किये हैं॥ ८॥

व्याख्या । एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरूपनयास्तथैव द्वौ मूलनयाविप निश्चयेनेत्थममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्र नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उत्पादकेन समादिष्टं कथितम् । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रश्रन्थपाठपठितन्योपनयमूलनयादिकं सर्वमिप सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतम्त्रत्वमेवास्ते न किमिप विसंवादितयास्तीति ॥ ८॥

⁹ विपरीतभावना अर्थात् जो भावना देवदत्त और उसके धनके विषयमें हैं; उससे उलटी भावनासे यह सम्बन्ध रचा गया है.

व्याख्यार्थ: —यह पूर्वकथित लक्षणसहित नय, उपनय तथा दो मूलनय जैसे हमने निरूपण किये हैं, निश्चयरूपसे ऐसे ही दिगम्बर श्रीदेवसेन आचार्यकृत नयचक शास्त्रमें भी उस नयचक्रके उत्पादक (कर्ता) अर्थात् दिगम्बर देवसेनाचार्यजीने कहा है। इससे यह वार्ता सिद्ध हुई कि—दिगम्बरमतके अनुगत (अनुसार) नयचक्रनामक प्रन्थमें पठित नय, उपनय तथा मूलनयआदिक सब ही श्रीसर्वज्ञप्रणीत सत्शास्त्रकथित युक्तिकी योजनाओंसे समानतन्त्र अर्थात् हमारे सिद्धान्तके समान ही है; उसमें किचित् भी विसंवाद-पनसे कथन नहीं है॥ ८॥

अथ पुनरपि श्वेताम्बरदिगम्बरयोः समानतस्रत्वमुपदिशन्नाह ।

अब फिर भी श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरोंके मतमें समानतंत्र (अविरुद्धशास्त्रता) है; इस वातका उपदेश देते हुवे कहते हैं।

सूत्रम् । यद्यपीहार्थभेदो न तस्यास्माकमपि स्फुटम् । तथाप्युत्कमशैल्यासौ दह्यते चान्तरात्मना ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थ:—यद्यपि हमारे तथा श्रीदेवसेनजी दिगम्बरके कथनमें कुछ भी अर्थ-का भेद नहीं है। तथापि पाठकी शैलीको निपरीतरूपसे करने रचनेसे यह देवसेनजी इर्षा-युक्त अन्तरात्मासे संतप्त हो रहे हैं॥ ९॥

व्याख्या । यद्यपि तस्य देवसेनस्य दिग्वाससोऽपि तथास्माकं श्वेतिभक्षणां स्फुटं प्रकटं यथा स्यात्तथेह द्रव्यादिपरिज्ञानोपयोगिनि नयिवचारेऽर्थभेदो विषयभेदो नास्ति । उभयोरप्यर्थादेशे विषयभेदत्वमेव शब्दादेशे किमपि पाठान्तरत्वात्र किमपि दोषः । यथा हि—अर्थे प्रयोज्ञन्वन्तस्तार्षिकाः शब्दस्याप्रयोजकत्वात् । तथाप्यसौ देवसेनो दिगम्बर उत्क्रमशैल्या विपरी-तपरिभाषयार्थस्य तादशत्वेन शब्दस्यातादशत्वेन चोत्क्रमशैल्या कृत्वान्तरत्वमनान्तरङ्गपरिणामेनेष्योछत्वादद्यते खिद्यते । ईर्ष्यां छवो ह्यन्तरुपतापपरा एव भवन्ति निष्कारणमेवेति । यतो "यद्यपि न भवित हानिः परकीयां चरित रासभो द्राक्षाम् । असमञ्जसं तु दृष्ट्वा तथापि परिखिन्दाते चेतः । १।" इति वचनाद्यथोक्तभागवतसिद्धान्तशुद्धपरिभाषां त्यक्त्वा स्वक्षयोछकल्पितसं-स्कृतभाषया श्रीवीतरागोक्तार्थविषयमङ्गीकृत्य नवीनम्रन्थं विरचय्य प्रभावं ख्यापयतीन्तर्थः ॥ ९॥

व्याख्यार्थ: —यद्यपि उस दिगम्बर देवसेन तथा हम श्वेतिभिञ्जों(श्वेताम्बरों) के प्रकट जैसे होय तैसे अर्थात् स्पष्टरूपसे इस द्रव्यार्थिपदार्थों के ज्ञानमें उपयोगी नयके विचारमें अर्थका अर्थात् विपयका भेद नहीं है। अर्थात् श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों के ही अर्थके आदेशमें विषयका अभेद ही है, शब्दादेशमें (शब्दकी रचनामें) कुछ पाठमेद है; उस पाठमेदसे कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि—नैयायिकोंका प्रयोजन अर्थमें ही है, शब्दतो नैयायिकोंकेलिये अप्रयोजक है। तथापि यह दिगम्बर देवसेनजी उत्क्रमशैली (विपरीत परिभाषा) अर्थात् अर्थकी समानता और शब्दकी असमानताह्रप उत्क्रमशैलीसे अन्तरं-

गपरिणामसे ईर्ष्यायुक्त होनेके कारण संतप्त है, क्योंकि—जो ईर्ष्यायुक्त होते हैं, वह आभ्यन्त-रमें विना कारण ही संतापमें परायण होते हैं। और हमारा चित्ततो "देवसेनजीसे (अन्यके खेतकी दाख जब गधा चरता है; तब हमारी कोई हानि नहीं होती है; तथापि अयोग्य देखकर चित्त खेदित होता है" इस वचन(न्याय)के अनुसार दुःखित होता है। क्योंकि—देवसेनजी यथोक्त श्रीजिनभगवान्के सिद्धान्तसे सिद्ध जो शुद्धपरिभाषा है; उ-सको त्यागकर निज कपोलकल्पित संस्कृतभाषासे श्रीवीतरागकथित अर्थके विषयको ही अङ्गीकार करके और नयचक्रनामक नवीन प्रन्थ(शास्त्र)को रचके अपना प्रभाव (प्रभुत्व) प्रसिद्ध करते हैं। यह इस स्रोकका अर्थ है॥ ९॥

अथ बोटिकमताभिमतविपरीतपरिभाषां दर्शयन्नाह।

अब बोटिकमतके अभिमत जो विपरीत परिभाषा है; उसको दर्शाते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । तत्त्वार्थेऽपि नयाः सप्त पश्चादेशान्तरेऽपि वा । अन्तर्भूतौ समुदृत्य नवेति किमु कल्पते ॥ १० ॥

सूच्चभावार्थः—तत्त्वार्थसूत्रमं भी सप्त (सात) ही नय कहे हैं; और मतान्तरमें भी ऋजुसूत्र और एवंभूतका शब्दनयमें अन्तर्भाव मानकर पांच ही नय माने हैं; और देवसेन-जी इन सातमें अन्तर्भूत जो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक हैं; उनको उनमेंसे अलगकर नव ९ नय कैसे कल्पते हैं।। १०॥

व्याख्या। तत्त्वार्थसूत्रे नयाः सप्त उक्ताः पुनरादेशान्तरे मतान्तरे तत्रैव नयाः पश्च प्रति-पादिताः। तथा च तत्सूत्रम् "सप्त मूळनयाः पश्चेत्यादेशान्तरं"मिति शब्दः समिमिरूढः, एवंभूतेति नयत्रिकं शब्दनय इति नाम्ना संगृहीतानां त्रयाणामेवैकं नाम शब्दनय इति जा-यते। ततः प्रथमे चत्वारोऽतस्तैः सह पश्चनया इति। अथेकैकस्य भेदानां शतमस्ति। तत्र-च सप्तशतं तथा पश्चशतमेवं मतद्वयेऽपि भेदकल्पनम्। तथोक्तमावश्यके " इक्तिकोय सह-विहो सक्तणयसया हवंति एमेवे। अण्णोविहु आएसो पंचेमे सयाण याणंतु॥ १॥" एता-दशीं शास्त्रपरिभाषां त्यक्त्वा द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनामानावेष्वन्तर्भावितावेवोद्धृत्य दूरे कृत्वा नव नयाः कथिता इति किमु कल्पते। देवसेनेन कः प्रपश्चः क्रियते॥ १०॥

व्याख्यार्थः—तत्त्वार्थसूत्रमें भी सात ही नय कहे हैं; और वहां ही मतान्तरमें पांच नय प्रतिपादन किये हैं। और पंचनयप्रतिपादक उनका सूत्र भी यह है "सप्त मूलनयाः पश्चेत्यादेशान्तरम्" अर्थात् मूलनय सात हैं; और मतान्तरमें पांच नय हैं।। शब्द, समिनिक्ष्ट तथा एवंभूत यह जो तीन नय कहे हैं; इन तीनोंका संग्रह, करनेसे शब्दनयरूप एक ही नाम होता है।। इस कारण नैगम; संग्रह, व्यवहार, और ऋजुसूत्र यह पहिले चार तथा इन तीनों (शब्द, समिन्छ, एवं भूत) का एक शब्दनय ऐसे मिलकर पांच नय होते हैं। और एक एक नयके सो १०० भेद हैं; उनमें जिस मतमें सात नय हैं; वहांपर सातसो

७०० भेद और जिस मतमें पांच नय माने हैं; उसमें ५०० पांचसो भेदोंकी कल्पना है। यही विषय आवश्यकनामक प्रन्थमें भी कहा है। उसकी गाथाका भाव यह है "एक २ नय सौ सौ भेदसहित है; इस प्रकार सप्त नय सातसो हो जाते हैं; और अन्य मतके अनुसार भी पांच नय पांच सौ हो जाते हैं॥ १॥" इस प्रकारकी शास्त्रीयपरिभाषाको त्यागकर द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नाम दो नयोंको जिनका कि—इन्ही सप्त या पंच भेदों- में अन्तर्भाव है; उनको उन सात या पांचमेंसे दूर करके देवसेनजीने नव नय कहे हैं; सो इस प्रकार देवसेनजी क्या प्रपंच करते हैं॥ १०॥

पुनश्चर्ची कथयन्नाह ।

और भी इस विषयमें विशेष चर्चा (विवाद) कहते हुए इस सूत्रको कहते हैं॥

सूत्रम् । यदि पर्यायद्रव्यार्थनयौ भिन्नौ विलोकितौ । अर्पितानर्पिताभ्यां तु स्युनैकाद्दा तत्कथम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थ: यदि द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनय सप्त भेदोंसे भिन्न (जुदे) देखे गये हैं; तो अर्पित तथा अनर्पित इन दोनों भेदोसे एकादश ११ (ग्यारह)नय क्यों नहीं मानते ॥ ११ ॥

व्याख्या । यदि पर्यायार्थिद्रव्यार्थनयौ भिन्नौ विलोकितौ पृथक् दृष्टौ तत्तस्मान्नव नया इति कथितम् । तत्तस्माद्दिपितार्निपताभ्यां सहैकादश नया इति कथं न स्युरिप तु स्युः । भावार्थ-स्त्वयं नैगमसङ्ग्रह्द्यवहारभेदाद्यो द्रव्यार्थिकिश्विधा, पर्यायार्थिकश्चतुर्धा-ऋगुसूत्रं, शब्दः, समिमिरूढ, एवंभूतश्चेति । अर्पितार्निपतभेदाविप सामान्यविशेषपर्यायौ तौ च द्रव्यपर्याययोश्चेति । तथा हि सामान्यं द्विप्रकारमूर्द्धतासामान्यं तिर्यक्सामान्यं च । तत्रोध्वतासामान्यं द्रव्यमेव, तिर्यक्सामान्यं तु प्रति व्यक्तिसदृशपरिणतिलक्ष्मणं व्यक्तनपर्याय एव स्थूलाः कालान्तरस्थायिनः शब्दानां सङ्कतविषया व्यक्तनपर्याया इति प्रावचितकप्रसिद्धेः । विशेष्पोऽपि वैसदृश्यविवर्त्तलक्षणः पर्याय एवान्तभवतीति नैताभ्यामधिकनयावकाशः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ: यदि द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नय भिन्नरूपसे अर्थात् पृथक्तासे देखे गये हैं; और उसी कारणसे नव ९ नयका तुमने कथन किया है; तो अर्पित और अनिर्वित भेदोंको साथ मिलाके एकादश ११ नय क्यों नहीं होवेंगे किन्तु अवश्य होवेंगे॥ भावार्थ यह है; कि नैगम, संग्रह, तथा व्यवहार इन भेदोंसे प्रथम जो द्रव्यार्थिक नय है; वह तीन प्रकारका है; और ऋजुस्त्र, शब्द, समिमरूढ तथा एवंभूत इन भेदोंसे पर्य्यायार्थिक चार ४ प्रकारका है। और अर्पित तथा अनिर्पतरूप जो दो भेद हैं; यह भी सामान्य और विशेषके पर्याय हैं; और द्रव्य तथा पर्यायमें रहते हैं। सो ही कहते हैं; कि नसामान्य दो प्रकारका है; एक ऊर्ध्वतासामान्य और दूसरा तिर्यक्सामान्य, इनमेंसे ऊर्ध्वतासामान्य तो द्रव्य-रूप ही है; क्योंकि वह सब पर्यायोंमें साधारणरूपसे रहता है; और तिर्यक्सामान्य प्रति-

व्यक्ति (घट पटआदि व्यक्ति) सदश परिणाम लक्षण व्यंजन पर्यायमें ही रहता है; क्यों कि—स्थूलरूपसे कालान्तरमें ठहरनेवाले और शब्दोंके संकेत गोचर व्यंजन पर्याय हैं; ऐसी प्रावचनिकोंकी प्रसिद्धि है। और वैसादश्यरूप विवर्त्त लक्षणसहित विशेष है; सो भी पर्यायमें ही अन्तर्गत होता है; इसलिये सामान्य विशेषसे अधिक नयका अवकाश नहीं है॥ ११॥

सूत्रम्। संग्रहे व्यवहारे च यदीमौ युङ्क्थ केवलम्। तदाद्यन्तनयस्तोके किं न युङ्क्थ हि तावपि॥ १२॥

सूत्रभावार्थ:—यदि संग्रह तथा व्यवहारनयमें अर्पित तथा अनिर्पत युक्त होते हैं; अर्थात् अन्तर्भृत होते हैं; तो द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक यह दोनो आदिके तीन नय और अन्तके चार नय समूहमें क्यों नहीं योजित करते ?॥ १२॥

व्याख्या । अथ सङ्गहे च पुनर्र्यवहारे यदीमावर्षितानर्षितौ युङ्कथ तर्ह्याचन्तनयस्तोके ताविष किं न युङ्कथ इति । यद्येवं कथयथ अधितानर्षितसिद्धेनित्यादिसूत्रेष्वर्षिता विशेषा अनर्षिताः सामान्या तत्रार्षिता व्यवहारादिविशेषनयेष्वन्तर्भवन्ति, अनर्षिताः सङ्गहेऽन्तर्भवन्ति तदा आद्येषु प्रथमेष्वन्त्येषु पाश्चात्येषु नयस्तोकेष्विमौ द्रव्यपर्यायौ कथं न युश्चीत सप्तन्यसम्बन्धसिद्धेरिति विचारणीयम् । सिद्धान्ते श्रीजिनवाणी सप्तनयावतारिका एवास्ति न न्यूनाधिका । यतः—संकितं नए सत्तमूलनया पण्णत्ता तं जहाणेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुनसुए, सदे, समिम्हेढे, एवंभूए। इत्यादिसूत्रपाठोऽपि ज्ञेयोऽतस्तत्सूत्रमार्ग त्यक्त्वा "नया नव" इत्यधिकयोजना न साधीयसी । अथान्तर्भूतानां पृथक्करणमिष पिष्टपेषणमेवेति ॥ १२ ॥

ठयाख्यार्थः —यदि इस अर्पित और अन्पितको संग्रह तथा व्यवहारनयमें संमिलित करते हो तो उस द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयको भी क्रमसे आदिके तीन नयस्तोकमें और अन्तके चार नय समुदायमें क्यों नहीं संमिलित करते। यदि आप ऐसा कहें कि "अर्पितानिर्पितिसिद्धेः" इत्यादि सूत्रोंमें अर्पित विशेष रूप हैं; और जो अन्पित हैं; वह, सामान्य हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे अर्पित तो व्यवहारआदि विशेष नयोंमें अंतर्भूत होते हैं, और अन्पित सङ्गहनयमें अन्तर्गत (शामिल) होते हैं; तो आदिके तीन और अन्तर्के चार नयोंके जो समुदाय हैं; उनमें इन द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकको क्यों नहीं युक्त (शामिल) करते हो? क्योंकि—सात नयोंका जो संबन्ध है; उसकी सिद्धि होती है; ऐसा विचार करना चाहिये। अर्थात् सिद्धान्त(शास्त्र)में श्रीजिनवाणी सात नयोंका ही अवतार करती है; सातसे न्यून (कम) अथवा अधिक नयोंका अवतार नहीं करती उसकी भी सिद्धि होजायगी क्योंकि—"सिद्धान्तमें सात मूलनय कहे गये हैं; वह जैसे नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजुसूत्र ४ शब्द ५ समिभिस्ड ६ और एवंभूत। इत्यादिस्त्रपसे सूत्रका पाठ भी जानना चाहिये। इसलिये उस सूत्रके मार्गको त्यागकर "नय नव हैं"

ऐसा कह कर जो अधिक नयोंकी योजना करते हो सो अच्छी नहीं है। तथा द्रव्यार्थिक जोर पर्यायार्थिक जो कमसे प्रथम तीन और अन्तके चार नयोंके स्तोकमें अन्तर्भूत हैं; इ॰ नको उनसे जुदे करना है; सो भी पिष्टपेषण ही है।। १२॥

अथ नयसप्तके द्रव्यपर्यायौ यथान्तर्भवतस्तइर्शयति ।

अब जिस प्रकारसे सात नयोंमें द्रच्य तथा पर्यायका अर्थात् द्रच्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका अन्तर्भाव होता है; उस प्रकारको दर्शाते हैं।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकनामानो नयाः स्युरन्तिमास्त्रयः । द्रव्यार्थिकनयास्तद्वचत्वारः प्रथमे पुनः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थ:—अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक नामके धारक हैं। और इसी प्रकार पहिले चार ४ नय द्रव्यार्थिक नय हैं॥ १३॥

ब्याख्या। अन्तिमास्रयः शब्दसमभिरूढैवंभूताख्यास्रयः पर्यायार्थिकाः कथ्यन्ते । तथा प्रथमे चत्वारो नैगमसङ्गह्व्यवहार्र्जुसूत्राख्या द्रव्यार्थिकनया इति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थ:—अन्तके तीन अर्थात् शब्द, समभिरूड और एवंभूत यह तीन नय पर्या-यार्थिक कहे जाते हैं। तथा आदिके नेगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रनामक यह चार द्रव्यार्थिक नय हैं॥ १३॥

अथ य आचार्या नयात्रतारं कुर्वन्ति तेषां नामान्याह।

अब जो आचार्य नयोंका अवतार करते हैं; उनके नामोंको कहते हैं।

सूत्रम् । इत्याह च महाभाष्ये क्षमाश्रमणपुङ्गवः । जिनभद्रगणिः सर्वसिद्धान्तमतपारगः ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थ:—अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक हैं; तथा आदिके चार ४ नय द्रव्या-र्थिक हैं; इस पूर्वोक्त कथनको महाभाष्यमें क्षमाश्रमणपुङ्गव तथा सब सिद्धान्तमतके पा-रंगत श्रीजिनमद्रगणि कहते हैं ॥ १४ ॥

व्याख्या । तत्र महाभाष्ये विशेषावदयके क्षमाश्रमणपुङ्गवः क्षमाश्रमणप्रधानः श्रीजिनभ-द्रगणिराचार्य इत्याह । इतीति किं पूर्ववद्य आद्याश्चत्वारो नया द्रव्यार्थिका, अन्तिमास्त्रयो नयाः पर्यायार्थिका इत्याह ॥ १४ ॥

ब्याख्यार्थ:—उस महाभाष्यमें अर्थात् विशेषावश्यकनामग्रंथमें क्षमाश्रमणपुद्भव अ-र्थात् क्षमागुणधारी मुनियोंमें श्रेष्ठ तथा संपूर्णसिद्धान्तमतके पारंगत अर्थात् सब सिद्धा-न्तोंके वेत्ता श्रीजिनभद्रनामक गणि 'आचार्य' आदिके चार ४ नय तो द्रव्यार्थिक हैं; तथा अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक हैं; यह जो पूर्वश्लोकमें कहा है; ऐसा ही कहते हैं ॥ १४॥

सूत्रम् । इत्याह सिद्धसेनोऽपि आद्या द्रव्यनयास्त्रयः । द्रव्यावदयकलीनस्तद्यसूत्रो न संभवेत् ॥ १५ ॥

स्त्रभावार्थ:— और सिद्धसेनजी भी आदिके तीन नयोंको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं; और शेष चारोंको पर्यायार्थिक कहते हैं; क्योंकि— द्रव्यके वर्त्तमानमात्र पर्यायके कहनेसे ऋजुसूत्र द्रव्यार्थिकनय नहीं संभव हो सकता ॥ १५॥

व्याख्या। पुनः सिद्धसेनोऽपि सिद्धसेनदिवाकरो मह्नवादी तार्किकः प्रथमे त्रयो नैगम १ सङ्ग्रह २ व्यवहारलक्षणाः द्रव्यनया अन्तिमाश्चत्वारो नया ऋजुसूत्र १ शब्द २ समिभि-रूढ ३ एवंभूताख्याः पर्यायार्थिकनया इत्याह । एवमवरेऽपि सिद्धान्तवेदिन आचार्या एन-मेवार्थमाहुरिति । आद्या द्रव्यनयास्त्रय इत्यत्रर्जुसूत्र १ शब्द २ समिभिरूढ ३ एवंभूतव-र्जिता इति । तथा च

"द्रव्यार्थिकमते सर्वे पर्यायाः खलु कल्पिताः। पतत्येष्वन्वयि द्रव्यं कुण्डलादिषु हेमवत्॥१॥ पर्यायार्थमते द्रव्यं पर्यायेभ्योऽस्ति नो पृथक्। यस्तर्थिकिया दृष्टा नित्यं कुत्रोपयुज्यते॥२॥

इति द्रव्यार्थपर्यायार्थनयलक्षणाद्तीतानागतपर्यायप्रतिक्षेपी ऋजुसूत्रः शुद्धमर्थपर्यायं मन्यमानः कथं द्रव्यार्थिकः स्यादित्येतेषामाश्चयः । इति तेपामाचार्याणां मत ऋजुसूत्रनयो द्रव्यावश्यकविषये लीनो न संभवति । तथा च " उज्जुसुयस्स एगे अणुव उत्तेएगं द्व्वावस्सयं पुहुत्तणन्थि ।" इत्यनुयोगद्वारसूत्रविरोधः । अथ च वर्त्तमानपर्यायाधारस्वद्रव्यांशपूर्वापरपरिणामसाधारणमूर्ध्वतासामान्यं द्रव्यांशः १ सादृश्यास्तित्वरूपतिर्यक्सामान्यं द्रव्यांशः । एपु चैकमपि पर्यायनयो न मनुते तदा ऋजुसूत्रं, पर्याय इति कथयत एत्त्स्त्रं कथं मिलति । ततः कारणात्क्षणिकद्रव्यवादी सूक्ष्मर्जुसूत्रम्, तत्तद्वर्त्तमानपर्यायापन्नद्रव्यवादी स्थूलर्जुसूत्रं द्रव्यनय इति कथनीर्यामिति सिद्धान्तवादिनां मतम् । अनुपयोगद्रव्यांशामेव सूत्रपरिभाषितमादायोत्सूत्रतार्किकमते नोपर्यायपदमप्युपप्यत इत्तस्यस्क्रपरिशिलं यथेति ॥ १५॥

व्याख्यार्थ:—पुनः मह्नवादी और तार्किक जो सिद्धसेनजी दिवाकर हैं; वह प्रथमके नेगम १ संग्रह २ तथा व्यवहार ३ रूप तीनों नयोंको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं; और अन्तके ऋजुस्त्र १ शब्द २ समिन्छढ ३ तथा एवंभूत ४ इन चार ४ नयोंको पर्यायार्थिकनय कहते हैं। और इसी अर्थको सिद्धान्तके जाननेवाले अन्य आचार्य भी कहते हैं, अर्थात् सिद्धसेनजी और उनके अनुगामी अन्य आचार्योंके मतमें भी ऋजुस्त्र १ शब्द २ समिन्छढ ३ और एवंभूत ४ इन चार नयोंसे वर्जित आदिक तीन नय द्रव्यार्थिक हैं। और "द्रव्यार्थिकनयके मतमें सब पर्याय निश्चयरूपसे किल्पत हैं, क्योंकि—सब पर्यायोंमें अन्वयी (अनुगामी) द्रव्य समाविष्ट होता है; जैसे कुण्डलआदिपर्यायोंमें सुवर्ण द्रव्य ॥१॥

और पर्यायार्थिकके मतमें द्रव्य पर्यायोंसे भिन्न नहीं है । क्योंकि-पर्यायोंसे जो अर्थिकिया हढ है; उस अर्थिकियाका नित्य उपयोग कहां होता है। अर्थीत् सुवर्णके कुण्डलआदि तथा मृत्तिकाके घटआदि पर्यायोंसे जो आभूषण तथा जलधारणआदिह्रप अर्थिकया दृढ है; वह नित्य नहीं है; क्योंकि-पर्यायोंके नष्ट होनेके पश्चात वही सुवर्ण तथा मृत्तिका रूपद्रव्य शेष रहता है ॥ २ ॥" यह द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनयका लक्षण है; इस लिये अतीत (भूत) तथा अनागत (भविष्य) पर्यायोंका प्रतिक्षेपी (दूर फेंकनेवाला) शुद्ध अर्थ पर्यायको मानता हुआ ऋजुसूत्रनय द्रव्यार्थिक किस रीतिसे होवे. ऐसा इन आचार्योका अभिप्राय है। इस कारण उन आचार्यों के मतमें ऋजुसूत्रनय द्रव्यावश्यकके विषयमें लीन नहीं होता है; और उस प्रकार "उज्जुसयस्य एगे अणुव उत्ते एगं दब्बा-स्सयं पुहुत्त णन्थि" इस अनुयोगद्वारसूत्रका विरोध होगा । और वर्त्तमान पर्यायका आ-धारभूत तथा निजद्रव्यके पूर्वापरपरिणाममें साधारण ऊर्द्धतासामान्य द्रव्यांश है। १। सादृश्य सब व्यक्तियोंमें समानताके अस्तित्वरूप तिर्यक्सामान्य भी द्रव्यांश ही है। २। और इनमेंसे एकको भी पर्यायनय नहीं मानता तब ऋजुसूत्र पर्यायार्थिक है; ऐसा कहने-वालोंके यह सूत्र कैसे संगत होता है। इस कारण क्षणिक द्रव्यको कहनेवाला तो सूक्ष्म ऋजसूत्र है; और उस उस वर्त्तमानपर्यायको प्राप्त हुए द्रव्यको कहनेवाला स्थूलऋज्-सूत्र है; ऐसे ऋजुसूत्रको द्रव्यार्थिकनय कहना चाहिये यह सिद्धान्तवादीयोंका मत है। और सूत्रपरिभाषित (सूत्रोक्त) अनुपयोग द्रव्यांशको छेके सूत्रविरुद्ध चलनेवाले तार्किक (नैयायिक)के मतसे नोपर्यायपद भी सिद्ध होता है। यह हमारा मुख्यरूपसे निर्धारित सिद्धान्त है ॥ १५ ॥

सूत्रम्। एवमन्तर्गतानां स्यादुपदेशः कथं पृथक्। पत्रभ्यो हि यथा सप्तस्वर्थभेदो मनाङ् न हि॥१६॥

सूत्रभावार्थ:—इस प्रकारसे अन्तर्भूत द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंका पृथक् रूपसे उपदेश कैसे हो सकता है ? और यदि ऐसा कहो कि— मतान्तरमें पांच नय हैं; उनमें दो मिलाकर जैसे सात नय मानते हैं; उसी प्रकार हमारे इन नयोंका भी भिन्न उप-देश होगा सो नहीं क्योंकि—हम जो पांचसे भिन्न दो मानते हैं; उनमें विषयभेद है; और तुझारे दो नयोंमें किंचित् भी विषयभेद नहीं अतः भिन्न उपदेश नहीं हो सकता ॥ १६॥

व्याख्या । एवमन्तर्गतानामन्तर्भावितानां द्रव्याधिकपर्यायाधिकानां नयानां पृथिगिन्न उपदेशः कथं कृतः स्थात् । यद्येवं कथयत मतान्तरे पश्च नयाः सन्ति तेषु द्वाविमौ मिश्रितौ सन्तौ नयसप्तकमिति व्यवहारो जायते तेन द्वयोः पृथगुपदेशस्तद्वद्माकमिप द्रव्याधिक पर्यायाधिकयोः पृथगुपदेशो भविष्यतीति चेन्न वक्तव्यम् । शव्दसमिम् हैवंभूतानां यथा विषयभेदोऽस्ति तथैव द्रव्याधिकपर्यायाधिकयोरिष सप्तनयभ्यो भिन्नविषयत्वं दर्शयत ।

किश्व त्रयाणां नयानामेकां संझां सङ्गृह्य नयपश्चकं कथितमस्ति परन्तु विषयो भिन्नो वर्त्तते अत्र तु विषयो भिन्नो न वर्तते । पुनयें द्रव्यार्थिकनयस्य दश १० भेदा दर्शितास्ते सर्वेऽपि शुद्धाशुद्धसङ्ग्रहादिष्वन्तर्भवन्ति, ये च षङ्कद्याः पर्यायार्थिकनयस्य द्शितास्ते सर्वेऽप्युपचरितानु-पचरितव्यवहारशुद्धाशुद्धर्जुस्त्रादिष्वन्तर्भवन्ति । गोबळीवर्दन्यायेन विषयभेदे भिन्ननयत्वं कथ्यते तर्हि स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव, इत्यादिसप्तभङ्गीमध्ये कोटिप्रकारेरपि तान्नितसत्त्वासन्त्वप्राहकनयभेदेन भिन्नभिन्ननयवादेन च सप्तम्यू स्वन्यप्रिक्रया बम्भज्यते । एतत्सुधी-भिर्विमृश्यम् ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः-पूर्वीक्त रीतिसे सात अथवा मत भेदसे पांच नयोंमें अन्तर्भाव किये गये ऐसे द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयोंका भिन्नरूपसे उपदेश (निरूपण) कैसे किया जावे? अर्थात् सप्त या पंच नयसे भिन्न इनका कथन अयुक्त है; क्योंकि — उन्हीं नैगम, संग्रहआदिमें इनका अन्तर्भाव है। कदाचित् ऐसा कहो कि -- अन्यमतमें पांच ही नय हैं; उन पांचमें समभिरूढ और एवंभूत इन दोनोंको मिला देनेसे "सात नय" ऐसा व्यवहार होता है; जिससे समभिरूढ और एवंभूतका पृथक् उपदेश किया गया है; एसे ही हमारे भी द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंका भिन्नरूपतासे उपदेश होगा। सो ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि — जसे शब्द समिरूढ और एवंभूत नयोंके विषयभेद है: ऐ-से ही आप भी द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकके सातों नयोंसे विषयका भेद दिख्लाओ ? और शब्द, समभिक्षड तथा एवंभूत इन तीनोंकी एक संज्ञाका संग्रह करके पंच नयका कथन किया है; परन्तु विषय भिन्न २ है; और द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकका विषय सप्त नयसे भिन्न नहीं है; अर्थात् अभिन्न ही है। और शब्दआदिक नय तो भिन्नविषयक हैं; और जो द्रव्यार्थिकनयके दश१० भेद कहे गये हैं: वह सब भी शुद्धसंग्रह अशुद्धसंग्रहआदि-में भन्तर्गत हो जाते हैं; तथा जो पर्यायार्थिकनयके पर ६ भेद दर्शाये गये हैं; वह भी सब उपचरितव्यवहार और अनुपचरितव्यवहार तथा शुद्ध और अशुद्ध ऋजुसूत्रनयमें अन्तर्भत हो जाते हैं; और यदि "गोबलीवर्दन्याय (जो गो है; वही बलीवर्द (बैल) है; इस न्याय)से भिन्न विषय मानकर भिन्न नय कहते हो तो " स्याद्त्येव" कथंचित् है; ही " स्यानास्त्येव " कथंचित् नहीं ही है; इत्यादि सप्तभंगीके मध्यमें कोटि (किरोडों) प्र-कारोंसे अर्पित, अर्नापत, सत्त्व तथा असत्त्वको ग्रहण करनेवाले नयोंके भेदोंसे और भि-न्न २ नयके वाद(कथन)से जो सप्त मूलनय माने गये हैं; उनकी प्रक्रियाका सर्वथा भंग हो जायगा अर्थात् मूलनय सात हैं; यह सिद्धान्त न रहेगा यह विषय बुद्धिभानोंको विचारना चाहिये। तात्पर्य यह कि-गतार्थ विषयको भी यदि भिन्न मानकर नयके भेदकी कल्पना करते हो तो मूल नय सात ७ ही हैं; यह प्रक्रिया सर्वथा ट्रूट जायगी ॥ १६ ॥ अथ यदि विषयभेदेन नयभेदमङ्गीकरिष्यथ तदा सामान्यनैगमसङ्ग्रहमध्ये, विशेष नैरामव्यवहारमध्ये, योजयतां युष्माकं षडेव नया निष्पत्स्यन्त इत्येतादशीं पक्षकर्त्तुराशङ्कां स्फोटियतुं श्लोकमाह ।

अब यदि विषयके मेदसे ही नयके मेदको अङ्गीकार करते हो तो सामान्य नैगमको संग्रहके मध्यमें और विशेष नैगमको व्यवहारनयके मध्यमें योजित करनेवाले तुह्यारे मतमें षट् ६ ही नय सिद्ध होते हैं; अर्थात् नैगमके सामान्य और विशेष यह दोनों भेद जब ऋमशः संग्रह तथा व्यवहारमें अन्तर्भूत हो जांयगे तब नैगमनयका अभाव हो जानेसे छ (६) ही नय रह जांयगे इस प्रकार पक्षकर्त्ताकी शंकाको दृर करनेकेलिये यह अग्रिम स्ठोक कहते हैं।

सूत्रम् । सङ्घहाद्यवहाराच नैगमोऽपि पृथक्कचित्। तस्माद्लग्नकस्ताभ्यां स एतौ तु पृथङ्ग हि ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थ: संग्रह और व्यवहारनयसे तो नैगमनय कहीं भिन्न भी देखा जाता है; इसिलये संग्रह तथा व्यवहारसे असंलग्न विषयको धारण करनेवाला नैगम इन दो-नोंसे पृथक् है; और द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक यह दोनों सप्त नयसे सर्वथा कहीं भी भिन्नविषयक नहीं हैं ॥ १७ ॥

व्याख्या । सङ्ग्रहेति यद्यपि सङ्ग्रहनये व्यवहारनये च नैगमनयस्य सामान्यविशेषपर्यायावन्तभेवतस्तथापि सङ्ग्रहाव्यवहाराच कचित्रदेशादिदृष्टान्तस्थाने नैगमो भिन्नोऽपि भवति उक्तं च छण्हं तह पंचण्हं पंचिवहं तह्य होइ भयाणिज्ञो। तिम्मय सोयण्णसो सोचेव पायेव सत्तण्हं । १। इत्यादि तस्मात् कापि भिन्नविषयत्वान्नगमनयोऽपि ताभ्यां भिन्नः प्रतिपादितः । तु पुनः एतौ द्वौ द्रव्याधिकपर्यायाधिकौ पृथक् भिन्नौ स्थितौ नैगमादिनयेभ्यो न हि संभवतः । अभिन्नविषयत्वात् तेभ्यो वियोज्य नवभेदादेशान्तरः किमु कथ्यत इति ॥ १७॥

च्यारुयार्थः—यद्यपि संग्रहनय तथा व्यवहारनयमें नैगमके सामान्य और विशेष यह दोनों पर्याय अन्तर्भृत हो जाते हैं; तथापि कहीं कहीं प्रदेशादि दृष्टान्त स्थानमें संग्रह तथा व्यवहार नयसे नैगम भिन्नविषयक भी होता है। ऐसा कहा भी है॥

इस कारणसे कहीं भिन्न विषय होनेसे नैगमनयका भी उन दोनों संग्रह और व्यव-हारनयोंसे भिन्न प्रतिपादन किया गया है। और यह द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक तो नै-गमसंग्रहआदि नयोंसे भिन्न विषयके धारक नहीं संभव होते क्योंकि—यह सप्त नयोंसे अ-भिन्नविषय हैं; अतः उन सातोंसे भिन्न करके सप्त नय भेदके स्थानमें नयोंके नो ९ भेद हैं; ऐसा भिन्न आदेश कैसे कहते हो॥ १७॥

पुनरेनमर्थे प्रतिदिशन्नाह।

अब पुनः इस अर्थका उपदेश करते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । कुर्वन्नेवं समाप्तोति विभक्तस्य विभाजनम् । जीवादिवन्न चैवात्र प्रयोजनियोजनम् ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकारसे विभाग किये हुए पदार्थका पुनः विभाग प्राप्त होता है; परन्तु यहां जीवआदिके सदृश विभागके प्रयोजनकी नियोजना नहीं है ॥ १८॥

व्याख्या । एवमनया रीत्या नव ९ नयान् कुर्वन् रचयन् विभक्तस्य विभागीकृतस्य वि-भाजनं विभागकरणं समाप्नोति । विभक्तानां विभागो जायत इत्यर्थः । तदा जीवादिवत् जी-वा द्विधा संसारिणो मुक्ताश्च संसारिणः पृथिवीकथिकादिपङ्भेदाः, सिद्धाः पञ्चद्शभेदा एतद्वन्नया अपि द्विधा द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकभेदा द्रव्यार्थिकिस्त्रिधा नैगमादिभेदात. ऋ-जुसूत्रादिभेदाचतुर्धा पर्यायार्थिकाः, इत्थं कथियतुं युक्तं परन्तु नव नया इत्येकवाक्यतायां विभागो विहितः स तु सर्वथापि मिथ्या ज्ञातच्यः। अन्यथा तु जीवाः संसारिणः सिद्धा इत्यादि विभागवाक्यमपि भवितुमहिति। तथैव द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ नयावित्यपि कथयतां अ-न्ये नया आगताः स्युस्तथापि वयं स्वप्नित्रयानयेन नव नया इति कथियप्यामः इतीत्थं वा दिनामेवं प्रतिपादनीयम् यथा-अत्र प्रयोजनितयोजनजीवाजीवादिवन्नास्ति भिन्नानि भि-न्नानि तत्त्वानि व्यवहारमात्रेण साध्यानि तानि च तथैव संभवन्ति अत्र त्वितरव्यावृत्तिसा-ध्यानि तत्र च हेतुकोटिना अनेपेक्षितभेदप्रवेशेन वैयर्थ्यदोपो जायते तत्त्वप्रक्रियया इदं प्र-योजनमस्ति जीवस्तथा अजीवश्चेतौ हो मुख्यो ज्ञेयो पदार्थी कथनीयौ वन्धमोक्षौ मुख्यतया हेयोपादेयौ च कथनीयौ तस्माद्वन्धकारणतः हेय आश्रयः, तथा मोक्षो मुख्यपदार्थोऽस्ति । ततस्तस्य च द्वे कारणे संवरनिर्जगुख्ये कथनीये इति सप्ततत्त्वकथनप्रयोजनप्रक्रिया । पुण्य-पापरूपशुभाशुभवन्धभेदृब्यक्ति दूरे कृत्वा अनयैव प्रक्रियया नवतत्त्वानीति ध्येयम् । अत्र त द्रव्यार्थिकनयेन भिन्नोपदेशस्य किमपि प्रयोजनं नास्तीति ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थ:—इस पूर्वोक्त रीतिसे नव ९ नयोंकी रचना करते हुए आपको विभक्त अर्थात् एक वार विभाग कियेहुये पदार्थोंका पुनः विभाग करना प्राप्त होता है; तब जीवा-दिके सहश अर्थात् जैसे प्रथम द्रव्यंक जीव तथा अजीव इस प्रकार दो विभाग करके पुनः जीवके संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद किये और फिर संसारी पृथिवीकायिक आदि छ भेदके धारक तथा सिद्ध पन्दरह भेदवाले द्योतित किये इसी प्रकारसे यह भी द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदसे दो प्रकारके हैं; उनमें नेगमआदि भेदोंसे द्रव्यार्थिक तीन प्रकारका है; और ऋजुस्त्रआदि भेदोंसे चार प्रकारका पर्यायार्थिक है; ऐसा कहना योग्य है; परन्तु नय नव हैं; इस प्रकार जो एकवाक्यतामें विभाग किया है; वह विभाग तो सर्वधा मिथ्या जानना चाहिये। और यदि ऐसा ही विभाग करो तब तो जीव, संसारी सिद्ध हत्यादि रीतिसे भी विभागवाक्य हो सकता है; अर्थात् जैसे द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक के भेदोंमें द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक को मिलाकर नव नयोंका कथन किया इसी प्रकार जीवके संसारी और मुक्त इन दोनों भेदोंमें जीवको भी योजित करके जीव, संसारी, सिद्ध ऐसे

तीन भेद कहिये " जैसे जीव और अजीवके कहनेसे आश्रयआदि तत्त्वोंका प्रहण सिद्ध है; वैसे ही द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनोंके कथनसे अन्य नैगमादि सब नयोंका ग्रहण हो जावे परन्तु तो भी जैसे आश्रयआदिक भिन्न कहे हैं; उसी प्रकार हम हमारी नय प्रिक्रयासे नय नव ९ हैं ऐसा कहेंगे " इस प्रकार कहनेवालों के प्रति ऐसा कहना चाहिये कि-यहांपर जीव अजीवआदिके समान तुझारे प्रयोजनकी नियोजना नहीं है; क्योंकि-व्यवहारमात्रसे भिन्न २ तत्त्व साध्य होते हैं; और जो आश्रवादिक भिन्न तत्त्व कहे गये हैं; वह भी व्यवहारमात्रसे ही कहे हैं; और नयके विषयमें तो एक नयसे दूसरेका किसी प्रकार भेद सिद्ध हो तब भिन्न नयकी सिद्धि हो उसमें यदि हेत्कोटिसे अनपेक्षित भेदका प्रवेश हो तो वैयर्थ्य दोष होता है; तात्पर्य यह कि— जिस भेदमें प्रवल हेतू न दिया जाय तो वह भेद व्यर्थ ही है; और तत्त्वप्रक्रियामें जो जीव, अजीव इन दोनोंमें ही सब तत्त्वोंके गतार्थ होनेपर जो सप्त तत्त्व निरूपण किये हैं; उनमें तो यह निम्नलिखित प्रयो-जन है; कि-जीव और अजीव यह दो ही मुख्य द्रव्य हैं; अर्थात् इन्ही दोनोंको मुख्य पदार्थ कहना तथा समझना चाहिये और बन्धको हेय (त्याग करने योग्य) तथा मोक्षको उ-पादेय(प्रहण करने योग्य)रूपसे कहना चाहिये और आश्रव है; सो बन्धका कारण है; इसिंठिये आश्रवको भी हेयरूपसे कहना चाहिये और मोक्ष मुख्य पदार्थ है; क्योंकि-उ-सीकेलिये सब पदार्थीका निरूपण है: और वही उपादेय है: इस कारण उस मोक्षके संबर और निर्जरा इन दोनों कारणोंका कथन करना चाहिये इस रीतिसे जीव अजीव आश्रव वंध संबर निर्जरा और मोक्ष इन सप्ततत्त्वोंके कथनकी प्रयोजनवाली प्रक्रिया है: और इसी प्रक्रियासे शुभ बंधके कारण पुण्यको भी भिन्न करके कहनेसे नव तत्त्व हो जाते हैं: ऐसा समझना चाहिये। और यहां द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयसे नैगमआदिको भिन्न उपदेश करनेका कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥

सूत्रम् । अभिन्नकारणाः सूत्रे नयाः सप्तैव कीर्त्तिताः । उच्यते तत्कथं वाक्यमधिकं सूत्रवर्ज्जितम् ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थ:—सूत्रमें अभिन्नकारण सात ही नय दर्शाये गये हैं; इसिलये तुम सूत्रवर्जित अधिक वाक्य कैसे कहते हो ॥ १९॥

व्याख्या । तस्मात्कारणात्स्त्रे नया अभिन्नकारणाः सप्तैव कथिताः तद्यथा सूत्रम् "सप्त मूळ नया पणात्ता " एतादशसूत्रे कथितमस्ति तद्वाक्यं सूत्रसदशमुहङ्काधिकं नव नया इति वाक्यं कथमुच्यते स्वसूत्रपरिरक्षणार्थे यथोक्तमेव न्याय्यम् । इत्थं परिचित्य केषांचिद्वाक्यस-ङ्कळनामनादत्य श्रीवीतरागभाषितवचनरचनापवित्रे सूत्रे बुद्धिरारोपणीया स्वसम्पत्कशुद्धि-संसिद्धिकृद्धये ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः - इस कारण भिन्नकारणशूत्य सात ही नय सूत्रमें कहे गये हैं; वह

सूत्र यह है; जैसे " मूलनय सात ही हैं " इस प्रकार सूत्रमें स्पष्टक्रपसे कहा गया है; सो उस सूत्रमें जैसे वाक्यका उछंघन करके सप्तसे अधिक अर्थात् नय नव हैं; ऐसा वाक्य कैसे अथवा किस आधारसे कहते हो। इसिलये अपने सूत्रकी रक्षांकेलिये यथोक्त (सप्तनय)का ही कथन करना योग्य है; ऐसा विचार करके जिस किसीकी वाक्य रचनाका अनादर कर बुद्धिमान् पुरुषोंको अपने शुद्ध सम्यक्त्वकी सिद्धिके अर्थ अथवा सम्यक्त्वकी वृद्धिकेलिये श्रीवीतरागभाषित वचनोंकी रचनासे पित्रत्र ऐसा जो सूत्र है; उसीमें बुद्धिको लगाना चाहिये॥ १९॥

अथ साक्षिणं दर्शयति ।

अब साक्षीको दिखलाते हैं।

सूत्रम् । दश भेदादिकाश्चात्र सन्ति युक्तोपलक्षणाः। न चेदन्तर्भवेत्कुत्र प्रदेशार्थनयो वद्॥ २०॥

सूत्रभावार्थः—और द्रव्यार्थिकआदिके जो दश भेद वगैरह देवसेनजीने कहे हैं; वह भी उपलक्षणमात्र हैं। यदि उपलक्षणमात्र न मानें तो कहो प्रदेशार्थनयका किसमें अन्तर्भाव होवे॥ २०॥

व्याख्या । अत्र देवसेनरिचतनयचक्रयन्थे द्रव्यार्थिकादिदश १० भेदा उपिद्धासे ची-पलक्षणत्वेन ज्ञातव्याः । यद्येवं न क्रियते ताई प्रदेशार्थनयः किस्मन् स्थाने चिरतार्थो भवे-दित्थं विचारणीयम् । दश्मेदादिका अत्र देवसेनीये व्रन्थे युक्तोपलक्षणा, उपलक्षणमात्रपराः सन्ति चेद्यदेवं ते कुत्र न ताई प्रदेशार्थनयोऽपि कुत्रान्तर्भवेदिति वद् । उक्तं च सूत्रे "द्वियाए पदेसिट्टियाए द्व्वट्टय पदेसट्टय" इत्यादि । तथा कर्मोपाधिसापेक्षजीवभावपाहक-द्रव्यार्थिको यथोपदिष्टस्तथा जीवसंयोगसापेक्षपुद्गालभावपाहकनयोऽपि भिन्नतया कथियतुं योग्य एव । एवं सत्यनेके भेदा भवन्ति तथा प्रस्थकादिदृष्टान्तेन नैगमादीनाम-शुद्ध १ अशुद्धतर २ अशुद्धतम ३ शुद्ध ४ शुद्धतर ५ शुद्धतमादिभेदा भवन्ति ते भेदाः कुत्र संगृह्यन्ते । तेषां सङ्गहार्थमुपचारो विहितस्तत उपचारेण ते उपनया भवन्तीति यदि कथ्यते तदापसिद्धान्तो भवेत् । अनुयोगद्वारे ते नयभेदाः प्रदर्शिताः सन्ति तत एतदेव दृढीिकि-यते उपनयाः कथिता ये सन्ति तेन व्यवहारनैगमादिभ्यः पृथग् न सन्ति उक्तं च तत्त्वार्थ-सूत्रे "उपचारबहुलो विस्तृतार्थो लोकिकप्रायः" ॥ २० ॥

च्यारुयार्थ:—इस देवसेनजीरचित नयचक्रनामक गन्थमें जो द्रव्यार्थिकआदि दश भेद द्रव्यार्थिक नयके कहे हैं; उनको उपैलक्षणपनेसे जानने चाहियें अर्थात् यह भेद

⁹ निजका तथा निजके समीपस्थ तथा अपने संबन्धीका भी बोध करनेवाला शब्द, जैसे "काके म्यां दिश्व रंश् क्षताम्" यहांपर काकपद दिधके उपघातक (नाश करनेवाले) श्वान मार्जारआदिका उपलक्षण है; न कि च यह कि काकोंसे दिश्वकी रक्षाकरो और विल्ली कुत्ते आवें तो खानें दो।

दिग्दर्शनमात्र हैं: इनसे अधिक और भी भेद होते हैं । और यदि उन दशको उपलक्षणमात्र नहीं करें तो प्रदेशार्थनय किस स्थानमें चिरतार्थ (अन्तर्भूत) हो यह विचारना चाहिये तथा यदि इस देवसेनजीके ग्रन्थमें दश भेद उपलक्षणसहित न हों तो प्रदेशार्थनयका किस नयमें अन्तर्भाव होता है: यह कहो । पुनः इस प्रदेशार्थनयका वर्णन सूत्रमें भी है: जैसे " द्रव्यार्थिकप्रदेशार्थनय " इत्यादि । तथा जैसे कर्मरूप उपाधि-की अपेक्षा रखनेवाले जीवभावको ग्रहण करानेवाला द्रव्यार्थिकनयका उपदेश किया है; इसी रीतिसे जीवके संयोगकी अपेक्षाका धारक जो पुद्रलभाव है; उसका ग्रहण कराने-वाला नय भी भिन्नरूपतासे कथन करनेके योग्य ही है; और जब जीवसंयोगापेक्षपुद्गल भावग्राहक नय माना जायगा तब इसी प्रकार अन्य भी अनेक नय होंगे । और प्रस्थकआदि दृष्टांतसे नैगमआदि नयोंके अग्रद्ध १ अग्रद्धतर २ अग्रद्धतम ३ ग्रद्ध ४ शुद्धतर ५ और शुद्धतमआदि जो अनेक भेद होते हैं; उन भेदोंका संग्रह कहां कि-या जायगा अर्थात तमको उपलक्षणमात्र ही इन दश मेदोंको मानना चाहिये अन्यथा पूर्वा-क्त भेदोंका संग्रह न होगा। अब यदि ऐसा कहो कि-"इन पूर्वोक्त भेदोंके संग्रहके अर्थ हमने उपचार किया है; और इसी कारण उपचारसे वह उपनय होते हैं" तो अपसिद्धान्त होगा अर्थात् सिद्धान्तकी हानि होगी । क्योंकि-अनुयोगद्वारमें उनको नयोंके भेद्दिख-लाये गये हैं। इसलिये यही पक्ष दढ किया जाता है; कि—जो उपनय कहे गये हैं; वह नहीं हैं; अर्थात् व्यवहार नैगमआदि नयोंसे जुदे नहीं हैं; और तत्त्वार्थसूत्रमें व्यवहारका लक्षण भी यही कहा है; कि-जो बहुधा उपचारसे पूर्ण हो अर्थात् जिसमें उपचार अधिक हो वह तथा संक्षिप्त अक्षरोंमें विस्तारसहित अर्थका धारक हो और प्रायः लौकिक हो वह व्यवहार है ॥ २० ॥

सूत्रम्। व्यवहारे समायान्ति तथैवोपनया अपि। न चेत्प्रमाणमप्यत्रोपप्रमाणत्वमाश्रयेत्॥ २१॥

सूत्रभावार्थ:—और वह उपनय भी व्यवहारमें ही गर्भित हो जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो प्रमाण भी उपप्रमाणताका आश्रय करे ॥ २१ ॥

व्याख्या । एवं सित नयभेदान् यगुपनयान् ऋत्वा मनुते तिह स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्र-माणिमत्येतस्रक्षणेन लक्षितस्य ज्ञानरूपप्रमाणस्याप्येकदेशो मत्यादिरथवा तदेशोऽवप्रहादिः सोऽप्युपप्रमाणिमिति पृथग्भेदो भविष्यति । तस्मान्नयोपनयप्रक्रिया शिष्याणां बुद्धिद्वन्दन-मात्रेण ज्ञातव्या ॥ २१ ॥

सूत्रम् । निश्चयाद्यवहारेण कोपचारविद्येषता । मुख्यवृत्तिर्यदैकस्य तदान्यस्योपचारता ॥ २२ ॥

सूत्रभावार्थः—निश्चयनयसे व्यवहारनयमें उपचारकी विशेषता क्या हे ? इसका उत्तर यह है; कि—जब एककी मुख्यता होती है; तब अन्य(दूसरे)की उपचारता होती है ॥ २२ ॥

व्याख्या । निश्चयात् निश्चयनयात् व्यवहारेण सहोपचारिवशेपता कास्ति । व्यवहारविषय उपचारोऽस्ति निश्चय उपचारो नास्त्येताविद्देशेषता । यदैकनयस्य मुख्यवृत्तिर्गृद्धाते
तदा परनयस्योपचारवृत्तिरायाति । रक्षाकरवाक्ये स्याद्धादरक्षाकरे च प्रसिद्धमस्ति " स्वस्यार्थसत्यस्वयाभिमानोऽखिळनयानामन्योन्यं वर्त्तते फळात्सत्यत्वं तु सम्यग्दर्शनयोग एवास्ति "। एवं च प्रकृतमर्थं व्याख्यायते । निश्चयनयाद् व्यवहारनयेन सहोपचारिवशेपता
कास्ति योपचारिवशेषता वर्त्तते तां दर्शयित । यदैकस्य कस्यचिन्नयस्य मुख्यता मुख्यभावो
वर्त्तते तदान्यस्यान्यनयस्य उपचारता गौणत्वं भवतीति ज्ञेयम् । यथा हि निश्चयेनात्मिति शब्द
एतस्य निश्चयार्थस्तु " असंख्यातप्रदेशी निरञ्जनोऽनन्तज्ञानादिगुणोपतो नित्यो विभुः कर्मदोषेरसङ्गतः सिद्ध इव देह उपछभ्यते " तदास्य व्यवहारेणौपाधिकस्य जडशरीरादेः सङ्गतस्यौद्यिकादिभावोपगतनरतैर्यकादिभावस्पर्शतोऽपि गौणत्वं भासते । — अथ च " अति
सातत्येन गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्यात्मा" संसारस्थो देहादिसङ्गतो जनममरणजरायोवनादिहेश्चमनुभवमानः प्रत्यक्षप्रमाणेन व्यवहारादेशादेवो मनुष्यो नारकस्तिर्यक् च कथ्यते तत्र
सिद्धत्वस्य गौणत्वम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थ:—निश्चयनयसे व्यवहारनयके साथ उपचारकी विशेषता क्या है ! इस जि-ज्ञासा(जाननेकी इच्छा)में कहते हैं; कि-व्यवहारनयके विषे उपचार है; और निश्चयन-यमें उपचार नहीं है: इतनी ही विशेषता है: अर्थात जब एक नयकी मुख्य अर्थमें शक्ति रहती है; तब अन्य नयकी उपचारवृत्ति(गाणता)से उस नयकी अर्थबोधनशक्ति स्वयं आती है। और यह वात्ती रत्नाकरवाक्यमें तथा स्याद्वादरत्नाकरमें प्रसिद्ध है। जैसे "अ-पने २ अर्थकी सत्यताका अभिमान सब नयोंके परस्पर रहता है; और उन नयोंक फलसे सत्यता तो सम्यग्दर्शनके संयोगके होनेपर ही होती है;" जब ऐसा सिद्धान्त है; तत्र इस प्र-कृत अर्थका इस प्रकार व्याख्यान होता है; कि-"निश्चयनयसे व्यवहारनयके साथ उप-चारविशेषता क्या है ? जो उपचारविशेषपना है; उसको दिखाते हैं । जब किसी एक नयकी मुख्यता रहती है; तब अन्य (दूसरे) नयकी उपचारता रहती है; तात्पर्य यह कि-एक नय प्रधानभावसे जब रहेगा तब अन्य नय गौणत्व(अप्रधानपने)रूपसे आप ही रहेगा, यह गौणत्ववृत्ति होना ही उपचारता है; ऐसा समझना चाहिये । उदाहरणकेलिये जैसे निश्चयनयसे " आत्मा " यह शब्द है: तब इस आत्माका निश्चयनयसे अर्थ असंख्यातप्र-देशोंका धारक, निरंजन, अनंत ज्ञानआदि गुणोंसे सहित, नित्य, विभु (व्यापक) और कर्मोंसे उत्पन्न जो दोष हैं; उनसे रहित सिद्धके सदृश आत्मा ही देहमें जाना जाता है। उस निश्चयार्थदशामें यद्यपि व्यवहारसे औपाधिक जो जड पदार्थ शरीरशादि हैं; उनके सहित तथा ओद्यिकआदि भावोंसे प्राप्त जो नर नारकी, और तिर्यक्षआदिपना है; उसको स्पर्शताहुआ भी जो आत्मा है; उसका गौणत्व भासता है। और जब ''अति इति आत्मा'' अर्थात् जो निरन्तर उन उन पर्यायोंके प्रति गमन करता है; अथवा निरन्तर उन उन पर्यायोंको प्राप्त होता है; वह आत्मा है; ऐसा व्यवहारसे अर्थ करते हैं; तब यह आत्मा संसारी है, देहआदिकसे सहित है, जन्म, मरण, वृद्धावस्था, और यौवनआदिक दशाओं जो दुःख होता है; उसको प्रत्यक्ष प्रमाणसे अनुभवकरताहुआ देव है, मनुष्य है, नारकी है; और तिर्यम्च है; इत्यादिरूपसे कहा जाता है। उस व्यवहारदशामें इसका निश्चयोक्त अनन्त गुणादिसहित जो सिद्धपना है; उसकी गौणता भासती है॥२२॥

अथ पुनस्तदेव प्रतिपादयति ।

अब फिर उसी विषयका प्रतिपादन करते हैं।

सूत्रम् । तेनेदं भाष्यसंदिष्टं गृहीतव्यं विनिश्चयम् । तत्त्वार्थे निश्चयो वक्ति व्यवहारो जनोदितम् ॥ २३ ॥

सूत्रभावार्थ:—इस कारण भाष्यमें कहाहुआ जो यह विनिश्चय है; कि—"निश्चय-नय तत्त्वार्थको कहता है; और व्यवहारनय केवल मनुष्योंसे कहेहुएको ही कहता है" इसको स्वीकार करना चाहिये॥ २३॥

व्याख्या । तेन कारणेनेदं विनिश्चयं निश्चयव्यवहारयोर्छक्षणं भाष्यसंदिष्टं विशेषावश्यक-निरूपितं गृहीतव्यमवधारणीयम् । अथ निश्चयव्यवहारयोर्छक्षणमाह । निश्चयो निश्चयनयः तत्त्वार्थं युक्तिसिद्धमर्थं वक्ति कथयति। पुनर्व्यवहारो व्यवहारनयो जनोदितं छोकाभिप्राहित्वं वक्ति यतो छोकाभिमतमेव व्यवहारस्तस्य प्राह्कं प्रमाणं न भवति। प्रमाणं तु तत्वार्थप्राहकमेवास्ति तथापि प्रमाणस्य सकछतत्त्वार्थप्राही निश्चयनयः, एकदेशतत्त्वार्थप्राही व्यवहारश्चायं विवेकः। निश्चयनयस्य विषयत्वमथः च व्यवहारनयस्य विषयत्वमनुभवसिद्धं भिन्नमेवास्ते । असता न निष्ठेति । यथा सविकल्पकङ्गानं नष्टप्रकारतादिकमन्यवादिनो भिन्नमेवामनन्तीति हृदये विमर्शनीयम् ॥ २३॥

व्याख्यार्थ: इस कारणसे भाष्य अर्थात् विशेषावरयकमें कहाहुआ जो यह विनिश्चय अर्थात् निश्चय और व्यवहारका लक्षण है; उसको निश्चित करना चाहिये। अब जो निश्चय और व्यवहारका लक्षण भाष्यमें कहाहुआ है; उसका कथन करते हैं; कि—निश्चय नय जो है; वह तो तत्त्वार्थ अर्थात् युक्तिसे सिद्ध अर्थको कहता है; और व्यवहारनय जो है; वह जनोदित अर्थात् लोकके इष्ट जो प्रहण है; उसको कहता है, क्योंकि—लोकके ही जो अभिमत होता है; वह व्यवहार है। इसलिये उस व्यवहारका जो प्राहक (प्रहण करनेवाला) है; वह प्रमाण नहीं होता; किन्तु जो तत्त्वार्थका प्राहक होता है; वही प्रमाण होता है; तथापि प्रमाणके संपूर्ण तत्त्वार्थको प्रहण करानेवाला निश्चयनय है; और प्रमा-

णके एकदेश तत्त्वार्थको जो ग्रहण करता है; वह व्यवहार कहलाता है; यह निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयोंका विवेक है। और निश्चयनयका विषय तथा व्यवहारनयका विषय तो भिन्न ही है; यह अनुभवसे सिद्ध है। और व्यवहारग्राहक प्रमाण असत् है; इ-ससे उसकी निष्ठा (उत्पत्ति) नहीं है; ऐसा नहीं क्योंकि—जैसे अन्यवादी सविकल्पक ज्ञानको और निर्विकल्पकको भिन्न ही मानते हैं; उसी प्रकार निश्चय और व्यवहार है; ऐसा हृद्यमें विचारना चाहिये॥ २३॥

अथोपचारं निर्द्धिशति । अब उपचारका निर्देश करते हैं ।

सूत्रम् । बाह्यस्याभ्यन्तरत्वं यद्वहुव्यक्तेरभेदता । यच द्रव्यस्य नैर्मल्यमिति निश्चयगोचराः ॥ २४ ॥

सूच्रभावार्थ:—जो बाद्य पदार्थका अन्तरंगत्व है, जो अनेकव्यक्तिगत अभेदता है; और जो द्रव्यकी निर्मलता है; सो सब निशयनयका विषय है ॥ २४ ॥

च्याख्या । यद्वाह्यस्य बाह्यार्थस्याभ्यन्तरत्वमन्तरङ्गत्वं वर्त्तते तद्तिगोचरं निश्चयविषयिमत्यर्थः यथा "समाधिनन्दनं धैयों दंभोल्ठः समता सभा । ज्ञानं महाविमानं च वासरश्रीरियं
पुनः ॥ १ ॥" इत्यादि पुण्डरीकाध्ययनाद्यर्थोऽप्येवं भावनीयः । अथ पुनर्वहुव्यक्तेरनेकिविशेपस्याभेदता भेदराहित्यं तद्दि निश्चयविषयं यथा "एगे आया" इत्यादिसूत्रम्, तथा वेदान्तदर्शनमि शुद्धसङ्गहनयादेशरूपः शुद्धनिश्चयनयार्थः संमितमन्थे कथितः । तथा पुनर्द्रव्यस्य पदार्थस्य नैमेल्यं तद्दि निश्चयविषयम् । नैमेल्यं तु विमलपरिणितर्वाह्यनिरपेक्षपरिणामस्सोऽपि निश्चयनयार्थो बोद्धव्यः । यथा " आयासामाइए आयासामाइयस्स अट्टे " एवमेतेऽभ्यन्तरत्वाद्यो निश्चयगोचरा एव यथा यया रीत्या लोकातिकान्तोऽर्थोऽवाप्यते तथा तया रीत्या निश्चयनयस्य भेदा भवन्ति तस्माच लोकोक्तरार्थभावना समायातीति क्षेयम् ॥२४॥

व्याख्यार्थ:—जो बाह्य पटार्थका आभ्यन्तरत्व अर्थात् अन्तरंगपना है; वह निश्चय नयका विपय है; जैसे समाधि, नंदनवन, दंभोलि (वज्र) समता सभाज्ञान महाविमान और यह वासरश्री अर्थात् दिनकी शोभा। १। इत्यादि तथा पुण्डरीकाध्ययनार्थ भी इसी प्रकार विचारना चाहिये। और बहुव्यक्तिगत जो अनेक विशेष हैं; उनकी अभेदता (भेद-रहितपना) जो है; वह भी निश्चयनयका विषय है, जैसे "एगे आया" इत्यादि सूत्र है। इसी प्रकार वेदान्तदर्शन भी शुद्धसङ्गहनयका आदेशरूप होनेसे शुद्धनिश्चयनयका का अर्थरूप संमति प्रन्थमें कहा है। और जो द्रव्य अर्थात् पदार्थकी निर्मलता है; वह भी निश्चयनयका विषय है; यहांपर नैर्मल्य शब्दका अर्थ निर्मल परिणाम अर्थात् बाह्य विषयकी अपेक्षा न रखनेवाला जो द्रव्यका परिणाम है; वह भी निश्चयनयका ही अर्थ (विषय) समझना चाहिये; जैसे " आया सामाइय आया सामाइयस्स अट्टे " इत्यादि। इस

प्रकार यह पूर्वोक्त अभ्यन्तरत्वआदि निश्चयनयके ही विषय हैं। और जिस रीतिसे छो-कोत्तर अर्थ प्राप्त होता है; उसी प्रकारसे निश्चयनयके भेद होते हैं; और इस हेतुसे छो-कोत्तर अर्थकी भावना प्राप्त होती है। ऐसा जानना चाहिये॥ २४॥

अथ व्यवहारविषयं दर्शयति । अव व्यवहारनयके विषयको दर्शाते हैं ।

सूत्रम्। यो हि भेदो भवेद्व्यक्तेर्यश्चैवोत्कटपर्यवः। कार्यकारणयोरैक्यमिति व्यवहृतेर्विधाः॥ २५॥

सूत्रभावार्थ:—जो व्यक्तिका भेद होता है; जो उत्कट पर्याय है; तथा जो कार्य और कारणकी एकता है; सो सब व्यवहारके भेद हैं॥ २५॥

व्याख्या। हि निश्चितं यो भेदो व्यक्तेभेवेत् स च व्यवहारभेदो क्लेयः। यथा अनेकानि द्रव्याणि, अनेके जीवाः, इत्यादि प्रकारेण व्यवहारनयार्थः। तथा च पुनरेव निश्चयनय उत्कटपर्यवः उद्धतपर्यायः सोऽपि व्यवहारनयस्य भेदः। अत एव "निष्ठयणण्णं पंचवण्णे भमरे ववहारणण्ण कालवणे " इत्यादिसिद्धान्ते प्रसिद्ध उत्कटपर्यायोऽपि व्यवहारः। तथा च कार्यकारणयोर्निमित्ती निमित्तश्च एतयोरथेक्यं यद्भवति तद्वापि व्यवहारविपयम्। यथा हि आयुर्घृतमित्यादि, यथा वा गिरिद्द्यते, यथा वा कुण्डिका स्रवति, मञ्चाः क्रोशन्ति, कुन्ताः प्रविशन्ति, गङ्गायां योप इत्यादिव्यवहारभाषा अनेकरूषा वर्त्तते। सा च सर्वापि व्यवहारन्यविपयिणी क्रया। इति किं यो व्यक्तेभेदः, यः पुनरुत्कटपर्यवः यद्पि कार्यकारणयोरिकयन्म, इत्यादि व्यवहत्वर्थवहारस्य विद्याः प्रकारा इत्यर्थः॥ २५॥

व्याख्यार्थः - जो व्यक्तिका भेद होता है; उसको निश्चयरूपसे व्यवहारका भेद जाना चाहिये, जैसे अनेक द्रव्य हैं, अनेक जीव हैं, इत्यादि रीतिसे व्यवहारनयका अर्थ है; और फिर जो निश्चयनयमें उद्धत पर्याय है; सो भी व्यवहारनयका भेद हैं। इसी हेतुसे ऐसा कहा भी है; कि - निश्चयनयसे अमर (भंवरा) पंचवर्ण अर्थात् पांच रंगका है; और व्यवहारनयसे केवल कृष्णवर्ण (काले रंगका)ही है; इत्यादि रीतिसे सिद्धान्तमें प्रसिद्ध जो उत्कट पर्याय है; वह भी व्यवहारनयका भेद है। और फिर कार्य कारण अर्थात् निमित्ती और निमित्तकी जो एकता है; वह भी व्यवहारनयका विषय है; जैसे आयु घृत है; यहां घृतरूप जो आयुका कारण है; उसमें आयुरूपता मानी है; अथवा जैसे पर्वत जलता है; 'कुंडी करती हैं ' 'मंच (मांचे) शब्द करते हैं ' 'भाले घुसते हैं ' 'गंगामें घोष (अहारोंका ग्राम) है' इत्यादि जो अनेकरूप व्यवहारभाषा (व्यवहारमें कहनेकी परिपाटी) है; वह सब व्यवहारनयके विपयको धारण करनेवाली ही जाननी चाहिये। तात्पर्य यह है; कि - जो व्यक्तिका भेद है, और जो उत्कट पर्याय है; तथा जो कार्य कारणकी एकता है; इत्यादि यह सब व्यवहारनयके भेद हैं ॥ २५॥

अथ प्रपश्चितस्य संक्षेपमाह । अब जो पूर्वोक्त प्रपंच है; उसको संक्षेपसे कहते हैं ।

)

सूत्रम् । इत्याद्यनेकविषयांश्च नयान्विहाय संक्षिप्य तांश्च वचसाध्यधिकान्विधाय । बालावबोधनकृते किल देवसेन-स्तत्प्रपञ्चनमचीकरदासकान्यम् ॥ २६॥

सूत्रभावार्थ:—इत्यादि अनेक विषयोंको धारण करनेवाले निश्चय व्यवहारआदि नयोंको त्यागकर और फिर उनको ही उपचारसे संक्षिप्तकर और सूत्रवाक्यसे भी अधिक नयोंको अपनी वुद्धिसे करके मंद्बुद्धियोंको वंचने(ठगने)केलिये देवसेनजीने आप्त- इस प्रपंचको किया है !! २६ !!

व्याख्या। इत्यादि अनेकविषयान् अनेके भूयांसो विषया गोचरा अर्था वा एषान्तेऽनेकिविष्यास्ताननेकविषयान् नयान् न्यायान् निश्चयव्यवहारात्मकान् विहाय त्यक्त्वा च पुनस्तानेव नयान् संक्षिप्य संक्षेपं कृत्वा उपचारपदेन संकोचियत्वा अपि पुनर्वचसा वचनान्तरेण अधिकान् अतिरेकान् विधाय रचियत्वा सूत्रे सप्त नया आदेशान्तरेण पश्च नयास्तत्र च 'नव नया ' इत्याधिकयं कृत्वा वालाववोधनकृते वालानां मन्द्मतीनामवबोधनं प्रतारणं "अववोधनं प्रतारणं वंचने शिक्षणे चेत्यनेकार्थान् " मंद्मतिवश्चनकृते प्रतारणार्थाय किल इत्यसत्ये " सत्केलीके भावनायां निश्चयऽपि किल स्मृतमिति " देससेनः नयचक्रप्रन्थनिर्मायको दिगम्बरमताप्रणीः एतन् प्रागुक्तं प्रपश्चनं नयविस्तारणं अचीकरन् चकार । कीद्याचीकरत् आप्रशुन्यं आप्नोवीतरागस्तस्य वाक्यं सिद्धान्तस्तेन शुन्यं वर्जितम्, आप्नशुन्यमिति मध्यमपद् लोपी समासः आप्नवाक्येन शून्यमाप्रशुन्यं स्वमत्या असंभावितं विरचय्य लोके यन्थगौरवो दर्शित इति ॥ २६ ॥

च्याख्यार्थ:—इत्यादि बहुतसे गोचर अथवा अथोंके घारक निश्चयं और व्यवहार खरूप नयोंको छोडकर और फिर उन्हीं नयोंका संक्षेप करके अथीत उपचारपदसे संकोच करके पुनः वचनान्तरसे अधिक नयोंकी रचना करके अथीत सूत्रमें सप्त नय हैं; और मतांतरसे पांच नय हैं; वहांपर अथीत सात तथा पांच नयोंके स्थानमें "नय नव हैं" ऐसी अधिकता करके मंद्बुद्धियोंको वंचनेकेलिये अवबोधन शब्द प्रतारण वंचन तथा शिक्षणआदि अनेकार्थका वाची है; इसलिये सूत्रमें जो अवबोधन शब्द है; उसका यहां वंचनरूप अर्थ लियागया है " इसलिये उन मंद्बुद्धियोंको घोखा देनेके अर्थ मिथ्या ही "सूत्रमें जो किल शब्द है; वह सत्य, झूंठ, संभावना और निश्चय इन चार अर्थोंमें वर्त्तता है; इस कारण यहां झूंठरूप अर्थका ग्रहण कियागया है" दिगम्बरमतके अंग्रेसर नय चक्रमन्थके बनानेवाले देवसेनजीने श्रीवीतरागके सिद्धान्तसे रहित इस पूर्वोक्त प्रपंचन अन

र्थात् नयके विस्तारको किया तात्पर्य यह कि-देवसेनजीने अपनी बुद्धिसे सर्वज्ञमतके वि-रुद्ध असंभावितको रचकर लोकमें प्रन्थका गौरव दिखाया है ॥ २६ ॥

सूत्रम् । इत्थं नयानां बहुभङ्गजालैरेकं पदार्थे च त्रिधा परीक्ष्य । अर्हत्त्रमाम्भोजयुगोपयोगिचेतःकुरुवात्मसुखं लभस्व२७

सूत्रभावार्थ:—हे भव्य! इस प्रकार नैगम संग्रहआदि नयों के अनेक भेद समूहों के द्वारा एक पदार्थको द्रव्य, गुण पर्यायरूप निश्चय करके श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलयुगलमें लीन चित्तको कर और आत्मसुखको प्राप्त हो ॥ २७॥

व्याख्या । इत्थं अमुना प्रकारेण श्रीजिनदेवभाषितसूत्रप्रक्रमेण नयानां नैगमादीनां सप्तानां तथापि पश्चानां बहुभङ्गजालैः बह्वोऽनेके भाङ्गा भेदास्तेषां जालैः समूहैः एकं कमिप स्वेिष्मतं पदार्थं जीवादिपदार्थं त्रिधा द्रव्यगुणपर्यायस्पं परीक्ष्य निश्चित्य अर्हत्क्रमाम्भोजयुन्गोपयोगि अर्हतां वीतरागाणां क्रमाश्चरणास्त एवाम्भोजानि कमलानि तेषु उपयोगि लीनं एताहशं चेतः चित्तं कुरुष्व भोभव्य! त्विमत्यध्याहारादित्यन्वयः पुनर्भो भव्यप्राणिन् ? त्वमात्मसुखमात्मनो जीवस्य सुखं निराबाधानुभवं लभस्व प्राप्तुहि । नयज्ञानाज्ञीवादीन्परीक्ष्य कर्भभ्य आत्मानं वियोज्यानन्तसुखभाग्भवेत्यर्थः ॥ २७ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—इस प्रकार श्रीजिनदेवभाषित सूत्रोंके क्रमसे नैगमआदि सप्त नय अध्या पंच नयोंके अनेक भेद समूहोंसे इच्छानुसार किसी भी एक जीवआदिक पदार्थको द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूप निश्चित करके श्रीवीतरागोंके चरण कमलोंमें आसक्त ऐसे चिक्तो कर "हेमव्य? तू यह अध्याहारसे लगा लेना चाहिये" और हेभव्यजीव? तू जीवका जो बाधारहित अनुभवस्वरूप सुख है; उसको प्राप्त हो। तात्पर्य यह है; कि—भो भव्य? नयोंके ज्ञानसे जीवआदि पदार्थका निश्चय कर कमोंसे आत्माको भिन्न कर अनंत सुखका भागी हो॥ २०॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारिद्विवेदिपण्डितठाकुरप्रसाद्विरिचतभाषाटीकासमलङ्कृत-द्रव्यानुयोगतर्कणायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमाध्याये द्रव्यगुणपर्यायाणामेकं स्वरूपं कथयन्नाह ।

अब नवम अध्यायमें द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकरूपता कहतेहुए यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । लक्षणैस्त्रिभिरेकोऽर्थः सहितः कथ्यते जिनैः । यथार्थार्थमन्विच्छन्प्राप्नोति सकलेप्सितम् ॥१॥ सूत्रभावार्थः जैसे श्रीजिनभगवान् एक पदार्थको तीन लक्षणोंसे युक्त कहते हैं; उसी रीतिसे पदार्थको चाहताहुआ भव्य सब अभिलिषत वस्तुको प्राप्त होता है ॥ १॥

व्याख्या । एकोऽद्वितीयोऽथीं जीवपुद्गलादिर्घटपटादिवी यथा येन प्रकारेण त्रिभिर्ह्नक्षणैकत्पाद्व्ययप्रीव्याख्यैः सिहतो युक्तः श्रीजिनैः परमेश्वरैः कथ्यते भण्यते वाक्यप्रबन्धेन ।
यतः—"उप्पन्ने इवा १ ध्रुवे इवा २ विगमे इवा ३' इति त्रिपदीमूलात्पदार्थः सर्वोऽिष त्रिविध इत्यर्थः । तथेति उक्तप्रकारेण अर्थे पदार्थमन्विच्छन् वाञ्छन् धारयन् सकलेप्सितं सर्ववाि इत्यर्थः । तथेति उक्तप्रकारेण अर्थे पदार्थमन्विच्छन् वाञ्छन् धारयन् सकलेप्सितं सर्ववाविद्यतं सम्यक्तवादिसिद्धिपर्यन्तं कामं प्राप्नोति भव्य इति पद्यार्थः । भावार्थस्वयम्—एतस्यां
त्रिपद्यां सर्वेषामर्थानां व्यापकत्वमवधारणीयम् । जिनमते केचित्पदार्था नित्याः, केचिद्वित्या
इत्यं नैयायिकाद्यः कथयन्ति तद्वन्नास्ति । नित्यैकान्तानित्यैकान्तपक्षयोरि लोकयुक्तयापि
विरोधो दृश्यते । ततो दीपादारभ्याकाशपर्यन्तमुत्पाद्व्ययधौद्यलक्षणं प्रमाणयितव्यम् । तदुकं श्रीहेमाचार्यैः—"आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानितभेदिवस्तु । तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापः" ।। १ ।।

व्याख्यार्थ:-एक अर्थात् दूसरेसे रहित केवल एक जीव पुद्गलआदि तथा घट पटआदि पदार्थ जिस रीतिसे उत्पत्ति, नाश और धौव्यह्नप तीनों लक्षणोंसे संयुक्त श्री-जिन परमेश्वर वाक्यप्रबंधसे कहते हैं; अर्थात् कथंचित् उत्पन्न होता है; कथंचित् नष्ट होता है; और कथंचित् घोट्य है; इस प्रकार जो तीन पदोंका मूलसूत्र है; उससे सब पदार्थ तीन प्रकारका है। उसी श्रीजिनेन्द्रके कहेहुए प्रकारसे पदार्थको चाहताहुआ अर्थात् अन्तः करणमें धारण करताहुआ भव्यवाणी संपूर्ण अभीष्टको अर्थात् सम्यग्दर्शनको आ-दि ले मुक्तिपर्यन्त कामनाको प्राप्त होता है; बस यही श्लोकका अर्थ है। आशय तो यह है; कि–इस त्रिपदीमें संपूर्ण पदार्थोंकी व्यापकताका निश्चय करना चाहिये । क्योंकि–कोई पदार्थ नित्य है; कोई पदार्थ अनित्य है; ऐसा जो नैयायिक आदि कहते हैं; उसके समान जिन मतमें कोई पदार्थ नहीं है। और नैयायिकआदिके अभिमत जो एकान्त नित्य तथा एकान्त अनित्य पक्ष हैं; इन दोनोंमें ही लोकयुक्तिसे भी विरोध देखा जाता है। इसलिये दीपसे लेके आकाशपर्यन्त संपूर्ण पदार्थ पूर्वोक्त उत्पाद, व्यय तथा धौव्यरूप त्रिविध लक्षणसहित प्रमाणभूत करना चाहिये। वही विषय श्रीहेमाचार्यजीने कहा है: कि-दी-पकसे लेके आकाशपर्यन्त समस्त पदार्थ एक स्वभावके धारक हैं; और स्याद्वादमुद्राका उद्घंघन नहीं करते हैं; इसलिये उनमें एक नित्य ही है; दूसरा अनित्य ही है; इस प्रकार जो कथन है सो आपकी आज्ञासे विरोध रखनेवालोंका प्रलाप है ॥ १ ॥

अथैनमेवार्थ विवृत्य कथयन्नाह ।

अब इसी त्रिविधलक्षणतारूप अर्थका विवरण करके निरूपण करते हैं।

सूत्रम् । उत्पाद्भुवनिनीशैः परिणामः क्षणे क्षणे । द्रव्याणामविरोधाच प्रत्यक्षादिह दृश्यते ॥२॥ सूत्रभावार्थः—उत्पाद ध्रोव्य तथा नाशरूप त्रिविध लक्षणोंसे द्रव्योंका परिणाम क्षण क्षणमें परस्पर विरोधरहितपनेसे और प्रत्यक्षसे दीख पडता है ॥ २॥

व्याख्या । उत्पाद्व्ययनिर्नाशैर्लक्षणैक्षिभिर्द्व्यस्यक्षणे क्षणे समये समये परिणामोऽस्ति । अत्र कश्चिदाह । यत्रोत्पाद्व्ययौ भवतस्तत्र ध्रौव्यं नास्ति यत्र च ध्रौव्यं तत्रोत्पाद्व्ययौ न स्यातामिति विरोधिस्तिष्ठति तदा एकत्र लक्षणत्रयं कथं संभवेत् । यथा-छायातपावेकत्र न स्यातां तद्वदेतावेकत्र न भवेतां चेति । तत्रोत्तरं—यथोष्णाशीतस्पशीं क्रमेणानलजलयोः परस्परपिहारेण हृष्टौ तयोरेकत्र स्थान उपसंहारेण विरोधोऽप्यस्ति । परमत्र तु सर्वलक्षणान्येकत्र प्रत्यक्षं विलोक्यन्ते । परस्परपिहारेण कुत्रापि प्रत्यक्षसिद्धत्वं नास्ति । तदा कथमेति द्विरोधस्थानं भवेत् । अनादिकालीनैकानतवासनया मोहिताः प्राणिन एतेपां विरोधं पश्यन्ति, परंतु परमार्थतो विचार्यमाणो विरोधो न ह्यस्ति । समयनैयत्येन प्रत्यय एव विरोधनाश हेतुरिति ॥ २ ॥

व्याख्यार्थ:--उत्पाद, व्यय और धौव्य इन तीनों लक्षणोंसे संसारके द्रव्योंका परिणाम (परिवर्त्तन) क्षण क्षण (समय २) में होता है। अब यहांपर कोई कहता है: कि-जहांपर उत्पाद तथा नाश है; वहांपर धौव्य नहीं है, और इसी प्रकार जहांपर धौव्य है; वहां उत्पत्ति तथा नाश नहीं रह सकते । इस प्रकार विरोध रहता है; तब एक वस्तुमें उत्पाद व्यय धौव्यरूप तीनों लक्षण कैसे संभव होते हैं। जैसे छाया और आतप (धूप) यह दोनों एक जेगह नहीं रह सकते वैसे ही उत्पाद व्यय और धौव्य यह दोनों भी एक पदार्थमें नहीं रह सकते हैं ? अब इस शंकाका उत्तर कहते हैं; कि-जैसे उप्ण और शीत स्पर्श परस्परके परिहारसे कमसे अग्नि तथा जलमें दृष्ट हैं; अर्थात् परस्परके परिहारसे उष्णस्पर्श अग्निमें और शीतस्पर्श जलमें देखाजाता है: और उन दोनों स्पर्शीका किसी एक स्थानमें अर्थात केवल अग्नि अथवा जलमें उपसंहार (प्रहण)करो तो विरोध भी हैं: परन्तु यहां तो सब लक्षण (उत्पाद व्यय धौव्यरूप तीनों लक्षण) एक वस्तुमें प्रत्यक्ष रूपसे देख पडते हैं; और परस्परके परिहारसे अर्थात एक दूसरेको दूर करके (उत्पादके विना व्यय. व्ययके विना उत्पाद) कहीं भी प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं हैं: अर्थात किसी एक भी पदार्थमें केवल उत्पाद व्यय अथवा धौव्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं देखा जाता है; तब यह विरोधका स्थान कैसे है ? अनादि कालकी जो एकान्तकी वासना है; उससे मोहित हो-कर प्राणी इनके परस्परविरोध देखते हैं; परन्तु परमार्थसे विचार किया जावे तो कोई विरोध नहीं है: क्योंकि-समयकी नियत्ततासे जो विश्वास हुआ वही विरोधके नाश कर-नेमें कारण है ॥ २ ॥

पुनस्तदेव कथयन्नाह।

पुनः उसी त्रिविध लक्षण प्रस्तुताका विस्तार करते हैं;

सूत्रम् । कुम्भमौलिसुवर्णेषु व्ययोत्पत्तिस्थिरात्मसु । दुःखहर्षोपयुक्तेषु हेमत्वं निश्चलं त्रिषु ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—नाश, उत्पत्ति तथा स्थिरतायुक्त और दुःख तथा हर्षसे उपयुक्त सुवर्णमयघट सुवर्णमयमुकुट तथा सुवर्ण इन तीनोंमें सुवर्णरूपता स्थिरतासे हैं ॥ ३॥

व्याख्या । कुम्भो घटो हेमघटहेममौलिहेमसु नाशोत्पत्तिध्रुवरूपेपु दुःखहर्षाभ्यासुपयुक्तेपु हेमत्वं सुवर्णत्वं तिष्ठति । द्रव्ये चैकस्मिन्नेव घटाकारनाशान्मुकुटाकारोत्पत्तिः, पुनर्हेमाकारेण स्थिरत्विमत्येतल्लक्षणत्रयं प्रकटाकारेण दृश्यते । तस्माद्धेमघटं मङ्कत्वा हेममुकुटं निष्पाद्यते उभयत्र हेमत्वं स्थिरम् । हेमघटार्थी दुःखवान् भवति घटाकारहेमव्ययसत्त्वात् ।
हेममुकुटार्थी हर्षवानस्ति हेममुकुटाकारेण सत्यत्वात् । पुनर्हेममात्रार्थस्तु तदा दुःखवानिष सुखवानिष न, स्थितिपरिणामेन विद्यमानत्वात्, ध्रुवत्वाच । तस्माद्धेमसामान्यस्थितिः सत्या
इति । एवं सर्वत्रोत्पादव्ययधौव्यपर्याया द्रव्यरूपेण ज्ञेयाः । अत्रोत्पादव्ययभाग् भिन्नं द्रव्यं
तथा स्थितिभाक् द्रव्यं भिन्नं किमिष न दृश्यते ततो घटमुकुटाद्याकारस्पर्शिहेमैव केवलं
द्रव्यम् । न हि यद्भुवं भवेत् ध्रुवत्वस्य प्रतीतिरप्यस्ति ततश्च "तद्भावाव्ययं नित्यं" इति
लक्षणेन परिणामेन च ध्रुवमपरमध्रुवमिष । सर्वमपीत्थं भावनीयम् ॥ ३ ॥

च्याच्यार्थः—नाश उत्पत्ति तथा ध्रुवतारूप लक्षणसंयुक्त और दुःख तथा हर्षसे उपयुक्त सुवर्णके घट, सुवर्णके मुकुट सुवर्ण इन तीनोंमें सुवर्णपना स्थिर है; अर्थात् सुव-र्णत्व सबमें है; जैसे एक ही सुवर्णरूप द्रव्यमें घटके आकारका नाश मुकुटके आकारकी उत्पत्ति और सुवर्णरूप आकारकी स्थिति है। और सुवर्णरूप द्रव्यमें घटके आकारके नाशसे मुकुटके आकारकी उत्पत्ति होती है; और सुवर्ण आकारसे उसमें स्थिरता (धौच्य) है; इस प्रकार यह तीनों लक्षण एक ही द्रव्यमें प्रकटतासे दीखते हैं। इस कारण सुवर्णके घटको तोडकर सुवर्णका मुकुट बनाया जाता है। और सुवर्णपना घट तथा मुकुट इन दोनोंमें स्थिर है। अब जिस समय सुवर्णघटको तोडकर उसका मुकुट बनता है; तब सुवर्णके घटको चाहनेवाला पुरुप दुःखी होता है; क्योंकि—घटके आकारका जो सुवर्ण था उसका व्यय (नारा) होता है; और जो पुरुष हेमके मुकुटको चाहनेवाला है; वह प्रसन्न है; क्योंकि—वह सुवर्ण हेम मुकुटके आकारसे विद्यमान है; और जो केवल सुवर्णको ही चाहनेवाला है; वह उस समयमें न दुःखी है; और न सुखी है; क्योंकि—स्थितिहरूप परि-णामसे जो सुवर्ण घटमें था वही मुकुटमें भी विद्यमान है; और नित्य है। इसिलिये सुव-र्णकी सामान्यस्थिति सत्य है। इस प्रकार सर्वत्र उत्पाद व्यय तथा धोव्य पर्याय द्रव्य-रूपसे जानने चाहियें। यहांपर उत्पाद और व्ययको धारण करनेवाला द्रव्य भिन्न है; तथा स्थित (नित्यता)का भागी द्रव्य भिन्न है; ऐसा कुछ भी नहीं दीख पडता है; अर्थात् उत्पाद व्यय और स्थितिका धारक एक ही द्रव्य है। इस कारण घट मुकुट इत्यादि आकारको धारण करनेवाला सुवर्ण ही केवल द्रव्य है। और वह केवल ध्रुव ही है; किन्तु उसमें ध्रुवताकी प्रतीति भी है; इसीलिये "उसके भावका जो नाश न होना सो नित्य है" इस प्रकारके लक्षणसे द्रव्यरूप ध्रुव है; और अन्य सब पर्यायआदि अध्रुव हैं। इसी प्रकार सब ही विचारने चाहियें अर्थात् सर्वत्र ऐसा ही विचार करना चाहिये॥३॥ अथोत्पादव्ययधौव्यानामभेदसंबद्धं भेदं च दर्शयन्नाह।

अब उत्पाद व्यय तथा श्रौव्य इन तीनोंका अभेद संबद्ध भेदको भी दिखाते हुवै सूत्र कहते हैं।

सूत्रम्। घटव्ययो हि सोत्पत्तिमौं लेथीव्यं च भर्मणः। इत्येकस्मिन्दलेऽनेका युगपत्कार्यशक्तयः॥ ४॥

सूत्रभावार्थ:—घटका जो नाश है; वही मुकुटकी उत्पत्ति है; और सुवर्णकी नि-त्यता है; इसी प्रकार एक पदार्थमें एक ही कालमें अनेक कार्योंकी शक्तियें हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या । यो हि हेमघटव्ययः सा च मौळेर्मुकुटस्योत्पत्तः, एककारणजन्यत्वान् । यतो यद्भव्यं यद्भव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयमिति । ततो विभागपर्यायोत्पत्तिसन्तानादेव घटनाशव्यवहारोऽपि संभवेन्, उत्तरपर्यायोत्पत्तेश्च पूर्वपर्यायनाशोऽपि संभाव्यश्च । काश्चनस्य ध्रौव्यमपि तथैव भावनीयम्, प्रतीत्य पर्यायोत्पादेनैकसन्तानत्वं तदेव द्रव्यस्य छक्ष्मणतो ध्रौव्यमस्ति । इत्येकस्मिन्निति — छक्षणत्रयात्मके एकस्मिन् दछे एतछक्षणत्रयमेकदा यच्चिप वर्त्तते तथापि शोकप्रमोदमाध्यस्थरूपा अनेकाः कार्यशक्तयो दृश्यन्त इत्यनेकत्वेन च भिन्नत्वमपि श्चेयम् । सामान्यरूपेण ध्रौव्यं विशेषरूपेणोत्पाद्वययौ चेत्थं प्रमाणयतां विरोधोऽपि नास्ति । व्यवहारतः सर्वत्र स्याद्र्यानुप्रवेशेनैव स्यात्, विशेषपरतापि व्युत्पत्तिविशेषण स्यात् । अत एव स्यादुत्पदाते, स्यान्त्रयति, स्याद् ध्रुवम्, इत्थमेव वाक्यप्रयोगोऽपि । "उपन्नेष्ठ वा" इत्यादौ वा शब्दो व्यवस्थायां स च स्याच्छव्दसमानार्थः । अत एव "कृष्णः सर्पः" एतद्योकिकवाक्यमपि स्याच्छव्दं गृहीत्वैवास्ति । ततः सर्पस्य पृष्ठावच्छेदेन श्यामस्वं वर्तते परन्तु उद्गवच्छेदेन नास्ति । तथैव सर्पमात्रेणापि कृष्णत्वं न दृश्यते शेपाख्यो नागः शुक्र एवास्ति । तस्माद्विशेषणविशेष्यनियमार्था यदि स्याच्छव्दप्रयोगोऽस्ति तदा त्रिपदीमहान्वाक्यमपि स्यात्कारभजनया संभवेदिति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थ:—जो सुवर्णघटका व्यय है; वही सुवर्णमुकुटकी उत्पत्ति है; क्योंकि—घ-टका नाश और मुकुटकी उत्पत्ति यह दोनों कार्य एक ही कारणसे जन्य हैं। कारण कि—न्यायका सिद्धान्त है; कि—जो द्रव्य जिस द्रव्यके नाशसे उत्पन्न होता है; वह उसी (नश्य-मान) द्रव्यके उपादान कारणसे उपादेय है; भावार्थ—जैसे यहां सुवर्णघटके नाशसे मुकुट उत्पन्न हुआ है; तो घटद्रव्य नाशका जो उपादान कारण सुवर्ण है; वही मुकुट-काभी उपादान कारण है; इस रीतिसे घटका नाश तथा मुकुटकी उत्पत्ति एक ही सुवर्ण-रूप कारणसे जन्य (पैदा हुई) है। और इसीसे विभाग पर्याय (मुकुट पर्याय)की

उत्पत्तिके संतानसे ही घटके नाशरूप व्यवहारकी संभावना होती है। और उत्तर पर्याय जो यहांपर मुकुटरूप पर्याय है; उसकी उत्पत्तिसे पूर्व घटरूप पर्यायका नाश भी विचारने योग्य है। और उसी प्रकारसे सुवर्णका घोव्य भी विचारना चाहिये क्योंकि-जिसको नि-मित्त मानकर पूर्वपर्यायका नाश और उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति है उसका निरविच्छित एक संतानत्व (सुवर्णका स्थिरत्व) जो है; वही द्रव्यके लक्षणसे उसका ध्रोव्य है। इस प्रकार त्रिविधलक्षणसहित एक दल (वस्तु)में यद्यपि तीनों ही लक्षण एक समयमें हैं; तथापि शोक, प्रमोद और माध्यस्थरूप अनेक कार्योंकी शक्तियें दीख पडती हैं; इस रीतिसे अने-कत्व होनेसे भिन्नता भी समझनी चाहिये। इस प्रकार सामान्यरूपसे तो धौव्य तथा विशेषरूपसे उत्पाद और व्ययको प्रत्येक वस्तुमें प्रमाणीभूत न करनेवालोंके कोई विरोध भी नहीं है; क्योंकि-व्यवहारसे सर्वत्र स्यात् (कथंचित्) इस अर्थके अनुप्रवेशसे सामान्यपरता भी है; और व्युत्पत्तिविशेषसे विशेषपरता भी है। इसी कारणसे स्यात् उत्पन्न होता है; स्यात् नष्ट होता है; स्यात् (कथंचित्) ध्रुव है; ऐसे वाक्यका प्रयोग भी होता है। और उपपन्नेइ वा इत्यादिक मूलपाठमें जो वा शब्द है; वह व्यवस्था अर्थमें है; और वह अर्थ स्यात् इस राज्दके समान है । इसी कारण 'कृष्णसर्प' (काला सांप) यह लौकिकवाक्य भी 'स्यात्' इस शब्दको गृहण करके ही वर्त्तता है; क्योंकि —सर्पके पृष्ठ (पीठ) देशमें स्थामता (कालापन) है; परन्तु उसके उद्र देशमें (पेटमें) नहीं है। और वैसे ही सर्पमात्रमें भी क्यामता नहीं है; क्योंकि 'शेप'—इस नामका धारक जो नाग है; वह शुक्क (सफेद) ही है। इसिलये विशेषण विशेष्यके नियमार्थ 'स्यात्' श-ब्दका प्रयोग है; तो त्रिपदीमहावाक्य भी स्यात्कारका भागी हो सकता है॥ ४ ॥

सूत्रम् । द्रव्यस्वभाव आख्यातो बहुकार्येककारणः। तदा ऋते हेतुभेदात्कार्यभेदः कथं भवेत्॥ ५॥

सूत्रभावार्थ:—पूर्व प्रसंगमें "एक कारणरूप अनेक कार्योंका जनक द्रव्य है" यह द्रव्यका स्वभाव वर्णन किया है; तब हेतु (कारण)के भेदके विना कार्योंका भेद कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥

व्याख्या । अथ यद्येवं कण्यते द्रव्यस्वभावो बहुकांर्थेककारणोऽस्ति । यथा हेमद्रव्यमेवा-विक्ठतमस्ति विकारो मिण्यास्ति । शोकादिकार्यत्रयजननैकशक्तिस्वभावं यत्तदेव द्रव्यं ततो द्रव्याच्छोकादिकार्यत्रयं जायते तदा कारणभेदं विना कार्यस्य भेदः कथं भवेत् । श्रेयः साधनं यत्तत्रमोदजनकम्, अनिष्टसाधनं यत्तच्छोकजनकम्, तदुभयाभिन्नं माध्यस्थजनक-मिस्रेतित्रिविधं कार्यमेकस्मादेकरूपात्कथं भवेत् । शक्तिरिप दृष्टान्तानुसारिण्येव कल्पनीया । न चेदेवं तर्द्धाग्रिसामीप्याज्ञलं दाहजनकस्वभाविमस्यादिकं प्रकल्पनमप्यनिवार्यम् । तस्माच्छ-क्तिभेदः कारणं भेदः कार्यभेदानुसारेणावश्यमनुसर्त्तव्यः । अनेकजननैकशक्तिः शब्द एव एकत्वानेकत्वस्याद्वादं सूचयतीत्रर्थः ॥ ५ ॥ क्याख्यार्थः—अब यदि ऐसा कहते हो कि—एक कारणरूप अनेक कार्योंका जनक यही द्रव्यका स्वभाव है। जैसे सुवर्णद्रव्य एक ही अविकृतरूप है; मुकुटआदि जो उसका विकार है; वह मिथ्या है। शोक, प्रमोद और माध्यस्थरूप तीन कार्योंको उत्पन्न करनेवाला जो शक्तिस्वभाव है; वही द्रव्य है; उस द्रव्यसे शोकआदिरूप तीन कार्य होते हैं; तब कारणके भेदके विना कार्यभेद केसे हो सकता है। क्योंकि—जो कल्याणका साधन है; वह प्रमोदका जनक है, जो अनिष्टका साधन है; वह शोक (खेद)को उत्पन्न करनेवाला है, और दोनोंसे भिन्न अर्थात् श्रेयस्व तथा अनिष्टतासे भिन्न जो साधन है; वह न हर्षको उत्पन्न करता है; और न खेदको, इसलिये यह तीन प्रकारके कार्य एकरूप कारणद्रव्यसे कैसे उत्पन्न होते हैं; कार्यगत दृष्टान्तके अनुसार ही कारणगत शक्तिकी भी कल्पना करनी चाहिये। यदि ऐसा न मानो तो "अग्निकी समीपतासे जल है; सो दाहको उत्पन्न करनेवाले स्वभावका धारक है" इत्यादि कल्पना भी अनिर्वर्शणीय होगी। इसलिये शक्तिभेदरूप जो कारण है; उसका भेद कार्यभेदके अनुसार अवस्य अनुसरण करना चाहिये अर्थात् कार्यभेद होनेपर कारणका भेद अवस्य मानना पडेगा। और अनेक कार्योंको उत्पन्न करनेवाली शक्ति हैं; यह शब्द ही एकत्व अनेकत्वरूप स्याद्वादको सूचित करता है। यह स्थोकका अर्थ है॥ ५॥

अथ बौद्धमतमाह।

अब इस विषयमें बौद्धका मत कहते हैं।

सूत्रम् । शोकादिजननं लोकवासनाभेदतो भवेत् । वस्तुभेदो नेति बौद्धो निर्निमित्तोऽग्रुचिः स्मयी॥६॥

सूत्रभावार्थ:—द्रव्यमें शोकादिका जो उत्पाद है; वह लोकवासनाके भेदसे होता है; और शोकादिके जननमें कोई वस्तुका भेद नहीं है। ऐसा कहनेवाला वौद्ध निमित्त- शून्य है; और अपवित्र तथा सायी है॥ ६॥

व्याख्या। यत्तुलानमनोन्नमनवदुत्पाद्व्ययावेकदा भवतः क्षणिकस्वलक्षणस्य ध्रौव्यं नास्त्येव तच्छोकादिकार्यजननमिष भिन्नभिन्नछोकवासनातो भिन्नभिन्नभेदोपकारकमित । यत एकं किमिप वस्तु वासनाभेदात् कस्यापीष्टं कस्याप्यनिष्टं स्यात्, यथेक्षु मनुष्याणामिष्टम्; कर-भानामनिष्टम्, परन्तु तत्रेक्षुभेदो नास्त्येव। तद्वदिहापि वोध्यमिति वदन् वौद्धो निर्निमित्तो निमित्तमेदं विना वासनारूपमनस्कारस्य भिन्नत्वं कथं जहाति। अत एवाशुचिः कलुषचित्तः पुनः स्वीकारेण स्मयीति । वस्तुतस्तु शोकादिकानामुपादानं यथा भिन्नं तथा निमित्तमिप भिन्नमवद्यं मंतव्यम्। एकस्य वस्तुनः प्रमात्रभेदेनेष्टानिष्टत्वमस्ति तत्राप्येकस्य द्रव्यस्येष्टानिष्टक्तानजननशक्तिरूपाः पर्यायभेदा अप्यनुसरणीया एवेति।। ६।।

व्याख्यार्थ: जैसे तुला (तराजू) एक कालमें ऊंची नीची हो जाती है; उसी

प्रकार वस्तुके उत्पाद तथा नाश एक कालमें ही होते हैं। क्योंकि — क्षणिकस्वरूप अपने लक्षणको धारण करनेवाला जो पदार्थ है; उसके ध्रुवता (नित्यपना) है; ही नहीं। इस-लिये शोकआदिका उत्पाद है; सो भी भिन्न भिन्न लोककी वासनासे होता है; और भिन्न भिन्न भेदका उपकार करता है। क्योंकि — एक ही कोई भी वस्तु वासनाके भेदसे किसीको इष्ट है और किसीको अनिष्ट है जैसे—इक्षु (ऊख वा ईख अथवा गन्ना) मनुष्योंको इष्ट (प्यारा) है; और ऊंटोंको अनिष्ट है; परन्तु यहांपर ईखका भेद नहीं है: अर्थात वही इक्ष । परंतु मनुष्योंके इष्ट और ऊंटोंके अनिष्ट है। ऐसे ही यहां घट मुकुटआदिमें भी जा-नना चाहिये ऐसा कहताहुआ बौद्ध निमित्त (कारण)के भेदके विना वासनारूप मन-स्कार (मनके व्यापार)से जो चित्तकी सुखादि परकताहूप भेद है; उसको कैसे छोडता है। इसी कथनसे अशुचि अर्थात् मिलनचित्त है, पुनः इस मतके स्वीकारसे गर्वयुक्त भी है। यथार्थमें तो जैसे शोकआदिके उपादान भिन्न भिन्न हैं; वैसे ही उनके निमित्त भी अवश्य ही भिन्न २ मानने चाहियें । जहां प्रमाता (इप्ट अनिष्टको अनुभव कर-नेवाले)के भेद्से एक पदार्थके इष्टता तथा अनिष्टता है; वहां भी एक द्रव्यका इष्ट तथा अनिष्ट ज्ञानको पैदा करनेमें शक्तिरूप ऐसे पर्याय भेदोंका ही अनुसरण करना चाहिये अर्थात उस पदार्थमें ऐसे शक्तिनेद हैं; कि—जो किसीके इष्ट ज्ञानजनक हैं; और किसीके अनिष्ट ज्ञानके जनक हैं ॥ ६ ॥

सूत्रम् । चेन्निमित्तं विना ज्ञानाच्छक्तिसंकल्पकल्पना । तदा बहिवस्तुलोपाद् घटते न घटादिकम् ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थ:—यदि निमित्तके विना ही वासनाविशेषह्रप ज्ञानसे शक्तिह्रप संक-लपकी कल्पना होती है; तो बाह्य वस्तुके लोपसे घटआदि आकारकी कल्पना केवल वासनासे क्यों नहीं होती ॥ ७ ॥

व्याख्या। अथ चेद्यदि निमित्तं निमित्तमेदं विना ज्ञानात् वासनाविशेषजनितज्ञानस्व-भावाच्छक्तिसंकल्पकल्पना भवति। शोकप्रमोदादिकसंकल्पविकल्पना जायते तदा बहिर्वस्तु-लोपाद्वासनाविशेषेण घटपटादिनिमित्तं विनेव वासनाविशेषेण घटपटाद्याकारज्ञानं भवेत्। बाह्यवस्तु सर्वे विलुप्यत इत्यर्थः। अथ च निष्कारणं तत्तदाकारज्ञानमपि न संभवेत्, अन्तर्बिहराकारविरोधेन बाह्याकारो मिथ्याप्रजल्पमानिश्चत्रवस्तुविषयनीलपीताद्याकारज्ञान-मपि मिथ्येव जायते। तथा उषाद्याकारनीलाद्याकाराविष विरुद्धावेव भवतः। तदा सर्वश्च-न्यवादिनो माध्यमिकबौद्धस्य मतमायाति। उक्तं च-िकं स्यात्सा चेन्न तैः किं स्यान्न स्यात्त-स्मान्मताविष । यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्।। १।। शून्यवादोऽपि प्रमाणसिद्ध-सिद्धिभ्यां व्याहतोऽस्ति। ततः सर्वे नयाः शुद्धस्याद्वाद्वीतरागप्रणीता आदतव्याः।। ७।।

व्याख्यार्थ:-अब यदि निमित्त (कारण) भेदके विना ही वासनाविशेषसे उत्पन्न

जो ज्ञान खभाव है; उससे शक्ति अर्थात् शोक प्रमोद्शादिके संकल्पकी कल्पना होती है; ऐसा कहो तो बाह्य वस्तुका नाश हो जानेसे घट पटआदि निमित्तके विना केवल वासनाविशेषसे घट पटआदि आकाररूप परिणाम नहीं उत्पन्न होता है; और घट-पटादि निमित्त विना ही वासनाविशेषसे घटपटादिके आकारका ज्ञान होवे तो समस्त बाह्य वस्तुका नाश हो जायगा। यह तात्पर्य है; और कारणके विना घटपटआदिके आकारका ज्ञान भी नहीं होसकता। तथा आन्तरंगिक और बाह्य आकारके विरोधसे बाह्य आकारको मिथ्या कहनेवाले बौद्धके मतसे चित्र (चित्राम)के पदार्थ (तसबीर) वगैरह)में रहनेवाला नील, पीत (पीला)आदि वर्णोंके आकारका ज्ञान भी मिथ्या ही होता है। एवं उपा (दिन)आदि आकार तथा नीलआदिका आकार भी विरुद्ध ही होता है। तब अर्थात् वासनाके ही विशेषसे आकारका परिणाम तथा आकारका ज्ञान होता है: बाह्य निमित्तकी उसमें कोई आवश्यकता नहीं है: ऐसा माननेसे सबको श्रन्य कहनेवाला जो माध्यमिक बौद्ध है; उसका मत आता है; क्षणिकवादीका मत नहीं रहता । और कहा है; कि --- यदि वासना है; तो क्या नहीं होगा अर्थात् सब कुछ हो जायगा और जो बाह्य पदार्थ तो है; और वासना नहीं है; तो उन बाह्य पदार्थींसे क्या हो सकता है; अर्थात् कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि—वासनाके विना वह बाह्य पदार्थ बुद्धिमें ही नहीं आसकते हैं; इसलिये जो वासना पदार्थोंको स्वयं रुच रही है; उसको दूर करनेवारे हम कौन हैं ॥ १ ॥ और शृत्यवाद भी प्रमाणकी सिद्धि तथा असिद्धिरूप जो दो पक्ष हैं; उनसे खंडित है। इस कारण सर्वज्ञवीतरागप्रणीत गुद्धस्याद्वादके धारक संपूर्ण नयोंका आदर करना चाहिये॥ ७॥

पुनस्तदेव कारणमिति ।

पुनः "कारणं" इत्यादि सूत्रसे उसी विषयको कहते हैं।

सूत्रम् । कारणं घटनाशस्य मौत्युत्पत्तेर्घटः स्वयम् । एकान्तवासनां तत्र दत्ते नैयायिकः कथम् ॥ ८॥

सूत्रभावार्थ:—घटके नाश तथा मुकुटकी उत्पत्तिमें स्वयम् घट ही कारण हैं, जब ऐसा है; तब नाश तथा उत्पत्तिमें एकान्त (सर्वथा)भेदकी वासना नैयायिक कैसे देता है; अर्थात् उत्पत्ति और नाशका सर्वथा भेद क्यों मानता है॥ ८॥

व्याख्या । एवं शोकादिकार्यत्रयस्य भेदेनोत्पादव्ययभ्रौव्यानि साधितानि, अत एव घट-नाशस्य हेमघटनाशस्य हेममुकुटोत्पत्तेश्च कारणं हेतुरेकः स्वयं घट एव । हेमघटनाशाभि-न्नहेममुकुटोत्पत्तिविषये हेमघटावयवविभागादिको हेतुरेव । अत एव महापटनाशाभिन्नखण्ड-पटोत्पत्तिविषयेऽप्येकादितन्तुसंयोगापगमहेतुरेवास्ति । "खण्डपटे महापटनाशस्य हेतुताप्र- कल्पना महागौरवाय स्यात्" इत्थं जानन्निप लाघविषयो नैयायिको नाशोत्पत्तिकस्यैका-न्तभेदवासनां कथं दत्ते । तथा च तन्मतम्-"कल्पनागौरवं यत्र तं पक्षं न सहामहे । कल्प-नालाघवं यत्र तं पक्षं तु सहामहे १ ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—इस प्रकार शोकादि कार्यत्रयके भेदसे उत्पाद व्यय तथा ब्रोव्य लक्षण सिद्ध कियेगये, इसीसे (लक्षणत्रययुक्त होनेसे) सुवर्णघटके नाशका तथा सुवर्णके मुकुटकी उत्पत्तिका कारण केवल स्वयं घट द्रव्य ही है। क्योंकि—सुवर्णघटके नाशसे अभिन्नरूप सुवर्णमुकुटकी उत्पत्तिके विषयमें सुवर्णघटके अवयवोंके विभागआदि हेतु ही हैं। इसी कारणसे महापटके नाशसे अभिन्न खण्डपट (बडे प्यानसे छोटे टुकडे टुकडे होने)की उत्पत्तिके विषयमें भी एक दोआदि तन्तुओंके संयोगका नाश ही कारण है; और खंडपटकी उत्पत्तिके विषयमें महापटका नाश कारण है; यह कल्पना तो अति गौरवकेलिये होगी इस प्रकार जानताहुआ भी लाघवप्रिय (१) एकको आदि लेके जितने तन्तुओंके संयोगके नाशसे वह खंडपट उत्पन्न है; उन सब तंतुवोंके नैयायिक नाश और उत्पत्तिके सर्वथा भेदवासना कैसे देता है। क्योंकि—उस नैयायिकके मतका यह बचन है कि "जिस पक्षमें कल्पनाका गौरव है; उसको हम नहीं सहन करते (मानते) और जिस पक्षमें कल्पनाका लाघव है; उसको सहन करते हैं ॥ ८॥

पुनस्तदेव कथयन्नाह ।

पुसः उसी विषयका प्रतिपादन करते हैं।

सूत्रम् । पयोव्रतो न द्ध्यचात्रैव दुग्धं द्धिव्रतः । अगोरसव्रतो नोभे तेन स्याल्लक्षणत्रयम् ॥ ९॥

सूत्रभावार्थ:—केवल दुग्धको खानेवाला दही नहीं खा सकता और दहीमान त्रको खानेवाला दूध नहीं पीता तथा जो गोरसमात्रका त्यागी है; वह दुग्ध तथा दही इन दोनोंको नहीं खाता है; इस रीतीसे भी उत्पत्तिशादि त्रितिधलक्षणयुक्त वस्तु सिद्ध होता है ॥ ८ ॥

व्याख्या। पयोत्रतो दुग्धास्तादी दुग्धमेव त्रतनीयं भोक्तव्यमिति प्रतिज्ञापरः स पयोत्रत उच्यते। ततः पयोत्रतो दिध नाद्यादिध न भुक्के, दिधित्रतः पुनर्दुग्धं नाद्यात्, तस्य दिधिभक्षण एव प्रतिज्ञारूपो धर्म एवास्ति। वस्तुतस्तु "दुग्धपरिणाम्येव दध्यस्ति" इत्थं यद्यभेदकता कथ्यते तदा तु पयोत्रतस्य दध्यदनेऽपि त्रतभङ्गो न जातः पुनश्च दुग्धं दिध न भवति परिणामिद्रव्यक्त्वाद्वित्रद्रव्यमेव। अभेदिविवक्षया दुग्धमास्त्राद्यतः दिधन्नतभङ्गो न जायते, दिध भुजानस्य दुग्धत्रतभङ्गोऽपि नैव संपद्यत इति। अथ गौरवसत्वेन द्वयोरप्यभेदोऽस्ति। अत्र दिधत्वेनोत्पत्तिः दुग्धत्वेन नाशो गोरसत्वेन ध्रुवत्वं च प्रत्यक्षम् । एतदृष्टान्तेन सर्व-जगद्वर्तिभावानां लक्षणत्रययुक्तत्वं कथनीयम्। उक्तं च "पयोत्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति

į

दिधित्रतः।अगोरसन्नतो नोभे तस्माह्यस्तुत्रयात्मकम् ॥१॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां द्रव्यपर्यायौ सि-द्धान्ताविरौधिनौ सर्वत्रावतारणीयाविति । भक्षणत्रयं कथनीयम् । केचन भावा अन्वयिनः, केचन भावा व्यतिरेकिणः, एवमन्यदर्शनिनः कथयन्ति, तत्र त्वन्येषामि भावानां निदर्शनं स्याद्वाद्व्युपत्त्या समञ्जसं स्यादिति । अन्यच वस्तुतः सत्ता विल्रक्षणरूपैवास्ति "उत्पाद्व्य-यधौव्ययुक्तं सत्" इति तत्त्वार्थसूत्रवचनात् । ततः सत्ताप्रत्यक्षं तदेव त्रिलक्षणं साक्षादिति । तथारूपेण सद्भवहारसाध्यानुमानादिकप्रमाणान्यप्यनुष्टीयन्ते ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थ:--दूध ही सेवन करना चाहिये इस प्रकारकी प्रतिज्ञामें जो तत्पर हो उसे पयोत्रत कहते हैं; वह पयोत्रत अर्थात् दूधको खानेवाला पुरुष दही नहीं खाता है; और जो दहीको ही सेवन करनेवाला है; वह दुग्ध नहीं पीता है क्योंकि—उसको दहीका खाना ही प्रतिज्ञारूप धर्म है। अब यहां "परमार्थमें तो दूधका परिणामरूप ही दही है" इस प्रकार यदि दुग्ध दिधका अभेद कहते हो अर्थात् दृध दहीं एक ही है; ऐसा मानते हो तब तो दूध पीनेवालेके दहीके खानेसे भी व्रतका भंग नहीं होगा। और यदि परि-णामी द्रव्य होनेसे दही दूध नहीं हो सकता ऐसा कहो तो इस भेद विवक्षासे दही द्धसे भिन्न द्रव्य है। भावार्थ-अभेद्विवक्षासे दूध पीतेह्रयेके दहीके व्रतका भंग नहीं होता है; और दही खातेहुए मन्प्यके दुग्धके व्रतका नाश भी नहीं होता है। और गोरसपनेसे दूध और दही इन दोनोंमें अभेद ही है; इसलिये जिसके गोरसका त्याग है: वह दूध और दही दोनोंका सेवन नहीं करता है। यहांपर दहीपनेसे उत्पत्ति (उ-त्याद) है; और दुग्धत्वरूपसे नाश है; तथा गोरसत्वरूपसे ध्रुवत्व प्रत्यक्षसे सिद्ध है। इसी प्रकार इस दृष्टान्तसे संपूर्ण संसारके पदार्थीमें उत्पाद, व्यय, धौव्यस्वरूप त्रिलक्षण सहितता कहनी चाहिये। ऐसा कहा भी है; "पयोत्रत द्धिका भोजन नहीं करता, द्धि-व्रत दुग्धका भोजन नहीं करता और गोरसका त्यागी दुग्ध द्धि इन दोनोंको नहीं खाता इसिलये समस्त वस्तु तीन लक्षणोंका धारक है ॥ १ ॥ और अन्वय तथा व्यति-रेकसे सिद्धान्तके अविरोधी दव्य तथा पर्यायकी अवतारण सर्वत्र करनी चाहिये इसिछये जहां द्रव्य पर्याय है: वहां उत्पत्तिआदि तीनों लक्षण कहने चाहियें। कितने ही पदार्थ अन्वयी हैं; और कितने ही पदार्थ व्यतिरेकके धारक हैं; ऐसा अन्य दर्शनवाले कहते हैं। और इस सिद्धान्तमें तो अन्य भी पदार्थोंका दृष्टान्त स्याद्वादकी व्युत्पत्तिसे ठीक हो सकता है। और वस्तुकी सत्ता भी विलक्षण रूप ही है; क्योंकि—उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यसे सहित जो होय सो सत् है; ऐसा तत्त्वार्थसूत्रका वचन है; इसिलये जो सत्ताका प्रत्यक्ष है; वही साक्षात उत्पाद, व्यय और ध्रीव्यरूप त्रिलक्षण है। ऐसी दशामें सद इस व्यवहारसे साध्य अनुमानआदिक प्रमाणोंका भी अनुष्ठान किया जाता है ॥ ९ ॥

सूत्रम् । उत्पन्नकलशे स्वार्थस्योत्पत्तिविगमौ कथम् । शुण्वाचौ मिश्रितौ श्रौब्ये शक्तया चानुगमास्यया ॥१०॥

सूत्रभावार्थः—उत्पन्न घटमें निजद्रव्यसंबन्धकी उत्पत्ति तथा नाश कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर सुनो कि—उत्पत्ति तथा नाश यह दोनों एकतारूपशक्तिसे धौव्यमें मिले हैं ॥ १०॥

व्याख्या । उत्पत्तिर्जाता यस्येत्युत्पन्नो घटसास्मिन्नुत्पन्नघटे द्वितीयादिक्षणे स्वार्थस्य स्वद्रव्यसंबद्धस्योत्पित्तिनाशौ कथं भवतो यतो हेतोः प्रथमक्षणसंबन्धरूपोत्तरपर्यायोत्पित्तिरिक्त सैव पूर्वपर्यायनाशता इत्थं युष्माभिः पुरा स्थापितमित्त ? इत्येतत्प्रभः शिष्येण कृतस्तदा गुरुः
कथयति । हे शिष्य? शृणु । तद्यथा—प्रथमक्षणे जातावुत्पत्तिविनाशौ प्रोव्ये मिश्रितौ मिलितावनुगमाख्यया शत्त्यैकतालक्षणया शक्त्या नित्यौ स्तः । असत्यप्याशे क्षण उपलक्षणीभूय
आगामिनि क्षणे द्रव्यरूपेण तत्संबन्धतामनुभवतः । उत्पन्नो घटो नष्टो घट इति सर्वप्रयोगात् । अथ चेदानीमृत्पन्नो नष्ट इत्येवं प्रतिपाद्यते तदा त्वेतत्क्षणिविश्वष्ठता उत्पत्तिनाशयोरेवास्ति तत्र द्वितीयादिक्षणे नास्ति । अतो द्वितीयादिक्षण इदमुत्पन्नमित्यादिप्रयोगोऽपि न
स्यात् । घटेति शब्देनेह द्रव्यार्थादेशेन मृद्भव्यं प्राह्मम् । तत उत्पत्तिनाशाधारता सामान्यरूपेण तत्प्रतियोगिता विशेषरूपेण च कथनीयेति भावः ॥ १०॥

व्याख्यार्थ:—जिसकी उत्पत्ति होगई है; ऐसा जो घट है; उस उत्पन्न घटमें उत्प-त्तिके द्वितीयआदि क्षणमें स्वार्थके अर्थात् निजघटरूप द्रव्यके संबन्धके उत्पत्ति नाश कैसे होते हैं; क्योंकि-प्रथमक्षणसंबन्धरूप उत्तर पर्यायकी जो उत्पत्ति है; वही पूर्वपर्या-यकी नाशता है; ऐसा आप पूर्व प्रसंगमें स्थापित कर चुके हैं ? ऐसा प्रश्न शिष्यने किया उसपर गुरु उत्तर देते हैं; कि-हेशिष्य ? उत्तर सुनो-वह उत्तर इस प्रकार है; कि-प्रथम क्षणमें जो उत्पत्ति विनाश हुये हैं; वह अनुगमानामिका अर्थात् एकतास्वरूप शक्तिसे भौव्यमें मिले हुये हैं; और नित्य हैं, तथा प्रथम क्षणके न होनेपर भी उत्पत्ति और नाश दोको उपलक्षणीभूत होकर आगामी क्षणमें द्रव्यरूपसे उसकी संबन्धताका अनुभव करते हैं। क्योंकि-''उत्पन्नो घटः, नष्टो घटः'' "घट उत्पन्न हुआ, घट नष्ट हुआ" इत्यादि प्रयोग सर्वत्र देखा जाता है। और यदि ऐसा कहते हो कि-'इस समय घट उत्पन्न हुआ, इस समय नष्ट हुआ तब तो उत्पत्ति और नाशके इस (प्रथम) क्षणकी विशि-ष्टता ही होगई क्योंकि-वह उत्पत्ति नाशकी विशिष्टता द्वितीयआदि क्षणमें नहीं है; इसलिये द्वितीयआदि क्षणमें "यह उत्पन्न हुआ" इत्यादि प्रयोग भी न होगा. तथा घट इस शब्दसे यहांपर द्रव्यार्थके आदेशसे मृत्तिकारूप द्रव्यका ग्रहण करना योग्य है। इससे मृत्तिका सामान्यरूपसे घटकी उत्पत्ति तथा नाशका आधार है; और विशेष (घट) रूपसे उत्पन्न हुआ तथा नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग भी होता है; ऐसा कथन करना योग्य है ॥ १० ॥

सूत्रम्। उत्पत्तेरि नाशस्यानुगमे पर्ययार्थतः। भ्रुतादिमत्ययोद्भानं घटते समयप्रमम्॥११॥

सूत्रभावार्थः—उत्पत्ति तथा नाशकी ऋजुसूत्रादि पर्यायार्थिकनयसे एकता मान-नेपर भूतआदि प्रत्ययका भान समयप्रमाण निश्चयनयसे घटित होता है ॥ ११ ॥

व्याख्या। उत्पत्तरिप पुनर्नाशस्य चानुगमे एकतायां पर्ययार्थतः ऋजुसूत्रादेः सकाशाद् भूतादिप्रत्ययोद्गानं समयप्रमं घटत इति यतो निश्चयनयात् "कज्जमाणेकडे" एतद्वचनमनुस्त्रत्योत्पद्यमान उत्पन्न एवं यदि कथ्यते परन्तु व्यवहारनयादुत्पद्यते, उत्पन्नः, उत्पत्स्यते, नश्यति, नष्टं, नङ्कषिति। एतद्विभक्त्या कालत्रयप्रयोगोऽस्ति। स प्रतिक्षणपर्यायोत्पत्तिनाः शनयवादी ऋजुसूत्रनयस्तेनानुगृहीतो यो व्यवहारनयस्तमनुगृद्य कथ्यते। कथं तद्यजुसूत्रनयस्तु समयप्रमाणं वस्तु मनुते तत्र यौ पर्यायस्य वर्त्तमानानुत्पत्तिनाशौ विविक्षितौ तावेव गृहीत्वोत्पद्यते नश्यतीति कथनीयम्। वर्त्तमाने यदतीतत्वं तद्वहीत्वोत्पन्ननष्ट इति कथ्यते। अत्रैव तदतीतं तदनागतिमव विचिन्त्योत्पत्स्यते नङ्कयत्येवं कथ्यते। इतीयमनागते व्यवस्था सर्वापि स्थाच्छव्दप्रयोगेण संभवेदिति।। ११।।

व्याल्यार्थ:-- उत्पत्ति तथा नाश इन दोनोंकी एकतामें पर्यायार्थिक जो ऋज्सूत्र आदि नय हैं; उनसे भूतआदि प्रतीतिका ज्ञान समयप्रमाण घटता है; क्योंकि-निश्चय-नयसे "कज्जमाणे कडे" (जो भविष्यत्में कट अथीत चटाई बनेगी उसमें) इस वच-नका अनुसरण करके उत्पन्न होनेवाले घटमें उत्पन्न हुआ ऐसा यद्यपि कहा जाता है; परन्तु व्यवहारनयसे ''उत्पन्न होता है; उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होगा तथा नष्ट होता है, नष्ट हुआ और नष्ट होगा इस विभक्तिसे जो कालत्रय(तीनकाल)का प्रयोग है; वह प्रयोग प्रतिक्षणमें पर्यायोंकी उत्पत्ति तथा नाशरूप मतको कहनेवाला जो ऋजुसूत्र नय है; उससे अनुगृहीत (प्राप्त) जो व्यवहार है; उस व्यवहारनयको ग्रहण करके कहा जाता है; यह कैसे कि-ऋजुसूत्रनय तो समय प्रमाण वस्तुको मानता है; उसमें जो पर्यायके वर्त्तमान उत्पत्ति तथा नाश विवक्षित हैं; उन्हींको लेके उत्पन्न होता है; नष्ट होता है; ऐसा कथन करना योग्य है। और वर्त्तमान पर्यायमें जो भूतत्व है; उसको लेके उत्पन्न हुआ नष्ट हुआ ऐसा कथन होता है; और उसीमें जो भूतत्व है; उसको अनागत (भविष्य)की तरह विचार कर उत्पन्न होगा नष्ट होगा ऐसा कथन किया जाता है; तालर्य यह कि-वर्त्तमानकाल ही भूतकी अपेक्षासे भविष्य है; आगामी कालकी अपेक्षासे वहीं भूत है; और वर्त्तमान तो वह स्वयं है; एवं एक कालमें ही सर्वत्र तीनों कालका भी व्यवहार हो सकता है। इसी प्रकारसे अनागत कालमें भी यह सब व्यवस्था स्यात शब्दके प्रयोगसे संमती है; अर्थात् कथंचित् (किसी अपेक्षासे) भूतकाल इत्यादि कथन युक्त है; क्योंकि-सभी कालमें सब कालका व्यवहार हो सकता है ॥ ११ ॥

सूत्रम् । यद्युत्पत्तिविशिष्टस्य व्यवहारो व्ययस्य चेत् । नाशनिष्ठोद्भवं तत्र व्यवहारेऽप्युरीकुरु ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि उत्पत्तिसहीत नाशका व्यवहार होता है; तो उस व्यवहारमें नाशनिष्ठ उत्पत्ति होती है; ऐसा मानो ॥ १२ ॥

व्याख्या । यद्युत्पत्तिविशिष्टस्य व्ययस्य व्यवहारोऽस्ति चेत्तद्दा व्यवहारेऽपि तत्र नाशनिष्ठोद्भवससिद्धिष्टमुत्पत्तित्वमुरीकुरु इति । भावार्थस्त्वयं यद्युत्पत्तिधारानाशिवषये भूतादिप्रत्ययो न कथ्यते अथ च नशधातोरथें नाशोत्पत्तिद्वयं गृहीत्वा तद्युत्पत्तिकालत्रयस्यान्वयसंभवश्च कथ्यते । एवं च कथ्यतां नश्यत्समयेन नष्ट इत्ययं प्रयोगो नो जायते तत्कथं
तिस्मन्काले नाशोत्पत्त्योरतीतत्वं नास्तीत्येवं समर्थता व्यवहारस्य यदि क्रियते भवद्भिस्तदा
व्यवहार उत्पत्तिक्षणसंबंधमात्रमेव कथ्यत । तत्र प्रागभावध्वंसताकालत्रयरूपात् कालत्रयस्यान्वयसमर्थनं कुरुत । अथ च यद्येवं विचारिष्यथ्य घटस्य वर्त्तमानत्वादिकेऽपि नाशवर्त्तमानत्वादिकेऽपि नाशवर्त्तमानादि व्यवहारो न जायते । किञ्च क्रियानिष्ठापरिणामरूपवर्त्तमानत्वमतीतं गृहीत्वा नश्यति नष्ट उत्पद्यत उत्पन्न एतद्विभक्तिव्यवहारसमर्थनं करणीयम् । अत एव क्रियाकालयौगपद्यविवक्षया उत्पद्यमान उत्पन्नः विगच्छद्विगतिमत्यनया
दिशा सद्धान्तिकप्रयोगः संभवेत् । परमते त्विदानीं ध्वस्तो घट इति आद्यक्षणो व्यवहारः
सर्वथा न घटमाटीकते, नयभेदे तु संभवेत्, यथात्रास्माकं संमितः । स्वाधिकरणक्षणत्वव्यापकस्वाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणादिकत्वमनुत्पन्नत्वम्, "उप्रज्ञमाणकालं उपण्णति विगयं विगच्छं । भेदवियं पन्नवंतो तिकालविसयं विसेसेइ ॥ १२ ॥

च्याख्यार्थः —यदि उत्पत्तिसहित नाशका व्यवहार होता है; तो उसी व्यवहारमें नाशनिष्ठ जो उद्भव (उत्पत्ति) है; अर्थात् असिद्धिशष्ट जो उत्पत्ति है; उसको स्वीकार करो । मावार्थ यह है; कि —उत्पत्ति धाराह्मप नाशिवपयमें भूतकालादि प्रत्यय (अनुभव) नहीं कहते हो और नश धातुके अर्थमें नाश तथा उत्पत्ति दोनोंका ग्रहण करके उस नाशकी उत्पत्ति कालत्रयके साथ अन्वय (सत्व)का संभव कहते हो तब ऐसा कहने वालोंको नाश होतेहुये समयके साथ नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग नहीं होता । क्योंकि — उस कालमें नाश तथा उत्पत्तिकी अतीतकालता नहीं है; ऐसी समर्थता यदि आप व्यवहारकी करते हो तो व्यवहारमें उत्पत्ति क्षणकी संबन्धमात्रा ही कहो । तब वहांपर प्रागमावध्वंसता कालत्रयह्मपसे कालत्रयके अन्वय (सत्व)का समर्थन करते हो । और यदि ऐसा विचार करते हो कि—घटके वर्त्तमानत्वादिमें तथा नाशके वर्त्तमानत्वादिका व्यवहार नहीं होता किन्तु कियानिष्ठ जो अपरिणामहूप वर्त्तमानत्व तथा अतीतत्व है उसको लेके नष्ट होता है, नष्ट हुआ, तथा उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआ इस रीतिसे इस नश धातुके आगे वर्त्तमानके तथा भूत कालके प्रत्ययोंको व्यवहारका समर्थन करना चाहिये। इसीसे अर्थात् एक कालमें दूसरे कालकी अपेक्षासे भूतकालादि मान कर

ही कियामें कालकी एक ही समयमें विवक्षासे उत्पन्न हो रहा है, उत्पन्न हुआ, नष्ट हो रहा है; तथा नष्ट हुआ इत्यादि व्यवहार है; इसी पूर्वोक्त रीतिसे सिद्धान्त मतमें भूतकालादि प्रयोगकी संभावना हो सकती है। और अन्यके मतमें तो इस समय यह घट नष्ट हुआ यह व्यवहार प्रथम क्षणमें सर्वथा नहीं हो सकता क्योंकि-अभी (प्रथम क्षणमें) नस्यमान किया हो रही है; तब उस नाशानुकूल कियाका भूतकाल कैसे बोधित हो सकता है। और नयका भेद माननेसे तो हो सकता है; अर्थात् भविष्य कालकी अपे-क्षासे उसीमें भूतत्वके आरोपसे नश धातुके भूतकालके प्रयोगमें कोई अनुपपत्ति नहीं है। यहांपर हमारी संमति ऐसी है, कि-स्वकीय अधिकरणीभृत जो क्षण उस क्षणका व्यापक तथा स्वके अधिकरणमें जो ध्वंसक्षणकी अधिकरणता तादृश अधिकरणत्वरूप ही अनुत्पन्नत्व है। यहांपर स्वशन्दसे नश्यमानानुकूल कियाका ग्रहण है; अतः जिस समयमें नश्यमानरूप किया हो रही है; उस क्षणकी तो अनुत्पत्तिव्यापिका है; और उसी कियाका अधिकरणीभूत जो ध्वंस है; उसके अधिकरणका भी क्षण है; क्योंकि-उसी क्षणमें ध्वंसा-नुकूल किया भी हो रही है; अत एव स्वाधिकरणक्षणत्वव्यापक तथा स्वाधिकरणीभूत ध्वंसाधिकरणत्व स्वरूपता अनुत्पन्नत्वमें चली गई। यही विषय इस गाथामें कहा है; जैसे उत्पद्यमान कालमें उत्पन्न होता है; उत्पन्न हुआ नष्ट होता है; ऐसे दो भेद कहे हुए त्रिकाल विषयको विशेषित करते हैं ॥ १२ ॥

सूत्रम्। उत्पत्तिर्ने भवद्ग्रे तदोत्पन्नं च तद्भवेत्। यथा नाशं विना नष्टं प्रथमं किं न रोचते॥ १३॥

सूत्रभावार्थ:—प्रथम द्वितीयआदि क्षणमें उत्पत्ति नहीं हुई और उत्पन्न हुआ ऐसा व्यवहार यदि तुम भविष्यकी अपेक्षासे मानते हो तो नाशके विना भी नष्ट हुआ यह व्यवहार तुमको क्यों नहीं रुचता ॥ १३॥

व्याख्या । उत्पत्तीति-यदा अम्रे द्वितीयादिक्षणे उत्पत्तिर्न भवेत्तदा तद्वटादिकं द्वितीया-दिक्षणेऽनुत्पन्नत्वं भवेत् । यथा च प्रथमध्वंसेन नाशेन विना अनष्टमविनष्टं यदि कथ्यते । इत्ययं तर्कस्तव किं न रोचते । यस्मात्प्रतिक्षणोत्पादनाशौ परिणामद्वारा माननीयौ । अथ च द्रव्यार्थादेशेन द्वितीयादिक्षणे यद्युत्पत्तिव्यवहारः कथ्यते तदा नाशव्यवहारोऽपि तथा भवितुं युज्यते । तथा च क्षणान्तर्भावेन द्वितीयादिक्षण उत्पत्तिरपि प्रापयितुं युक्ता भवेत् , अकल्पिता अनुत्पन्नता न भवेत् । तथापि प्रतिक्षणमुत्पत्तिं विना परमार्थतोऽनुत्पन्नतार्थता युज्यत इत्यर्थः ॥ १३ ॥

च्यारुपार्थ: यदि द्वितीयादि क्षणमें उत्पत्ति नहीं होती तो वह घटआदि उस द्वितीयआदि क्षणमें अनुत्पन्न होते हैं; और जैसे नाशके विना अनष्ट हुआ ऐसा यदि कहा जाय तो यह तर्क तुमको क्यो नहीं रुचता । क्योंकि-प्रतिक्षणमें उत्पाद नाश परि- णामके द्वारा मानने योग्य हैं। और यदि द्वितीयआदि क्षणमें द्रव्यार्थादेशकी अपेक्षासे उत्पत्तिके विना ही उत्पत्तिका व्यवहार तुम कहते हो तब नाशके विना नाश व्यवहार भी होना योग्य है; और उसी रीतिसे क्षणके अन्तर्भावसे द्वितीयआदि क्षणमें उत्पत्ति भी प्राप्त करने योग्य है; और कल्पनारहित अनुत्पन्नता भी नहीं हो सकती । यद्यपि यह कल्पनासे अनुत्पत्तिदशामें भी क्षणकी अपक्षासे उत्पन्नता मानी है। तथापि प्रतिक्षण उत्पत्तिके विना परमार्थमें तो अनुत्पन्नता ही युक्त है ॥ १३॥

सूत्रम् । संमतौ संहननादि भवभावाच केवलम् । प्रयाति सिद्धातो ज्ञानं मोक्षसंप्राप्तिजे क्षणे ॥ १४॥

सूत्रभावार्थ:—संमित प्रन्थमें भी यही उपदेश है; कि-संहननआदिमवस्थ भावसे अष्ट कर्मोंका नाश करते हुए जीवके मोक्ष प्राप्त होनेके समयमें केवलज्ञान चला जाता है; अर्थात् भवस्थ केवलपर्यायसे केवलका नाश हो जाता है ॥ १४ ॥

व्याख्या । एवं परिणामतः सर्वद्रव्याणां त्रिलक्षणयोगः समर्थित इत्यनेनैवाभिप्रायेण संमतियन्थमध्येऽयं भाव उपिदृष्टः, यतः संहननादिभवभावात् सिद्धयतः कर्माष्टकं क्षपयतो जन्तोर्मोक्षसमये केवलज्ञानं प्रयाति भवस्यकेवलपर्यायेण केवलस्य नाशः स्यात् । अयमर्थे मानस्तस्मिन् सिद्धत्वे सिद्धकेवलज्ञानत्व उत्पद्यते सैव केवलज्ञानत्वे ध्रुवोऽस्ति भावः। यतो मोक्षगमनसमयेऽपि ये व्ययोत्पत्ती जायेते तत्परिणतसिद्धद्रव्यानुगमतः शिवेऽपि **छक्षणत्रयमाविर्भवति । तथा च तस्य भावस्य भावार्थज्ञानाय गाथामाह** । "तेसं धपणाईया भवच्छकेवंर्छविशेशपज्ञाया । ते सिज्जमाणसमयेण होइ विगयंतड होइ । १। सिद्धत्तणेणय पुणो उपपण्णा एस अत्थपज्ञाओ । केवलभावं तु पहुचकेवलदाइयं सुत्ते । २ । " एतद्भावा-पेक्षयैव ''केवलनाणे पुवि हे पत्रत्ते भवच्छकेवलनाणेय सिद्धकेवलनाणेय'' इत्यादिसूत्र उ-पदेशोऽस्ति । इत्थं च स्थूलव्यवहारनयेन सिद्धविपयेऽप्यागतम्, परन्तु सूक्ष्मनयेन नागतं यतः कारणात् सुक्ष्मनया ऋजुसूत्राद्यः समयं समयमुत्पाद्व्ययशालिनः सन्ति ततस्तान् गृहीत्वा तथा द्रव्यार्थादेशस्यानुगमं च गृहीत्वा यत्सिद्धकेवलज्ञानमध्ये त्रैलक्षण्यं समस्ति तदेव सूक्ष्मं ज्ञेयमित्येवं विचार्य पक्षान्तरं द्योतयित किं तार्ह मोक्षे त्रिलक्षणता भवति या सा सिद्धद्रव्यानुगमात्, यत्कैवल्यं पुरा भवस्थभावेस्थितं तदेव सिद्धत्वे कैवल्यमस्ति भवस्थ-पर्यायव्ययस्तत्सन्निधानान्मोक्षसंज्ञोत्पत्तिरुभयत्र कर्मवियोगजन्यं केवलं ध्रुवम् , एतल्रक्षणत्रयं मोक्षेऽपि ज्ञेयमिति । भावार्थस्त्वयम् —ये च संहननाद्यो भवस्थकेवल्लविशेपपर्यायास्ते च पर्यायाः सिद्धयतो भगवतस्तत्समये सिद्धयमानसमये न भवन्यतस्तेपां विगमे। व्ययो भवति। तथा पुनः सिद्धत्वेन यो मोक्षलक्षणोऽर्थपर्याय उत्पन्नोऽतस्तदुत्पत्तौ सत्यामुत्पत्तिर्भवति । पुनश्च केवलभावं प्रतीत्योभयत्र ध्रुवलमव्याहतम् । कथं तद्भवस्थजन्तोः घातिकर्मापगमे केवलज्ञानमुत्पन्नं तस्मिश्च सति सिद्धयतः संहननादि विगतं तद्पेक्षो न्ययः, सिद्धत्वमुत्पन्नं तद्पेक्षोत्पत्तिः, पूर्वप्रसृतकेवळपर्यायस्य ध्रवत्वाद् धीव्यम् । इत्थं लक्षणत्रयं मोक्षेऽपि सम-स्तीति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—इस प्रकार प्रतिक्षणके परिणामसे संपूर्ण द्रव्योंमें त्रिविध लक्षणका योग सिद्ध किया गया; इसी अभिप्रायसे संमति ग्रंथमें भी इसी भावका उपदेश किया गया है। क्योंकि-संहननआदि भवके भावसे सिद्ध होते हुए अर्थात् अष्टविध कर्मीका क्षय करते हुये जीवके मोक्षसमयमें केवल (केवलज्ञान) जाता है; अर्थात् भवस्थ जो केवल पर्याय है; उससे केवलज्ञानका नारा होता है; यह अर्थ मान अर्थात् प्रमाण है; इसके सिद्ध होनेपर सिद्ध केवलज्ञान उत्पन्न होता है; और केवलज्ञानपनेमें वही ध्रुवभाव अर्थात् नित्यपना है। क्योंकि-मोक्ष जानेके समयमें भी व्यय तथा उत्पाद होते हैं; और उस असिद्ध द्रव्यसे परिणत सिद्ध द्रव्यका जो अनुगम (ज्ञान) होता है; इससे मोक्षमें भी तीन लक्षण प्रकट होते हैं। और इसी भावके भावार्थ बोधनकेलिये गाथाको कहते हैं। जैसे "जो संहननआदि भवस्थ केवल विशेषके पर्याय हैं; वह सिद्धदशाको प्राप्त होते हुये जीवके नहीं होते इसिलये उसका व्यय होता है; और सिद्धलसे जो यह अर्थ पर्याय उत्पन्न हुआ है; उससे सिद्ध केवलज्ञानकी उत्पत्ति है; क्योंकि-सूत्रमें कहा है; कि-केवल भाव तो नष्ट होकर वदलेमें केवलज्ञानको ही देता है; अर्थात् उत्पन्न करता है ॥ २ ॥" और इसी भावकी अपेक्षासे ''केवलज्ञान दो प्रकारके जानने एक भवस्थ केवलज्ञान और एक सिद्ध केवलज्ञान'' इत्यादि सूत्रमें उपदेश है। और इस प्रकार स्थूलव्यवहारनयसे सिद्धोंमें भी त्रिविधलक्षणयुक्तताका आगमन हुआ परन्तु सुक्ष्म नयसे सिद्ध पर्यायमें त्रैलक्षण्य नहीं आया क्योंकि-ऋजुसूत्रआदि जो सूक्ष्मनय हैं; वह समय समयमें उत्पाद तथा व्ययको धारण करते हैं; इसलिये उन प्रतिक्षणके उत्पादादिको लेक तथा द्रव्यार्थिकनयसे पूर्वोत्तर पर्यायमें द्रव्यत्वरूपसे उत्पत्ति तथा नाशको एकताको ब्रहण करके जो सिद्ध पर्यायके साथ केवल ज्ञान है; उसमें त्रिविध लक्षणकी संगति भले प्रकार होती है और इसीको सुक्ष्मता जाननी चाहिये ऐसा विचारके अब दूसरे पक्षको प्रकट करते हैं, वह क्या है; सो निरूपण करते हैं; कि-मोक्षमें जो उत्पत्तिआदि त्रिविध लक्षणता होती है; वह सिद्ध द्रव्यकी एकताके अनुगमसे होती है; जो कैवल्य पहले भवस्थ भावमें स्थित था वही सिद्धत्वदशामें कैवल्य है, भवस्थ पर्यायका तो नाश होता है; और उस भवस्थ पर्यायके नाशके सन्निधानसे मोक्षसंज्ञक पर्यायकी उत्पत्ति होती है; और पूर्व भवस्थपर्याय तथा उत्तर सिद्ध पर्याय इन दोनों दशाओंमें कर्मों के वियोगसे उत्पन्न जो केवलज्ञान है, वह ध्रुव है; इस कारण यह तीनों लक्षण मोक्षमें भी जानने चाहियें। भावार्थ तो यह है: कि-जो संहननादि भवस्थ केवल विशेषके पर्याय हैं: वह पर्याय सिद्ध दशाको प्राप्त होते हुए जो भगवान् हैं; उनके सिद्ध्यमान समयमें नहीं होते हैं; इसिंठिये उनके चले जानेसे तो व्यय होता है; और सिद्धत्वरूपसे जो मोक्षलक्षण अर्थ पर्याय उत्पन्न हुआ है; इस कारण उसकी उत्पत्ति होनेपर सिद्धत्वपर्यायकी उत्पत्ति होती

है; और दोनों दशामें केवल ज्ञानपना प्रतीत होता है; इसिलये ध्रुवत्व अव्याहत है। वह किस प्रकारसे? कि—मोक्षके पूर्वभवस्थ जीवके चार घातिया कर्मोंका नाश होनेपर जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है; उससे उत्पन्न होनेपर सिद्ध दशाको प्राप्त हुये जीवके संह-ननादिका अभाव होगया उसकी अपेक्षा तो व्यय है; और सिद्धत्व उत्पन्न हुआ उसकी अपेक्षासे उत्पाद है; तथा पूर्व संसारदशामें उत्पन्न जो केवल पर्याय है; उसका नाश न होनेसे धौव्य है। इस प्रकार उत्पाद, व्यय, और धौव्यस्वरूप तीनों लक्षण मोक्षदशा-में भी पूर्णतया हैं।। १४॥

तदुपरि श्लोकमाह।

इसी विषयको आगेके श्लोकसे सिद्ध करते हैं।

सूत्रम् । तित्सद्धत्वे पुनश्चेति कैवल्यं यत्पुरास्थितम् । व्ययोत्पत्यैकतो नित्यं पक्षे स्याल्लक्षणत्रयम् ॥ १५॥

सूत्रभावाथे:—पूर्व भवमें जो कैवल्य स्थित था वह पूर्वभवस्थ पर्यायकी अपेक्षासे सिद्ध अवस्थामें भी होता है; इसिलये व्यय तथा उत्पाद है; और व्ययोत्पित्तकी एकतासे नित्य है; ऐसे मोक्षमें तीन लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

व्याख्या । यत्पुरास्थितं कैवल्यं भवस्थपर्यायापेक्षि तत्सिद्धत्वेऽपि सिद्धावस्थायामपि । श्लीणे भवस्थ उत्पन्ने सिद्धत्वे व्ययोत्पत्ती स्याताम् । पुनर्नित्यं प्रौव्यं कुतो व्ययोत्पत्त्यैकतो व्ययश्चोत्पत्तिश्च व्ययोत्पत्ती तयोरैक्यं घ्रौव्यं तस्माद्ययोत्पत्त्यैकतो नित्यं घ्रौव्यं केवलम् । एवं मोक्षे लक्षणत्रयं स्यात्काल्पनिकमेवेदं भावानां विमर्शना बहुप्रकारा । अत एव "उप्पन्ने वा विगमे वा घ्रुवे वा इति योजना ।। १५ ।।

च्याख्यार्थ:—जो भवस्थपर्यायकी अपेक्षाका धारक केवलज्ञान पहले भवस्थ दशामें स्थित था वह सिद्धावस्थामें भी होता है। यहां भवस्थके क्षीण होनेपर तथा सिद्ध-त्वके उत्पन्न होनेपर व्यय तथा उत्पाद होता है। और नित्य अर्थात् श्रुवपना कहांसे हुआ? इसका उत्तर यह है; कि—व्यय और उत्पत्ति इन दोनोंकी जो एकता है; उससे केवल ज्ञान श्रुव है; इस रीतिसे मोक्षमें लक्षणत्रय संगत होते हैं; परन्तु यह लक्षणत्रय काल्पनिक ही हैं; क्योंकि—पदार्थोंके विचार करनेके अनेक प्रकार हैं। इसी कारण "उप्पन्न वा, विगमे वा श्रुव वा" कथंचित् उत्पन्न होता है, कथंचित् नष्ट होता है; और कथं चित् श्रुव है; इत्यादि वाक्योंकी योजना होती है; अर्थात् यह उत्पादआदि किसी अपेक्षासे निक्षपित होते हैं ॥ १५॥

सूत्रम्। ज्ञानाचा निजपर्याया ज्ञेयाकारेण ये स्थिताः। व्यतिरेकेण ते चैवं सिद्धस्य स्युस्त्रिलक्षणाः॥ १६॥

सूत्रभावार्थः - जो केवलज्ञाम केवलद्र्शनआदि निजपर्याय ज्ञेयके आकारसे

स्थित हैं; बह प्रतिक्षण सिद्धके अन्य अन्य होते रहते हैं; इस हेतुसे तीन लक्षणोंके धारक हैं ॥ १६ ॥

व्याख्या । ज्ञानाद्याः केवलज्ञानकेवलदर्शनाद्यो निजपर्याया ज्ञेयाकारेण वर्त्तमामादिवि-पयाकारेण स्थिताः परिणताः सन्ति । ते च निजपर्याया व्यतिरेकेण प्रतिक्षणमन्योन्यत्वेन सिद्धस्य मुक्तस्य एवमनया दिशापि त्रिलक्षणा लक्षणत्रयवन्तः स्युर्भवन्ति । तद्यथा प्रथमा-दिसमयेषु वर्त्तमानाकारेण सन्ति ये पर्यायास्तेषां पुनार्द्वितीयादिसमयेषु नाशः पुनरतीता-कारेणोत्पादाकारभावो भवेदिति । पुनः केवलज्ञानदर्शनभावेनाथवा केवलमात्रभावेन धुव-त्विमत्थं भावत्रयभावना कर्त्तव्या । इत्थमेव ज्ञेयदृश्याकारसंबन्धेन केवलस्य त्रैलक्षण्यं कथितम् ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थ:—जो केवलज्ञान केवलदर्शनआदि निजपर्याय ज्ञेयाकारसे अर्थात् वर्त्तमानआदि विषयों के आकारसे परिणत हैं; वह निजपर्याय व्यतिरेकसे अर्थात् प्रतिक्षणमें अन्य २ पनेसे सिद्ध अर्थात् मुक्त जीवके हैं। इस प्रकारसे भी वह ज्ञानादि पर्याय तीन लक्षणों के धारक हैं; वह इस प्रकार कि प्रथमआदि क्षणमें जो पर्याय वर्त्तमान आकारसे स्थित हैं; उनका फिर द्वितीयआदि क्षणों नाश होगा और भूत आकारसे उत्पादका आकारत्व होगा। और केवलज्ञान तथा केवलदर्शनक्ष्यसे अथवा केवलमात्र भावसे उनमें ध्रुवत्व है; इस प्रकार केवलज्ञानादि पर्यायों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनों भावोंका विचार करना चाहिये। ऐसे श्रेय (जानने योग्य पदार्थ) और दृश्य (देखने योग्य पदार्थ) के आकारके संबंधसे केवलके त्रिलक्षणताका कथन किया है।। १६॥

तथा सिद्धादिशुद्धद्रव्यस्य कालसंवंधान्नैलक्षण्यं कथयन्नाह ।

अब इसी प्रकार सिद्धआदि शुद्ध द्रव्यके भी कालके संबन्धसे त्रिविधलक्षणता दर्शाते हुए यह सूत्र कहते हैं॥

सूत्रम्। एवं ये क्षणसंबन्धे वर्त्तयन्ति पदार्थकाः। तेभ्यस्त्रिलक्षणत्वं च, अन्यथा स्युरभावकाः॥ १७॥

सूत्रभावार्थः — ऐसे ही जो पदार्थ क्षणके संबंधसे पर्यायोंको प्रवर्तित करते हैं; वह उन्ही भावोंसे त्रिविधलक्षणयुक्त हैं; यदि ऐसा न माना जाय तो वह अभावरूप ही होंगे ॥ १७ ॥

व्याख्या। एवं ये पदार्थका भावाः क्षणसंबन्धेऽपि पर्यायतो वर्त्तयन्ति परिणामयन्ति। तेभ्यो भावेभ्यस्त्रिलक्षणत्वं संभवेत्। अन्यथा वैपरीत्येन अभवका अभावाः स्युरित्यर्थः। यथा हि द्वितीयक्षणे इति भावे इति। आद्यक्षणे संबंधपरिणामनाशो प्राप्तः, द्वितीयक्षणसंबन्धेन परिणामादुत्पन्नः, क्षणसंबन्धमात्रेण ध्रुवस्ततः कालसंबन्धात्रैलक्षण्यासंभव उक्तः। न चेदेवं तर्हि वस्तु अवस्तु भवेत्। उत्पाद्व्ययधौव्ययोगजभावलक्षणमस्ति तद्राहित्ये शशिव-षाणादिवदभावरूपतामासाद्येत्॥ १७॥

च्याख्यार्थः—इस प्रकारसे जो पदार्थं अर्थात् भाव क्षणके संबन्धमें भी पर्यायसे परिणमनको प्राप्त होते हैं; वह उन्हीं भावोंसे त्रिबिधलक्षणसिहत संभवें हैं। और यदि इसके विपरीत मानो अर्थात् उक्त सिद्धादि भावोंको त्रिविधलक्षणसंपन्न न मानो तो वह अभावस्वरूप ही हो जायेंगे। यह श्लोकका अक्षरार्थ है। अब इसका विशेष निरूपण इस प्रकार है; जैसे श्लोकमें क्षण यह जो पद है; उससे द्वितीयआदि क्षणका प्रहण है। प्रथम क्षणमें भावोंके साथ संबन्धसे परिणामका नाश प्राप्त हुआ और द्वितीय क्षणके संबन्धसे परिणाम उत्पन्न हुआ और दोनों क्षणके संबंधमात्रसे ध्रुवत्व है। इस प्रकार कालके संबंधसे त्रिविधलक्षणका संभव कहा गया। और यदि ऐसा न हो तो वस्तु (पदार्थ) अवस्तु हो जायगा; क्योंकि—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य संबन्धजन्यता ही भाव (पदार्थ) का लक्षण है; और उस त्रिविधलक्षण संबंधके अभावमें तो पदार्थ शश्रवि-षाण(खरगोशके सींग)आदिके समान अभावरूपताको प्राप्त होगा॥ १७॥

सूत्रम् । एकदा निजपर्याये बहुसंबंधरूपता । उत्पत्तिनाशयोरेवं संभवेत्रियता धुवे ॥ १८ ॥

सूच्रभावार्थः—एक कालमें निजपर्यायमें उत्पत्ति, नाश तथा ध्रुवके विषयमें अनेक संबन्धाकारता निश्चित रूपसे संभवती है ॥ १८ ॥

व्याख्या । एकस्मिन्काल एवमनया दिशा निजपर्याये जीवपुद्गलयोस्तथा परपर्याये आकाश्यधर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायानामेतेषां द्रव्यानामुत्पत्तिनाशयोधुवे बहुसंबन्धरूपता अनेकयोगाकारता नियता निश्चिता संभवेत् । यतश्च यावन्तो निजपर्यायाः स्वपर्यायास्तावन्त उत्पत्तिनाशाश्च जायन्ते । ततश्च नियता नियमकता श्ववे श्रीव्यस्वरूपे यावन्तो श्ववस्वभावास्तावन्तो नियताकाराः सन्ति । तथा च पूर्वापरपर्यायानुगत आधारांशस्तावन्मात्र एव भवेत् । तस्माद्वत्र संमितः । तथा च तद्वाथा-एगसमयंमि एगो द्विपस्स बहुयाविहोति उप्पापाः । उपपापसमाविगमा ठिईपेडर्स्सुगाओ नियमा । १ । एकस्मिन्समये एकैकस्य द्रव्यस्य बहुवोऽनेके उत्पादा उत्पत्तयो भवन्ति । तथा पुनरुत्पादसमानास्तनुल्यानाशपर्याया अपि ज्ञेयाः । इति व्यवहारमार्गः । उत्सर्गतो विशेषभावतः स्थितिः स्थैर्य नियमा निश्चिता अस्ति । श्वत्वं नियतमित्यर्थः । उन्मज्जननिमज्जनभावशालिनो जलकल्लोला बहुवो भवन्ति जलं तु तावन्मिताकारस्थिता परिणमित । तत एव तेषां संभवादाविर्भावितरोभावता भवतीति ज्ञेषम् ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थ:—एक कालमें इसी पूर्वोक्त मार्गसे निजपर्याय अर्थात् जीव पुद्गलके तथा परपर्याय अर्थात् आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इनके ऐसे इन पांचों द्रव्योंके उत्पत्ति नाश तथा धौव्यके विषयमें अनेक प्रकारके संबंधके आकार निश्चित रूपसे संभवते हैं। क्योंकि—जितने अपने पर्याय हैं; उतने ही उत्पत्ति तथा नाश भी होते

हैं; भौर उत्पत्ति विनाशमें अनेकाकार होनेसे ध्रौव्यमें भी वही नियत है; अर्थात् जितने ध्रुव स्वभाव हैं; उतने ही उनके आकार नियत हैं। और पूर्वपरपर्यायोंमें अनुगत जो आधारांश है; वह भी उतना ही होगा जितने कि—उत्पत्ति तथा नाश हैं। इसीलिये यहांपर संमितिग्रंथका प्रमाण है। और ग्रंथकी गाथा यह है; गाथार्थ-एक समयमें एक एक द्रव्यके अनेक उत्पाद होते हैं; और उत्पादके तुल्य ही उनके नाश पर्याय भी जानने चाहियें यह कथन व्यवहारमार्गसे है। और उत्सर्गमार्ग अर्थात् विशेषतासे स्थिरता निश्चित है; अर्थात् ध्रुवत्व नियत है। भावार्थ—उन्मज्जन निमज्जन भावशाली (क्षण क्षणमें) विनाश (तथा उत्पत्तियुक्त) जलके कल्लोल (तरंग) अनेक होते हैं; और जल उसी अपने परिमित आकारकी स्थितिसे परिणत है। उसीसे उन (जलकलोलों) के संभवसे उनकी प्रकटता तथा अप्रकटता होती रहती है; ऐसा जानना चाहिये॥ १८॥

अथोत्पादस्य भेदान्कथयन्नाह ।

अब उत्पादके भेदोंका कथन करते हुवे कहते हैं।

सूत्रम् । प्रयोगविश्रसाभ्यां स्यादुत्पादो द्विविधस्तयोः । आद्यो विद्युद्धो नियमात्समुदायविवादजः ॥१९॥

सूत्रभावार्थः—नैमित्तिक तथा स्वाभाविक भेदसे उत्पाद दो प्रकारका होता है, उनमेंसे प्रथम प्रयोगजनित नैमित्तिक उत्पाद अविशुद्ध होता है; क्योंकि—नियमसे वह समुदाय विवादसे उत्पन्न होता है ॥ १९॥

व्याख्या । उत्पादो द्विविधो द्विप्रकारोऽस्ति, काभ्यां द्विविधः प्रयोगविश्रसाभ्यां, एकः प्रयोगजनित उत्पादः । १ । अपरो विश्रसाजनित उत्पादः । २ । पुनस्तयोर्द्वयोर्भध्ये आद्यो-ऽविद्युद्धो व्यवहारोत्पन्नत्वात् । स च निर्धारणनियमात्समुदायवादजनितो यदेन कृत्वा अव-यवसंयोगेन सिद्धः कथितः । तथा चात्र संमतिगाथा-उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससाचेव । तत्थयपओगजणिओ समुद्यवाओ अपरिशुद्धो । १ । उत्पादो द्विविकल्पो द्विविध्यस्तत्राद्यः प्रयोगजनितोऽपरो विश्रसाजनितस्तत्र च प्रयोगजनितः समुदायवादादपरिशुद्धः कथितो व्यावहारिकत्वात् ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थ:—उत्पाद दो प्रकारका है; किनसे दो प्रकारका है? प्रयोग और विश्रसासे अर्थात् एक तो प्रयोग(निमित्त)जनित उत्पाद है; और दूसरा (विश्रसा) स्वभाव जनित उत्पाद है; और उन दोनोंके मध्यमें प्रथम प्रयोगजनित उत्पाद व्यवहारसे उत्पन्न होनेसे अविशुद्ध है; तथा वह निर्धारित नियमसे समुदायके विवादसे उत्पन्न होता है; अत एव यबसे अवयवोंके संयोगसे सिद्ध कहा गया है। और इस विषयमें संमतिग्रंथकी गाथा भी है; गाथार्थ—"उत्पादके दो विकल्प अर्थात् दो भेद हैं; एक प्रयोगजनित

दूसरा विश्रसाजनित उनमेंसे प्रयोगजनित उत्पाद समुदायवादसे व्यावहारिक होनेसे अपरिशुद्ध कहा गया है ॥ १ ॥" ॥ १९ ॥

अथोत्पादस्य द्वितीयभेदं कथयन्नाह । अब उत्पादके द्वितीय भेदको कहते हैं ।

सूत्रम् । विश्रसा हि विना यत्नं जायते द्विविधः स च । तत्राचचेतनस्कंधजन्यः समुद्रयोऽग्रिमः ॥ २०॥

सूत्रभावार्थ:—विश्रसाजनित उत्पाद वह है; जो विना यत उत्पन्न होता है, वह विश्रसाजनित उत्पाद भी दो प्रकारका है; उनमेंसे प्रथम अचेतन स्कंधसे उत्पन्न समुद्य नामसे कहा गया हैं॥ २०॥

व्याख्या। विश्रसाख्यो द्वितीय उत्पादः, विश्रसाशब्दस्य कोऽर्थः, सहजं विना यत्नमुत्प-द्यते यः स विश्रसोत्पादः सोऽपि पुनिद्विषो द्विप्रकारः, एकस्तत्र समुद्यजनितः, द्वितीय एकत्विकः। उक्तं च साहाविओवि समुद्यकउब्बणुणित्त ओत्थहोज्जाहि । तत्रापि तयोर्द्व-योर्मध्य आद्यः समुद्यजनितो विश्रसोत्पादः अचेतनस्कंधजन्यः समुद्यः कथितः। अन्नादीनां समुद्यपुद्गलानां यथोत्पादः॥ २०॥

व्याख्यार्थ:—विश्रसानामक द्वितीय उत्पादका मेद है। "विश्रसा" इस शब्दका अर्थ क्या है? जो विना यत्नके सहज स्वभावसे उत्पन्न हो वह विश्रसाउत्पाद है। वह भी दो प्रकारका है; एक समुद्यजनित है; द्वितीय एकत्विक है। ऐसा ही गाथामें कहा है; कि—"विश्रसाउत्पाद भी समुद्य तथा एकत्विक भेदसे दो प्रकारका है" उन दोनोंमेंसे अचेतन स्कंधसे उत्पन्न समुद्यज प्रथम विश्रसाउत्पाद है। जैसे अचेतन मेघादिके समुद्य पुद्रलोंका उत्पाद होता है॥ २०॥

सूत्रम् । सचित्तमिश्रजश्चान्यः स्यादेकत्वप्रकारकः । शरीराणां च वर्णादिसुनिर्धारो भवत्यतः ॥ २१ ॥

सूत्रभावार्थ:—सचित्त मिश्रसे उत्पन्न, दृसरा एकत्विक विश्रसोत्पाद है। शरीरके वर्णादिकोंका सुनिर्धार इसीसे होता है॥ २१॥

व्याख्या । तथा पुनर्द्वितीयः सचित्तिमिश्रजः शरीरवर्णादिकानां निर्धारो क्रेयः । सचित्ताः पुद्गला वर्णादीनां तथा तथाकारवर्णादिपुद्गलानां परिणला परिणतानामेकत्वप्रकारक एकता-रूपेण परिगतः अनेकेषां वर्णादीनां संगतानां परस्परमुत्पाद्धारया पिण्डीभूतानामवयवानामवयविधर्मत्वेन देहदृश्याकारभूतानामणूनां शरीरादिसुनिर्धारो भवति । देहादिपिण्डानां "सु" अतिशयेन निर्धारो वपुरूपावस्थत्वं संपद्यते । तथा च प्रज्ञापनायां स्थानाङ्गे च-तिविहा पुगलापन्नत्ता, तं जहा पतोगपरिणता १ मीससापरिणता २ वीससापरिणता ३ तत्र च प्रथमं प्रयोगपरिणताः पुद्गला ये भवन्ति ते जीवप्रयोगेण संयुक्ताः शरीराद्यः

सिचत्ताः १ तथा मिश्रपरिणताश्च ते ये जीवेन पुद्रला मुक्ताः कलेवरादयः २ पुनश्च विश्वसा-परिणताः स्वभावेन परिणताः । यथाश्चेन्द्रधनुरादयः ३ एवं च सत्यत्र विश्वसाख्यस्य भेदस्य स्वभावजनितस्य द्वैविध्यं प्रदर्शितम् । अचेतनस्कन्धजन्यसमुदायाख्यः प्रथमस्तत्र सिचत्त-मिश्रजन्यैकत्वप्रकारकशरीरादिवर्णादिसुनिर्धारसंज्ञो द्वितीयः । अत्रायं विशेषः स्वाभाविके परिणमनेऽचित्तपुद्गलैरेवायत्नसाध्यव्यवहार उपदिष्ट इह तु द्वयमि ।। २१ ।।

व्याख्यार्थ:--दूसरा सचित्तमिश्रसे उत्पन्न हुआ विश्रसाउत्पाद है; शरीरवर्णादिका निर्धार इसीसे समझना चाहिये। वर्णादिकोंके जो पुदुल हैं; वह सचित्त हैं। परिणितसे परिणमनको प्राप्त हुए उन उन आकारके वर्णादिरूप पुद्गलोंका एकत्व प्रकार अर्थात् एकतारूपसहित सुनिर्धार होता है; अर्थात् अनेक प्रकारके वर्णआदिरूप मिले हुए तथा उत्पादकी धारासे परस्पर पिण्डरूप हुए अवयव स्वरूप और अवयवीके धर्मसे देह रूप देखनेमें आने योग्य आकारके धारक परमाणवोंके, जो शरीरआदि पिण्डोंका अतिशयरूपसे निर्धार अर्थात् शरीरके रूपकी अवस्था होती है; सो सिचत्तमिश्रसे उत्पन्न एकत्व प्रकारक दूसरा विश्रसाउत्पाद है। यही विषय प्रज्ञापना और स्थानाङ्ग शास्त्रमें कहा गया है: वह पदल तीन प्रकारसे परिणत हैं: जैसे-प्रयोगपरिणत १ मिश्रपरिणत २ विश्रसापरिणत ३ इन तीनोंमें प्रथम जो प्रयोगपरिणत पुद्रल हैं; वह जीवके प्रयोगसे अर्थात् जीवके व्यापारसे संयुक्त शरीरादि सचित्त हैं। मिश्रपरिणत वह हैं; कि-जो पुद्गल जीवसे मुक्त हैं; जैसे कलेवरबादि । और विश्वसा परिणत पद्गल वह हैं; जो स्वभावसे ही परिणत हैं, जैसे इन्द्रके धनुषभादि । इस प्रकारका सिद्धान्त होनेसे यहांपर स्त्रभावसे उत्पन्न होनेवाला जो विश्रसानामक भेद है; उसके दो प्रकार दिखाये । उनमें अचेतन स्कंध(अचेतन पुद्रलोंके समुदाय)से उत्पन्न समुद्यनामक तो प्रथम भेद है; और सचित्तमिश्रसे उत्पन्न अर्थात् चेतनसहित पुदूरुोंसे मिलेहुए पुदूरुोंसे उत्पन्न एकत्व प्रकारका धारक शरीरआदिके वर्णआदिका निर्धारसंज्ञक द्वितीय भेद है। इन दो-नोंमें यह विशेषता है; कि-स्वाभाविक परिणमनमें अचित्त (चेतनरहित) पुद्रहोंसे ही अयत्तराध्य व्यवहारका उपदेश किया गया है, और एकत्विक विश्वसीत्पादमें सचित्त अचित्त दोनों प्रकारके पुद्रलोंसे साध्य व्यवहारका उपदेश है ॥ २१ ॥

पुनर्भेदं दर्शयत्राह । फिर भी उत्पादके ही भेदको दिखाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं । सूत्रम् । यत्संयोगं विनैकत्वन्तद्रव्यांशेन सिद्धता । यथा स्कन्धविभागाणोः सिद्धस्यावरणक्षये ॥ २२ ॥

सूत्रभावार्थः—जो संयोगके विना ही विश्वसाउत्पाद है; वह एकत्व है; और उसीको द्रव्यांशसे उत्पाद जानना चाहिये । जैसे द्विप्रदेशस्कंभके विभागसे अणुका उत्पाद होता है; और कर्मोंके विभागसे जीवके सिद्धता उत्पन्न होती है ॥ २२ ॥

व्याख्या । संयोगं विना विश्वसोत्पादो यद्भवेत्तदेकत्वं क्रेयम् । तदेवैकत्वं द्रव्यांशेन द्रव्यविभागेन सिद्धता नाम उत्पन्नत्वं क्रेयम् । यथा द्विप्रदेशादिस्कन्धविभागेनाणोः परमाणो-र्द्रव्यख्योत्पादः, तथा आवरणक्षये कर्मविभागे जाते सित सिद्धस्य सिद्धपर्यायस्थात्पाद इति । "अवयवसंयोगेनैव द्रव्यस्थात्पत्तर्भवति परन्तु विभागेन द्रव्यस्थात्पत्तिनं भवति" इत्थमेकेनैयायिकाद्यः कथयन्ति । तेषां मत एकतन्त्वादिविभागेन खण्डपटोत्पत्तिः कथं जाघटीति प्रतिबन्धककाल्यभावस्थावस्थितावयवसंयोगस्य हेतुताकल्पने महागौरवात् । तस्मात् क्रुत्रचित्सं-योगात् कुत्रचिद्धभागाद्वव्योत्पादकता मन्तव्या । तदा विभागजपरमाणूत्पादोऽप्यर्थतः सिद्धः स्थात् । संमतिशास्त्र इत्थं सूचितमस्ति । तदुक्तम् "द्व्वंतरसंयोगादि केईदवियस्थविति उप्पाप्तया । कुशलविभागजायण इच्लंति अणुद्वणुएहिं द्व्वं आ । १ । द्वेत्ति अणुयत्ति द्विष्य भोततो असुणविभत्तो । तं पिद्व विभागजाणिओ अणुत्तिजाओ अणू होइ । २ ।" आभ्यां गाथाभ्यां भावार्थोऽत्रधार्यः । यथा परमाणोकत्पाद एकत्वजन्यस्था येन संयोगेन स्कन्धो न निष्यते एतादशो धर्मासिकायादीनां जीवपुद्रल्योस्सयोगस्तद्वारा यश्च संयुक्तद्रव्योत्पादोऽनसंयुक्तावस्थविनाशपूर्वकः, तथा ऋजुसूत्रनयाभिमतो यश्च क्षणिकपर्यायप्रथमद्वितीयसमयादिव्यवहारहेतुस्तद्वारा यश्चोत्पादश्च तत्सर्वमेकत्वं क्षेयम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थ:—संयोगके विना जो विश्रसानामक उत्पाद है; वही एकत्व है। और उसी एकत्वको द्रव्यांशसे अर्थात् द्रव्यके विभागसे सिद्धता अर्थात् उत्पन्नत्व जानना चाहिये। जैसे दो प्रदेशआदि स्कंधके विभागसे परमाण द्रव्यका उत्पाद है: तथा आवरणक्षय अर्थात् कर्मोका विभाग (नारा) हो जानेपर सिद्ध पर्यायका उत्पाद् है। अवयवोंके संयोगसे ही द्रव्यकी उत्पत्ति होती है; परन्तु विभागसे उत्पत्ति नहीं होती" इस प्रकार कोई कोई नैयायिकआदि कहते हैं। उनके मतमें एक तंतुआदिके विभा-गसे खंडपटकी उत्पत्ति कैसे घटित हो सकती है । प्रतिबंधक काल भावको अथवा शेष अवस्थित अवयवसंयोगको कारणता माननेसे अतिगौरव है। इसलिये कहीं संयोगको कहीं विभागको द्रव्यकी उत्पत्तिमें कारणता माननी चाहिये । इससे विभागसे परमाणकी उत्पत्ति भी अर्थसे सिद्ध हो गई। और संमतिशास्त्रमें भी इसी प्रकार सूचित किया है: जैसे "कोई कोई द्रव्यान्तरके संयोगसे ही द्रव्यकी उत्पत्ति मानते हैं; और तर्कमें कुशल विद्वान तो विभागसे भी द्रव्यकी उत्पत्ति चाहते हैं । १। क्योंकि-अण तथा द्वचणुक द्रव्योंसे भी अणु द्रव्योंमें उत्पत्ति मानी गई है। अत एव द्विप्रदेश अणु स्कंधके विभागसे अणुपरिमाण द्रव्यकी उत्पत्ति होनेसे अणुजन्य अणु होता है। २।" इन दोनों गाथाओंसे यह भावार्थ मनमें धारण करना योग्य है; कि-जैसे परमाणुकी उत्पत्तिसे अर्थात् द्विप्रदेश स्कंधके विभागसे जन्य है; वैसे ही जिस संयोगसे स्कंध नहीं सिद्ध होता है: ऐसा जो धर्मास्तिकायादिकोंका और जीव तथा पद्गलका संयोग है; और उसके द्वारा जो संयुक्त द्रव्यकी उत्पत्ति है; वह असंयुक्त अवस्थाके विनाशपूर्वक है; तथा ऋजुसूत्र

नयके अभिमत जो क्षणिक पर्याय प्रथम द्वितीय समयआदिके व्यवहारका कारण है; उसके द्वारा जो उत्पाद है; वह सब एकत्वउत्पाद समझना चाहिये॥ २२॥

अत्र न किंचिद्विवादस्तत्र श्लोकमाह।

यहां कुछ विवाद नहीं है; इस विषयमें श्लोक कहते हैं।

सूत्रम्। स्कन्धहेतुं विना योगः परयोगेण चोद्भवः। क्षणे क्षणे च पर्यायाद्यस्तदैकत्वमुच्यते॥ २३॥

सूत्रभावार्थ:— स्कंध हेतुके विना जो संयोगे है, परके योगसे जो उत्पत्ति है; तथा क्षणिक पर्यायसे जो उत्पाद है; वह सब एकत्वउत्पाद है ॥ २३ ॥

व्याख्या । स्कन्धहेतुं विना यः संयोगः, परयोगेन धर्मास्तिकायादिना यश्चोत्पादः, तथा च क्षणिकपर्याये प्रथमद्वितीयादिद्रन्यन्यवहारहेतवस्तद्वारा य उत्पादः, तत्सर्वमेकत्वं कथ्यते तत्र न कोऽपि विसंवाद इति ॥ २३॥

च्याख्यार्थ: — स्कंधकी हेतुताके विना जो संयोग है, परयोग जो धर्मास्तिकाय आ-दिक हैं; उनसे जो उत्पाद है, तथा प्रथम द्वितीयआदि द्रव्य व्यवहारके कारण जो क्षणिक पर्याय हैं; उनके द्वारा जो उत्पाद है; वह सब विश्रसाका भेदरूप एकत्वउत्पाद कहा जाता है। इसमें किसी प्रकारका विवाद नहीं है। २३॥

पुनर्भेदं कथयन्नाह ।

फिर उत्पादके ही भेदको कहते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । उत्पादो ननु धर्मादेः परप्रत्ययतो भवेत् । निजप्रत्ययतो वापि ज्ञात्वान्तर्नययोजनाम् ॥ २४ ॥

सूत्रभावार्थ:—धर्मास्तिकायआदिकी उत्पत्ति परप्रत्ययसे होती है; अथवा आन्तरिक नययोजनाको जानके निजप्रत्ययसे भी होती है ॥ २४ ॥

व्याख्या । नतु धर्मादेरुत्पादः परप्रत्ययो भवेत्, अपि पुनर्निजप्रत्ययाद्भवेदन्तर्नययोजनां ज्ञात्वा इति । भावार्थस्त्वयम् —धर्मास्तिकायादीनामुत्पादो नियमेन परप्रत्ययः खोपष्टभ्य-गत्यादिपरिणतजीवपुद्गलादिनिमित्त उक्तः । य उभयजनितस्स चैकजनितोऽपि भवेत् । तत-स्तस्य निजप्रत्ययतापि कथयितुं युक्ता निश्चयव्यवहारावधारणात् । अयमर्थः ''आगासाइयाणं तिण्हं पग्पचओ नियया'' इति संमतिगाथायामकारप्रश्लेषणया वचनान्तरेण कृतोऽस्ति वृत्तिकारेण तमर्थमनुस्मृत्येहापि लिखितोऽस्ति । तस्माद्धर्मास्तिकायादीनामुत्पादो नियमात्प-रप्रत्यय एव । सोऽपि स्वोपष्टभ्यगत्यादिपरिणतजीवपुद्गलादिनिमित्तः, उभयजनितोऽप्येक-जनितोऽपि स्यात् । तस्य च निजप्रत्ययताप्यन्तर्नयवादेनोक्तास्ति भावना चेत्थं क्षेया ॥ २४ ॥

च्याख्यार्थ:—धर्मीस्तिकायआदिकी उत्पत्ति परप्रत्ययसे होती है; और आभ्यन्तरिक (अन्दरोनी) नय योजनाको समझके निज प्रत्ययसे होती है। भावार्थ यह है; कि-धर्मी- स्तिकाय(धर्मद्रव्य) आदिकी उत्पत्ति नियमसे परप्रत्ययसे अर्थात् धर्मास्तिकायआदिके आधारभूत गमनआदिमें परिणत जो जीव पुद्गल हैं; उनके निमित्तसे होती है; ऐसा कथन किया गया है; और जो उभय(स्वप्रत्यय तथा परप्रत्यय) से जन्य होता है; वह एक जन्य भी होता है; इस वाक्यसे उस धर्मास्तिकायादिके उत्पादके निजप्रत्ययसे जन्यता भी कहनी योग्य है; क्योंकि – निश्चय तथा व्यवहारनयसे यह निश्चय होता है। "आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इन तीनोंके नियमसे परप्रत्ययजन्य उत्पाद है" इस संमतिग्रंथकी गाथामें वृत्तिकारने यह पूर्वीक्त अर्थ आकार प्रश्लेषण करके वचनान्तरसे किया है। उस अर्थका ही अनुसरण करके यहां भी लिखा गया है। इसल्ये धर्मास्तिकायआदिका उत्पाद नियमसे परप्रत्यय जन्य ही है। और वह भी अपने आधारभूत गतिआदिमें परिणत जीव पुद्गलआदिके निमित्तसे है। और जो उभयजनित है; वह एकजनित भी होता है। और इसके जो निजप्रत्ययता कही है; वह अन्तर्नयबादसे कही है। ऐसी भावना समझनी चाहिये॥ २४॥

अथ नाशस्वरूपमाह ।

अब नाश(व्यय)का स्वरूप कहते हैं।

सूत्रम् । नाशोऽपि ब्रिविधो ज्ञेयो रूपान्तरविगोचरः । अर्थान्तरगतिश्चैव ब्रितीयः परिकीर्त्तितः ॥ २५ ॥

सूत्रभावार्थ:—उत्पादके समान नाश भी दो प्रकारका है; उनमें एक रूपान्तर विगोचर और दूसरा अर्थान्तरगति नामसे कहा गया है ॥ २५ ॥

व्याख्या। नाशोऽपि द्विविधो ज्ञातव्यः। एकस्तत्र रूपान्तरिवगोचरः रूपान्तरपरिणामः। द्वितीयस्तु अर्थान्तरगतिरथीन्तरभावगमनं चेति। भावार्थस्त्वयम् "परिणामो ह्यर्थान्तर, गमनं न च सर्वथा व्यवस्थानं न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विद्यामष्टः। १। सत्पर्थायेण विनाशः, प्रादुर्भावोऽसता च पर्यायतः। द्रव्याणां परिणामः, प्रोक्तः खलु पर्यवगयस्य। २। एतद्वचनं संमतिप्रज्ञापनावृत्तिविषयी । कथंचित्सद्रूपान्तरं प्राप्नोति सर्वथा न विनश्यति यक्तद्वव्यार्थिकनयस्य परिणामत्वं कथितम् । पूर्व सत्पर्यायेण विनश्यति, उत्तरासत्पर्याये-णोत्पद्यते यत्तत्पर्यायार्थिकनयस्य परिणामत्वं कथितम् । एतद्भिप्रायं विचारयतामेकरू-पान्तरपरिणामविनाशः, एकश्चार्थान्तरगमनविनाशः, इत्थं विनाशस्यापि भेद्द्वयं संप-स्म् ॥ २५ ॥"

व्याख्यार्थ:—नाश भी दो प्रकारका जानना चाहिये । उनमेंसे प्रथम रूपान्तर विगोचर अर्थात् एक रूपसे रूपान्तर (दूसरे रूपमें) परिणाम है; और द्वितीय अर्था-न्तरगति अर्थात् एक पदार्थसे दूसरा पदार्थ हो जाता है। भावार्थ यह है। एक पदा-र्थसे अन्य पदार्थतामें गमन हो जाता है; सो परिणाम है; और सर्वथा विद्यमानता अथवा नाश होना 'यह परिणामिका स्वरूप परिणामके जाननेवालों के इष्ट नहीं है। १॥ और सत् (विद्यमान) पर्यायसे नाश तथा अविद्यमान पर्यायसे उत्पाद जो है; सो पर्या-यार्थिकनयकी विवक्षासे द्रव्यों का परिणाम कहा गया है। २। यह वचन संमितप्रज्ञा-पना वृत्तिमें का है; उसका अभिप्राय यह है; कि—जो सत् (विद्यमान) पर्याय कथंचित् रूपान्तरको प्राप्त होता है; और सर्वथा नष्ट नहीं होता वह द्रव्यार्थिकनयका परिणाम कहा गया है। और पूर्व सत् पर्यायसे तो नष्ट हो और उत्तर जो अविद्यमान पर्याय है; उससे उत्पन्न होता हो वह वर्यार्थिकनयका परिणाम कहा गया है। इस अभिप्रा-यको विचारनेवालों के मतमें एक तो रूपान्तर परिणाम विनाश है; और एक अर्थान्तर गमन विनाश है; ऐसे विनाशके भी दो भेद सिद्ध हुए॥ २५॥

पुनराह् ।

पुनः दो प्रकारके नाशोंका स्वरूप दिस्ताते हैं।

सूत्रम् । तत्रान्धतमसस्तेजो, रूपान्तरस्य संक्रमः । अणोरण्वन्तरापातो ह्यर्थान्तरगमश्च सः ॥ २६ ॥

सूत्रभावार्थ: इन दोनोंमेंसे अतिघनीभूत अंधकारका प्रकाशरूपमें जो संक्रमण है; वह परिणामरूप नाश है। और अणुसे जो अन्य अणुके साथ संयोग होता है; अर्थाव् अणुसे जो द्याणुक स्कन्धरूप प्राप्ति है; वह अर्थान्तरगमनरूप नाश है।। २६॥

व्याख्या । तत्र नाशेऽन्धतमसोऽन्धकारस्य तेजोरूपान्तरस्य संक्रम उद्योतताविश्यतद्रव्यस्य रूपान्तरपरिणामरूपनाशो क्रेयः । च पुनरणोः परमाणोरण्वन्तरापादोणोरण्वन्तरसंक्रमो द्विप्रदेशादिभावमनुभवन् पूर्वपरमाणुत्वं विगतिमत्यनेनार्थातरगमः स्कंधपर्याय उत्पक्रस्तेन कृत्वार्थान्तरगतिरूपनाशस्य स्थितिर्भवति । निष्कर्षस्त्वयम्—यत्राकारस्तत्रापि तदाकारपरमाणुप्रचययोनिरन्धतमः समस्ति तत्रैव पुनरुद्योतपरमाणुप्रचयसंचारिनरस्तान्धकारपरमाणुत्वतत्स्थानतत्तत्परमाणुसंक्रमिततेजः परमाणुत्वलक्षणः रूपान्तरसंक्रमो जातःयथा अवयवानां परमाणुनामवयविस्कन्धत्वसंक्रमेणार्थान्तरत्वोद्भावनयार्थान्तरगतिलक्षणो
नाशः समुत्पन्न इति ॥ २६ ॥

व्याख्यार्थ:—उस नाशमें अंधकारह्रप द्रव्यका तेजोरूपमें जो संक्रमण (मिलता) है; अर्थात् अन्धकारसे प्रकाशह्रप द्रव्यमें जो परिवर्तन (वदलना) है; उसको ह्रपांतर परिणामह्रप नाश जानना चाहिये और अणु(परमाणु)का दूसरे परमाणुके साथ जो संयोग है; अर्थात् द्विप्रदेशादिभावको अनुभव करते हुए पूर्व परमाणुत्वरूपका नाश हो जाता है; इस कारणसे अर्थान्तरगमन हुआ अर्थात् अणुपर्यायसे स्कंधपर्याय उत्पन्न हुआ इससे अर्थान्तरगतिहरूप नाशका स्थिरत्व (उहराव) होता है। भावार्थ तो यह है; कि—जहां आकार (काला रंग) है; वहां भी उस आकारके धारक परमाणवीं समूहसे

उत्पन्न हुआ अन्धतम (गहरा अंधेरा) है; और फिर वहां ही (जहांपर अंधकार था उसी जगह) प्रकाशके परमाणवोंके समृहका संचार हुआ तब अंधकारके परमाणु तथा उन परमाणवोंका स्थान दूर हुआ और वह अंधकारके परमाणु उन तेज(प्रकाश)के परमाणवोंमें मिलगये वस यही रूपान्तरसंक्रम (अंधकारके परमाणवोंका तेजके परमाणुवोंमें मिलजाना) है; इसीको रूपान्तरविगोचरनाश कहते हैं। और अवयवरूप परमाणुवोंका अवयवी स्कंधरूपमें जो संक्रम है; उससे जो अर्थान्तरका उद्घाव है; उसीसे अर्थान्तरगितरूप नाशका द्वितीय भेद सिद्ध होता है॥ २६॥

पुनराह ।

पुनः उसी विषयको कहते हैं।

सूत्रम् । रूपान्तराणुसंबन्धात्स्कन्धत्वं यद्यणोरि । तत्संयोगविभागाभ्यामपि भेदप्रबन्धता ॥ २७ ॥

सूत्रभावार्थ:—रूपान्तर अणुके संबन्धिस यद्यपि स्कंधता होती है; तथापि संयोग और विभागसे ही भेदकी प्रबंधता होती है ॥ २७ ॥

व्याख्या । यद्यप्यणो रूपान्तरपरमाणुसंवन्धात्स्कन्धत्वमणुसंबन्धस्कन्धतास्ति । तदिति तथापि संयोगिवभागाभ्यां कृत्वा द्रव्योत्पादनाशाभ्यां द्विप्रकाराभ्यामेव भेदप्रवन्धता द्रव्य-विनाशद्वैविध्यमेव क्षेयम् , एतदुपलक्षणं क्षेयम् । यतो द्रव्योत्पादविभागेन यथा पर्यायोत्पाद्विभागस्तथा द्रव्यनाशिवभागेनेव पर्यायनाशिवभागो भवेदिति । ततः समुद्यविभागस्तथार्थान्तरगमनं चेति द्वयमेव व्यवह्वियते । तत्र प्रथमस्तन्तुपर्यन्तपटनाशः, द्वितीयो घटोत्पत्तिपर्यन्तमृत्पिण्डादिनाशश्च क्षेयः । उक्तं च संमितौ –विगमस्सविएसविद्दी समुद्यजिभागं मिसोष्ठ द्विपण्यो । समुद्यविभागमित्तं अत्थंतरभावगमणं च । १। १ इत्यादिगाथया क्षेयम् ॥ २०॥

व्याख्यार्थ: — यद्यपि एक परमाणुके अन्य परमाणुके संबंधसे अणुसंबंधस्कन्धता है; तथापि संयोग और विभागसे अर्थात् द्रव्यके उत्पाद और नाशरूप जो दो प्रकार हैं; इनसे ही भेदप्रबंधता अर्थात् द्रव्यके नाशके दो प्रकार समझने चाहिये । यह उपलक्षणसे जानना चाहिये क्योंकि—द्रव्यके उत्पादरूप विभागसे जैसे पर्यायका उत्पादरूप विभाग होता है; वैसे ही द्रव्यके नाशरूप विभाग (भेद)से पर्यायका नाशरूप विभाग होता। इसी हेतुसे समुद्यविभाग तथा अर्थान्तरगमन ऐसे दो ही व्यवहारमें लाये जाते हैं। उनमें तन्तुपर्यायके अन्ततक जो पटका नाश है; वह प्रथम समुद्यविभाग है; तथा घटकी उत्पत्तितक जो मृत्तिकापिंडआदिका नाश होता है; वह द्वितीय अर्थान्तरगमन है। और संमितिमें कहा भी है। इसी प्रकार नाश भी समुद्यजनित तथा मिश्र ऐसे दो प्रकारका है; इससे समुद्यविभाग तथा अर्थान्तरगमन ऐसे दो प्रकारका है।

(व्यय) होता है। इत्यादि गाथासे संयोग विभाग इन दोनोंसे भेदकी कल्पना समझनी चाहिये॥ २७॥

सूत्रम् । ध्रौन्यं स्थूलर्जुसूत्रस्य पर्यायः समयादिकः । संग्रहस्य निजद्रन्यजात्या कास्त्रयात्मकः ॥ २८॥

सूत्रभावार्थः स्थूलऋजुसूत्रनयका ध्रुवभाव समयआदिक (समय प्रमाण) पर्याय है। और संग्रहनयका निजद्रव्यजातिसे त्रिकालात्मक ध्रुवत्व है॥ २८॥

व्याख्या । ध्रौव्यं ध्रुवस्वभावोऽपि स्थूलर्ज्जुसूत्रस्य ऋजुसूत्रं द्विधा स्थूलसूक्ष्मभेदात्तत्र स्थूलर्जुस्त्रस्य पर्यायो मनुष्यादिकः समयप्रमाणमस्ति । प्रथमः स्थूल ऋजुस्त्रनयस्तदनु-सारेण मनुष्यादिपर्यायाणां समयमानं ज्ञेयमिति भावः । पुनिर्द्वतीयः संप्रहनयस्य सम्मतो निजद्रव्यजात्या जीवपुद्गलादिकनिजद्रव्यजात्या कालत्रयात्मकस्त्रिकालव्यापको ज्ञेय इति । किं च आत्मद्रव्येण गुणपर्याययोरात्मद्रव्यं समानाधिकरणत्वेन अन्वयानुगम एव ध्रौव्यमिति । एवं निजनिजजात्या निर्धारो ज्ञेय इति ॥ २८ ॥

व्याख्यार्थ:—स्थूल और सूक्ष्म इन भेदोंसे ऋजुसूत्रनय दो प्रकारका है; उनमें स्थूल ऋजुसूत्रके मतमें समयप्रमाण जो मनुष्यआदिक पर्याय है; सो ध्रुवस्वभाव है; भावार्थ यह है; कि—प्रथम जो स्थूल ऋजुसूत्रनय है; उसके अनुसार मनुष्यआदि पर्यायका जो समय है; उस प्रमाण (उतना) ध्रौव्य है; जैसे कोई जीव मनुष्यपर्यायमें पचास वर्ष रहा तो स्थूल ऋजुसूत्रके मतमें मनुष्यपर्यायके पचास वर्ष ही ध्रौव्य है। और दूसरा संग्रहनयके संमत निजद्रव्यजातिसे अर्थात् जीवपुद्गलआदि निजद्रव्यकी जातिसे त्रिकालमें व्यापक ध्रौव्य जानना चाहिये। तथा आत्मद्रव्यसे गुण और पर्यायमें आत्मद्रव्यसमानाधिकरणनाका जो अन्तयानुगम है; सो ही ध्रौव्य है। पुद्गलद्रव्यसे गुण और पर्यायमें पुद्गलद्रव्यका अनुगम है; वही ध्रौव्य है। इस प्रकार अपनी अपनी जातिसे ध्रौव्यका निर्धार (निश्चय) समझना चाहिये अर्थात् आत्मद्रव्यके गुणपर्यायोंमें आत्मद्रव्यकी और पुद्गलद्रव्यके गुणपर्यायोंमें पुद्गलद्रव्यका ध्रौव्य रहेगा और इनकी अनन्तर जातिमें भी यही व्यवस्था समझनी चाहिये जैसे मृत्तिकाके गुणपर्यायो(घटादिक)में मृत्तिका द्रव्यका ध्रौव्य रहता है॥ २८॥

सूत्रम् । अर्थाः समर्थाः समये निरुक्ता इत्थं त्रिधालक्षणवन्त आसैः। सम्यग्धिया तान्परिभाव्य भव्या अहत्क्रमाम्भोजयुगं श्रयन्ताम् ॥ २९ ॥

सूत्रभावार्थ:—हे भव्य जीवो ! इस पूर्वोक्त रीतीसे यथार्थ तत्त्वको जाननेवाले तीर्थ-करोंने शास्त्रमें शक्तिके धारक धर्म अधर्मआदि षट् द्रव्य तीन प्रकारके लक्षणोंसहित निरूपित किये हैं। उनको बुद्धिसे भली भांति विचारके श्रीअर्हन् देवके चरणकम-लोंका आश्रय ग्रहण करो॥ २९॥

व्याख्या। अर्थाः पद् पदार्थाः धर्माधर्माकाशपुद्गलकालजीवाः समर्थाः शाश्वतपरिणाम-भाजः शक्तियुक्ताः समये सिद्धान्ते निरुक्ताः कथिता आप्तेर्यथार्थतत्त्ववेदिभिस्तीर्थकृद्धिः। ते कीदृशा इत्थं पूर्वोक्तवर्णनरूपेण त्रिधालक्षणवन्तो लक्षणत्रयविराजमानाः। भावार्थस्त्वयम्— सिद्धान्ते सर्वेऽर्थाः विविधप्रकारेण त्रिलक्षणाः कथ्यन्ते । लक्षणत्रयं तृत्पादृश्ययप्रौत्यात्मकं तच्छीलं तत्स्वभावं च भाषितिमिति। भग्या भवाय अर्हा भग्यास्तान् अर्थान् पडिप लक्षण-त्रयभावनया सम्यग्बुद्धा परिभाग्य पर्यालोच्याईत्क्रमाम्भोजयुगं जिनचरणपङ्कजद्वयं श्रयन्तामाद्रियन्तामिति। तज्ज्ञाने सित तचरणमुक्त्युत्पित्तफलं लक्षीकृतम् । भोजेति श्लेषण प्रन्थकर्त्तुनीम सङ्केतश्चेति। यथा च ये पुरुषािक्षलक्षणभावनया विस्तारक्षचिवशेषेण सम्य-क्त्वमवगाह्यान्तरङ्गसुखानुभवाभिलापरा भवन्तु । पुनस्तथैव सम्यक्त्वपूर्वकमुक्तिप्राप्तिः सुलभेति ध्येयम्।। २९।।

इति श्रीकृतिभोजसागरविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां सप्तनयगर्भितषड्-द्रव्याणां त्रिलक्षणवर्णनाख्यो नवमोऽध्यायः परिकल्पितः ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थ:— धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव यह षर् पदार्थ जो कि—
निरन्तर परिणामके भागी तथा शक्तियुक्त हैं; उनको यथार्थ तत्त्वोंके वेता (जाननेवाले)
तीर्थंकरोंने सिद्धान्तमें पूर्वोक्त उत्पाद, व्यय और धोव्यस्वरूप तीन लक्षणोंसे विराजमान
वर्णन किये हैं। भावार्थ यह कि—जैनसिद्धांतमें सम्पूर्ण पदार्थ अनेक प्रकारसे त्रिविध
लक्षणसिहत कहे जाते हैं; और लक्षणत्रय यह है; जैसे उत्पाद, व्यय और घोव्य अर्थात्
संपूर्ण पदार्थ उत्पाद, व्यय, घोव्यरूप शील अथवा स्वभावके धारक हैं; ऐसा कहा गया
है। इस हेतुसे हे भवके योग्य जीवो? उन पर् पदार्थोंको लक्षणत्रयकी भावनासे सम्यक्
प्रकार बुद्धिद्वारा जानकर अर्थात् पूर्णरीतिसे विचार करके श्रीअर्हत् भगवान्के चरण
कमलयुगलका सेवन करो अर्थात् आदर करो । तात्प्य यह कि—षर् पदार्थोंका ज्ञान
होनेपर श्री जिनदेवके चरणोंमें भक्तिका उत्पन्न होना यही मुख्य फल है। और श्रीकमें
जो "क्रमांभोज-' यह पद है; उसमें श्रेवसे "भोज" इस प्रकार प्रथक्तींके नामका भी
सेकेत है। और जो भव्य जीव हैं; वह इस प्रकार पदार्थमें त्रिलक्षणताके विचारसे उत्पन्न
हुई जो विस्ताररुचि उससे सम्यक्त्यका अवगाहन करके अंतरंगसुख(मोक्षसुख)के
अनुमवकी अभिलाषामें तत्पर होवें और उनको इसी प्रकारसे पहले सम्यक्त्व होकर
तत्पश्चात् मुक्तिकी प्राप्ति सुगम होगी ऐसा विचार करना चाहिये॥ २९॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारक पं० ठाकुरप्रसादिवरिचतभाषाटीकासमरुङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमाध्याये द्रव्यगुणपर्यायाणां भेदान् वितत्य विवृणोति ।

अब इस दशम (१०) अध्यायमें द्रव्य गुण तथा पर्यायोंके भेदोंको एथकू एथक् करके विवरण करते हैं।

सूत्रम् । भिन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थं निरूप्याथ खरूपतः । द्रव्यादीनि प्रवक्ष्यामि भेदानागमसंमतान् ॥ १॥

सूत्रभावार्थ:—कथंचित् भिन्न, कथंचित् अभिन्न तथा त्रिविध लक्षणयुक्त द्रव्य-गुण पर्यायआदि अर्थका निरूपण करके अनन्तर सिद्धान्तके संमत द्रव्यादिके भेदोंको इस दशम (१०) अध्यायमें कहंगा॥ १॥

व्याख्या। द्रव्यं गुणाः पर्याया भिन्नाः पुनरभिन्नाः पुनिश्विविधाः पुनिश्विस्रक्षणवन्तः अर्थाः। भिन्नान्यभिन्नानि च त्रिधा च त्रिस्रक्षणानि चेति द्वन्द्वः। आदिशब्दाद् भवभावादीनि तेषामर्थः प्रतिपादनं तद्विन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थ निरूप्य कथित्वा। अथेति। पुनः खरूपतः स्वरुपतः स्वरुपतः द्वरुपात्वे भेदानागमसंमतान्सिद्धान्तोक्तान्प्रवक्ष्यामि कथियष्ये।। १।।

व्याख्यार्थ:—द्रव्य गुण तथा पर्याय भिन्न भी हैं; और अभिन्न भी हैं; और त्रिविष लक्षणयुक्त हैं। भिन्न अभिन्न और त्रिधा इनका यहां द्वंद्व समास है; और "त्रिधाआदि" यहां आदि शब्दसे भव, भावआदिका ब्रह्ण है; उनका जो अर्थ अर्थात् प्रतिपादन सो भिन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थ है; उसको अर्थात् भिन्न अभिन्न तथा त्रिधालक्षणयुक्त द्रव्यगुण, पर्याय, भव और भावआदिके अर्थको वर्णन करके तदनन्तर शास्त्रमें कहे हुए जो स्वभावसे द्रव्यआदिके भेद हैं; उनको कहुंगा॥ १॥

सूत्रम्। सम्यक्तवं हि द्यादानिक्रयामूलं प्रकीर्तितम्। विना तत्संचरन्धर्मे जात्यन्ध इव खिद्यति॥२॥

् सूत्रभावार्थः—इन द्रव्यादिकं ज्ञानसे जो सम्यक्त्व होता है; वह द्या दान भौर किया इन सबका मूल कारण कहा गया है। इस सम्यग्दर्शनके विना धर्मरूप मार्गमें प्रवृत्त हुआ पुरुष जन्मांधके सदश दुःखको पाता है॥ २॥

व्याख्या । अथैतेषां विज्ञानानिश्चितं सम्यक्तवं प्रकीर्त्तितम् । कीदृशं द्या जीवरक्षा, दानमभयादि पञ्चधा, क्रिया कर्त्तव्यानि एता मूलं यस्य तत् । यदुक्तं-जीवाइ नवपइत्थे जो जाणइ तस्य होइ सम्मत्तं" पुनर्विशिकायां "दाणाइआ ओ एअं मि चेवसहलाओहंति किरियाओ । एयाओ विहु जम्हा मोक्त्वफलाओ पराओ अण ॥ १ ॥ इति वचनात् । तत्सम्यक्तवं विना धर्मे धर्ममार्गे संचरन् प्रवर्तन् खिद्यति क्विद्यति क इव जालम्ध इव । यथा जालम्धो जन्मान्धः पुमानमार्गे पिथ संचरन् खिद्यति गर्त्तापातादिदुःखमनुभवति तथैव सम्यक्तवहीनोऽपि भवकूपनिपाती स्यात् । ततः सम्यक्तवं विना येऽगीतार्थास्तथाऽगीतार्थनिश्रिताः सस्याभिनिवेशेन हठमार्गे पतिताः सन्तः सर्व एते जालम्धप्राया ज्ञातव्याः । भन्यं ज्ञात्वा

कुर्वन्ति तद्पि तेषां निष्फलमेव भवेत् । उक्तं च "सुंद्र बुद्धी इकयं वहुयं पिण सुंद्रं होई" ततो द्रव्यगुणपर्यायभेदपरिज्ञानाच्छुद्धं सम्यक्त्वं आद्र्तव्यम् ॥ २ ॥

च्याख्यार्थ:--इन द्रव्यआदिके ज्ञानसे निश्चित सम्यक्त्व कहागया है; वह सम्यक्तव कैसा है; सो कहते हैं; समस्त जीवोंकी रक्षारूप दया, अभयआदि भेदसे पांच प्रकारका दान, और किया अर्थात् शास्त्रोक्त कर्त्तव्य यह जिसके मूल हैं। इस विषयमें अन्यत्र कहा भी है; कि—"जो जीवआदि नव ९ पदार्थोंको जानता है; उसीके सम्य-ग्दर्शन होता है। पुनः विंशिकानामक ग्रंथमें ऐसा वचन है; कि-एक सम्यक्त्वके होने-पर दानादिक समस्त किया सफल होती हैं; और इसीसे यह मोक्षफला अर्थात मोक्ष-रूप फलको देनेवाली हैं; और सम्यक्तवके विना जो क्रिया हैं; वह मोक्षरूप फलको देने-वाली नहीं हैं। इसलिये सम्यक्त्वके विना धर्मरूप मार्गमें प्रवृत्तहुआ मनुष्य ऐसे दु:खोंको पाता है; जैसे मार्गमें चलता हुआ जन्मान्ध । तात्पर्य यह कि-जैसे जन्मसे ही अंधा जीव मार्गमें चलताहुआ खड्डेमें गिरनेआदिरूप दुःखका अनुभवन है; वैसे ही सम्यक्त्वसे जो हीन है; वह भी संसाररूपी कृपमें गिरनेवाला होता है। इस हेतुसे सम्यक्त्वके विना जो अगीतार्थ हैं; अथवा अगीतार्थनिश्रित हैं; वह सब अपने अपने दुराग्रहके वशसे हठरूप मार्गमें गीरे हुए हैं; इसिछिये इन सर्वोको जन्मान्धींके सदृश समझने चाहियें। और वह लोग जिस कर्म धर्मको आच्छा समझके करते हैं; वह भी उनके निष्फल ही होता है। ऐसा कहा भी है ''सन्दर बुद्धिसे अर्थात उत्तम परि णामोंसे कियाहुआ उत्तम काम भी सम्यक्त्वके विना सुन्दर नहीं होता'' इसिलिये द्रव्यगुण तथा पर्यायोंके जाननेसे जो शुद्ध सम्यक्त्व होता है; उसका आद्र करना चाहिये अर्थात् द्रव्यादिके ज्ञानसे सम्यक्तको गुद्ध करके उसका ग्रहण करना चाहिये॥२॥

अथ नामतः पण्णां द्रव्याणां कीर्त्तनमाह ।

अब नामसे स्वमाननीय पट् द्रव्योंका कथन करते हैं।

सूत्रम्। धर्माधर्मी नभःकाली पुद्गलो जीव इत्यमी। अधीः षट् समये ख्याता जिनैराद्यन्तवर्जिताः॥३॥

सूत्रभावार्थ:—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इस प्रकार इन आदि अन्तवर्जित छे द्रव्योंको श्रीजिनेन्द्रोंने जिनागममें कहा है ॥ ३॥

व्याख्या । धर्मश्चाधर्मश्च धर्माधर्मी धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायौ । तथा नभःकालौ नभश्च कालश्च नभःकालावाकाशास्तिकायकालौ । पुद्रलः पुद्रलद्रव्यम्, जीवो जीवद्रव्यम्, इत्यमी षद् । न न्यूना नाधिकाः । अर्थाः पदार्थाः समये श्रीजिनप्रणीतागमे ख्याताः कथिताः श्रीजिनैः श्रीवीतरागैः । कीदृशा आद्यन्तवर्जिता अनाद्यनिधना इत्यर्थः । एतेषां पण्णां कालं वर्जयित्वा पश्चास्तिकायाः अस्तयः प्रदेशास्तै कायन्ते शब्दायन्त इति पश्चा-

स्तिकायाः । कालस्यास्तिकायात्वं कथं नास्ति तत्राह । "अपएसिए काले" कालद्रव्यस्य प्रदेशसंघातो न विद्यते यतः एकः समयोऽन्यस्मात्समयान्न प्रिष्ठिष्यत एवमन्येषामि । तथा हि "धर्माधर्माकाशादावेकैकमतः परं त्रिकमनन्तम् । कालं विनास्तिकाया जीवमृते चाप्यकर्तृणि ॥ १ ॥ इत्यादि साधर्म्यवैधर्म्यादिभेदपरिज्ञापनाय प्रशमरत्यादिभन्था विलोक्तीयाः । पुनरेतेषां भेदाः 'परिणामजीवमुत्ता सपएसाइयारित्तिकिरियाय । निश्चं कारणकत्ता सव्वगद्द्यर अपदेशा ॥ १ ॥ ३ ॥

च्याच्यार्थ:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलद्रव्य और जीवद्भव्य यह षट् पदार्थ न इनसे न्यून (कम) और न अधिक श्रीवीतरागदेवेंने अथवा आचार्योंने श्रीजिनविरचित आगममें कहे हैं। कैसे हैं; यह छ पदार्थ? कि-आदि अन्त शून्य हैं; अर्थात् न तो कभी इनकी आदि हुई और न कभी इनका अन्त होगा। इन छहों पदार्थीमेंसे कालको छोडकर वाकीके पांच अस्तिकाय हैं। अस्ति प्रदेशका नाम है; अतः प्रदेशोंसे जो कायन्ते "कहे जांय" वह अस्तिकाय कहलाते हैं। अब कालके अस्तिकायता क्यों नहीं है; इस विषयमें कहते हैं; कि-काल अप्रदेशी है; अर्थात् कालद्रव्यके प्रदेशोंका संघात नहीं है; क्योंकि-एक समय दूसरे समयसे भेदको प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार अन्य घटिकाआदिका भी भेद नहीं हो सकता है। और धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह तीनों एक एक हैं; और इनके आगेके तीन अर्थात् काल पुद्गल और जीव ये तीनों द्रव्य अनन्त हैं। तथा कालको छोड़के सब अस्तिकाय हैं; और जीवके सिवाय सब अकर्ता हैं। इत्यादि साधर्म्य, वैधर्म्यआदि भेदोंके जाननेके लिये प्रशमरतिआदि प्रन्थ देखने चाहियें। और इन छहों द्रव्योंके समस्त भेद यह हैं. परिणामित्व, जीवन्व, मूर्त्तत्व, सप्रदेशत्व, एकत्व, क्षेत्रत्व क्रियावन्व नित्यत्व कारण-वत्त्व कर्तृत्व सर्वगतत्व असर्वतत्त्व और प्रदेशत्व । इन भेदोंसे साधर्म्य वैधर्म्यका ज्ञान करना चाहिये अर्थात जो धर्म जीवमें और पुद्गलमें दोनोंमें एकसे हों उनमें तो जीव पुदूरुके साधर्म्य है; और जो भिन्न २ हों उनमें वैधर्म्य है; ऐसे सबमें समझना ॥ ३ ॥

अथ धर्मास्तिकायस्य लक्ष्णमाह।

अब धर्मास्तिकायका लक्षण कहते हैं

सूत्रम्। परिणामी गतेर्धर्मो भवेत्पुद्गलजीवयोः। अपेक्षाकारणाह्योके मीनस्येव जलं सदा॥४॥

सूत्रभावार्थः — लोकमें अपेक्षा कारण होनेसे पुद्गल तथा जीवके गमनका परि-णामी धर्मास्तिकाय है; जैसे मीनके सदा गतिपरिणामी जल है॥ ४॥

व्याख्या। गतेर्गमनस्य परिणामी अर्थाद्रतिपरिणामी पुद्रस्जीवयोर्धमों धर्मास्तिकायो भवेत्। कस्माहोके चतुर्दशरङ्गवात्मकाकाशस्यण्डे अपेक्षाकारणात् परिणामन्यापाररहि-तात्, अधिकरणरूपौदासीन्यहेतोश्च तत्र दृष्टान्तमाह। मीनस्येव जस्नं सदेति सदा निर- न्तरं जलं यथा मीनस्य मत्स्यस्य गतिपरिणामि अस्ति अपेक्षाकारणात् । गमनागमनादि-क्रियापरिणतस्य मत्स्यस्य जलं अपेक्षाकारणमस्ति तथैव धर्मद्रव्यमपि ज्ञेयम्। निष्कर्षस्त्वयम्— स्थले अपिक्रयाव्याकुलतया चेष्ठा हेत्विच्छाभावादेव न भवति । न तु जलाभावादिति गत्य-पेक्षाकारणे मानाभाव इति चेन्न । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां लोकसिद्धव्यवहारादेव तद्धेतुत्विस-द्धेरन्यथान्त्यकारणेनेतराखिलकारणासिद्धिप्रसंगादिति दिक् ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थ:--जीव तथा पुद्रलके गति अर्थात् गमनमें परिणामी धर्मास्तिकाय द्रव्य होता है; क्योंकि—वह धर्म द्रव्य लोकमें अर्थात् चतुर्दश (चोदह १४) रज्जुप्रमाण जो आकाशखंड है; उसमें यह धर्म द्रव्य अपेक्षा कारण है; और गमनरूप अथवा गमनकरानेरूप व्यापारसे रहित अधिकरणस्वरूप उदासीन कारण है। इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं। जैसे जल मीन (मत्स्य)की गतिमें सदा परिणामी है क्योंकी-वह जल अपेक्षा कारण है: अर्थात गमन तथा आगमनआदि कियामें परिणत मत्स्यके जल अपेक्षा कारण है। उसी प्रकार गमनमें परिणत जीव पुद्गलके धर्मद्रव्य भी अपेक्षा है; ऐसा जानना चाहिये। भावार्थ तो यह है: कि-वह मीन स्थलमें अपनी गमरिकयामें व्याकृतित होता है: और उस-व्याकुलतासे जो गमनकी चेष्टाकी कारणभूत इच्छा है; वह इच्छा ही नहीं होती इसीसे वह मीन स्थलमें गमन नहीं करता है। वहां कोई शंका करता है; कि-मीन-स्थलमें जो गमन नहीं करता है: सो जलके अभावसे नहीं करता है: और तम जो जलको गतिमें अपेक्षा कारण मानते हो इसमें कोई प्रमाण नहीं है? उसका समाधान यह है; कि-यह ठीक नहीं क्योंकि-अन्वय और व्यतिरेकसे जो लोकमें प्रसिद्ध व्यवहार है: उसीसे उस जलमें गमनकी कारणता सिद्ध होती है; अर्थात जिसके होनेपर कार्य हो और न होनेपर न हो यही अन्वयव्यतिरेक है; और जिसमें अन्वयव्यतिरेक घट जाय वहीं लोकमें कारण माना जाता है; इस प्रसिद्ध व्यवहारसे जल भी मीनकी गतिमें कारण है: क्योंकि-जलके होनेपर मीन गमन करता है; और जलके अभावमें नहीं इसिलये जल गमनमें कारण है। यदि ऐसा न मानोगे तो अन्तके कारणसे अन्य सब कारणोंकी असिद्धिका प्रसंग होगा। यह संक्षेपसे धर्मद्रव्यका लक्षण हुआ॥ ४॥

अथाधर्मास्तिकायस्य लक्षणं कथयन्नह । अब अधर्मास्तिकायका लक्षण कहते हैं ।

सूत्रम् । स्थितिहेतरधर्मः स्यात्परिणामी तयोः स्थितेः । सर्वसाधारणो धर्मी गलादिईव्ययोईयोः ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थ:—जीव तथा पुद्गलकी स्थितिका परिणामी और स्थितिका हेतु अधर्मद्रव्य है; और यह गित तथा स्थितिकष मिखल साधारण धर्म इन धर्म अधर्म- रूप दो ही द्रव्योंमें है ॥ ५ ॥

व्याख्या। तयोः पुद्रवजीवयोः स्थितिपरिणामी अपेक्षाकारणं स्थितिहेतुश्चाधर्मास्तिका-यद्रव्यं भवेत्। गतिस्थितिपरिणतो गत्यादिरुच्यते। ईदृशोऽखिलसाधारणो धर्मो द्वयोर्द्रव्य-योरेव नान्येषां धर्माधर्मी विहाय गतिस्थिती कापि न जायेते। तथा च गतिस्थितिपरिण-तानां सर्वेषां द्रव्याणां यदेकैकद्रव्यलाघवेन कारणं सिद्धयित तत्कारणमेतयोरेव द्वयोर्द्रव्य-योरित्यर्थः। तेनच झषादिगत्यपेक्षाकारणं जलादिद्रव्येषु वर्त्तते। तत्र धर्मास्तिकायादिद्रव्यल-क्षणस्य नातिव्याप्तिभेवतीति निष्टङ्कः॥ ५॥

व्याख्यार्थ:—जीव तथा पुद्गलके स्थितिपरिणामी अर्थात् अपेक्षाकारण और स्थितिका हेतु अधर्मद्रव्य है। गित और स्थितिमें परिणत जो धर्म सो गत्यादि कहलाता है। ऐसा समस्तमें साधारण धर्म दो ही द्रव्योंमें है; अन्य द्रव्योंमें नहीं अर्थात् धर्मद्रव्यको छोड़कर अन्य किसी द्रव्यमें गित नहीं है; और अधर्मद्रव्यके सिवाय अन्य किसी द्रव्यमें स्थिति नहीं है। और इससे यह सिद्ध हुआ कि—गित तथा स्थितिमें परिणत जो सर्व द्रव्य हैं; उनमें एक एक द्रव्यके लाघवसे जो कारणता सिद्ध होती है; वह कारणता इन्हीं दोनों द्रव्योंमें है। इससे मत्स्यादिके गमनकी जो अपेक्षा कारणता जल आदि द्रव्योंमें है; वहां धर्मास्तिकायादिद्रव्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं हुई क्योंकि—वहां भी धर्मद्रव्यादि ही गितिआदिमें कारण हैं; यह तार्त्पर्य है॥ ५॥

अथ धर्मास्तिकायद्रव्यस्य विषयिप्रमाणं प्रतिदिशन्नाह ।

अब धर्मास्तिकाय द्रव्यकी सत्ताके विषयमें प्रमाणका उपदेश कहते हुए आगोका स्होक कहते हैं।

सूत्रम्। सहजोध्वंगमुक्तस्य धर्मस्य नियमं विना। कदापि गगनेऽनन्ते भ्रमणं न निवर्त्तते॥६॥

सूत्रभावार्थः—स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करनेवाले मुक्त जीवके धर्म द्रव्यके नियम विना अनन्त आकाशमें परिभ्रमण जो है; वह कभी भी नहीं निवृत्त होगा।

व्याख्या। सहजोर्ध्वगमुक्तस्य निसर्गोर्ध्वगामिसिद्धजीवस्य धर्मास्तिकायप्रतिवन्धं विना अनन्ते अतटे गगने लोकालोकव्यापिनि भ्रमणं गितर्न निवर्त्तते न व्याहन्यत इति। किं च यदि गत्यां धर्मास्तिकायद्रव्यस्य प्रतिवन्धकत्वं न स्यात्तदा सहजोर्ध्वगामिसिद्धानामेकस्मिन्समये लोकाप्रयायिनां तथैवालोकेऽनन्ते प्रसर्पतामद्यापि गमनस्योर्ध्वप्रवृत्तिलक्षणस्य निवृत्तिरिप न स्यात्। कथं तत् अनन्तलोकांशप्रमाणमलोकाकाशमस्ति। लोकाकाशस्य गति-हेतुत्वं चास्ति ततोऽलोके सिद्धगतिनीस्ति इत्थं च कथियतुं न शक्यते। यतो धर्मास्तिकायं विना लोकाकाशस्य व्यवस्थैव न संपद्यते। धर्मास्तिकायविशिष्टाकाश एव हि लोकाकाशस्य स्वयस्थैव न संपद्यते। धर्मास्तिकायविशिष्टाकाश एव हि लोकाकाशस्य सस्य च प्रतिहेतुत्वे घटादाविप दण्डिविशिष्टाकाशात्वेनैव हेतुतास्यादिति न किञ्चिदेतत्। अस्यच अन्यस्वभावत्वेन कल्पिताकाशस्यभावान्तकल्पना चायुक्ता। तस्मादृतिनिवधनोधर्मास्तिकायोऽवश्यमेव प्रमाणयितव्यः। तदुक्तं "चल्रणसहावो धम्मो पुग्गलजीवाण" इत्यादि समयप्रमाणमप्यत्र ध्येयम्।। ६।।

व्याख्यार्थः स्वभावसे ऊर्ध्वगामी सिद्ध जीवका यदि धर्मास्तिकाय द्रव्यके प्रतिबन्ध विना अनन्त अर्थात् अतट (अपार) तथा लोक और अलोक दोनोंमें व्याप्त ऐसे आकाशमें परिभ्रमण जो है; सो नहीं रुक सक्ता है। और यदि गमनमें धर्मास्तिकाय-द्रव्यका प्रतिबन्धकत्व न हो तो एक समयमें लोकके अग्रभागमें जानेवाले और जैसे लोकमें गमन किया उसी प्रकार अलोकमें गमन करनेवाले तथा स्वभावसे ऊर्ध्वगमन-कारक ऐसे सिद्धोंके ऊर्ध्वगमनरूप जो गमन है; उसकी निवृत्ति (रहितता) अवतक भी न हो क्योंकि—अनन्तलोकांशप्रमाण अलोकाकाश है, अर्थात् लोकसे अनन्त गुणा अलोक है। "लोकाकाश गतिमें हेत् है; इसलिये अलोकमें सिद्धोंका गमन नहीं है" ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि-धर्मास्तिकायके विना लोकाकाशकी व्यवस्था ही नहीं हो सकती है। क्योंकि—धर्मास्तिकायविशिष्ट (सहित) जो आकाश है: वह ही लोका-कारा है; और उस लोकाकाराको ही यदि गमनका कारण मानें तो घट आदिमें भी दण्डविशिष्ट जो आकाश है; वह हेतु हो जावे। इसिलये लोकाकाशको गतिमें कारण मानना यह पक्ष अकिंचित्कर (अयुक्त) हैं। और भी अन्यस्वभावयुक्तत्वरूपसे जो किंपत आकाश है; उसके अन्य स्वभावकी कल्पना करना यह भी अयुक्त है; अर्थात गतिहेतुता धर्मद्रव्यका स्वभाव है; उस गतिहेतुतासे युक्त जो आकाश उसकी लोकाकाश यह कल्पना की गई है; तब उस कल्पित लोकाकाशमें धर्मद्रव्यके स्वभा-वकी कल्पना अयोग्य ही है। इसलिये धर्मास्तिकायको गतिका हेतु अवस्य प्रमाणमें लाना चाहिये अर्थात् मानना चाहिये। और "धर्मद्रव्य पुदृगल और जीवोंको गमन करानेह्रप स्वभावका धारक है" इत्यादि कहा हुआ जो सिद्धान्तका प्रमाण है: उसका भी यहां विचार करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ धर्मास्तिकाये प्रमाणमाह ।

अब अधर्मास्तिकायद्रव्यके विषयमें प्रमाण कहते हैं।

सूत्रम् । स्थितिहेतुर्यदा धर्मी नोच्यते कापि चेद्वयोः । तदा नित्या स्थितिः स्थाने कुत्रापि न गतिर्भवेत् ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थ:—अब यदि जीव पुद्गलकी कही भी स्थितिका हेतुभूत अधर्म द्रव्य नहीं कहोंगे तो पुद्गल और जीवकी नित्य स्थिति ही होगी कहीं भी उनकी गति नहीं हो सकेगी॥ ७॥

व्याख्या । यदा द्वयोः पुद्गळजीवयोः कापि स्थितिहेतुरवस्थानकारणमधर्मास्तिकायो नो-च्यते तदा स्थाने सर्वत्र स्थाने नियता नियामका स्थितिरेव स्थात्, न कुत्रापि गतिर्भवे-दिति । यदि च सर्वजीवपुद्गळसाधारणस्थितिहेतुत्वमधर्मद्रव्यं न कथ्यते किन्तु धर्मा- स्विकायाभावप्रयुक्तगत्यभावेनालोके स्थित्यभाव एवं निगद्तामलोकाकांशेऽपि कस्मिश्चिद्पि स्थानके गतिं विना पुद्रलजीवद्रव्ययोर्नित्यस्थितिः प्रापियतव्या स्थात् । इत्थमिव द्वितीयं गतिस्थितिस्वातक्र्यपर्यायरूपं चास्ति । यथा गुरुत्वलघुत्वयोरेकस्यैकाभावरूपाद्विशेषप्राहक-प्रमाणात् । तस्मात्तथेति । ततः कार्यभेदेऽपेक्षाकारणद्रव्यभेदोऽवश्यं मन्तव्यः । धर्मास्तिका-याभावप्रयुक्तस्थित्यभावेन गतिभावकथनाद्धर्मास्तिकायस्थाप्यपलापो भवेत् , निरन्तरगति-स्वभावेन वा द्रव्यमकर्तुं वा शक्यं तर्हि निरन्तरस्थितिस्वभावेनापि कथं क्रियते । तस्माच्छ्री-जिनवाणीनिष्कर्षमासाद्य धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायेति द्रव्यद्वयमसंकीर्णस्वभावेन भावनी-यमिति ॥ ७॥

व्याल्यार्थ: -- यदि जीव तथा पुद्गलद्रव्यकी कहीं भी स्थितिका कारण अधर्म द्रच्य नहीं मानोगे तो सब जगह नियतहूपसे जीव पुद्गलकी स्थिति ही सिद्ध होगी कहीं भी गति न होगी तात्पर्य्ये यह कि-यदि सब जीव तथा पुद्गलके प्रति साधारण रूपसे स्थितिका हेतुभूत अधर्मद्रव्यको नहीं कहते हो किन्तु धर्मास्तिकायके अभाव-प्रयुक्त जो गतिका अभाव है; उसीसे अलोकमें स्थितिका अभाव है; ऐसा कहते हो तो इस प्रकार कहनेवाले तुझारे मतमें अलोकाकाशमें भी किसी भी स्थानमें गतिके विना पुद्गल और जीवद्रव्यकी नित्य स्थिति प्राप्त करनी होगी यदि अलोकमें धर्म द्रव्य के न होनेसे गति नहीं होती ऐसा कहो तब तो अन्वय व्यतिरेकसे जैसे धर्म-द्रव्यको गतिमें कारणता है; ऐसे ही स्थितिमें अधर्मद्रव्यको कारण मानना पडेगा इस प्रकार गतिकी स्थिति एक स्वतन्त्र पर्याय है; और उसका कारण अधर्मद्रव्य है; न कि-गतिका अभाव स्थिति और धर्मका अभाव अधर्म है; जैसे विशेषसत्ताग्राहक प्रमाण होनेसे गुरुत्व लघुत्वमें एकका एक अभावरूप है; ऐसे ही धर्म अधर्म भी भावरूप हैं; क्योंकि-एक(धर्म)का कार्य गति; और दूसरे(अधर्म)का कार्य स्थिति है; तब कार्यके भेदसे अपेक्षाकारण द्रव्यका भी भेद अवश्य मंतव्य है; और धर्मास्तिकायके अभावप्रयुक्तस्थितिके अभावसे गतिभावका कथन होनेसे धर्मास्तिकाय द्रव्यका भी अपलाप (अभाव) हो जायगा यदि यह कहो कि-निरन्तर गतिस्वभावसे द्रव्य (द्वचणुकादिद्रच्य) कैसे कर सक्ते हैं; तो निरन्तर स्थितिशीलतासे भी द्रव्यकी सिद्धि कैसे कर सक्ते हैं; क्योंकि-जीव पुद्गलोंमें गति किया बिना कुछ भी नहीं होसक्ता इस कारणसे श्रीजिनदेवकी बाणीसे तत्त्वको ग्रहण करके धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय यह दोनों द्रव्य असंकीर्ण(भिन्नभिन्न)स्वभाव हैं; ऐसी भावना अवश्य करनी चाहिये॥ ७॥

अथाकाशद्रव्यस्य लक्षणमाविष्करोति । अब भाकाशद्रव्यके लक्षणको प्रकट करते हैं ।

सूत्रम्। यो दत्ते सर्वेद्रव्याणां साधारणावगाहनम्। लोकालोकप्रकारेण द्रव्याकाद्यः स उच्यते॥८॥ सूत्रभावार्थः—जो साधारणरूपसे सब द्रव्योंको अवगाहन अर्थात् रहनेको देता है; वह आकाशंद्रव्य है; और लोक तथा अलोक इन दो प्रकारोंसे कहा जाता है॥८॥

व्याख्या । य आकाशास्तिकायः सर्वद्रव्याणां साधारणावगाहनं सामान्यावकाशं दसे स द्रव्याकाशो लोकालोकप्रकारेणोच्यत इति । यतः सर्वद्रव्याणां यः सर्वदा साधारणावकाशदाता सोऽनुगत एक आकाशास्तिकायः कथितः सर्वाधार इति । यथा पक्षिणां गगनिमेवित व्यवहारनयदेशभेदेन भवेत् । तहेशीयानुगत आकाश एव पर्यवसन्नः स्यात् । तथा च तत्तहेशोर्ध्वभागावच्छित्रमूर्त्ताभावादिना तद्यावहारोपपत्तिरिति वर्धमानायुक्तं नानवयम् । तस्याभावादिनिष्ठत्वेनानुभूयमानद्रव्याधारांशापलापप्रसंगात्, ताबद्गतिसंधानेऽपि लोकव्यवहारेणाकाशदेशप्रतिसंधयोक्तव्यवहाराच । आकाशस्तु लोकाकाशादिभेदेन द्विधोक्तः । यतः सूत्रम् "दुविहे आगासे पणत्ते लोयागासेय अलोयागासेय" एतद्वेदद्वयम् ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—जो सब द्रव्योंको साधारण(सामान्य) रूपसे अवकाश देता है; वह आकाशास्तिकाय लोक और अलोक इन मेदोंसे आकाशद्रव्य कहलाता है। क्योंकि—जो सब द्रव्योंको सदा अवकाश देनेवाला है; वह अवकाशदातृतारूप एक ही आकाशास्तिकाय सर्वाधार कहा गया है। जैसे कि—पक्षियोंका आधार गगन (आकाश) है; यद्यपि यह व्यवहार नयदेशमेद्से होता है; परन्तु उन र देशोंमें अनुगत जो एक आकाश है; उसीकी इस व्यवहारसे सिद्धि होती है। और उन उन प्रदेशोंमें ऊर्द्धदेशा-वच्छेदसे मूर्तिमत्ताके अभावआदिसे अवकाशदातृत्वरूपसे आकाशके व्यवहारकी उपपत्ति होती है; ऐसा जो वर्धमानआदिका कथन है; सो अयुक्त वा दुष्ट नहीं है। क्योंकि—आकाश अभाव(शून्य) रूपताकी प्रतीति है; तथा सर्वदा अनुभूयमान जो संपूर्ण द्रव्योंकी—आधारताका अंश है; उसके अपलाप (नाश) होनेका प्रसंग है; और जहांतक गतिका संधान है; वहांतक भी लोकव्यवहारसे आकाशदेशप्रतिसंधयोक्त व्यवहार है। और वह आकाश कीकाकाश, और अलोकाकाश इन भेदोंसे दो प्रकारका कहा गया है क्योंकि—"आकाश दो प्रकारके कहे गये हैं; एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश" ऐसा सूत्र है। ८।।

अथैनमेवार्थं मीमांसयन्नाह ।

अब इसी अर्थका विचार करते हुये कहते हैं।

सूत्रम्। धर्मादिसंयुतो लोको ऽलोकस्तेषां वियोगतः। निरवधिः खयं तस्यावधित्वं तु निरर्थकम्॥९॥

सूत्रभावार्थः—धर्मादि द्रव्योंसहित जो आकाश है; वह लोकाकाश है; और जो धर्मआदि द्रव्योंसे शून्य है; वह अलोकाकाश है। और वह स्वयं अवधिरहित है; उसकी अवधिका मानना निरर्थक ही है॥ ९॥ व्याख्या। धर्मीसिकायादिसंयुक्त आकाशो छोकस्तदितरस्त्वछोकः। स च पुनर्निरव-घरपारोऽछोकस्तस्याछोकस्य स्वयमात्मना अविध्त्वमन्तर्गेष्ठ इति। कश्चिदाहात्र यथा छो-कस्य पार्श्वेऽछोकस्यापि पारोऽस्ति तथैवाप्रेऽपि द्वितीयतटे पारो भविष्यतीति बुवाणमुत्तरयति। छोकस्तु भावरूपोऽस्ति तस्याविध्त्वं घटते परन्त्वपेऽछोकस्य केवछमभावात्मकस्याविध्त्वं कथं कल्पते शश्चेङ्गत्वत्। यथा असद्विद्यमानं शश्चेङ्गं न कुत्रापि निरीक्ष्यमाणं विद्यमानव-दाभाति, तथैवैतस्याप्यछोकस्य अविद्यमानस्याविध्त्वं न घटामाटीकते। अथ च भावरूपा-त्मकत्वमङ्गीक्रियते तदा तु पडतिरिक्तमन्यद्रव्यं नास्तीति व्यवहारादाकाशदेशरूपस्य तु तद्-न्तत्वं कथयतां बुद्ध्याघातो जायते। तस्मादछोकाकाशस्त्वनन्तमेव मन्तव्य इति। आकाशो यथा सान्तः शंसितो धर्माधर्मानुभावात् तस्य भावस्तद्भावात्तद्भावः। अछोकाकाशोऽपि सान्तो धर्माधर्मानुभावी भवन्नतिरिक्तद्रव्यत्वमापत्स्यते। तस्माद्यथोक्तमेव न्याय्यम्। यावता आकाशेन धर्माधर्मी व्याप्य स्थितौ तावता तत्परिणामशालिना आकाशेनापि भवितव्यम्। तयोरभावात्तस्याप्यभावः सुपरिशीलनीय इति।। ९।।

ठ्याख्यार्थ:--धर्मास्तिकायआदि द्रव्योंसे संयुक्त जो आकाश है; वह लोकाकाश है; और उन द्रव्योंसे जो असंयुक्त है; वह अलोकाकाश है; और वह अलोक निरवधि अर्थात अपार (अन्तरहित) है: क्योंकि-उस अलोकके अपने स्वरूपसे अवधित्व कहना यह निरर्थक है; अर्थात् अलोकाकाश अवधिसहित है; यह कहना व्यर्थ है। अब यहां कोई शंका करता है; कि-''जैसे लोकाकाशके पासमें अलोकाकाशका पार होता है; ऐसे ही आगे भी अर्थात् दूसरे तटमें भी उसका पार अवस्य होगा"? इस प्रकारकी शंका करनेवालेको उत्तर देते हुये कहते हैं; कि-लोकाकाश तो धर्मादिद्रव्योंका अधिकरण होनेसे भावरूप है; इसवास्ते उसका तो अन्त घटित होता है; परन्त उसके आगे धर्मादि द्रव्योंसे शून्य केवल अभावस्वरूप जो सुस्सेके सींगके समान अलोकाकाश है; उसके अवधिसहितता कैसे कल्पित हो सकती है। जैसे अविद्यमान जो सुस्सेका सींग है; उसको देखो तो वह कहीं भी विद्यमान पदार्थके समान देखनेमें नहीं आता है; ऐसे ही अविद्यमान जो अलोक है; इसके भी मर्यादाका कथन करना है; सो संगत नहीं है। और यदि इस अलोकाकाशको भावस्वरूप अङ्गीकार करो तो छ दुव्यसे अतिरिक्त (सिवाय) कोई अन्य द्वव्य नहीं है; इस व्यवहारसे आकाशदेशस्वरूप जो अलोकाकाश है; उसके सान्तता कहनेवालोंकी बुद्धिका घात होता है। इसलिये अलोकाकाशको तो अनन्त (अपार) ही मानना चाहिये। आकाश अर्थात् लोकाका-शको जो सान्त कहा है; सो धर्म और अधर्मद्रव्यकी सामर्थ्यसे कहा गया है; और इसीसे वह भावरूप है; और धर्मादिके अभावसे अलोकाकाश अभावरूप है। यदि अलोकाकाशको भी सान्त मानोगे तो वह अलोकाकाश धर्म अधर्मका अनुभावी (सामर्थ्ययुक्त) होताहुआ छ द्रव्योंसे भिन्न द्रव्यताको प्राप्त हो जायगा। इसलिये

अलोकाकाशके विषयमें पूर्वकथित जो अवधिरहितता (अनन्तपना) है; सो ही युक्ति-युक्त है। तात्पर्य यह है; कि-जितने आकाशदेशमें धर्म अधर्म व्याप्त होकर स्थित हैं; उतने ही परिमाणसहित आकाशको भी होना चाहिये और जहां धर्म अधर्म इन दोनोंका अभाव है; वहां आकाशका भी अभाव ही समझना चाहिये अर्थात् अलोका-काश अनन्त है; न कि सान्त ॥ ९॥

अथ कालभेदानाह।

अब कालके भेदोंको कहते है।

सूत्रम् । वर्त्तनालक्षणः कालः पर्यवद्रव्यमिष्यते । द्रव्यभेदात्तदानन्त्यं सूत्रे ख्यातं सविस्तरम् ॥ १०॥

सूच्रभावार्थः—वर्त्तनालक्षण जो काल है; वह पर्यवद्रव्य माना गया है; और द्रव्यके भेदसे उस कालका अनन्तपना उत्तराध्ययनसूत्रमें विस्तारसे कहा गया है॥ १०॥

व्याख्या । कालस्तु परमार्थतो द्रव्यं नास्तीति शङ्कमानं निराकुरुते । वर्त्तनेति—सर्वेषां द्रव्याणां वर्त्तनालक्षणो नवीनजीर्णकरणलक्षणः कालः पर्यायद्रव्यं इच्यते । तत्कालपर्याये- व्वनादिकालीनद्रव्योपचारमनुसृत्य कालद्रव्यमुच्यते । अत एव पर्यायेण द्रव्यभेदात्तस्य कालद्रव्यस्थानन्त्यम् । अनन्तकालद्रव्यभावनं सूत्रे उत्तराध्ययने सविस्तरं ख्यातम्, तथा च तत्सूत्रम्—"धम्मो अधम्मो आगासं द्व्वमिकिकमाहियं । अणंताणि य द्व्वाणि कालो पुग्गल जंतवो" । १ । एतदुपजीव्यान्यत्राप्युक्तम् । "धर्माधर्माकाशादेकैकमतः परं त्रिकमन्तन्तमिति ततो जीवद्रव्यमप्यनन्तं तस्य च वर्त्तमानपर्यायस्थार्थं कालद्रव्यमथा नन्तिमन्तुक्तमागमे । विस्तरस्तु ततोऽवधारणीयः ॥ १० ॥

व्याख्यार्थ:—परमार्थमें कालद्रव्य नहीं है ? ऐसी शंका करनेवालेको "वर्तना" इत्यादि सूत्रसे निराकृत करते हैं। सब द्रव्योंका वर्त्तनालक्षण काल है; अर्थात् द्रव्योंको नवीन (नये) और जीर्ण (पुराने) करनेवाला जो है; वहीं काल है; और यह पर्यायद्रव्य माना गया है। उन कालके पर्यायोंमें अनादि कालसे द्रव्यके औपचरिक व्यवहारका अनुसरण करके "कालद्रव्य" यह कहा जाता है। इसीलिये पर्यायके द्वारा द्रव्यका भेद होनेसे उस कालद्रव्यकी भी अनन्तता है। कालद्रव्य अनन्त है; इसकी सिद्धि उत्तराध्ययन-सूत्रमें विस्तारसिहत कही गई है। और उस उत्तराध्ययनका सूत्र यह है; "धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह एक एक कहेगये हैं; और काल पुद्गल तथा जीव यह अन्तके तीनों द्रव्य अनन्त हैं॥ १॥" इसी सूत्रके आधारसे अन्यत्र भी कहा है; कि—धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह तीनों एक एक हैं; और इनसे आगेके तीनों द्रव्य अर्थात् काल, पुद्गल और जीव यह अनन्त हैं। इस हेतुसे जीवद्रव्य भी अनन्त है; और उस अनन्त जीव द्रव्यके वर्त्तमान जो अनन्त पर्याय हैं; उनकेलिये कालद्रव्य भी अनन्त है; ऐसा आगममें

कहा है। और इस कालद्रव्यका विस्तारसे वर्णन भी उन्हीं आगर्मोसे अवधारण करना चाहिये॥ १०॥

अथ कण्ठतोऽपि सूत्रे जीवाजीवाभ्यामतीतकालः कथितोऽतस्तमेव तथैव सूत्रयन्नाह । अब कंठसे भी सूत्रमें जीव और अजीवसे अतीत काल कहागया है; इसलिये उस कालको उसी प्रकार सूत्रित करते हुये कहते हैं।

सूत्रम्। जीवाजीवमयः कालः समये न पृथकृतः। इत्येके संगिरन्तेऽत्र धारयन्तः ग्रुभां मतिम्॥ ११॥

सूत्रभावार्थ:—कितने ही ग्रुम बुद्धिको धारण करते हुये आचार्य इस विषयमें यह कहते हैं; कि-सिद्धान्तमें कालको जीव, अजीवरूप ही माना गया है; जुदा नहीं किया गया ॥ ११ ॥

व्याख्या। "समये सिद्धान्ते जीवाजीवमयो जीवाजीवरूपः कालः कथितः पृथग् भिन्न-स्ताभ्यां न कृतस्ततो भिन्नः कथं कथ्यते" इति पूर्वोक्तमेक आचार्याः संगिरन्ते भापन्ते अत्र। किं कुर्वन्तः शुभां विशुद्धां मितं बुद्धिं धारयन्तः शुद्धबुद्धिमतां सुधाराणां यथोक्तश्री-जिनप्रणीततत्त्ववेत्तृणां प्राणिनां सम्यक्त्वावाप्तिः सुलभा भवतीति ध्येयम्। तथा च गौत-मेन भद्रकपरिणामशालिना भगवान् पृष्टः । तदाहेति भगवन् किमयं कालो जीवस्तथा जीवश्चेति प्रश्ने भगवान्नाह्। गौतम जीवोऽपि कालः, अजीवोऽपि कालः तदुभयं काल एव जीवाजीवयोः कालेनोपजीव्योपजीवकभावसंबन्धः संतिष्ठत इति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:—समय अर्थात् जिनसिद्धान्तमं जीव तथा अजीवमय अर्थात् जीव और अजीवरूप काल कहागया है; तात्पर्य्य यह कि—कालको जीव और अजीव इन दोनोंसे भिन्न नहीं किया इस कारण इस कालद्रव्यको तुम जीव अजीवसे भिन्न कैसे करते हो अर्थात् जीव अजीवसे जुदा कालद्रव्य क्यों मानते हो। इस प्रकार यह पूर्वोक्त सिद्धान्त विशुद्ध वृद्धिके घारक एक आचार्य कहते हैं। इस कथनसे शुद्ध वृद्धिके घारक उत्तम धारणावाले और श्रीजिनेन्द्र देवने जैसे कहे वैसे ही तत्त्वोंके ज्ञाता भव्यजीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्ति सुलभ होती है; यह विचार करना चाहिये। सो ही दिखाते हैं; कि—भद्र परिणामोंके घारक गौतमस्वामीने एक समय श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा कि—हेभगवन्! यह काल जीव है; वा अजीव है! इस प्रकार प्रश्न करनेपर श्रीमगवान् बोले कि—हे गौतम! जीव भी काल है; और अजीव भी काल है; इसलिये जीव तथा अजीव दोनों काल ही हैं; क्योंकि—जीव तथा अजीवका कालके साथ उपजीव्यउपजीवकमाव सम्बन्ध पूर्णरूपसे स्थित है। ऐसा भगवान्का वचन है; इसलिये यह काल जीव अजीवरूप ही है, इनसे भिन्न नहीं ॥ ११॥

पुनस्तदेवाह ।

पुनः उसी कालद्रव्यके विषयमें कहते हैं।

सूत्रम् । आहुरन्ये भचकस्य विश्वेचारेण या स्थितिः। कालोऽपेक्षाकारणं च द्रव्यमित्यपि पश्चमे ॥ १२॥

सूत्रभावार्थ:— ओर अन्य आचार्य कहते हैं; कि-संसारमें ज्योतिश्चक्रके संचारसे जो स्थिति है; वह काल है; और कितने ही कालको अपेक्षाकारण कहते हैं; तथा कितने ही कालको द्रव्य कहते हैं।। १२॥

व्याख्या। अन्ये आचार्या एवं कथितवन्तो भचकस्य ज्योतिश्चकस्य चारेण या विश्वे स्थितिरवस्थाविशेषः स काल इत्यभिधीयते । तथा च वर्तुलाकारं ज्योतिश्चकं तस्य चारेण परत्वापरत्वनवपुराणादिभावस्थितिहेतुः तस्यापेक्षाकारणं मनुष्यलोके ह्यर्थस्य सूर्यिकयोपना-यकद्रव्यचारक्षेत्रप्रमाणमेवोपकल्पनं घटते । तत एताहशं कालद्रव्यं कथ्यते । तत एव भगवत्यक्षे "कईणं भंते दव्या पत्रत्ता । गोयमाइव्यं पण्णत्ता । तं जहा धमन्त्रिकाए जाव अद्धासमये ।" एतद्वचनमस्ति तस्य निरुपचरितव्याख्यानं घटते । तथा च वर्त्तनापर्यायस्य साधारणापेक्षा न कथ्यते तदा तु गतिस्थित्यवगाहनापेक्षासाधारणकारणत्वेन धर्माधर्मास्ति-कायो सिद्धौ जातौ तत्राप्यनाश्वास आयाति । अथ च "अर्थयुत्त्या प्राह्ममस्ति तस्मात्केवल्यमाइयेव प्राह्मास्ति परन्तु कथं संतोषपृती भवेताम् ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:-अन्य आचार्योंने इस प्रकार निरूपण किया है: कि-ज्योतिश्वक्रके संचा-रसे जो संसारमें स्थिति अर्थात् अवस्थाविशेष है; वही काल इस प्रकार कहा जाता है। सो ही स्पष्ट करके दिखाते हैं: कि-गोलाकार जो ज्योतिश्वक है: उसके संचारसे परत्व अपरत्व तथा नवीन पुराणआदिरूप जो पदार्थोंकी स्थिति है; उसका हेत अर्थात अपेक्षा कारण काल है। क्योंकि-मनुष्यलोकमें सूर्यकी जो गतिरूपा किया है: वही पदार्थोंकी उपनायिका है; अर्थात् उन २ पर्यायोंमें पदार्थोंको प्राप्त करनेवाली सूर्यकी किया है; और यह कल्पना जहांतक द्रव्योंका संचार क्षेत्र है; अर्थात् जहांतक द्रव्योंका संचरण होता है; वहांतक कालद्रव्यकी कल्पना घटित होती है। अत एव श्रीभगवतांगसूत्रमें भी यह वचन है। "कईणं भ्रंते दब्बापन्नत्ता गोयमाददब्वं पणत्ता नं जहा धमन्थिकाए जाव अद्धासमये" अर्थात् हे भगवन् ! द्रव्य के हैं, तब स्वामीने कहा कि-हे गौतम! ६ द्रव्य हैं: वह जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, जीव पुदूछ और काछ। उसका यह निरुपचरित व्याख्यान संगत होता है । और यदि वर्त्तनापर्यायके साधारण अपेक्षा न कहें तो गति और स्थितिके अवगाहनमें अपेक्षारूप साधारण कारणतासे धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय सिद्ध होजांय परन्त वहां भी अविश्वास होता है; और यह बात अर्थयुक्तिसे प्राह्य है। उससे केवल आज्ञासे ही प्रहण करने योग्य है; परन्तु संतोष और धैर्य कैसे होवें ॥ १२ ॥

सूत्रम्। एतन्मतद्वयं धर्मसंग्रहिण्यां च भाष्यके। अनपेक्षितद्रव्यार्थिकमते तस्य योजना॥१३॥

सूत्रभावार्थ: कालके विषयमें यह दोनों मत धर्मसंग्रहणीमें तथा भाष्यमें प्रतिपा-दित हैं; और अनपेक्षित द्रव्यार्थिकनयके मतमें इसकी योजना होती है ॥ १३ ॥

च्याख्या। एतन्मतद्वयं धर्मसंप्रहिण्यां श्रीहरिभद्रसूरिणा व्याख्यातम्। तथा च तद्राथा "जं वत्तणाई रूवो कालो द्व्वस्स चेव पजाओ। सो चेव तवो धम्मो कालस्सवजस्स जोण लोएति। १।" एवमेतन्मतद्वयमलं श्रीहरिभद्रसूरिसंमतधर्मसंप्रहिणीसूत्रोक्तं ज्ञेयम्। तथा च एतन्मतद्वयं भाष्यके श्रीतत्त्वार्थभाष्येऽपि वाचकैस्तथैव प्रणीतमस्ति। तथा च तद्भन्थः— "कालश्चेत्यके" इति वचनाहितीयमतं श्रीतत्त्वार्थव्याख्याने समर्थितम्। पुनस्तस्य कालस्यानपेक्षितद्रव्यार्थिकनयमते योजना युक्तिश्च भवति। तथा हि स्थूललोकव्यवहारसिद्धोऽयं कालोऽपेक्षारहितश्च ज्ञेयः। अन्यथा वर्त्तनापेक्षाकारणत्वेन यत्कालद्रव्यं साधितं तत्पूर्वाप-रादिव्यवहारविलक्षणपरत्वापरत्वादिनियामकत्वेन दिग्द्रव्यमपि सिद्धं स्यादिति। अथ च "आकाशमवगाहाय तद्दनन्या दिगन्यथा। तावप्येवमनुच्लेदात्ताभ्यां चान्यदुदादतम्। १।" इति सिद्धसेनदिवाकरकृतनिश्चयद्वात्रिंशिकार्थं विमृश्याकाशादेव दिकार्थं प्रसिद्ध्यतीति। इत्थमङ्गीकुर्वतां कालद्रव्यं कार्यमपि कथंचित्तत एवोपपत्तिः स्यात्। तस्मात्कालश्चेत्येके इति सूत्रमनपेक्षितद्रव्यार्थिकनयेनैवेति सूक्ष्मदृष्ट्या विभावनीयम्।। १३।।

च्याख्यार्थ:—यह दोनों मत श्रीहारेभद्रस्रिके मान्य जो धर्मसंग्रहणी सूत्र है; उसमें कहे हुवे जानने। उस धर्मसंग्रहणीसूत्रकी गाथा यह है; "जं वत्तणाई रूवो कालो दब्बस्स चेव पजाओ। सो चेव तवो घम्मो कालस्सव जस्स जोण लोएति। १। और यह ही दोनों मत श्रीतत्त्वार्धाधिगमभाष्यमें श्रीसिद्धसेनजीनें भी इसी प्रकार कहे हैं। और तत्त्वार्थसूत्र यह है "कालश्चेत्येके" (काल भी द्रव्य है; ऐसा एक आचार्य कहते हैं) इस सूत्रमें एके इस पदमें दूसरा मत इस सूत्रके व्याख्यानमें समर्थित कियागया है। और उस कालकी योजना अनपेक्षित द्रव्यार्थिकनयके मतमें होती है। सो ही दिखाते हैं; कि—यह काल स्थूल (मोटा) जो लोकव्यवहार है; उससे सिद्ध है; और अपेक्षारहित है। यदि ऐसा न हो तो जैसे वर्त्तनाका अपेक्षारह्य कारण होनेसे काल द्रव्यको सिद्ध किया उसी प्रकार काल जिस पूर्वापरको साधता है; उससे विलक्षण (भिन्न) परत्व अपरत्वआदि व्यवहारका नियामक होनेसे दिशानामक द्रव्य भी सिद्ध हो जाय। और "आकाश अवगाहन होनेके लिये है; और दिशा उस आकाशसे भिन्न नहीं है; यदि ऐसा न हो और काल तथा आकाशसे भिन्न दिशाह्य द्रव्यका उदाहरण दें तो काल और आकाश इन दोनोंके अनुच्छेदसे अर्थात् काल भी रहेगा आकाश भी रहेगा और यह दिशा एक और हो जायगी ऐसे प्रथक् द्रव्य सिद्ध होगा। इस

⁽१) इस गाथाका भावार्थ समझमें नहीं आया।

प्रकार सिद्धसेनजीकृत निश्चयद्वात्रिंशिकाके अर्थको विचारके आकाशसे ही दिशाका काम सिद्ध होता है; ऐसा जानना । और इस प्रकारके सिद्धान्तको स्वीकार करनेवालोंके कालद्रव्य कथंचित् कार्य ही है; अर्थात् मानना ही चाहिये ऐसा विचार होगा और इसीसे परत्व अपरत्वकी सिद्धि होगी । इसलिये "कालश्चेत्येके" यह सूत्र अनपेक्षित द्रव्यार्थिक नयसे ही कहागया है; इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टिसे विचारलेना चाहिये ॥ १३ ॥

अथ कालद्रव्याधिकारं दिगम्बरप्रक्रिययोपन्यसन्नाह ।

अब कालद्रव्यका अधिकार दिगंबरमतकी प्रिक्रयासे उपन्यसित करते हुये कहते हैं।

सूत्रम् । मन्दगलाप्यणुर्यावत्प्रदेशे नभसः स्थितौ । याति तत्समयस्यैव स्थानं कालाणुरुच्यते ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थ:—भाकाशके प्रदेशके स्थानमें मंद्गतिसे प्रमाणु जितने समयमें गमन करता है; उस समय भर्थात् उस समयप्रमाण जो काल है; उसके स्थानमें कालाणु यह व्यवहार होता है ॥ १४ ॥

व्याख्या। मन्द्गत्या मन्दगमनेनाणुः परमाणुर्नभस आकाशस्य प्रदेशे स्थितौ स्थाने यावदिति यावता कालेन गच्छिति तत्समयस्य तत्कालपरिमितस्य कालस्य स्थानं कालाणुरिति व्यवहारे जायत इति। एकस्य नभसः स्थाने मन्दगितरणुर्यावता कालेन सञ्चरित तत्पर्यान्येण समय उच्यते तद्गुरूपश्च यः स कालः पर्यायसमयस्य भाजनं कालाणुरिति। स चैकस्मिन्नाकाशप्रदेश एकेक एवं कुर्वतां समस्तलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो जायन्त इति। इत्थं कश्चिद्परो वद्न जैनाभासो दिगम्बर एवास्ति। उक्तं च द्रव्यसङ्गहे "रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखद्ब्बाणि" इति।। १४।।

व्याख्यार्थ:—आकाशके प्रदेश स्थानमें जितने कालमें मन्दगितसे परमाणु जाता है; उत्तने समयपिरमाण जो काल है; उस कालके स्थानमें "कालाणु" यह व्यवहार होता है। और एक आकाशके स्थानमें मन्दगमनका धारक परमाणु जितने कालमें जाता है; उसी कालको पर्यायरूपसे समय कहते हैं। और समयरूप जो काल है; वह पर्यायरूप समयका भाजन कालाणु है। और वह कालाणु एक आकाशके प्रदेशमें एक है; एक आकाश प्रदेशमें एक है; इस प्रकार जब करते हैं; तब लोकाकाशके समस्त प्रदेशों के समान कालाणु होते हैं। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं; और एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु होते हैं। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं; भौर एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु होते हैं। सो ही द्रव्य संग्रहमें कहा है; कि—"रकोंकी राशिकी तरह वह कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं॥ १४॥

इति दिगम्बरमतमनुसूत्य योगशास्त्राभ्यासनापरोऽपि कश्चिदेतद्वचनसुदाजहार ।

इस दिगम्बरमतका अनुसरण करके योगशास्त्रके अभ्याससे अन्य किसीने भी यह अग्रिम सूत्रोक्तवाक्यका उदाहरण दिया है।

सूत्रम्। योगशास्त्रान्तरश्लोके मतमेतदपि श्रुतम्। लोकप्रदेशेऽत्यणवो भिन्ना भिन्नास्तदग्रता॥ १५॥

सूत्रभावार्थः—योगशास्त्रके अन्तर्गत श्लोकमें हमने यह भी सुना है; कि—लोकाकाश प्रदेशमें जो भिन्न भिन्न कालाणु स्थित हैं; वह भिन्न स्थिति कालद्रव्यकी प्रधानता है १५॥ व्याख्या। योगशास्त्रान्तरश्लोक एतद्पि मतं श्रुतं दिगम्बरमतेऽपि अन्तरश्लोकव्याख्यान्मयीष्टमस्ति। यतो-लोकप्रदेशेऽपि अणवः भिन्ना भिन्नाः अणवस्तन्मुख्यत्वमापाद्यन्ति। लोकप्रदेशे भिन्ना भिन्नाः कालाणवस्त एव मुख्यकाल इति व्यवहारः। तथा च तत्पाठः "लोकाकाशप्रदेशस्थाः भिन्नाः कालाणवस्तु ये। भावानां परिवर्त्ताय मुख्यः कालः स उच्यते। इति" अस्य भावार्थः—लोकाकाशे यावन्तः प्रदेशास्तेषु तिष्ठन्तीति लोकाकाशप्रदेशस्थाभिन्नाः पृथक् पृथक् एकनभोदेशे एक इत्थं सर्वत्र सर्वे ये कालाणवः सन्ति त एव तावन्त कालाणव इति। तु पुनर्भावानां परिवर्त्ताय "नृतनं कृत्वा जीर्ण करोति जीर्ण कृत्वा नृतनं करोति" एवं भावानां परिवर्त्ताय वर्त्तते स एव मुख्यः सर्वप्रधानपदार्थः काल उच्यत इत्यर्थः।। १५।।

च्याख्यार्थ:—योगशास्त्रके अन्तर्गत स्ठोकमें यह भी मत सुना है; और दिगम्बरमतमें इस योगशास्त्रान्तरस्ठोकका व्याख्यान भी इष्ट है; क्योंकि—योगशास्त्रमें यह श्रवण
किया कि—छोकाकाशके प्रदेशमें जो पृथक् (भिन्न भिन्न) कालाणु स्थित हैं; वह कालाणु
कालद्रव्यकी मुख्यताका प्रतिपादन करते हैं; अर्थात् छोकप्रदेशमें जो भिन्न भिन्न कालाणु
हैं; वह ही मुख्यकाल हैं; ऐसा व्यवहार है। सो ही उस योगशास्त्रका पाठ है; कि—"लोकाकाश
प्रदेशस्था भिन्नाः कालाणवस्तु ये। भावानां परिवर्त्ताय मुख्यः कालः स उच्यते।१।"
भावार्थ इसका यह है; कि—छोकाकाशके जितने प्रदेश हैं; उन सब प्रदेशोंमें जो रहते हैं;
उनको छोकाकाशप्रदेशस्थ कहते हैं; छोककाशप्रदेशस्थ जो भिन्न भिन्न अर्थात् एक
आकाशके प्रदेशमें एक इस प्रकार सब छोकाकाशके प्रदेशोंमें जो सब कालाणु हैं; वह
उतने ही हैं; जितने कि—आकाशके प्रदेश हैं। और जो भावों(पदार्थों)के परिवर्त्तनके
छिये अर्थात् पदार्थको नृतन (नया) करके जीर्ण (पुराना) करता है; और जीर्ण करके
नृतन करता है" इस प्रकारका जो पदार्थोंका परिवर्त्तन है; उसकेलिये जो वर्त्तना है;
वही मुख्य अर्थात् सर्वप्रधान पदार्थ काल कहागया है। इस प्रकार अर्थ है। १५॥

पुनस्तदेव चर्चयन्नाह ।

फिर उसी कालकी चर्चा करते हुए कहते हैं।

सूत्रम्। प्रचयोध्वेत्वमेतस्य द्वयोः पर्याययोभेवेत्। तिर्यक्प्रचयता नास्य प्रदेशत्वं विना कचित्॥१६॥

सूत्रभावाधी:—इस कालद्रव्यके पूर्वीपर दो पर्यायोंमें ऊर्ध्वताप्रचय होता है; और प्रदेशरहितपनेसे तिर्यक्प्रचय कहीं भी नहीं होता॥ १६॥ व्याख्या । एतस्य कालाणुद्रव्यस्य प्रचयोर्ध्वत्वमूर्ध्वताप्रचयो द्वयोः पर्याययोः पूर्वापरयोर्भ-वेत् । यतो यथा मृद्रव्यस्य स्थासकोशकुशूलादिपूर्वापरपर्यायाः सन्ति तथैतस्य कालस्य समयावलीमुहूर्तादयः पूर्वापरपर्याया, वर्त्तन्ते । परन्तु स्कंधस्य प्रदेशसमुद्रायः कालस्य नास्ति तस्माद्धर्मास्तिकायादीनामिव तिर्यवप्रचयता न संभवति, एतावता तिर्यवप्रचयत्वं नास्ति । तेनैव कालद्रव्यमस्तिकाय इति नोच्यते । परमाणुपुद्रलस्येव पुनस्तिर्यवप्रचयता नास्ति । तस्मादुपचा-रेणापि कालद्रव्यस्यास्तिकायता न कथनीया इति ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थ:—इस कालद्रव्यके पूर्वापर दो पर्यायोंका ऊर्ध्वताप्रचय होता है; क्योंकि— जैसे मृत्तिकारूप द्रव्यके स्थास कोश कुशूलआदि पूर्व अपर पर्याय होते हैं; ऐसे ही इस-कालद्रव्यके भी समय, आवली, और मुहूर्तआदि पूर्व अपर पर्याय विद्यमान हैं। परन्तु स्कन्धका प्रदेश समुदाय कालके नहीं है इसिलये धर्मास्तिकायआदिके समान तिर्यक्प्य-चयताका संभव नहीं है; अर्थात् कालके तिर्यक्प्रचयपना नहीं है। इसी कारणसे इस कालद्रव्यको अस्तिकाय नहीं कहते हैं। और परमाणु पुद्गलके तुल्य भी इसकी तिर्यक्प्य-चयता नहीं है; इसिलये उपचारसे भी कालद्रव्यके तिर्यक्प्यचयता नहीं कहने योग्य है॥१६॥

अथैतिहिगम्बरमतं वादेन दृपयन्नाह।

अब इस दिगम्बर मतको बादसे दृषित करते हुए कहते हैं।

सूत्रम् । एवमणुगतेर्लात्वा हेतुं धर्माणवस्तदा । साधारणत्वमेकस्य समयस्कन्धतापि च ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थ:—इस प्रकार कालाणुके माननेसे परमाणुके गमनका हेतु मानकर धर्मद्रव्यके भी अणुसिद्ध हो जांयगे और तब एक पदार्थकी साधारणताको प्रहण करनेसे समयस्कन्धता भी सिद्ध हो जायगी ॥ १७॥

व्याख्या। एवमनया रीत्या यद्यणुगतेः परमाणुगमनस्य हेतुमिति हेतुत्वं छात्वा गृहीत्वा धर्माणवो धर्मद्रव्याणवो भवन्ति। तदैकस्य कस्यचित्पदार्थस्य साधारणत्वं गृहीत्वा समयस्कंधता स्यादिति। अथ योजना—एवं यदि मन्दाणुगितकार्यहेतुपर्यायसमयभाजनं द्रव्यसमयाणुः कल्पते तदा मन्दाणुगितहेतुतारूपगुणभाजनं धर्मास्तिकायोऽपि सिद्ध्यति। एवमधर्मास्तिकायस्याप्यणुप्रसङ्गता स्यात्। अथ च सर्वसाधारणगितहेतुतादिकं गृहीत्वा धर्मास्तिकायाद्येकस्कन्धरूपं द्रव्यं कल्पते तदा देशप्रदेशादिकल्पनापि तस्य व्यवहारानुरोधेन पश्चात्कर्त्तव्या स्यात्। यदि च सर्वजीवाजीवद्रव्यसाधारणवर्त्तनाहेतुतागुणं गृहीत्वा कालद्रव्यमपि लोकप्रमाणं कल्पयितुं युज्यते। धर्मास्तिकायादीनामधिकारेण साधारणगितहेतुताग्रुपस्थितिरेवास्ति। अस्याः कल्पनायास्त्वभिनिवेशं विना द्वितीयं किमपि कारणं नास्ति॥ १७॥

व्याख्यार्थ:—इस रीतीसे परमाणुके गमनरूप हेतुताके ग्रहणसे धर्मद्रव्यके भी अणु होसकते हैं; तब एक किसी पदार्थकी साधारणताके ग्रहणसे समयस्कंधता भी सिद्ध हो जायगी। अब इस स्ठोककी योजना इस भांति है; कि—इस प्रकार यदि मन्द अणुगतिका- येका अर्थात् अणुवोंका मन्द गमनरूप जो कार्य है; उसका हेतु जो पर्यायसमयभाजन है; उसको द्रव्य समयाणु कल्पन करते हो तो मन्द अणुगतिमें हेतुतारूप गुणका धारक धर्मीस्तिकाय द्रव्य भी सिद्ध होता है। और इसी प्रकार अधर्मीस्तिकाय द्रव्यकी भी अणुका प्रसंग होय। अब कदाचित् यह कहो कि—सर्वसाधारणगति हेतुताआदिका ग्रहण कर धर्मीस्तिकायआदि एक स्कंधरूप द्रव्यकी कल्पना करते हैं; तो देश प्रदेशआदिकी कल्पना भी उस स्कंधके व्यवहारके अनुरोधसे पीछे करनी पड़ेगी। और जो सब जीव अजीव द्रव्योंमें साधारण ऐसा जो वर्त्तना हेतुरूप गुण है; उस गुणको ग्रहण करके काल-द्रव्यकी भी लोकप्रमाण कल्पना करना युक्त है; ऐसा कहो तो धर्मीस्तिकायआदि द्रव्यके अधिकारसे साधारणगति हेतुता(साधारण गतिरूप कार्यकी कारणता)आदिकी उप-स्थिति है; उसीकी कल्पना हो सकती है। और इसपर भी कालद्रव्यकी कल्पना करनेवाले मतमें मन्द अणुकी वर्त्तनारूप हेतुकी ही उपस्थिति है। और इस कल्पनाका आग्रहके सिवाय दूसरा कोई भी कारण नहीं है॥ १७॥

अथ पुनस्तदेव।

अब फिर भी उसीका वर्णन करते हैं।

सूत्रम् । अप्रदेशत्वमासूत्र्य यदि कालाणवस्तदा । पर्यायवचनोसुक्तं सर्वमेवौपचारिकम् ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थ: —यदि कालको अप्रदेशी सूत्रित करके और उस कालके अणु कहते हो तब यह सब उपचारसे पर्यायवचनमें योजित होता है ॥ १८ ॥

व्याख्या । अप्रदेशत्वं प्रदेशरिहतत्वं यद्यासूत्र्य प्रकल्पितस्य काळस्य अणवः कथ्यन्ते तदा पर्यायवचनेन योजितं क्रियते सर्वभप्युपचारेणेद्मिति । तथा च यदैवं कथ्यत सूत्रे काळोऽ-प्रदेशी कथितस्तस्यानुसारेण काळाणवः कथ्यन्ते तदा तु सर्वमिप जीवाजीवपर्यायरूपमेव काळ इति कथितमस्ति तत्र विरोधो नास्ति द्रव्यकाळोऽपि कथं कथ्यते । ततस्तद्नुसारेण काळस्यापि द्रव्यत्ववचनम् । तथा छोकाकाशप्रदेशप्रमाणानुवचनादीनि सर्वाण्युपचारेण योज्यानि । सुख्यवृत्त्या स पर्यायरूपः काळ एव सृत्रसंमतोऽस्ति । अत एव "काळश्रेत्येके" अत्रैकवचनेन सर्वसंमतत्वाभावः सूचयामासेति । तेनाप्यत्राप्रदेशत्वं प्रदेशाभावं सूत्रेणानुसृत्य तस्य काळस्याणुः कथ्यते तदा सर्वमप्येतदुपचारेण पर्यायवचनादिकेभ्यो युज्यमानं चारिमाण्याभ्यतीति । अथ च परमाणुमयो विभागोऽवयवस्तदितरस्तु प्रदेश इति वचनाद्योमाद्यपरिमाणजतया सप्रदेशं स्यात्र तु सावयविभत्याचश्चीथास्तथापि "दोषोङ्णासवशप्रसृत्वरतमस्काण्डे विदेदीपया, मासेनोऽद्यवप्रदेशविषयो भेदस्त्वया दीपकः । अस्माभिः परमाणुतां प्रकटतामानेष्यमाणं पुरो दुर्वारव्यभिसारदीर्घरसनं निध्याय विध्वंसितः ।१। ननु पूर्व तावदम्बरादेविन् भागाः परमाणुमया एव सन्ति न खळु कज्यळचूर्णपूर्णसमृद्रकविश्वरन्तरपुद्रछपूरिते छोके स

कश्चित्रभसो विभागोऽस्ति यो निर्भरं न विभरांवभूवेऽणुभिस्तत्कथं न हेतुरेष व्यभिचरिष्णु-रिति ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थ:—यदि कालको प्रदेशरहित निरूपण करके उस कल्पित कालके अण् कहते हो तब यह सब उपचारसे पर्याय वचनमें योजित किया जाता है। इसका स्पष्टी-करण करते हैं; कि-यदि आप यह कहो कि-सूत्रमें काल प्रदेशरहित कहा गया है; उसके अनुसार हम कालाणु कहते हैं; तब तो संपूर्ण जीव अजीव पर्यायरूप ही काल है; ऐसा कहा हुआ है; उसमें विरोध नहीं है। कालद्रव्य कैसे कहा जाता है? इस शंकाका समाधान यह है; कि-उसीके अनुसार कालको भी द्रव्य कहा गया है। और लोकाकाश प्रदेशोंके प्रमाण काल है: ऐसे जो वचन हैं: वह भी सब उपचारसे युक्त करने योग्य हैं। मुख्यवृत्तिसे अर्थात मुख्य शक्तिसे तो वह पर्यायरूप काल है; सो ही सूत्रसंमत है। अत एव "काल-श्चेत्येके" (काल भी द्रव्य हैं; ऐसा एक आचार्य कहते हैं) इस सूत्रमें "एके" इस पदसे यहीं सुचित किया है; कि-काल सर्वसंमत द्रव्य नहीं है। इससे भी प्रदेशका अभाव सुत्रके अनुसार मानकर जो कालके अणुपनेका कथन करते हो तब भी यह सब उपचारसे पर्याय वचनआदिके साथ नियुज्यमान (युक्त हुआ) ही चारुता(रमणीयता)को प्राप्त होता है। यदि ''परमाणुमयरूप जो विभाग है; सो अवयव है; और इससे भिन्न अर्थात् जो परमाणुरूप विभाग नहीं है; वह प्रदेश है" इस वचनसे आकाशादिक अपरिमाणज होनेसे सप्रदेश हैं; सावयव नहीं ऐसा कहो तो भी "दोषोंकी अधिकताके वशसे फैलते हुये अधकारके समूहमें जो तुमने हमारे आगे अवयव और प्रदेशमें भेद है" इस कथनस्वरूप दीपक जाज्वल्य-मान किया उस दीपकका हमने परमाणुताको प्रकटमें लाकर दुःखसे निवारण करने योग्य व्यभिचार दोषरूपी सर्पको आगे रखके बुझा डाला अर्थात् परमाणुताकी सिद्धिसे यह भेद न ठहरेगा ! पहले तो आकाशआदिके विभाग भी परमाणुरूप ही हैं; क्योंकि-काजलके चूर्णसे पूर्ण पिटारीके समान निरन्तर पुद्गलोंसे भरे हुए जगत्में वह कोई भी आकाशका प्रदेश नहीं है; जो परमाणुवोंसे खूब न भरा हुआ हो इस कारण यह जो तुमने हेतु दिया है; वह व्यभिचारी कैसे नहीं ? अर्थात् है; ही ॥ १८॥

अथोपचारप्रकारमेव दर्शयन्नाह।

अब उपचारका प्रकार ही दिखाते हुए यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । पर्यायेण च द्रव्यस्य श्रुपचारो यथोदितः । अप्रदेशत्वयोगेन तथाणूनां विगोचरः ॥ १९॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे पर्यायरूपसे कालद्रव्यकी पर्यायरूपता उपचारसे कही है; ऐसे ही अप्रदेशत्वके योगसे कालकी अणुताके विषयमें उपचार ही शरण है ॥ १९॥ व्याख्या। षडेव द्रव्याणीति संख्यापृरणार्थं यथा पर्यायेण पर्यायक्षपेण द्रव्यस्य काळद्र-व्यस्य एतावता पर्यायक्षपकाळद्रव्यविषये हि निश्चितं द्रव्यस्योपचारो यथा उदितः द्रव्यत्वो-पचारकल्पना विहिता भगवत्यादिसूत्रविषये कृता तथैव सूत्रे काळद्रव्यस्याप्यप्रदेशत्वयोगेन काळाणूनां विगोचरो विषयता झेयः। एतावता सूत्रे काळस्यात्र प्रदेशता सूत्रिता तथैव काळा-णुतापि सूत्रितास्ति तद्योजनया छोकाकाशप्रदेशस्थपुद्गळाणूनां विषय एव योगशास्त्रान्तरश्रो-केपु काळाणूनामुपचारो विहितः। मुख्यकाळ इत्यस्य चानादिकाळीनाप्रदेशत्वव्यवहारिनया-मकोपचारिवषय इत्यर्थ अत एव मनुष्यक्षेत्रमात्रवृत्तिकाळद्रव्यं ये वर्णयन्ति तेषामि मनुष्य क्षेत्राविच्छन्नाकाशादौ काळद्रव्योपचार एव शरणिमति दिङ्गात्रमेतन्।। १९॥

व्याख्यार्थ: जिनसिद्धान्तमें पट् (६) ही द्रव्य हैं; इस संख्याकी पूर्त्तिकेलिये जैसे पर्यायरूपसे कालद्रव्यका अर्थात् पर्यायरूप कालद्रव्यके विषयमें द्रव्यत्वके उपचारकी कल्पना भगवतीआदि स्त्रमें की गई है; उसी प्रकार स्त्रमें कालद्रव्यके जो अप्रदेशताका योग है; उससे कालाणुके विषयमें भी उपचार जानना । तात्पर्य यह कि—स्त्रमें कालको प्रदेशरहित कहा है; उसी प्रकार कालाणुता भी स्त्रितकी है; उसकी योजनासे लोकाकाशके प्रदेशमें स्थित पुद्गल परमाणुत्रोंके विषयमें ही योगशास्त्रान्तर श्लोकोंमें कालाणुत्रोंका उपचार किया गया है । और "लोकाकाशप्रदेशस्था" इत्यादि श्लोकमें जो कालके विषयमें "मुख्यः कालः स उच्यते" इस प्रकार मुख्य कालरूपसे व्यवहार किया है; इसका यह अभिप्राय है; कि—अनादि कालसे अप्रदेशत्व व्यवहारका नियामक उपचारकी विषयनतासे वह काल मुख्य है । इसी कारणसे जो मनुष्य क्षेत्रमात्रवृत्ति अर्थात् मनुष्य क्षेत्रमात्रवर्मे रहनेवाला कालद्रव्य है; ऐसा जो कहते हैं; उनको भी मनुष्यक्षेत्रावच्छित्र जो आकाशादि हैं; उनमें कालद्रव्यका उपचार ही शरण है । यह दिग्दर्शनमात्र हमने कथन किया है ॥ १९॥

अथ पुदृलजीवयोः संक्षेपेण स्वरूपमाह ।

अब पुद्गल तथा जीवद्रव्यका स्वरूप संक्षेपसे कहते हैं।

सूत्रम् । वर्णादिकगुणैर्भेदो ज्ञायते पुद्गलस्य च । निसर्गचेतनायुक्तो जीवोरूपी द्यवेदकः ॥ २०॥

सूत्रभावार्थः—वर्ण गंध तथा रसादि गुणोंसे पुद्गलद्रव्यका धर्मास्तिकायआदिसे भेद जाना जाता है। और स्वाभाविक चेतनाका धारक, रूपरहित तथा वेदरहित जीव पदार्थ है॥ २०॥

ं व्याख्या । वर्णगन्धरसस्पर्शादिकगुणैः पुद्गलद्रव्यस्थान्येभ्यो धर्मादिद्रव्येभ्यो भेदो ज्ञायते । वर्णाः पञ्च शुक्कपीतहरितरक्तकृष्णभेदात् , गन्धौ द्वौ सुरभ्यसुरभी चेति, रसाः पुट् तिक्तकटुककपायाम्लमधुरर्लेवणभेदात, म्पर्शा अष्टौ शीतोष्णे, खरसृदृ, लघुमहती क्लिग्ध-पक्षे चेति । सर्वमप्येतत्पुद्गलभेदाद्भिद्यते । च पुनग्धं निसर्गा सहजा या चेतना तया युक्तो निसर्गचेतनायुक्तः सर्वेभ्योऽचेतनेभ्यो भिन्नो जीवो व्यवहारनयेन रूपवेद्सहितोऽपि निश्च-यनयेन रूपरहितो रूपात्यन्ताभावयुक्तः, वेद्रहितो वेदात्यन्ताभाववान्, सत्तामात्रं निर्गुणो निर्विकारो जीवः। उक्तं च-अरसमरूपमगन्धं अवण्णं, चेपुणागुणमसदं। जाणेअलिंगग्गहणं — जीवमणिद्विसंठाणं।१। इत्युक्तेः जीवविशेषणानि क्षेयानि।। २०॥

क्याख्यार्थः—वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्शआदि गुणोंसे युक्त होनेसे पुद्गलद्गव्यका अन्य धर्मास्तिकायआदि द्रव्योंसे भेद जाना जाता है। ग्रुक्त (सफेद) पीत (पीला) हरित (हरा) रक्त (लाल) तथा कृष्ण (काला) इन भेदोंसे वर्ण (रूप) पांच हैं। सुगंध, दुगंध, भेदसे गंध दो प्रकारका है। तिकत, (तीला) कटुक (कड़वा) कपाय (कसापला) आम्ल (खट्टा) मधुर (मीठा) और लवण (खारा) इन भेदोंसे रस छ(६)प्रकारका है। शीत (ठंडा) उष्ण (गरम) खर (कठोर) मृदु (कोमल) लघु (हलका) महत् (भारी) स्त्रिग्ध चिकना. परुष (रूखा) इन भेदोंसे स्पर्श आठ प्रकारका है। यह सब पुद्गलके भेदसे भेदको प्राप्त होते हैं। सूत्रमें जो "च" शब्द है; सो पुनः के अर्थमें है, अतः और निसर्ग अर्थात् स्वभावसे उत्पन्न जो चेतना उस करिके युक्त होनेसे सब अचेतन द्रव्योंसे जीव भिन्न है। और व्यवहारनयसे रूप तथा वेदका धारक है; तो भी निश्चयनयसे जीव रूपरहित अर्थात् रूपके अत्यंत अभावसे युक्त और वेदरहित अर्थात् वेदके अत्यंताभावसे संयुक्त है; क्योंकि—यह जीव सत्तामात्र, निर्गुण तथा विकाररहित है। ऐसा अन्यत्र कहा भी है। "रूपरहित, रसरहित, गंधरहित, वर्णरहित, चेतनायुक्त, शब्दरहित लिंगसे रहित और अनिर्दिष्ट संस्थान ऐसा जीव जानना" इत्यादि कथनसे यह रूपरहितआदि सव जीवके विशेषण हैं; ऐसा जानो॥ २०॥

अथाध्यायपरिसमाप्तिकाम आह । अब अध्यायको समाप्त करनेकी इच्छासे अग्रिम काव्य कहते हैं।

सूत्रम्। एवं समासेन षडेव भेदान्द्रव्यस्य विस्तारतयागमेभ्यः। श्रुत्वा समभ्यस्य च भव्यलोका अहत्क्रमाम्भोजयुगं श्रयन्तु॥ २१॥

सूत्रभावार्थ:—हे भव्य जीवों ? इस प्रकार संक्षेपसे द्रव्यके छ ६ ही भेद हैं; उनको विस्तारसे शास्त्रोंसे श्रवण करके तथा पूर्णरूपसे अभ्यस्त करके श्रीजिनदेवके चरणकम- लोंके युगलका सेवन करो ॥ २१ ॥

व्याख्या। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण समासेन संक्षेपेण च षडेव षद् संख्यायते जीवधर्माध-मीकाशकालपुद्गलभेदान्द्रव्यस्य पदार्थस्य पण्णामिष द्रव्यशब्दः पृथग्युक्तः सन् षड्द्रव्यत्वमा-पादयति। अतो द्रव्यस्य षडेव भेदान्सूत्रोक्तान् श्रुत्वा विस्तारतया विस्तारयुक्तया आगमेभ्यः स्याद्वादिसमुपदिष्टभ्य आकर्ण्य अवणविषयीकरणं अवणं तत्र विस्तारेणैव श्रुतानामवगमो जायतेऽतो विस्तारतया श्रुत्वा च पुनः समभ्यस्य वाचा उद्घोषणद्वारा कण्ठे कृत्वा मनिस निद्धियास्य भो भव्यस्रोकाः सम्यक्तिप्राणिनः ? अईत्क्रमाम्भोजयुगं श्रीजिनचरणभजनस्थैर्य भजन्तु । श्रुत्वा स्मृत्वा च श्रीप्रभुस्मृतिरेव साधीयसी तत्कृत्वा तत्करणं श्रेयोनिबन्धनमिति । तथा भोजेति सङ्केतेन सन्दर्भकर्तुर्नामनिदर्शनमिति । अत्राध्याये सम्यक्त्वद्राद्ध्याय सर्वभेदा- स्यानमिति प्रयोजनं चेति ॥ २१ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां दशमोऽध्यायः।

व्याख्यार्थ:—इस पूर्वकथित रीतिसे संक्षेपसे द्रव्यके सूत्रमें कहे हुए छ ६ संख्याके धारक जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल इन भेदोंको अर्थात् यहांपर जीव आदि छहोंके साथ जुदा २ द्रव्यशब्द लगानेसे पद्दव्यता सिद्ध होती है; इस कारण द्रव्यके छ हों ही भेदोंको स्याद्वादियोंसे उपिदृष्ट ऐसे आगमोंसे अर्थात् जैनशास्त्रोंसे विस्तारपूर्वक अनेक युक्तियों द्वारा श्रवण करके "कर्णके विषयमें प्राप्त जो करना है; सो श्रवण है; उसमें विस्तारसे सुने हुए पदार्थोंका ही ज्ञान होता है; इसल्यि विस्तारसे श्रवण करके" और वचनसे घोषणद्वारा कण्ठ करके और मनमें धारण करके भो भव्य जीवो १ अर्थात् सिद्ध होने योग्य प्राणिवर्गो? श्रीजिनेन्द्रके चरणोंकी सेवामें स्थिरताको धारण करो। इस द्रव्योंके स्वरूपको सुनकर तथा स्मरण करके श्रीजिनेन्द्रकी भक्ति ही साधने योग्य है; इसल्यि द्रव्यके स्वरूपको सुनकर तथा स्मरण करके श्रीजिनेन्द्रकी भक्ति ही साधने योग्य है; इसल्यि द्रव्यके स्वरूपका सुनना और धारण करना कल्याणका कारण है। यहांपर भोज इस संकेतसे टीकाकारने अपना नाम भी दिखाया है। और इस अध्यायमें सम्यक्त्वको पुष्ट (इढ) करनेकेलिये सब द्रव्योंके भेदोंका कथन करना है; सो ही प्रयोजन है ॥ २१॥

इति श्री पं० ठाकुरप्रसादशास्त्रिविरचितभाषाटीकासमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां दशमोऽध्यायः॥

अथैकादशाध्याये गुणभेदान् व्याचिख्यासुराह ।

अब इस एकाद्शवें अध्यायमें गुणके भेदोंके वर्णनकी इच्छासे यह सूत्र कहते हैं।

सूत्रम् । श्रीनाभेयजिनं नत्वा गुणदेष्टृगुरुं तथा । गुणभेदानहं वक्ष्ये क्रमप्राप्तान्यथामति ॥ १॥

सूत्रभावार्थः—में श्रीनाभिराजके पुत्र श्रीऋषभदेवजी तीर्थंकरको तथा वाणीके गु-णोंके उपदेशक गुरुजीको नमस्कार करके अब क्रमप्राप्त गुणोंके भेदोंको इस एकाद-श्रवें अध्यायमें निजमतिके अनुसार कहूंगा ॥ १॥

व्याख्या। नाभेरपत्यं नाभेयः श्रीयुक्तो नाभेयः स चासौ जिनश्च श्रीनामेयजिनसं श्रीनाभेयजिनं श्रीऋषभनाथं नत्वा नमस्कृत्य तथा तेनैव प्रकारेण गुणदेष्टृगुरुं गुणा वाणीगुणास्तान् दिशतीति गुणदेष्टा स चासौ गुरुश्च गुणदेष्टृगुरुस्तं नत्वा नमस्कृत्येति। निर्विष्ठसमाप्तिकामाय मङ्गलमिति। अहं गुणभेदान् क्रमप्राप्तान् द्रव्यव्यावर्णनानन्तरं

प्रस्तुतान् यथामति यथा स्यात्तथा पूर्वप्रणेतॄणां विस्तारदुर्वोधत्वेन स्वमतिविषयी यथा स्यात्तथा वक्ष्ये कीर्त्तियिष्यामीति ॥ १॥

व्याख्यार्थ: —नामिराजाके जो पुत्र हैं उनको नाभेय कहते हैं; अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे जो युक्त हों उनको श्रीनाभेय कहते हैं; श्रीनाभेय ऐसे जो जिन, सो श्रीनाभेय जिन हैं; उनको अर्थात् श्रीऋषभनाथ तीर्थंकरजीको नमस्कार करके तथा गुण जो वाणीके गुण उनका उपदेश करनेवाले जो श्रीगुरु हैं; उनको नमस्कार करके अर्थात् निर्विघ्न समाप्तिकी इच्छासे इष्ट देव तथा गुरुको प्रणामरूप मंगलाचरण करके में द्रव्योंके विवरणके पश्चात् प्रस्तुत ऐसे गुणोंके भेदोंको निजबुद्धिके अनुसार अर्थात् पूर्वाचार्यप्रणीत प्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन है; तथा कष्टसे उनका ज्ञान होता है; इस कारण अपनी बुद्धिके गोचर जैसे हो तैसे कहंगा ॥ १ ॥

अथात्र गुणभेदान्समानतन्त्रप्रक्रियया प्रतिपाद्यन्नाह ।

अब यहां समानतंत्रप्रिक्रयासे गुणके भेदोंका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं।

सृत्रम् । तत्रास्तित्वं परिज्ञेयं सङ्गृतत्वगुणं पुनः । वस्तुत्वं च तथा जातिव्यक्तिरूपत्वमुच्यते ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थ:—उनमें सद्भृतत्व जो गुण है; उसको अस्तित्व जानना चाहिये और जाति (सामान्य) व्यक्ति (विशेष) रूप जो है; उसको दूसरा वस्तुत्व गुण कहते हैं ॥ २ ॥ व्याख्या। अस्तित्वं। तत्रेदं परिक्रेयं सत्तातो यो गुणो भवति तस्मात्सद्भृतताया व्यवहारो जायते स चास्तित्वगुणः। १। वस्तुत्वं च जातिव्यक्तिरूपत्वम्। जातिः सामान्यं यथा—घटे घटत्वं। व्यक्तिर्विशेषो यथा—घटः सौवर्णः, पाटि पुत्रः, वासन्तिकः, कम्बुमीव इत्यादि। अत एवावमहेण सर्वत्र सामान्यरूपं भासते, अपा (वा) येन विशेषरूपामासो जायते। पूर्णोपयोगेन संपूर्णवस्तुमहो जायते, इत्थं वस्तुत्वं द्वितीयो गुणः॥ २॥

व्याख्यार्थ:—उनमें सत्तासे जो गुण होता है; और जिससे लोकमें सद्भ्तताका व्यवहार होता है; वह अस्तित्व प्रथम गुण है; इसीको अस्तित्व जानना चाहिये। और जातिव्यक्तिरूप जो हो सो वस्तुत्व है। जाति सामान्यको कहते हैं; जैसे घटमें घटत्व, व्यक्ति विशेषका नाम है; जैसे यह घट द्रव्यसे सुवर्णका है, क्षेत्रसे पटना नगरका है, कालसे वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुआ है, और कंबुग्रीवआदि आकारका धारक है; इत्यादि। इसी कारणसे अवग्रहनामक मतिज्ञानके प्रथम भेद्रूप ज्ञानसे सब स्थानोंमें सामान्य-रूपका ही भान होता है; और मतिज्ञानका तृतीय भेद जो अपाय अथवा अवाय है; उसके द्वारा विशेष स्थान होता है। तथा परिपूर्ण ज्ञानसे सामान्य तथा विशेष दोनों रूप वस्तुका ग्रहण होता है। ऐसे वस्तुत्वनामक दूसरा गुण है॥ २॥

सूत्रम् । द्रव्यत्वं द्रव्यभावत्वं पर्यायाधारतोन्नयः । प्रमाणेन परिच्छेचं प्रमेयं प्रणिगचते ॥ ३॥

सूत्रभावार्थ:—पर्यायके आधारसे जाननेमें आता हुआ जो द्रव्यभाव है; उसको द्र-व्यत्वनामा तृतीय गुण कहते हैं। और जो प्रमाणसे जाननेमें आता है; वह प्रमेयत्व नामक चतुर्थ गुण है॥ ३॥

व्याख्या । द्रव्यं द्रवित तांस्तान्पर्यायान्गच्छतीति द्रव्यं तस्य भावस्तस्वम् । द्रव्यभावो हि पर्यायाधारताऽभिव्यङ्ग्यजातिविशेषः । "द्रव्यत्वं जातिरूपत्वाद् गुणो न भवति" ईदृग् नैयायिकादिवासनया आशङ्का न कर्त्तव्या । यतः सहभाविनो गुणाः, क्रमभुवः पर्यायाः, ईदृश्येव जैनशासने व्यवस्थास्तीति । द्रव्यत्वं चेद्गुणः स्याद्रूपादिवदुत्कर्षाप-कर्षभागि स्यादिति तु कुचोद्यमेकत्वादिसंख्यायाः परमतेऽपि व्यभिचारेण तथा व्यास्या-भावादेव निरसनीयम् । ३ । प्रमाणेन प्रत्यक्षादिना परिच्छेद्यं यद्गृपं प्रमाणिवषयत्वं प्रमे-यत्वं तदित्युच्यते । तदिप कथंचिद्नुगतसर्वसाधारणं गुणोऽस्ति । परम्परासंबन्धेन प्रमात्वज्ञानेनापि प्रमेयव्यवहारो जायते । ततः प्रमेयत्वं गुणस्वरूपादनुगतमस्तीति ॥ ४।३ ॥

व्याख्यार्थ:--जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त हो उसे द्रव्य कहते हैं; और उस द्रव्यका जो भाव है; उसको द्रव्यत्व कहते हैं । तथा द्रव्यका जो भाव है; वह पर्यायरूप आधारतासे अभिव्यंग्य (जानने योग्य) जातिविशेष है। " द्रव्यत्व यह जातिरूप है; इसलिये गुण नहीं होता है" इस प्रकारकी आशंका नैयायिकोंकी वासनासे न करनी चाहिये। क्योंकि-सहभावी गुण हैं और क्रमसे भावी (होनेवाले) पर्याय हैं; ऐसी ही व्यवस्था जैनशास्त्रमें कीगई है। और द्रव्यत्वमें जो गुण मानोगे तो रूपादिके समान उत्कर्ष तथा अपकर्षका भागी द्रव्यत्व होगा अर्थात् द्रव्यत्व जब गुण होगा तब रूपआदि गुणोंमें जैसे हीनता अधिकता रहती है; वैसे द्रव्यत्वमें भी रहेगी इत्यादि कुचोद्यका तो ''परमतमें जो एकत्वआदि संख्याको गुण माना है; इसलिये व्यभिचारसे और नित्य परमाणुआदिगत एकत्वको नित्य माना है; इसलिये जहां गुणत्व है वहां उत्कर्ष (अ-धिक) अपकर्ष(हीन)की भागिता है; ऐसी व्याप्तिका अभाव होनेसे ही तिरस्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥ प्रत्यक्षआदिरूप प्रमाणसे जो परिच्छेद्य (जाना जाय) ऐसा जो प्रमाणका विषय उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं । वह प्रमेयत्व भी कथंचित् सर्व प्रमेयोंमें अनुगत गुण है। और परम्परासंबंधसे प्रमात्वरूप ज्ञानसे भी प्रमेयका व्यवहार होता है। इसिलिये प्रमेयत्वगुण स्वरूपसे अनुगत है। ऐसे प्रमेयत्वनामक चतुर्थ गुण है।४।॥३॥

सूत्रम् । अगुरुलघुता सूक्ष्मा वाग्गोचरविवर्ज्जिता । प्रदेशस्वमविभागी पुद्गलः स्वाश्रयाविष ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थ:—वाणीका अविषय तथा सूक्ष्म अगुरुलघुता नाम पंचम गुण है। तथा विभागरिहत पुद्रलके अधिकरणमात्र अविधसहित प्रदेशत्व यह षष्ठ गुण है॥ ४॥ व्याख्या । अगुरुलघुता अगुरुलघुनीम गुणः सा कीहशी सूक्ष्मा आज्ञाश्राह्यत्वात्, यतः "सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिनैंव हन्यते । आज्ञासिद्धं तु तद्माह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ११।" पुनः कीहशी वाग्गोचरविवर्जिता वचनद्वारा वक्तमशक्या । यतः—"अगुरुलघुपर्याया सूक्ष्मा अवाग्गोचराः" इति अगुरुलघुनाम्ना पश्चमो गुणोऽगुरुलघुलमिति ध्येयम् । अथ "प्रदेशत्वमविभागी पुद्गलः स्वाश्रयाविध" इति । अविभागी पुद्गल इति यावत् क्षेत्रे तिष्ठः तीति तावत् क्षेत्रव्यापिष्णुत्वं प्रदेशत्वगुणः । यस्य विभागो न जायते विभक्तव्यवहारता न स्यात् पुनर्यावत् क्षेत्रमास्थाय तिष्ठति स्थितौ तावत्क्षेत्रावगाहित्वं प्रदेशत्वम्।पुनः कीहशं स्वाश्रयाविध स्वशब्देनात्मा पुद्गलात्मकस्तस्य य आधारः आश्रयः स एवाविधर्मर्याद्यायस्य तत्स्वाश्रयाविध । एतावता तदेवार्थत्वं स्वेन यावत्क्षेत्रे स्थितं तावित क्षेत्र आश्रयाविध त्वमप्यस्तीति ज्ञेयम् । इति षष्टो गुणः । ६ । ।। ४ ।।

ब्याख्यार्थ:—अगुरुलघुता अगुरुलघुनामा गुण है; वह अतिस्क्ष्म है; अत एव जिनशास्त्रकी आज्ञासे प्रहण करने योग्य है । क्योंकि-''जिन भगवान्से कहाहुआ जो सूक्ष्म तत्त्व है; वह हेतुओंसे खण्डित नहीं होता अतः सूक्ष्मतत्त्वोंको उनकी आज्ञासे ही मानलेना चाहिये क्योंकि-जिनेन्द्र देव मिथ्यावादी नहीं हैं। १। " ऐसा कहा है। पुनः वह अगुरुलघुतारूप गुण कैसा है; कि-वाणीकी गोचरतासे वर्जित है; अर्थात् उसका कथन वाणीसे नहीं होसकता क्योंकि-''अगुरुलघुपर्याय सूक्ष्म हैं; वचनके अगोचर हैं" ऐसा वचन है। ऐसे अगुरुलघु नामसे जो पंचम गुण है; उसको अगुरुलघुत्व समझना चाहिये। ५। अब "प्रदेशत्वमविभागी पुद्गलः स्वाश्रयावधि" इस उत्तरार्धका व्याख्यान करते हैं। विभागरहित पुद्गल जितने क्षेत्रमें स्थित रहता है; उस क्षेत्रमें व्यापनशील प्रदेशत्व गुण है । तात्पर्य यह कि जिस पुद्गलका विभाग नहीं होता अर्थात् विभक्तव्यवहारता नहीं हो सकती और ऐसा वह अविभाग पुद्गल परमाणु जितने क्षेत्रमें रहे उतने ही क्षेत्रका अपनी स्थितिमें अवगाहन करनेवाला जो है; वह प्र-देशत्व है । पुनः वह प्रदेशत्व कैसा है; कि-स्वाश्रयावधि है । यहां स्वशन्दसे अपना प्रहण है इससे अविभागी पुदुलात्मक अपना आधार (अधिकरण) ही जिसकी मर्यादा है; इससे यह सिद्ध हुआ कि वह जितने क्षेत्रमें स्थित है; उतने ही क्षेत्रमें आश्रयाविधत्व भी है ऐसा जानना। यह प्रदेशत्वनामक षष्ठ गुण है। ६।॥ ४॥

सूत्रम् । चेतनत्वमनुभूतिरचेतनमजीवता । रूपादियुक्त्वमूर्त्तत्वममूर्तत्वं विपर्ययात् ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थ:—आत्माका जो अनुभव है वह चेतनत्व सप्तम गुण है। जीवरहितता स्वरूप अचेतनत्व अष्टम गुण है। रूपआदिसहित मूर्त्तत्वनामक नवम गुण है। इसके विपर्ययसे अर्थात् रूपआदिरहित अमूर्त्तत्वनामा दशम गुण है॥ ९॥

व्याख्या । चेतनत्वमात्मनोऽनुभूतिरित्यनुभवरूपगुणः कथ्यते । योऽहं सुस्रदुःखादि

वेतये, अहं सुखी, अहं दुःखी इति चेतनाव्यवहारः। ततो जातिवृद्धिभग्नक्षतसंरोहणादिजीवनधर्मा भवन्तीति चेतन्यं सप्तमो गुणः। ७। एतस्माद्विपरीतमचेतन्यमजीवमात्रमजीवता जडत्वाबेतनावैकल्यमित्यचेतनत्वं गुणः। ८। रूपादियुक् मूर्त्तत्वं मूर्त्तता गुणः।
रूपादिसिन्नवेशाभिव्यङ्गचपुद्गलद्भव्यमात्रवृत्तित्वम्। ९। अमूर्त्तत्वं गुणो मूर्त्तत्वाभावसमिनतत्विमिति। १०। इति दशैव । अत्राचेतनत्वामूर्त्तत्वयोश्चेतनत्वमूर्त्तत्वाभावरूपत्वान्त्र
गुणत्विमिति नाशङ्कनीयम् । अचेतनामूर्त्तद्भवं वृत्तिकार्यजनकतावच्छेद्कत्वेन व्यवहारविशेषिनयामकत्वेन च तयोरिप पृथग् गुणत्वात् तन्न पर्युदासार्थकत्वात्तत्र गर्भपद्वाच्यताश्चानुष्णाशीतस्पर्श इत्यादौ व्यभिचारेण परेषामप्यभावत्वानियामकत्वाद्भावान्तरम्।
अभावोऽहि कयाचित्तु व्यपेक्षया इति नयाश्रयणेन दोषाभावाचेति।। ५।।

व्याख्यार्थ:--आत्माका जो अनुभवरूप गुण है; वह चेतनत्व है। अर्थात् यह मैं सुख तथा दुःखआदिका अनुभव करता हं, अथवा मैं सुखी हं मैं दुःखी हं यह जो व्यवहार होता है; सो चेतनत्वगुणसे ही होता है; और इस चेतनत्वसे ही उत्पन्न होके बड़ा होना, छिदे हुए कटे हुएका उत्पन्न होना व उगनाआदि जीवनधर्म होते हैं; इस लिये चेतनत्व यह सप्तम गुण है। और इस चैतन्यसे विपरीत अचेतनत्व गुण है; वह अजीवमात्रमें है; यह जड है इसलिये चेतनासे रहित है। ऐसे अचेतनत्वनामक अष्टम गुण है। रूपआदिका धारक मूर्तत्वनामक नवम गुण है। यह मूर्तत्व गुणरूप रस आदिकी स्थितिसे जानने योग्य है; और पुद्गल द्रव्यमें ही रहता है। और मूर्तत्वके अ-भावके साथ समनियत अमूर्चत्वनामा दशम गुण है । ऐसे ये सब मिलके दश गुण हुए। यहांपर अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व ये दोनो चेतनत्व तथा मूर्तत्वके अभावरूप हैं; अर्थात् चेतनत्वका अभाव अचेतनत्व है; और मूर्त्तत्वका अभाव अमूर्त्तत्व है; इसिलये अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व पृथक् गुण नहीं हैं; ऐसी शंका न करनी चाहिये; क्योंकि-अचेतन (चेतनधर्मरहित जड पदार्थ) तथा अमूर्त्त (धर्म जीवआदि) द्रव्यवृत्ति जो कार्य उस कार्यके जनकतावच्छेदकत्वरूपसे विशेष व्यवहार अर्थात् अचेतन तथा अमूर्त्तरूप व्यवहार-विशेषके नियासक कारणतावच्छेदक होनेसे अचेतनत्व और अमूत्तत्वको भी पृथक् गुणत्व है; और अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व इन दोनो पदोंमें नञ् समास जो है सो पर्युदा-सौर्थमें है; इसलिये यहां अचेतनका अर्थ ''चेतनसे भिन्न चेतनसदश कोई द्रव्य और अमूर्तका अर्थ मूर्त्तसे भिन्न मूर्त्तसदृश द्रव्य" है। उन अचेतन तथा अमूर्त द्रव्योंमें रहनेवाला जो धर्म वही अचेतनस्व तथा अमूर्तत्व है । क्योंकि-चेतनभिन्न तथा चे-तनसदृश अचेतनत्वमें समासगर्भ वाच्यताका ही अंगीकार है। और अनुष्णाशीतस्पर्श

⁽१) नज् दो प्रकारका है; एक पर्युदास और दूसरा प्रसज्य, इनमें पर्युदास तो सदशका प्राही होता है; जैसे "अबाह्मणको लाओ " यहां ब्राह्मणभित्र ब्राह्मणसदश किसी मनुष्यको लाओ ऐसा तात्पर्य है; और प्रसज्य निषेधक है; जैसे "अद्रव्य" से द्रव्याभावका प्रहण होता है।

अर्थात् शीत तथा उष्णसे भिन्न स्पर्श इत्यादि पदोंमें व्यभिचार होनेसे नैयायिकको भी नञ्को अभावनियामकता सर्वत्र नहीं है; इसिलये अमूर्त इससे मूर्तके अभावका नहीं किन्तु मूर्त्तसे भिन्न भावका ग्रहण करना चाहिये। अभाव तो किसी अपेक्षासे है। और इस नयके आश्रयसे कोई दोष नहीं ॥ ५॥

सूत्रम्। सामान्येन समाख्याता गुणा दश समुचिताः। परस्परपरीहारात् प्रत्येकमष्ट चाष्ट च॥६॥

सृज्यभावार्थ:—सामान्यरूपसे ये दश १० गुण संपूर्ण द्रव्योंको मिलाके कहे गये हैं; इनमें परस्परके परिहारसे अर्थात् परस्परविरोधी चेतनत्व अचेतनत्वआदिको छोड़के शेष प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण रहते हैं॥ ६॥

व्याख्या। एते दश गुणाः सामान्यगुणाः समुश्विताः सर्वेषां द्रव्याणां समुश्वयेन कथिताः। तत्र मूर्त्तत्वममूर्त्तत्वम्, चेतनत्वमचेतनत्वं चेति चत्वारो गुणाः परस्परपरिहारेण ति- छन्ति। तत एकैकस्मिन्द्रव्ये प्रत्येकं प्रत्येकमष्टौ प्राप्यंते। तत्कथं, यत्र चेतनत्वं तत्रा-चेतनत्वं नास्ति, यत्र च मूर्त्तत्वं तत्र चामूर्त्तत्वं नास्ति, एवं द्वयोरपसरणाच्छेषमष्टकमेव तिष्ठति। तेन प्रतिद्रव्यमष्टैव गुणाः सामान्याः सन्तीति ध्येयम्॥ ६॥

व्याख्यार्थ:—ये पूर्वोक्त दश गुण सामान्यरूपसे सब द्रव्योंके मिलाके कहे गये हैं। इनमेंसे मूर्त्तत्व, अमूर्त्तत्व, चेतनत्व, तथा अचेतनत्व ये चार गुण परस्परके परिहारसे ज्ञ्यमें रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि—एक एक द्रव्यमं आठ आठ गुण होते हैं, यह इस प्रकारसे है; कि—जहां चेतनत्व है; वहां अचेतनत्व नहीं है, ऐसे ही जहां मूर्त्तत्व है; वहां अमूर्त्तत्व नहीं रहता है। इस रीतिसे दोनोंके निकाललेनेसे शेष आठ गुण प्रत्येक द्रव्यमें रहते हैं, इस कारणसे प्रत्येक द्रव्यमें आठ ही सामान्य गुण हैं; ऐसा जानना चाहिये॥ ६॥

अथ विशेषगुणान् व्याचिख्यासुराह । अब विशेषगुणोंका वर्णन करनेकी इच्छांसे कहते हैं ।

सूत्रम्। ज्ञानं दृष्टिः सुखं वीर्यं स्पर्शगन्धौ रसेक्षणे। गतिस्थित्यवगाहत्ववक्तना हेतुतापराः॥ ७॥

सूत्रभावार्थ:—ज्ञान, दर्शन, सुख, तथा वीर्य ये चार आत्माके विशेष गुण हैं; तथा रस, गन्ध, स्पर्श तथा वर्ण ये चार पुद्गलके विशेष गुण हैं; तथा गति, स्थिति, अवगा-हन, और वर्त्तना ये धर्मादि द्रव्योंके हेतुतापरक गुण हैं॥ ७॥

च्याख्या। ज्ञानगुणः, दृष्टिर्दर्शनगुणः, सुखमिति सुखगुणः, वीर्यमिति वीर्यगुणः, एते चत्वार आत्मनो विशेषगुणाः। पुनः स्पर्शगन्धौ स्पर्शगुणः गन्धगुणः, रसेक्षणे रसगुणः

ईक्षणं वर्णगुणः, एते च त्वारः पुद्गलस्य विशेषगुणाः शुद्धद्रव्ये अविकृतरूपा एतेऽविशिष्टास्ति-ष्टन्ति तत एते गुणाः कथिताः, विकृतस्वरूपास्ते पर्यायेषु मिलन्ति, इत्येवं विशेषोऽत्र क्षयः । तथा पुनः गत्यादयो गुणा हेतुतापरा एतावता गतिहेतुता, स्थितिहेतुता, अवगाहहेतुता वर्त्तनाहेतुता, एते चत्वारो गुणाः प्रत्येकं धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायाकाशास्तिकायकाल-द्रव्याणां क्रमेण सन्ति विशेषगुणाश्चत्वारः ॥ ७ ॥

च्याख्यार्थ:—ज्ञानगुण १ दर्शनगुण २ सुखगुण ३ तथा वीर्यगुण ४ ये चारों आत्माके विशेष गुण हैं। और स्पर्शगुण १ गन्धगुण २ रसगुण ३ तथा वर्णगुण ४ ये चारों पुद्गलके विशेष गुण हैं। ये गुण शुद्ध द्रव्यमें अविकृतरूपसे रहते हैं। और विकृत (विकारसहित) होनेसे वे पर्यायोंमें मिलते हैं; यह विशेषता जाननी चाहिये। और गित आदि गुण हेतुतापरक हैं; इससे यह सिद्ध हुआ कि—गतिहेतुता, स्थितिहेतुता, अवगाहहेतुता, तथा वर्तनाहेतुता ये चारों गुण एक एक धर्मास्तिकाय आदिके हैं, अर्थात् गतिहेतुता धर्मास्तिकायका, स्थितिहेतुता अधर्मास्तिकायका, अवगाहनहेतुता आकाशास्तिकायका, तथा वर्तनाहेतुता कालद्रव्यका, विशेषगुण है। इस प्रकार ये गतिहेतुताआदि चारों धर्मास्तिकायआदि चारों द्रव्योंके क्रमसे विशेष गुण हैं॥ ७॥

सूत्रम् । चैतन्यादिचतुर्भिस्तु युक्ताः षोडरासंख्यया । विशेषेण गुणास्तत्राप्यात्मनः पुद्गलस्य षट् ॥ ८॥

सूत्रभावार्थ:—चैतन्यआदि चारों गुणोंके साथ पूर्वोक्त द्वादश गुण मिलके सोलह गुण होते हैं, उनमेंसे आत्मा तथा पुद्गलके छः छः गुण होते हैं॥ ८॥

व्याख्या । अथेतेषां द्वादशगुणानां चैतन्यादिचतुर्भिर्युक्ताश्चेतनत्वाचेतनत्वमूर्त्तत्वादिभिश्च-तुर्भिः सिहताः सन्तः षोडश गुणा भवन्ति । तेषु गुणेषु पुदृळद्रव्यस्य वर्णगन्धरसस्पर्शमूर्त्त-त्वाचेतनत्वानि पट् सन्ति । आत्मद्रव्यस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्यामूर्त्तत्वचेतनत्वानीति पट् गुणा भवन्ति । अथान्येषां द्रव्याणां समुद्ययेन त्रय एव गुणा भवन्ति, एको निजगुणः, अचेतन-त्वम्, अमूर्त्तत्वम्, इति विमृश्य धार्यम् ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—अब इन द्वादश गुणोंके जब चेतनत्वआदि चारों गुणोंका योग होता है; अर्थात् ये पूर्वोक्त द्वादश गुण जब चेतनत्व, अचेनतत्व, मूर्तत्व, और अमूर्तत्व इन चारों गुणोंसिहत होजाते हैं; तब सोलह विशेष गुण होजाते हैं। उन सोलह गुणोंमेंसे पुद्गलद्वव्यके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मूर्तत्व और अचेतनत्व ये छः विशेषगुण होते हैं। और आत्म(जीव)द्वव्यके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्थ, अमूर्तत्व तथा चेतनत्व ये षद् विशेष गुण हैं। और अन्य द्वव्यके समुदायसे तीन ही गुण होते हैं। उनमेंसे एक निजगुण तथा अचेतनत्व और अमूर्तत्व ऐसे दो ये, इस प्रकार विचारके निश्चय करना चाहिये॥ ८॥

सूत्रम् । अन्येषां चैव द्रव्याणां त्रीणि त्रीणि पृथक् पृथक् । स्रजात्या चेतनत्वाद्याश्चत्वारोऽनुगता गुणाः ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थ:—अन्य द्रव्योंके पृथक् पृथक् तीन तीन गुण होते हैं। और निज जातिकी अपेक्षासे चेतनत्वआदि चार गुण अनुगत हैं॥ ९॥

व्याख्या । अन्येषां द्रव्याणां पृथक् पृथक् त्रयः २ गुणाः । यथा धर्मास्तिकायस्य गतिहेतु-तागुणः, अचेतनत्वगुणः, अमूर्तत्वगुणः । एवं त्रयोऽधर्मास्तिकायस्य स्थितिहेतुत्वाचेतनत्वा-मूर्त्तत्वादयः । आकाशास्तिकायस्यावगाहहेतुताचेतनत्वामूर्त्तत्वादयः । कालस्य वर्त्तनाहेतुत्वा-चेतनत्वामूर्त्तत्वादयः । इत्यादि क्षेयम् । अथ चेतनाद्याश्चत्वारः सामान्यगुणाः । चेतनत्वाचे-तनत्वमूर्त्तत्वामूर्त्तत्वानि सामान्यगुणेष्विप सन्ति विशेषगुणेषु च सन्ति । तत्र किं कारणं चेतनत्वाद्याश्चत्वारः सामान्यगुणाः स्वजात्यपेक्षया अनुगतव्यवहारकर्त्तारः सन्ति तस्मात्सा-मान्यगुणाः कथ्यन्ते ।। ९ ।।

व्याख्यार्थ:—अन्य अर्थात् पुद्गल तथा जीवसे भिन्न द्रव्योंके पृथक् २ तीन २ विशेष गुण हैं। जैसे धर्मास्तिकायके गतिहेतुता, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं। ऐसे ही अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं। आकाशास्तिकायके अवगाहनत्व, अचेतनत्व, और अमूर्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं। कालके वर्त्तनाहेतुत्व, अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं। इत्यादि जानना चाहिये। और चेतनत्वआदि अर्थात् चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व ये चार सामान्यगुण हैं। चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व तथा अमूर्तत्व ये चार सामान्यगुणोंमें भी हैं; और विशेषगुणोंमें भी हैं; इसमें क्या कारण है? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है; कि—चेत-तत्वआदि चार सामान्यगुण निज आश्रयीमूत जातिकी अपेक्षासे अनुगत व्यवहारके करनेवाले हैं, इसलिये ये सामान्यगुण कहे जाते हैं। ९॥

सूत्रम्। एत एव विशेषेण गुणा अपि जिनेश्वरैः। परजातेरपेक्षया ग्रहणेन परस्परम्॥ १०॥

सूत्रभावार्थ:—और परजातिकी अपेक्षासे परस्पर ग्रहण करनेसे इन्हीं चारों गुणोंको श्रीजिनेश्वरोंने विशेषगुण भी कहा है ॥ १० ॥

व्याख्या । परजात्यपेक्षया चेतनत्वाद्योऽचेतनत्वादिकेभ्यः स्वाश्रयव्यावृत्तिकराः सन्ति ततो विशेषगुणाः परापरसामान्यवत्सामान्यविशेषगुणत्वमेषामिति भावः । एत एव विशेषे-णेति स्पष्टम् ॥ १० ॥

ब्याख्यार्थ:—चेतनकी अपेक्षा अचेतन पर है; इस परजातिकी अपेक्षासे चेतनत्वआदि अचेतनत्वभादिकसे निज आश्रयमें व्यावृत्तिकर हैं; इसिछये विशेषगुण हैं। भावार्थ—जैसे द्रव्यत्व सामान्य पृथिवीत्वआदिकी अपेक्षासे पर है; और द्रव्य, गुण, तथा कर्मके ऊपर रहनेवाली सत्ता जातिकी अपेक्षासे अपर भी है; ऐसे परापर सामान्यकी भांति चेतनत्वआदि गुणोंके सामान्यगुणता तथा विशेषगुणता ये दोनों हैं। 'एत एव विशेषण' इत्यादि पूर्वार्द्धका अर्थ तो स्पष्ट ही है, इसलिये व्याख्या नहीं की ॥ १०॥

सूत्रम् । विशेषेण गुणाः सन्ति बहुस्वभावकाश्रयाः । अर्थेन ते कथं गुण्याः स्थृलव्यवहृतिस्त्वियम् ॥ ११॥

सूत्रभावार्थः—अनेक स्वभावयुक्त पदार्थीमें रहनेवाले विशेषगुण अनन्त हैं। उन सबकी पदार्थके साथ कैसे गुणना हो सकती है; इसलिये पुद्रलके विशेषगुण हैं; इत्यादि जो पूर्व कथन किया है; सो स्थूल व्यवहारसे जानना चाहिये॥ ११॥

व्याख्या । ज्ञानदर्शनसुखवीर्या एत आत्मनो विशेषगुणाः, स्पर्शरसगन्धवर्णा एते पुद्रलस्य विशेषगुणाः, इत्येतचत्कथितं तिद्यं स्थूलव्यवहृतिः स्थूलव्यवहृतः । यतश्चाष्टौ सिद्धगुणाः, एकत्रिशित्सिद्धगुणाः, एकगुणकालकादयः, पुद्रला अनन्ता, इत्यादिविचारणया विशेषगुणानामानन्त्योत्पत्तिः । सा च छद्मस्थज्ञानगोचरा नास्ति । अतोऽर्थेन ते कथं गुण्यास्तस्माद्धमीस्ति-कायादीनां गतिस्थित्यवगाहनावर्त्तनाहेतुत्वोपयोगम्रहणाख्याः पडेवास्तित्वादयः । सामान्यगुणास्तु विवक्षया अपिरमिता इत्येवं न्याय्यम् । षण्णां लक्षणवतां लक्षणानि षडेवेति हि को न श्रद्धाति । गाथा 'नाणं च दंसणं चेव चिरत्तं च तवो तहा । वीरियं उव ओगोय एवं जीवस्स लक्स्खणं ।१। सद्वंधकारज्ज्ञोया प्रभायावातहेव य । वण्णरसगंधकासा पुग्गलाणं तु लक्खणं ।२।' इत्यादि तु स्वभावविभावलक्षणयोरन्योन्येनान्तरीयकत्वप्रतिपादनायत्यादि पण्डितैर्विचारणीयम् ॥ ११ ॥

च्याख्यार्थः—ज्ञान, दर्शन, सुख तथा वीर्य ये आत्माके विशेषगुण हैं; तथा स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये पुद्गलके विशेषगुण हैं; इस प्रकार जो कथन किया गया है; सो स्थूल व्यवहारसे हैं; ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि—सिद्धोंके आठ गुण हैं, पुनः प्रकारान्तर से सिद्धोंके इकतीस ३१ गुण हैं, कालआदि एक गुणके धारक हैं, पुद्गल अनन्त हैं; इसलिये उनके गुण भी अनन्त हैं; इत्यादि विचारके करनेसे विशेषगुणोंके अनन्तताकी उत्पत्ति होती हैं; और वह छद्मस्थ ज्ञानके गोचर नहीं है। इस कारणसे पदार्थके साथ उन सब विशेषगुणोंकी गणना कैसे हो सकती है; अर्थात् अल्पज्ञानावस्थामें उन सब विशेषगुणोंका जानना तथा उनकी गणना करना दोनों ही असंभव हैं इस कारणसे धर्मास्तिकायआदिके गति, स्थिति, अवगाहन, वर्त्तनाहेतुता, उपयोग तथा प्रहणरूप षद् प्रकारके ही गुण समझने चाहिये। और अस्तित्वभादि सामान्यगुण तो विवक्षासे अपरिमित (अपरिमाण) हैं; यही न्याय है; क्योंकि—षट् लक्षणवालोंके अर्थात् द्रव्योंके लक्षण भी ६ ही हैं; इस विषयमें कीन नहीं श्रद्धान करैगा और "ज्ञान, दर्शन, चारित्र,

तप, वीर्य तथा उपयोग ये षट् जीवके लक्षण हैं। १। शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, वर्ण, रस, गंध, तथा स्पर्श ये पुद्गलोंके लक्षण हैं॥ २॥" इत्यादि जो कथन है; सो तो स्वभाव तथा विभाव लक्षणोंसे परस्परके भेदको प्रतिपादन करनेके लिये है; ऐसा पंडि-तोंको विचार लेना चाहिये॥ ११॥

सूत्रम् । स्वभावगुणतो भिन्ना धर्ममात्रविवक्षया । स्वस्वरूपस्य मुख्यत्वं गृहीत्वा समुदाहृताः ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—स्वभावगुणसे तथा धर्ममात्र विवक्षासे ये भिन्न हैं; परन्तु निज निज स्वरूपकी मुख्यताका ग्रहण करके ये गुण कहे गये हैं ॥ १२ ॥

व्याख्या । स्वभावगुणतो निजत्वव्यवहारेण धर्ममात्रविवक्ष्या अनुवृत्तिसंबन्धेन चैते भिन्नाः पृथक् २ सन्ति न कोऽपि किचिन्मश्रीभवित । परन्तु स्वस्वरूपस्य निजनिजरूपस्य मुख्यत्वं प्राधान्यं गृहीत्वा अनुवृत्तिसंबन्धमात्रमनुसृत्य समुदाहृताः यत्स्वभावाः सन्ति त एव गुणीकृत्य दिशताः । तत इदमत्र बोध्यम् – धर्मापेक्षया अत्रैते गुणात्मकाः पदार्थाः पृथक्स्वभावगुणतो भिन्ना उक्तास्तत्तु निजकीयन्तिककीयरूपमुख्यतां गृहीत्वैव स्वभावगुणीकृत्योपदिष्टा इत्यर्थः । तस्मादत्र गुणविभागं कथियत्वा अप्रे प्रतिपाद्यमानपद्ये स्वभाविभावयोः कथनमुदाहरिष्यतिति ध्येयम् ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:—स्वभावगुणसे अर्थात् निजल वा आत्मीयत्व व्यवहारसे और धर्ममात्रकी विवक्षासे अर्थात् अनुवृत्तिसंबन्धसे ये सब गुण पृथक् २ हैं; कोई किसीसे नहीं
मिलता। परन्तु अपने अपने स्वरूपकी मुख्यता(प्रधानता)को ग्रहण करके अर्थात्
अनुवृत्ति संबन्धमात्रका अनुसरण करके जो स्वभाव हैं, वे ही भिन्न करके दशीय हैं;
इसलिये यहांपर ऐसा जानना चाहिये कि—धर्मकी अपेक्षासे जो ये गुणरूप पदार्थ पृथक्
पृथक् स्वभाववाले गुणसे भिन्न भिन्न कहे गये हैं; वे निज निज रूपकी मुख्यताको ग्रहण
करके ही उस प्रकारके स्वभावके गुण करके उपदेश किये गये हैं, यह तात्पर्य है।
इसलिये यहांपर प्रथम गुणका विभाग कहकर, आगे कहे जानेवाले शोकमें स्वभाव
तथा विभावके कथनका उदाहरण दिया जायगा ऐसा समझना चाहिये॥ १२॥

सूत्रम् । अस्तिस्वभाव एषोऽत्र स्वरूपेणार्थरूपता । स्वभावपरभावाभ्यामस्तिनास्तित्वकीत्तेनात् ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—यहांपर पदार्थके निजस्वरूपसे जो अर्थरूपता है; वह अस्तिस्वभाव है। क्योंकि—स्व(अपने)भावसे अस्तित्व और परभावसे नास्तित्वका कथन होता है॥१३॥ व्याख्या। अत्रेति गुणप्रस्तावनायां प्रथममस्तिस्वभावस्तु एषः स्वरूपेण निजकीयरूपेणा- थेरूपता द्रव्ययाथात्म्यं स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावश्च भावरूपतेव क्षेया। कस्मात्स्वभावप- रभावाभ्यामस्तिनास्तित्वकीर्त्तनात्। यथा स्वभावेनास्तित्वं स्वभावोऽस्ति तथैव परभावेन नास्तित्वं स्वभावोऽप्यस्ति। ततोऽत्रास्तिस्वभावः कारणी वर्त्तते कथं तदस्तिस्वभावो हि तत्र

निजरूपेण भावरूपतास्ति । यथा परस्वभावेन नास्तिस्वभावानुभवनं तथा निजभावेन स्वभा-वानुभवनमपि जायते । अत उभयत्र कार्यरूपोऽस्तिस्वभाव इति ॥ १३ ॥

च्याख्यार्थ: —यहां अर्थात् गुणके प्रस्ताव(प्रसंग)में प्रथम अस्तिस्वभाव यह है; कि – वस्तुमें खरूपसे अर्थात् अपने रूपसे जो अर्थरूपता अर्थात् द्रव्यकी यथार्थता है; वही खद्रव्य, खक्षेत्र, खकाल, और खमावसे भावरूपता है; ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि – खमावसे अस्तित्व तथा परभावसे नास्तित्वका कथन है। भावार्थ — जैसे अपने भावसे अस्तित्व खमाव है; ऐसे ही परके भावसे नास्तित्वखमाव भी वस्तुमें है। इसिलये यहां अस्तिस्वभाव कारणीभूत है। वह किस प्रकारसे है; कि —स्वभाव ही वहां निजरूपसे भावरूपता है। जैसे परके भावसे नास्तिस्वभावका अनुभव होता है, वैसे ही निजभावसे स्वभावका भी अनुभवन होता है; इस हेतुसे अस्तित्व तथा नास्तित्व इन दोनोंमें कार्यरूप अस्ति खमाव है॥ १३॥

सूत्रम्। न चेदित्थं तदा श्रून्यं सर्वमेव भवेदिदम्। परभावेन सत्त्वे तु सर्वमेकमयं भवेत्॥१४॥

सूत्रभावार्थ: —यदि ऐसा न हो अर्थात् अपने भावसे अस्तित्व न माना जावे तो यह संपूर्ण जगत् शून्य होजाय, और परभावसे यदि सत्त्व अङ्गीकार करें तो सब एकमय अर्थात् एकरूप ही होजाय॥ १४॥

व्याख्या । चेद्यदि अस्तिस्वभावो नाङ्गीिक्षयते परभावापेक्षया यथा नास्तित्वं तथा स्वभा-वापेक्षयापि नास्तित्वावलम्बने सित सर्व जगिद्दं प्रपश्चयमानव्यतिकरमिप शून्यं भवेत् । तस्मात्स्वद्रव्यापेक्षया अस्तिस्वभावः सर्वथैवाङ्गीकरणीयः । परभावेन परद्रव्याद्यपेक्षयापि नास्तित्वस्वभावोऽप्यवश्यमङ्गीकर्त्तव्य इत्यर्थः। तथा च परभावेनापि सत्तामस्तिस्वभावमङ्गी-कुर्वतां सर्वस्वरूपेणास्तित्वे जायमाने च जगदेकरूपं भवेत् । तत्तु सकल्लशास्त्रव्यवहारिवरुद्ध-मस्ति । तस्मात्परापेक्षया नास्तिस्वभाव एव समस्ति । अथ सत्ता तु स्वभावेन वस्तुविपयं ज्ञापयित, अतः सत्तेति सत्यमस्ति । असत्ता तु स्वज्ञानेन परमुखनिरीक्षणं कुरुते ततः कल्प-नया ज्ञानविषयत्वेन च असत्तेत्यसत्यमस्ति । इत्थं बौद्धानां मतं वर्त्तते ॥ १४ ॥

ट्याख्यार्थ:—यदि अस्तिस्वभावको नहीं करते हो तो जैसे परभावकी अपेक्षासे नास्तित्व है; वैसे ही स्वभावकी अपेक्षासे नास्तित्वका प्रहण होजानेसे यह सब जगत् अर्थात् प्रपंच्यमान व्यतिकर भी शून्य होजायगा। इस कारणसे स्वकीय द्रव्य, क्षेत्रआदिकी अपेक्षासे अस्ति-स्वभावको अवश्यमेव मानना चाहिये, और इसी प्रकार परभावसे अर्थात् परद्रव्यआदिकी अपेक्षासे नास्तिस्वभाव भी अवश्य स्वीकृत करना चाहिये यह तात्पर्य है। और परभावसे अर्थात् अन्यके द्रव्य क्षेत्रआदिकी अपेक्षासे अस्तिस्वभावको स्वीकार करनेवालोंके मतसे सर्व स्वभावसे अस्तित्व सिद्ध होजानेपर संपूर्ण जगत् एकह्रप ही होजायगा, और सर्वथा समस्त जगत्का एकह्रप हो जाना सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है, इसल्ये परकी अपेक्षासे नास्तिस्वभाव ही समीचीन है। "अब सत्ता तो अपने अस्तिस्वभावसे वस्तुविषयताको ज्ञापित करती है; अर्थात् वस्तुको जताती है; इसिलये सत्ता यह सत्य है, और असत्ता अपने असत्विषयक ज्ञानसे केवल परके मुखकी ओर ताकती है; इसिलये केवल कल्पनासे ज्ञानका विषय होनेसे अर्थात् कल्पनामात्रसे ज्ञानमें भासनेसे असत्ता असत्य (मिथ्या) है। ऐसा बौद्धोंका मत है। १४।

तदेव खण्डयन्नाह ।

अब इसी असत्ताको मिथ्या कहनेवाले बौद्धोंके मतका खंडन करते हुए कहते हैं।

सूत्रम्। यत्सत्तावदसत्ता तु न स्फुरेद् व्यञ्जकं विना। तत्सन् शरावगन्धोऽपि विना नीरं न संभवेत्॥ १५॥

सूत्रभावार्थ: जैसे सत्ता तत्क्षण स्फुरायमान होती है; वैसे जो असत्ता नहीं स्फुरायमान होती है; तो इसमें व्यंजकका नहीं मिलना कारण है. क्योंकि-शरावमें विद्यमान शरावका गंध भी जलके विना नहीं जाना जाता है ॥ १५ ॥

व्याख्या। यत्सत्तावत् तत्क्षणमेवासत्ता तु न स्फुरेत्, तत्तु व्यश्वकं विना व्यंजकस्यामिन्
लनवशतः। परन्तु शृन्यत्वेन, अथ च तुच्छत्वेन नद्यस्ति। तत्र दृष्टान्तमाह। तदिति उदाहरणंसन् विद्यमानः शरावे वर्तमानः शरावगन्धोऽपि नीरं विना नीरस्पर्शनमन्तरेण न संभवेत् न
ब्रायते। एतावता गन्धापेक्षा असत्या नास्ति किन्तु केषांचिद्वस्तूनां गुणाः स्वभावेनानुभूयन्ते, केषांचिच्च प्रतिनियतव्यश्वकव्यङ्ग्या एव सन्तीत्येतद्वस्तुवैचित्र्यमस्ति। परन्त्वेकस्यैव
कस्यचिद्धर्मस्य न्यूनत्वकथने बहुव्यवहारविद्धप्तिजीयते। उक्तं च श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायैर्भाषारहस्यप्रकरणे "ते हुंति परावेक्त्या वंजयमुहदंसिणोऽवि णयतुच्छा। दिट्टमिणं वेचित्तं
सरावकप्पूरगंधाणं"।। १५।।

व्याख्यार्थ:—जो सत्ताकी भांति असत्ता उसी क्षण स्फुरित (प्रकट) नहीं होती है सो व्यंजकके विना अर्थात् व्यंजकके न मिलनेसे तत्काल स्फुरित नहीं होती। परन्तु असत्ता शून्य है, अथवा तुच्छ है, इसवास्ते स्फुरित नहीं होती यह बात नहीं है। इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं। सूत्रमें तत् शब्द जो है सो उदाहरणका प्रदर्शन करता है इस लिये उदाहरण यह है कि शराव अर्थात् सरवा (मृत्तिकाका बना हुआ कोरा पात्र) जो है उसमें विद्यमान जो उस शरावका गंध है वह भी जलके स्पर्शविना नहीं जाना जाता। इससे तात्पर्य यह है कि शरावमें विद्यमान गंध असत्य नहीं है किन्तु सत्य ही है। परन्तु वह जो जलस्पर्शके विना नहीं जाना जाता है इसमें वस्तुकी विचित्रताही कारण है। कितनेही पदार्थोंक गुण स्वभावसेही अनुभूत होते हैं और कितनेही पदार्थोंक गुण प्रतिनियत जो व्यंजक हैं उनसेही जाने जाते हैं यह वस्तुस्वभावकी विचित्रता है। परन्तु वस्तुमें तत्क्षण वह धर्म स्फुरित न हो तो उसकी न्यूनता (कमी) कह देनेसे बहुतसे व्यवहारोंका लोप हो जाता है। और इस विषयमें श्रीयशोविजयजी उपाध्यायने "भाषा-

रहस्यप्रकरण"में कहा भी है कि "नास्तिस्वभाव परकी अपेक्षा रखते हैं और तुच्छ-नयके विषय हैं और व्यंजकका मुख देखा करते हैं। यह वस्तुका वैचिच्य शराव तथा-कपूरके गंधमें देखा हुआ है अर्थात् जैसे शराव तथा कपूरका गंध व्यंजक विना प्रकट नहीं होता वैसे नास्तिस्वभाव भी व्यंजककी अपेक्षा रखता है।। १५॥

सूत्रम्। यत्स्रस्वानेकपर्यायैभिन्नं द्रव्यं तदेव हि। नित्यानित्यस्वभावेन पर्यायपरिणामता॥१६॥

सूत्रभावार्थ:—जो निज निज अनेक पर्यायोंसे भिन्न अर्थात् भेदक द्रव्य है वहीं नित्य तथा अनित्य स्वभावसे पर्यायकी परिणामता है।। १६॥

व्याख्या । यत्स्वस्वानेकपर्यायैर्निजनिजक्रमभाविभिः इयामत्वरक्तलादिभिर्भिन्नं भेदकं द्रव्यं वर्त्तते परन्तु तदेव हि निश्चितं द्रव्यं तदेव यत्पूर्वमनुभूतमभविष्यदिखेतत्तत्त्वज्ञानं यस्माज्ञायते तन्नित्यस्वभावत्वं कथ्यते "तद्भावाव्ययं नित्यमिति" सूत्रम् । प्रध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्विमत्यस्याप्यत्रैव पर्यवसानं केनचिद्रपेणैव तद्धक्षणव्यवस्थितेः । अनित्यस्वभावपर्यायपरिणतिर्येन प्राप्यते, येन च रूपणोत्पाद्व्ययौ स्तः, तेन रूपणानित्यस्वभावोऽस्ति । ततो नित्यानित्यस्वभावेन पर्यायपरिणामता ज्ञेया ॥ १६ ॥

च्याख्यार्थ:—जो अपने अपने क्रमभावी श्यामत्व तथा रक्तत्व आदि पर्यायोंसे भिन्न अर्थात् भेदक द्रव्य है परन्तु निश्चय करके वही द्रव्य है जो पहले अनुभवमें आया हुआ है और आगे अनुभवमें आवेगा, ऐसा तत्त्वज्ञान जिसके द्वारा होता है उसको नित्यस्व-माव कहते हैं। क्योंकि "तद्भावाच्ययं नित्यम्" "जिसके स्वभावका नाश न हो वही नित्य है" ऐसा सूत्र है। और 'जो ध्वंसाभावका अप्रतियोगी है वह नित्य है" इस लक्षणका भी यहां ही समावेश है; क्योंकि चाहे जैसा लक्षण करो अविनाशीस्वरूपकी स्थितिमें तात्पर्य है। और अनित्य स्वभावरूप पर्यायोंका परिणाम जिसके द्वारा प्राप्त होता है तथा जिस रूपसे उत्पत्ति और नाश होता है उस रूपसे अनित्यस्वभाव है। इस कारणसे नित्य और अनित्य स्वभावसे पर्यायोंका परिणाम जानना चाहिये॥ १६॥

सूत्रम् । सद्वस्तु नाशयन् रूपान्तरेणाभाति यद्विधा । सत्सामान्यविशेषाभ्यां स्थृलाधीन्तरनाशता ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थ:—विद्यमान वस्तुको रूपान्तरसे नष्ट करता हुआ जो द्रव्य दो प्रकारका भासता है सो सत् सामान्य और विशेषसे स्थूल अर्थान्तरकी नाशता होती है ॥ १७॥

व्याख्या । सद्वस्तु विद्यमानं वस्तु रूपान्तरेण पर्यायविशेषेण नाशयन्नवस्थान्तरमापाद्यन् यद्गव्यं द्विधा द्विभेद्मेतदूरेण नित्यमेतदूरेणानित्यं चेति वैचित्र्यमाभाति । यथा च सत्सामान्यविशेषाभ्यां स्थूढार्थान्तरनाशतेति विशेषस्य सामान्यरूपत्वादितत्यत्वं, यथा घटनाशेऽपि मृद्रव्यानुवृत्तेः। तथा पुनः सामान्यस्यापि स्थृलार्थान्तरघटादिनाशेऽनित्यत्वं, घटनाशे मृत्रघट इति प्रतीतेः॥ १७॥

व्याख्यार्थ:—विद्यमानवस्तुको रूपान्तरसे अर्थात् पर्यायिवशेषसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें प्राप्त करते हुए जो द्रव्य दो भेद्युक्त अर्थात् इस रूपसे नित्य है और इस रूपसे अनित्य है इस प्रकार विचित्रतासे भासता है; वहां सत्सामान्य तथा विशेषसे स्थूल अर्थान्तरकी नाशता है. जैसे-विशेषके सामान्यरूपसे अनित्यता है। दृष्टान्त—जैसे घटके नाश होनेपर भी मृत्तिकारूपकी अनुवृत्ति अन्य पर्यायोंमें होती है। और सामान्यके भी स्थूल पदार्थांतर घट आदिका नाश होनेपर अनित्यता है। क्योंकि घटरूपसे जो मृत्तिका है वह घट नहीं है ऐसी प्रतीति होती है॥ १७॥

सत्रम्। नित्यत्वं नास्ति चेत्तत्र कार्यं नैवान्वयं विना। कार्यकालेऽप्यसन् हेतुः परिणतिं विगोपयेत्॥ १८॥

सूत्रभावार्थः यदि पदार्थकी नित्यता नहीं मानोगे तो अन्वयके विना कार्य-की उत्पत्तिहीं न होगी । और कार्यकालमें भी अविद्यमान हेतु परिणामको नहीं होने देगा ॥ १८ ॥

व्याख्या। चेदादि निस्तत्वं नास्यथं चैकान्तक्षणिकमेव खलक्षणमितः। तत्र त्वन्वयं विना कार्य नो निष्पद्यते। यतः कारणक्षणं कार्यक्षणोत्पत्तिकाले च निर्हेतुकनाशमनुभवन्नसन्नेवास्ति। तच्च कार्यक्षणपरिणतिं कथं कुर्यात्, असत्कारणक्षणः कार्यक्षणं करोति तदा विनष्टकारणाद्ध्यवानुत्पन्नकारणात्कार्ये निष्पन्नं युज्यते, तदा तु कार्यकारणभावस्य विख्म्बना जायते। अवहित एव यः कारणक्षणः कार्यक्षणं च कुरुत एवं यदोच्यते तदापि रूपालोकमनस्कारादि-क्षणक्षपादीनां विषय उपादानालोकादिकविषये च निश्चितमिति व्यवस्था कथं घटते। यतोऽन्वयं विना शक्तिमात्रविषय उपादानिमित्तविषयेऽपि कथियतुर्व्यवहारो न स्थात्, तस्मादुपादानिमस्यन्वियत्वेन मन्तव्यम्। अथान्वियत्वं च तदेव निस्यस्भावत्वं मन्तव्य-मिस्यर्थः।। १८।।

व्याख्यार्थ:—यदि पदार्थकी नित्यता नहीं है किन्तु सर्वथा क्षणिक रूपही पदार्थका लक्षण है ऐसा मानते हो तो इस माननेमें कारणके अन्वय अर्थात् किसी स्वभावकी अनुवृत्ति विना कार्य नहीं सिद्ध हो सकता। क्योंकि कारणका क्षण कार्यक्षणके उत्पत्ति-कालमें भी हेतुरहित होकर नाशका अनुभव करता हुआ असत्रूप ही है और वह असत् कारणक्षण कार्यक्षणका परिणाम कैसे करैगा? क्योंकि जब असत् कारणक्षण ही कार्यक्ष क्षणकी उत्पत्तिको करैगा तब विनष्ट कारणसे कार्य उत्पन्न होता है अथवा अनुत्पन्न (नहीं पैदा हुए)कारणसे कार्य उत्पन्न होता है ऐसा कथन करना ठीक होता है। और नष्ट हुए तथा अनुत्पन्न कारणसे कार्य सिद्ध होता है ऐसा कथन करोगे तो कार्यकारणभावका मानना यह विडम्बनाही है। भावार्थ—नष्ट तथा अनुत्पन्न कारण कार्यको कैसे कर

सकता है? अपि तु नहीं कर सकता। अब यदियह कहो कि अवहित जो कारणक्षण है वहीं कार्यक्षणकों भी करता है तब भी रूपका देखना तथा मनका व्यापार करना इत्यादि- के क्षणसहित रूपादिके विषयमें तथा उपादानकारण जो भालोकादि हैं उनके विषयमें कारणक्षण निश्चित हैं यह व्यवस्था कैसे घटित हो सकती है ? क्योंकि, अन्वयके विना शक्तिमात्रके विषयमें और उपादान निमित्तके विषयमें भी कथन करनेवालेका व्यवहार नहीं हो सकता। क्योंकि, वह उपादानता तो क्षणिक होनेसे उसी क्षणमें नष्ट होगयी फिर कार्यदशामें (घटरूप अवस्थामें) उपादान कारण (मृत्तिका) है यह व्यवहार कैसे हो सकता है ?। इस लिये उपादान कारणकी कार्यदशामें अनुवृत्ति रहती है यह वार्ता अवश्य मन्तव्य है। जो अन्वयपना है वही नित्य स्वभावत्व है ऐसा मानना चाहिये यह अर्थ है॥ १८॥

सूत्रम् । सर्वथा नित्यता नास्ति न स्यादर्थिकिया तदा । दलस्य कार्यरूपत्वानुत्पन्नत्वं विषीदति ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थ:—और सर्वथा कारणरूपकी नित्यता भी नहीं है क्योंकि सर्वथा नित्यता माननेमें अर्थिकया न होगी; क्योंकि कारणके सर्वथा नित्यपनेमें कार्यरूपसे उत्पत्ति नहीं घटित होती है ॥ १९ ॥

व्याख्या । यदि सर्वथा नित्यस्वभावो मन्तव्यः अथाप्यनित्यता अनित्यतास्वभावः सर्वथा नास्त्येवमङ्गीकारेऽर्थिकिया न स्याद्र्थिकिया न घटते । यतो दलस्य कारणस्य कार्यक्रपत्वानु-त्पन्नत्वं विषीद्ति, कारणस्य कार्यक्रपता परिणितः कथंचिदुत्पन्नत्वमेवागतम्, सर्वथा अनु-त्पन्नत्वं तु विषीद्ति विघटितं भवतीति । अपरं च यद्येवं कथ्यते कारणं तु नित्यमेव तद्वृत्ति कार्यं त्वनित्यमेव । तदा कार्यकारणयोरभेदसंबन्धः कया युक्तया घटते । भेदसंबन्धाङ्गीकारे तत्संबन्धान्तरादिगवेषणया अनवस्था भवेत् । ततः कथंचिद्नित्यस्वभावोऽपि माननीयः । इति भावार्थः ॥ १९॥

व्याख्यार्थ:—यदि सर्वथा (एकान्तरूपसे) नित्य स्वभावही माना जाय और अनित्य स्वभाव सर्वथा नहीं है ऐसा माना जाय तो अर्थिक्रिया नहीं हो सकती। कारण कि कारणके कार्यरूप अनुत्पन्नता विघटती है अर्थात् कारणकी जो कार्यरूपमें परिणित है उससे कथंचित् उत्पन्नता ही आई और अनुत्पन्नता तो सर्वथा संगत नहीं होती है। और यदि ऐसा कहते हो कि कारण तो नित्यही है और उसमें रहनेवाला कार्य अनित्य ही है तब कार्य और कारणका जो अभेदसंबन्ध माना गया है वह किस युक्तिसे सिद्ध होगा? क्योंकि नित्यता तथा अनित्यताका अभेदसंबन्ध नहीं हो सकता। तथा यदि कार्य और कारणका भेदसंबन्ध मानो तो वह संबन्ध किस संबन्धसे रहता है ? जो संबन्ध उसमें रहता है वह किस संबन्धसे है ?

इत्यादि संबन्धोंके खोज करनेसे अनवस्था दोष हो जायगा । इस छिये कथंचित् अनित्य खभाव भी अवस्य माननेके योग्य है। इस प्रकार श्लोकका तात्पर्य है॥ १९॥

सूत्रम् । स्वभावैकाश्रयत्वे त्वेकस्वभावविलासता । अनेकार्थप्रवाहेणानेकस्वभावसंभवः ॥ २०॥

सूत्रभावार्थः स्वभावोंका एकाश्रय स्वीकार करनेपर एक स्वभावकी विलासता है तथा अनेक स्वभावयुक्त पदार्थके प्रवाहसे अनेक स्वभावका भी संभव है ॥ २०॥

व्याख्या । स्वभावैकाश्रये स्वभावो हि सहभावी धर्मस्तस्याधारत्वे स्वभावैकाश्रयत्वे त्वेक-स्वभावो यथा रूपरसगन्धस्पर्शानामाधारो घटादिरेकः कथ्यते । नानाधर्माधारत्व एकस्वभावता नानाक्षणानुगमनत्वे नित्यस्वभावता इत्ययं विशेषो क्षेयः । मृदादिद्रव्यस्य स्थासकोशकुस्रु-स्वादिका अनेके द्रव्यप्रवाहाः सन्ति तेनानेकस्वभावप्रकाशे पर्यायत्वेनादिष्टं द्रव्यं क्रियते, तदा आकाशादिद्रव्येष्वपि घटाकाशादिभेदेनैतत्स्वभावदुर्लभता नास्ति । एवमनेकार्थप्रवाहेणानेक-स्वभावसंभव इति ॥ २०॥

व्याख्यार्थ:—स्वभावका अर्थ है द्रव्यके साथ होनेवाला धर्म, उसके आधारको एक माननेसे एक स्वभाव होगा । जैसे—रूप, रस, गंध तथा स्पर्शका आधार (आश्रय) घट आदि पदार्थ एक कहा जाता है। और नानाप्रकारके धर्मोंका आधार होनेपर एकस्वभावता अर्थात् नानाक्षणमें वही मृत्तिकारूप द्रव्यका जो अनुगमन (अनुवृत्ति) है वह नित्यस्नभावता है, यह विशेष जानना चाहिये । और मृत्तिका आदि द्रव्यके पिंड, कोश, कुसूल आदि अनेक द्रव्यप्रवाह होते रहते हैं इससे अनेकस्वभावयुक्त भी पर्याय रूपसे द्रव्य होता है । और जब ऐसा हुआ तब आकाश आदि द्रव्योंमें भी घट आकाश, मठ आकाश, आदि भेदोंसे नानास्वभावता (अनेक स्वभावपना) दुर्लभ नहीं है । इस प्रकारसे नाना-प्रकारके स्वभावयुक्त द्रव्यका प्रवाह होनेसे द्रव्य नानास्वभावका धारक है, यह भी पक्ष संभव है ॥ २०॥

सूत्रम्। विनैकत्वं विशेषो न सामान्याभावतो लभेत्। अनेकत्वं विना सत्ता विशेषाभावतो नहि॥ २१॥

सूत्रभावार्थ:—एक स्वभावके अभावमें सामान्यके विना विशेषकी प्राप्ति नहीं होती और अनेक स्वभावके विना विशेषका अभाव होनेसे सत्ता (सामान्य) की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१ ॥

व्याख्या। एकत्वं विना एकस्वभावं विना सामान्याभावेन विशेषो न प्राप्यते । तथा अनेकत्वं विना अनेकस्वभावमन्तरेण सत्ता अपि न घटते । तत एकानेकेति स्वभावद्वय-मङ्गीकर्त्तुं योग्यम् । तथैव विशेषाभावतो नहीति, विशेषमन्तरा सामान्यं न, सामान्यमन्तरा विशेषो नेति । एकं विना अनेकता न, अनेकं विना नैकत्वमिति ॥ २१ ॥

च्याख्यार्थ:—एकस्वभावके विना सामान्यका अभाव हो जावेगा और सामान्यके अभावसे विशेषकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसेही अनेक स्वभावके विना सर्ववर्त्तिनी सत्ता भी नहीं घटित होती । इस लिये एक तथा अनेक ये दोनों स्वभाव वस्तुके अंगीकार करने चाहिये। ऐसेही विशेषके विना सामान्यस्वरूप नहीं । अर्थात् विशेषके विना सामान्य और सामान्यके विना विशेष नहीं है। एकके विना अनेकता नहीं है और अनेक विना एकत्व नहीं है। २१॥

सूत्रम् । संज्ञासङ्ख्यादिभेदेन भेदस्वभावता द्वयोः । अभेदवृत्तिलक्षणं यत्तदेवाभेदभावनम् ॥ २२ ॥

सूच्रभावार्थ:—संज्ञा तथा संख्या आदिके भेदसे गुण गुणी आदिके भेद स्वभाव है। और अभेदवृत्ति जो लक्षण है वही अभेद—भावना है॥ २२॥

व्याख्या । द्वयोरिति गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः कारककारिकनोः संज्ञासंख्यादिभेदेन कृत्वा भेदस्वभावता ज्ञातव्या । यदभेदवृत्तिलक्षणं भेदरिहतवृत्तेर्लक्षणवत्त्वं तदेवाभेदस्वभावो-ऽभेदभावनं ज्ञेयम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थ: सूत्रमें "द्वयोः" यह जो पद है इससे गुण गुणी, पर्याय पर्यायी, तथा कारक और कारकी (जिसमें कारकका व्यवहार होता है उसे कारकी कहते हैं) इन दो दोके संज्ञा, संख्या आदिके द्वारा भेद स्वभावपना जानना चाहिये। और भेदवृत्तिसे रहित जो लक्षण है उस लक्षणसहितको ही अभेदस्वभाव जानना चाहिये। २२।

सूत्रम्। भेदं विनैकतामीषां ततो व्यवहृतिक्षयः। अनभेदात्कथं बोधो ह्यनाधारवतोईयोः॥ २३॥

सूत्रभावार्थः—भेदस्वभावके विना इन सब द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकता हो जायगी, और सबकी एकता होनेसे व्यवहारका अभाव होगा तथा अभेदके विना आधार- शून्य दोनों गुणपर्यायोंका वोध भी कैसे होगा ॥ २३॥

व्याख्या। भेदं विना भेद्स्वभावं विना अमीपां सर्वद्रव्यगुणपर्यायाणामेकता ऐक्यं स्यात्। तेन कृत्वा इदं द्रव्यम्, अयं गुणः, अयं पर्यायः, इति व्यवहारस्य विरोधो जायते। अन्यश्वाभेद्स्वभावो यदि न कथ्यते तदा अनाधारवतोर्निराधारयोर्द्वयोर्वोधः कथं भवेत्। आधाराधेययोरभेदं विना द्वितीयः संबन्धो न घटते। अत्र प्रवचनसारगाथा "पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स। अणत्तमत्तभावो ण तद्भवं भवदि कधमेगं।१।"॥२३॥

च्याख्यार्थ:— भेद स्वभावके विना इन सब द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकता होजा-यगी और सबकी एकता होनेसे यह द्रव्य है, यह गुण है, तथा यह पर्याय है इत्यादि व्यवहारका विरोध होता है और यदि अभेद स्वभाव नहीं कहते हैं तो आधाररहित दोनोंका बोध भी कैसे होवे क्योंकि आधार तथा आधेयके अभेद विना दूसरा संबन्ध घटित नहीं होता है। इस विषयमें प्रवचनसारकी गाथा भी है। उसका भाव यह है कि प्रविभक्तप्रदेशता है वही पृथक्त्व है ऐसा श्रीवीरभगवान्का उपदेश है और जो अन्यत्व है वह अतद्भाव है अर्थात् उसका स्वभाव नहीं है। क्योंकि वह उसमें नहीं होता इसिलये दोनों एक नहीं है अर्थात् गुण गुणी रूपतासे एकता नहीं है। २३॥

सूत्रम् । अवस्थितात्मरूपस्याविर्भावाद्भव्यमिष्यते । सदाश्रयन्परं भावमभवन्नितरः स्वतः॥ २४॥

सूत्रभावार्थ:—अवस्थित द्रव्यभावके आविर्भावसे भव्यस्वभाव है तथा सदा परभा-वका आश्रय करता है वह स्वभावसे इतर (भिन्न) अर्थात् अभव्य स्वभाव है ॥ २४ ॥

व्याख्या । अवस्थितात्मभावस्थानेककार्यकारणशक्तिकं यदवस्थितद्रव्यं तस्यावस्थित-द्रवस्याविभीवात्क्रमिकं विशेषान्ताविभीवाद्भिव्यङ्गयं भव्यं भव्यस्वभाविम्ब्यते । अथ सदा त्रिकालं परं भावं परद्रव्यानुगतित्वं श्रयन्परस्वभावेन परिणमन्यः स्यात्तत्स्वतः स्वभावत इतरोऽभव्यस्वभाव इति कथ्यते।१०। 'अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासअण्णमण्णम्स । मेलं-ताविय णिचं सगसगभावं ण विजहति ।१।' इति भावस्वभावार्थो होयः ॥ २४ ॥

व्याख्यार्थ:—अनेक कार्यकारणकी शक्तियुक्त जो अवस्थित द्रव्य है उस अवस्थित (विद्यमान) द्रव्यके कमसे जो आविर्भाव उससे जानने योग्य भव्यस्वभाव माना गया है। ९। और सदा (त्रिकालमें) जो परस्वभावसे परिणमन करता है वह स्व (अपने) भावसे भिन्न अर्थात् अभव्य स्वभाव कहा जाता है। १०। और परस्पर एक दूसरेके प्रदेशमें प्रवेश करते हुए तथा परस्पर अवकाशको देते हुए एवं नित्य मिलते हुए भी द्रव्य अपने अपने भावको नहीं छोड़ते हैं। यह भावस्वभावका अर्थ जानना चाहिये॥ २४॥

सूत्रम् । श्रून्यत्वं क्टकार्येण भव्यभावं विना भवेत् । अभव्यत्वं विना द्रव्यान्तरता द्रव्ययोगतः ॥ २५॥

सूत्रभावार्थः भव्यस्वभावके विना असत्यकार्यके साथ योग होनेसे शूत्यवत्ता होती है। और अभव्य स्वभावके विना द्रव्यके संयोगसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति होती है। २५॥ व्याख्या। भव्यभावं विना भव्यस्वभावमन्तरेण कूटकार्येणासत्यकार्येण योगे शून्यतं शून्यवत्त्वं भवेत्। किन्तु परभावे भवेत्रहि स्वभावे च भवेत्तदा भव्यत्वं स्वादिति। अथ पुनरभव्यत्वं विना अभव्यस्वभावानङ्गीकारे द्रव्ययोगतः द्रव्यस्य संयोगाद्वव्यान्तरता द्रव्यान्यत्वं जायते। यस्माद्धर्माधर्मादीनां जीवपुद्रल्योरेकावगाहनावगादकारणेन कार्यसंकरोऽभव्यस्वभावनेनेव न भवेदिति। तत्तद्वव्याणां तत्तत्कार्यहेतुताकस्पनमप्यभव्यत्वस्वभावगर्भितमेवास्ते। आत्मादेः स्ववृत्त्यनन्तकार्यजननशक्त्या भव्यः, तत्तत्सहकारिसमवधानेन तत्तत्कार्योपधायकन्ताशक्त्यः तथा भव्यतेति। तथा भव्यतयैवानतिप्रसङ्ग इति तु हरिभद्राचार्यः।। २५।।

व्याख्यार्थ:—भव्यस्वभावके बिना असत्यकार्यका योग होनेसे शून्यवान्पना होवे। तात्पर्य यह कि परभावमें नहीं होवे और स्वभावमें हो तब भव्य भाव होता है। और अभव्य स्वभावके न अंगीकार करनेपर द्रव्यके संयोगसे अन्यद्रव्यता होती है। इससे धर्म अधर्म आदि द्रव्योंके तथा जीव और पुद्गलके एक प्रदेशमें अवगाहना रूप अवगाह कारणसे जो कार्यसंकरता नहीं होती है सो अभव्यस्वभावसेही नहीं होती है। और उन उन द्रव्योंके उन उन द्रव्योंके कार्योंका हेतुरूपसे जो कल्पन है वह भी इस अभव्यस्वभावमें ही गिमंत है। तात्पर्य यह कि आत्मा आदि द्रव्योंके अपनेमें रहनेवाले अनन्त कार्योंको उत्पन्न करनेकी जो शक्ति है उस शक्तिसे तो भव्यभाव है और उन उन सहकारी कारणोंके सिन्नधानसे उन उन कार्योंकी उत्पादक जो शक्ति है वह अभव्य भाव है। और ऐसा माननेसे भव्यभावके साथ अतिव्याप्ति नहीं होती है। यह हिरभद्राचार्यजी कहते हैं॥२५॥

सूत्रम्। पारिणामिकस्वभावः परमभाव आहितः। विनेनं मुख्यता द्रव्ये प्रसिद्ध्या दीयते कथम्॥ २६॥

सूत्र भावार्थ:—पारिणामिकस्वभाव जो है उसको परमभाव कहते हैं। इस परमभावके विना द्रव्यमें प्रधानता प्रसिद्धरूपसे कैसे दी जावे ? ॥ २६ ॥

व्याख्या। स्वलक्षणीभूतपारिणामिकभावप्रधानतया परमभाव आहितः। यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा। परिणामे भवः पारिणामिकः स चासौ स्वभावश्च पारिणामिकस्वभावः। परं प्रकृष्टं ज्ञानादि परमं तच्च भावः परमभाव इत्यनेनात्मा ध्वन्यते। यदि हि परमभावः स्वभावो न कथ्यते तदा द्रव्यविषये प्रसिद्धतया प्रसिद्धरूपं कथं दीयते। अनन्त-धर्मात्मकवस्तुन एकधर्मपुरस्कारेणालाप्यते यत्तदेव परमताया लक्षणं ज्ञेयमिति। एते एका-द्रश्च स्वभावा सर्वेषां द्रव्याणां धारणीयाः। एनं परमभावं विना द्रव्ये द्रव्यविषये मुख्यता प्राधान्यं प्रसिद्धरा प्रसिद्धरूपेण कथं दीयत इत्येवमिति।। २६।।

व्याख्यार्थः अपने निजलक्षणभूत पारिणामिक भावकी प्रधानतासे परम भाव कहा गया है। जैसे आत्मा ज्ञानखरूप है। परिणाममें जो हो उसे पारिणामिक कहते हैं। पारिणामिक ऐसा जो स्वभाव वह पारिणामिक स्वभाव है। उत्कृष्ट जो ज्ञान आदि सो परम हैं। परम जो भाव वह परम भाव है और इससे आत्मा ध्वनित होता है। ११। यदि परम भावको स्वभाव नहीं कहें तो द्रव्यमें प्रसिद्धरूप केसे दिया जावे? क्योंकि, अनन्तधर्मवाले द्रव्यको जो एक धर्मको मुख्य करके उससे कहा जावे वहीं परम भावका लक्षण है, ऐसा जानना चाहिये। ये पूर्वीक्त एकादश (ग्यारह) स्वभाव छहीं द्रव्योंके विषयमें ही धारण करने चाहिये। इस अंतिम परमभावके बिना द्रव्यके विषयमें प्रधानता प्रसिद्ध रूपसे कैसे योजित कर सकते हो?। इस रीतिसे अस्तित्व आदि सब भावोंकी आवश्यकता द्रशीयी गई है।। २०॥

सूत्रम् । इत्थं च सामान्यतया स्वभावा एकादशामी कथिताः श्रुतोक्ताः ।

आप्तोक्तिमभ्यस्य निरस्य जाड्य-मईत्रुमाम्भोजरता भवन्तु ॥ २७॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकार ये शास्त्रोक्त सामान्यरूपसे द्रव्योंके एकादश स्वभाव कहे गये हैं । भव्यजीवोंको उचित है कि वे इनका पूर्णरूपसे अभ्यास करके और अपनी अज्ञानताको दूर करके श्रीजिनदेवोंके चरणकमलोंकी सेवामें तत्पर होवें ॥ २७॥

व्याख्या । इत्थं च पूर्वोक्तप्रकारेण सामान्यतया सामान्यस्वभावसर्वद्रव्याधारतया स्वभा-वाः द्रव्याणां प्रकृतयः अमी प्रत्यक्षप्रमाणविषयीकृताः कथिताः कण्ठतोऽर्थतश्चोक्ताः श्रुतोक्ताः श्रुते शास्त्र उक्ताः प्रतिपादितास्तान्स्वभावान्सम्यक् स्ववुद्धया अभ्यस्य अभ्यासीकृत्य जाड्यं मौर्ख्यं निरस्य दूरीकृत्याईत्कमाम्भोजरता अईतां तीर्थकृतां क्रमाः पादास्त एवाम्भोजानि कम-लानि तत्र रक्ता आसक्ताः साद्रा भवन्तु । श्रुत्रबोधस्थैतन्माहात्म्यं श्रीजिनभजनसाद्रस्व-मेवेति ध्येयम् । अत्र श्रुषेण भोजेति सन्दर्भकर्त्तुर्नामसङ्केतश्चेति । अथान्यप्रन्थाधिकारः । अस्तित्वम् १ वस्तुत्वम् २ द्रव्यत्वम् ३ प्रमेयत्वम् ४ अगुकलधुत्वम् ५ प्रदेशत्वम् ६ चेतनत्वम् ७ अचेतनत्त्वम् ८ मूर्त्तत्वम् ९ अमूर्त्तत्वम् १० द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः । प्रत्येकमष्टावष्टौ । सर्वेषां दशसामान्यगुणानां मध्ये षद् सामान्यगुणाः, चत्वारः सामान्यगुणाः, ज्ञानदर्शन-सुखवीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवर्णाः, गतिहेतुत्वम् , स्थितिहेतुत्वम् , अवगाहनाहेतुत्वम् , वर्त्तना-हेतुत्वम् , चेतनत्वम् , अचेतनत्वम् , मूर्तत्वम् , अमूर्त्तत्वम् , द्रव्याणां पोडश विशेषगुणाः, प्रत्येकं जीवपुद्गलयोः, इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः, अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सान्यगुणाः, विज्ञात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः । इति गुणाधिकारः ॥ २०॥

इति द्रव्यानुयोगतर्कणायां कृतिभोजसागरविनिर्मितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:— भव्य जीव इस पूर्वोक्त प्रकारसे सामान्य स्वभाव संपूर्ण द्रव्योंके आधारसे प्रत्यक्ष प्रमाणके विषयमें लाये हुए शास्त्रमें कहे हुए द्रव्योंके एकादश ११ भेद जो कंठसे तथा अर्थसे कहे हैं, उन स्वभावोंको पूर्ण रीतिसे अभ्यासगोचर करके तथा उनके अभ्यासद्वारा मूर्खताको दूर करके श्रीतीर्थकरोंके चरणरूपी कमलोंमें विनयसिहत आसक्त (तत्पर) होवें। क्योंकि शास्त्रज्ञानका यही माहात्म्य है कि श्रीजिनेन्द्रकी सेवामें आदर करें; यह समझना चाहिये। यहां श्लेषसे भोज यह ग्रन्थकारके नामका संकेत है। अब अन्य ग्रन्थका अधिकार करते हैं। अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ अगुरुल्डघुत्व ५ प्रदेशत्व ६ चेतनत्व ७ अचेतनत्व ८ मूर्तत्व ९ तथा अमूर्तत्व १० ये दश द्रव्योंके सामान्य गुण हैं। सामान्य गुण प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ रहते हैं। इन सब सामान्य गुणोंमें छ तो सामान्य गुण हैं और अन्तके चार सामान्य गुण भी हैं और विशेष गुण भी हैं। ज्ञान १ दर्शन २ सुख ३ वीर्य ४ स्पर्श ५ रस ६ गंघ ७ वर्ण ८ गतिहेतुता ९ स्थितिहेतुता १० अवगाहनहेतुता ११ वर्त्तनाहेतुता १२ चेतनत्व १३ अचेतनत्व १४ मूर्तत्व १९ अमूर्तत्व १६ ये द्रव्योंके सोलह विशेष

गुण हैं। इन सोलह विशेष गुणोंमें जीवके छः छः गुण हैं, पुद्गलके भी छः छः गुण हैं, और अन्य धर्मादि चारों द्रव्योंमें प्रत्येकके तीन तीन गुण हैं। अंतके चेतनत्व आदि चार गुण अपनी जातिकी अपेक्षासे सामान्य गुण हैं और परजातिकी अपेक्षासे विशेष गुण हैं। इस प्रकार गुणोंका अधिकार है॥ २७॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारक-पं० टाकुरप्रसादप्रणीत-भाषाटीकासमलंकृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ स्वभावाध्यायं व्याचिख्यासुराह ।

अब इस द्वादश (बारहवें) अध्यायमें स्वभावोंका निरूपण करनेकी इच्छासे यह श्लोक कहते हैं।

सूत्रम् । चैतन्यं चेतना ख्याता त्वचैतन्यमचेतना । चेतनत्वं विना जन्तोः कर्माभावो भवेद्युवम् ॥ १॥

सूत्रभावार्थ:—चैतन्य चेतनाका नाम है और अचैतन्य अचेतनाका नाम है। इस चैतन्य नामक गुणके विना जीवके निश्चय करके कर्मीका अभाव हो जावे॥ १॥

व्याख्या । चिती संज्ञाने चेतित चेतयते वा चेतनस्तस्य भावश्चैतन्यं चेतनाव्यवहारश्चे-तनस्वभावः १ तद्विपरीतमचैतन्यमचेतनस्वभावः २ चेतनत्वं विना जन्तोर्जीवस्य कर्माभावो भवेदिति रागद्वेषरूपं कारणं चेतना ज्ञानावरणादिकर्मणोऽभावः । यतः "स्नेहाभ्यक्तशरी-रस्य रेणुनाश्चिष्यतं यथा गात्रम् । रागद्वेपिक्वन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम् । १ ।" एवं यदि जीवस्य सर्वथा अचेतनस्वभावः कर्माभाव एवेति ॥ १ ॥

व्याख्यार्थ:—'चिती' धातुका संज्ञान अर्थात् जानना अर्थ है। जो स्वयं चेते वा दूसरोंको चितावै उसको चेतन कहते हैं। उस चेतनका जो भाव (धर्म) है उसको चेतन्य कहते हैं। और चेतनाका जो व्यवहार हे मोही चेतनस्वभाव हे । १। तथा चेतनस्वभावसे जो विपरीत है वह अचेतन्य वा अचेतन स्वभाव है । २। इनमें चेतन स्वभावके विना अर्थात् चेतनस्वभाव न माननेपर जीवके कर्मोंका अभाव होगा, क्योंकि कर्मबन्धमें जो राग तथा द्वेषरूप कारण है वह चेतना अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका अभाव है अर्थात् चेतनासे ही कर्मोंका बन्ध होता है। क्योंकि जैसे तैल आदिसे लिस शरीरवाले जीवका शरीर धूलसे लिस हो जाता है, ऐसेही राग तथा द्वेषसे आर्द्रीभूत (गीले हुए) जीवके ही कर्मोंका बन्धन होता है। इस कथनके अनुसार यदि जीवके चेतन स्वभाव न मानकर, सर्वथा अचेतन स्वभावही मानें तो कर्मोंका अभावही होगा॥ १॥

सूत्रम्। अचैतन्यं विना जीवे चैतन्यं केवलं यदि। ध्यानध्येयेष्टशिष्याणां का गतिर्जायते तदा॥२॥

सूत्रभावार्थ:—यदि अचेतन स्वभावसे रहित केवल चेतन स्वभावही जीवमें मानो तो ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाता है उसे ध्येय कहते हैं), गुरु और शिष्य इनकी क्या गित होगी?॥ २॥

व्याख्या। अचैतन्यं वर्जियत्वा केवलं चैतन्यं जीवे कण्यते तदा अचेतनकर्मद्रव्योपश्लेन् पजनितचेतनाविकाराहते शुद्धसिद्धसाहत्रयं भवेदिति निश्चयः। तदा ध्यानध्येयगुरुशि-ध्याणां का गतिर्ने कापि गतिः। ध्यानं कि ध्यायते, ध्येयश्च को भवति, को गुरुः, शिष्यो-ऽपि क इति व्यवस्थाभङ्गः स्यात्, सर्वशास्त्रव्यवहारश्चान्यथा स्यात्। शुद्धस्याविद्याया वृत्त्यापि क उपकारो भवति। तस्माद्लवणा यवागूरितिवद्चेतन आत्मा इद्मपि कथंचित्कथं न धर्मो जायते॥ २॥

व्याख्यार्थ:—यदि अचेतन स्वभावको छोड़कर, केवल चेतन स्वभावही जीवमें कहा जावे तो अचेतन जो कर्मद्रव्य है उसके संबन्धसे उत्पन्न जो चेतनामें विकार है उसका अभाव हो जानेसे सब जीवोंमें शुद्ध जो सिद्ध जीव हैं उनकी समानता हो जाय अर्थात् अचेतन कर्मोंके अभावसे सब जीव सिद्धसमान हो जावें ऐसा निश्चय है। और सब जीवोंके सिद्धता होनेपर ध्यान, ध्येय, गुरु और शिष्य इनकी क्या गति (व्यवस्था) हो? अपि तु कुछ भी गति नहीं. अर्थात् ध्यान किसको ध्यावे? ध्यान करने योग्य कोन हो, गुरु कौन रहे और शिष्य भी कौन रहे? अर्थात् कोई न रहे। क्योंकि, सब जीव समान हो गये इसिलये ध्यान, ध्येय, गुरु और शिष्यकां व्यवस्थाका नाश हो जाय और समस्त शास्त्रोंमें जो ध्यान आदिका व्यवहार होता है वह शास्त्रीय व्यवहार भी मिध्या हो जाय। शुद्ध द्रव्यके अविद्याकी वृत्ति माननेसे भी क्या उपकार होता है? इसिलये लवणरहित यवागू (लपसी)के सहश अचेतन आत्मा है यह भी धर्म कथंचित् कैसे नहीं होता है? अर्थात् होता ही है॥ २॥

सूत्रम्। मूर्ति द्धाति मूर्त्तत्वममूर्त्तत्वं विपर्ययात्। जीवस्य यदि मूर्त्तत्वं न तदा संस्रतिक्षयः॥३॥

सूत्रभावार्थ:—मूर्त्तिको धारण करता है इसिलये मूर्तत्व गुण है और जो मूर्त्तिको नहीं धारण करें वह अमूर्तत्व गुण है। यदि जीवके मूर्त्तत्व गुण न मानो तो संसारका क्षय (नाश) हो जावे॥ ३॥

व्याख्या । मूर्त्तः रूपरसगन्धस्पर्शादिसन्निवेशंता तस्या धरणसभावो मूर्त्तत्वं मूर्त्त-स्वभावः । तस्माद्यद्विपरीतं तद्मूर्त्तत्वममूर्त्तस्वभावः । यदि जीवस्य कथंचिन्मूर्त्ततास्वभावो न भवेत्तदा शरीरादिसंबन्धं विना गत्यन्तरसंक्रमो न भवति, गत्यन्तरसंक्रमं विना संसारस्याभावो भवेदिति भावः ॥ ३ ॥

च्याख्यार्थः — रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिका जो एक स्थानमें सिन्नवेश (स्थिति वा रचना) है वह मूर्ति है, उस मूर्तिको धारण करनेका जो स्वभाव है वह मूर्त स्वभाव है। और मूर्त्तसे जो विपरीत (विरुद्ध) अर्थात् मूर्तिको न धारण करनेका जो स्वभाव है वह अमूर्त स्वभाव है। यदि जीवके कथंचित् मूर्त्त स्वभाव न हो तो संसारका अभाव हो जायगा। क्योंकि जीवके शरीर आदिके संबन्ध विना एक गतिसे दूसरी गतिमें गमन नहीं होता। और शरीर आदि मूर्त्त हैं। मूर्त्तका अभाव जीवमें माननेसे शरीर आदिके संबन्धका अभाव माना गया और शरीरादि संबन्धके अभावमें अन्य गतिमें गमनका अभाव हुआ और जब अन्य गतिमें गमनका अभाव हुआ तो संसारका अभाव हुआ। अर्थात् जीवके एक गतिसे दूसरी गतिमें जो जाना है वहीं संसार है, अतः गत्यन्तरका अभाव हुआ तो संसारका नाश हुआ ही॥ ३॥

सूत्रम्। अमूर्त्तत्वं विना मोक्षः सर्वथा घटते न हि। एकप्रदेशता चेहाखण्डबन्धनिवासता॥ ४॥

सूत्रभावार्थः — यदि आत्माके सर्वथा मूर्त्त स्वभावही माना जावे तो आत्माको मोक्ष कदापि नहीं हो सकता । और अखण्डवन्धनिवासताको एकप्रदेशस्वभाव कहते हैं ॥ ४ ॥ व्याख्या । अथ यदि लोकदृष्टव्यवहारेण मूर्त्तस्वभाव एव आत्मा अङ्गीक्रियते तदा मूर्त्तत्वं हेतुसहस्रेग्प्यमूर्त्तत्वं न भवेन् । एवं सित मोक्षो न घटामाटीकते । तस्मान्मूर्त्तत्व-संबिलतस्य जीवस्थाप्यन्तरङ्गतया अमूर्त्तस्वभाव एव मन्तव्य इति । अथेकप्रदेशस्वभाव एकप्रदेशता सा चेहैकत्वपरिणतिरखण्डाकारबन्धस्य सिन्नवेशस्तस्य निवासता भाजनत्वं ज्ञातव्यम् । निष्कर्पस्त्वयम् –अखण्डतया आकृतीनां सिन्नवेशः परिणमनव्यवहारस्तस्य भाजनमाधाराधेयत्वमेकप्रदेशतोच्यत इति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थ:—अब लोकके दृष्ट (देखे हुए) व्यवहारसे यदि आत्मा सर्वथा मूर्त्त स्वभावही है ऐसा मानते हो तब तो मूर्त्त स्वभावके हजारों हेतुओं (युक्तियों)से भी अमूर्त्तता नहीं होगी और जब आत्मा कभी अमूर्त्त न होगा तो मूर्त्त स्वभावके अभावके विना जीवके मोक्ष कदापि घटित नहीं हो सकता क्योंकि मूर्त्त शरीर आदिका संबन्ध जब नित्य बना हुआ है तब मोक्ष कैसे हो सकता है? इसिलये मूर्त्त स्वभावसे मिले हुए जीवके अंतरंगपनेसे अमूर्त्त स्वभाव भी मानना चाहिये। और एक प्रदेश स्वभाव जो है वही एक प्रदेशता है। उस एकत्व परिणितको यहां अखंडाकार बन्धके सिन्नवेशका भाजन जानना चाहिये। तात्पर्थ यह कि अखंड रूपसे जो आकारोंका सिन्नवेश अर्थात् परिणमन व्यवहार है उसका जो भाजन अर्थात् आधाराध्यपना है उसको एकप्रदेशता कहते हैं॥ ४॥

सूत्रम्। भिन्नप्रदेशता सैवानेकप्रदेशता हि या। न चेदेकप्रदेशत्वं भेदोऽपि बहुधा भवेत्॥५॥ सूत्रभावार्थ:—और जो अनेकप्रदेशता है उसीका नाम भिन्नप्रदेशता है। अब यदि एकप्रदेशता न मानो तो भेद भी अनेक प्रकारका हो जायगा ॥ ५॥

व्याख्या । भिन्नप्रदेशता सैवानेकप्रदेशस्वभावता । भिन्नप्रदेशयोगेन तथा भिन्नप्रदेश-कल्पनया अनेकप्रदेशव्यवहारकारणयोग्यत्वमुच्यते । यद्येकप्रदेशस्वभावो न स्यात्तदा असंख्यातप्रदेशादियोगेन बहुवचनवृत्त्यैकस्य धर्मास्तिकायस्यैक इति व्यवहारासम्भवः स्यात्, बहुधा बहुवो धर्मास्तिकाया इत्यादिव्यवहारापत्तिः स्यादिति ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थ:—जो भिन्न प्रदेशता है वही अनेकप्रदेशस्त्रभावता है। ताल्प्य यह कि भिन्न प्रदेशके योगसे तथा भिन्न प्रदेशकी कल्पनासे अनेक प्रदेशके व्यवहारकारण-योग्यता कही जाती है। अब यदि एक प्रदेश स्वभाव न हो तो असंस्थात प्रदेश आ-दिके योगसे बहुवचनकी प्रवृत्ति होनेसे एक जो धर्मास्तिकाय द्रव्य माना गया है उसके एक इस व्यवहारकी असंनवता हो जायगी और धर्मास्तिकाय बहुत हैं इत्यादि व्यवहारकी आपत्ति होगी. भावार्थ-असंस्थात प्रदेशोंके धारक धर्मास्तिकायको जो एक द्रव्य माना है वह एकप्रदेशत्वके न माननेसे एक न रहेगा।। ५।।

सूत्रम् । निष्कम्पत्वं सकम्पत्वं विनानेकप्रदेशताम् । कथं च घटतेऽणूनां सङ्गतिः सर्वदेशजा ॥ ६॥

सूत्रभावार्थ:—तथा अनेक प्रदेश स्वभावके विना निष्कंपत्व और सकंपत्व व्यव-हार नहीं हो सकता और आकाशादि द्रव्यके अणुओंका सर्वज तथा देशज संयोग भी किस प्रकार घट सकता है ॥ ६ ॥

व्याख्या। अनेकप्रदेशस्वभावो द्रव्यस्य यदि न कश्यते तदा घटाद्यवयविनो देशतः सकम्पा देशतो निष्कम्पा दृश्यते ते च कथं संभवन्ति । अथावयवकम्पेऽप्यवयवी निष्कम्प इति कथ्यते तदा चलतीति प्रयोगासंभव एव भवेन्। देशवृत्तिकम्पस्य यथा परम्परासंबन्धोऽस्ति तद्वदेशवृत्तिकम्पाभावस्थापि परम्परासंबन्धोऽस्ति । तस्मादेशतश्चलता देशतोऽचलता चेत्यस्खलितव्यवहारेणानेकप्रदेशस्वभावो मन्तव्यः । तथा चानेकप्रदेशस्वभावो नाङ्गीक्रियते तदा आकाशादिद्रव्यस्थाणुसङ्गतिः परमाणुसंयोगः कथं घटते। सर्वजो देशज इति ॥ ६॥

व्याख्यार्थ:—अब यदि द्रव्यका अनेक प्रदेश स्वभाव नहीं कहते हो तो घट आदि अवयवी किसी देशमें कंपन (संचलन) सहित हैं और किसी देशमें कंपनरहित हैं ऐसे देख पड़ते हैं सो वे कंपसे सिहत तथा रहित कैसे हो सकते हैं। क्योंकि यदि एकही प्रदेश है तो वह या तो सकम्प ही होगा या निष्कंप ही होगा। अब कदाचित् यह कहो कि एक प्रदेशस्वभाव अवयवके कंपसिहत होनेपर भी अवयवी निष्कंप है इसिलये सकंप तथा निष्कंप दोनों व्यवहार हो सकते हैं तो अवयवी (घट आदि) चलता है यह जो प्रयोग है सो होही नहीं सकैगा। क्योंकि, जैसे एकदेश अवयववृत्ति

कंपनका तुम परम्परासंबन्ध मानकर, उससे अवयवीको सकंप कहते हो उसी प्रकार एकदेशवृत्ति जो निष्कंप है उसके परंपरासंबंधसे अवयवीमें निष्कंप भी कहोगे। इसिष्ठिये एकदेशसे अवयवी चलता है और एक प्रदेशसे अवयवी नहीं चलता यह जो अखंडित व्यवहार है इससे द्रव्यका अनेक प्रदेश स्वभाव है ऐसा मानना योग्य है। और यदि द्रव्यका इसी प्रकार अनेक प्रदेश स्वभाव अंगीकार नहीं करते हो तो आकाश आदि द्रव्यका सर्वज तथा देशज परमाणु संयोग कैसे बन सकता है?। अब देशज तथा सर्वज संयोग क्या है? इसको अग्रिम श्लोकसे स्पष्ट करते हैं।। ६।।

सूत्रम्। देशसकलभेदाभ्यां दिधा दृष्टा जगतिस्थतिः। प्रत्येकं दृषणं तत्र ब्रूते वृत्तिश्च संमतेः॥७॥

सृत्रभावार्थ:—देश तथा सर्वके भेदसे जगतकी स्थिति दो प्रकारकी देखी गई है। इनमेंसे एक किसी पक्षके माननेसे संमति ग्रंथकी वृत्ति दूषण देती है।। ७॥

व्याख्या । एका वृत्तिर्देशतोऽस्ति यथा कुण्डलेनेन्द्रस्य, द्वितीया सर्वतोऽस्ति यथा समान्वस्त्रद्वयस्य, तत्र प्रत्येकं दूषणं संमतिवृत्तौ कथितम् । यतः परमाणोराकाशादेश्च देशवृ-त्तिमङ्गीकुर्वतामाकाशादिकानां प्रदेशानङ्गीकारेऽप्यागच्छति । अथ च सर्वतोवृत्तिमङ्गीकुर्वतां परमाणुराकाशादिप्रमाणत्वं लभते । उभयाभावे तु परमाणोरवृत्तित्वं भवेत् । यावद्विशेषा-भावस्य सामान्याभावनियतत्वादित्यादि ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थ:—एक वृत्ति तो देशसे (एक देशसे संबंध रखनेवाली) है जैसे कुण्डलके साथ इन्द्रकी और दूसरी सर्व देशसे है जैसे समान आकारवाले दो वस्नोंके । उनमें प्रत्येक पक्षमें संमित प्रंथकी वृत्तिमें दूपण कहा गया है। क्योंकि परमाणु और आकाश आदिके एकदेशवृत्ति स्वीकार करनेवालोंके जो संयोग है वह यदि आकाश आदिके प्रदेश न माने जावें तो भी हो सकता है। और सर्व देशसे वृत्ति स्वीकार करनेवालोंके मतसे परमाणु आकाश आदिकी प्रमाणताको प्राप्त होता है अर्थात् जितना बड़ा आकाश है उतनाही बड़ा परमाणु भी होगा। और एकदेश तथा सर्वदेश दोनोंही वृत्तियोंको न मानें तो परमाणुकी अवृत्ति ही होगी। एकदेश व सर्वदेश कोई वृत्ति न रहनेसे सामान्यसे वृत्तिका अभाव हो जायगा। क्योंकि समस्त विशेषाभाव सामान्यके अभावके समिनयत है इत्यादि॥ ७॥

सूत्रम्। स्वभावादन्यथाभावो विभावोऽपि महद्व्यथा। नानादेशादिकर्मोपाधिर्यतो घटते कथम्॥८॥

सूत्रभावार्थ: स्वभावसे अन्यथा भावरूप विभाव भी महाव्यथारूप है। क्योंकि इस विभाव स्वभावके विना जीवके नाना देशकाल आदिसे उत्पन्न कर्मोपाधि कैसे घटित हो सकती है? अर्थात् नहीं घटित हो सकती ॥ ८॥

व्याख्या । स्वभावाद् योऽन्यथाभावः स विभावस्वभावः कथ्यते । इति तु महद्भ्यथारूपं लगति । एतच विभावस्वभावस्याङ्गीकरणं विना जीवस्य नानादेशादिकमापाधिः कथं घटते । नानादेशाद्यनियतदेशकालादिविपाकिकमीपाधिर्जीवस्यालग्ना युज्यते । तत उपाधिसंबन्धयोग्यानादिविभावस्वभाव इति ॥ ८॥

व्याख्यार्थ:—निजखभावसे जो द्रव्यका अन्यथाभाव है उसको विभावस्वमाव कहते हैं। सो यह तो महाव्याधिरूप लगता है। और इस विभावस्वभावके अंगीकार न करनेसे जीवके नानादेशादि कर्मोपाधि कैसे बन सकती है? तात्पर्य यह कि विभाव स्वभावके स्वीकार विना अनियत देश और काल आदिके संबन्धसे विपाकीभूत (फल देनेमें अभिमुख) जो कर्म हैं उन कर्मोरूप जो उपाधि है वह जीवके साथ नहीं लग सकती। इस कारणसे उपाधिसंयोगके योग्य अनादि विभाव—स्वभाव भी मानना योग्य है॥ ८॥

सूत्रम् । शुद्धो भावः केवलमन्यश्चोपाधिकः स्मृतः । शुद्धं विना न मुक्तिश्च विनाऽशुद्धं न लेपता॥९॥

सूत्रभावार्थ:—केवल निजम्बरूप मात्रसे जो स्थिति है वह शुद्धभाव है भीर उपाधिसे उत्पन्न हुआ अशुद्ध भाव है। शुद्ध भावके विना मुक्ति नहीं होती और अशुद्ध भावके विना जीवके कर्मीका बन्धन नहीं होता है॥ ९॥

व्याख्या । केवलत्वं शुद्धो भावः, उपाधिभावरहितान्तर्भावपरिणतत्वं शुद्धस्वभावत्वम् । अन्योऽशुद्धभाव औपाधिकः, उपाधिजनितबहिर्भावपरिणमनयोग्यता ह्यशुद्धस्वभावता । यदि शुद्धभावाङ्गीकारत्वं न क्रियते तदा मुक्तिने घटते, पुनश्चाशुद्धभावाङ्गीकारत्वं न क्रियते तदा कर्मलेपो न घटते । अतएव शुद्धस्वभावस्य कदाप्यशुद्धता न स्यादशुद्धस्वभावस्यापि पश्चाच्छुद्धता न स्यात् । एवमेकान्तादिमतं निरस्थोभयस्वभावाङ्गीकरणे न किमपि दृष्णं भवेत् ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थ:—केवलपना जो है वह शुद्धभाव है अर्थात् उपाधिभावसे रहित केवल द्रव्यके अन्तर्गत भावका जो परिणाम है वह शुद्ध स्वभाव है । और इससे अन्य अशुद्ध भाव है । वह उपाधिसे उत्पन्न होता है । अर्थात् उपाधिसे उत्पन्न जो बाह्यभाव है उस बाह्य भावके परिणमनरूप जो योग्यता है वही अशुद्ध स्वभाव है । अब यदि शुद्ध भावका स्वीकार न करें तो मुक्ति नहीं हो सकती है और यदि अशुद्ध स्वभावको नहीं मानें तो जीवके कर्मोंका संबन्ध नहीं बनता है । इसी कारणसे शुद्ध स्वभावके तो कभी अशुद्धता नहीं होती है और अशुद्ध स्वभावके कभी शुद्धता नहीं होती । इस प्रकार एकान्तवाद आदिका खंडन करके शुद्ध और अशुद्ध इन दोनों स्वभावोंके माननेमें कोई दूषण नहीं है ॥ ९ ॥

सूत्रम्। एकत्र निश्चितो भावः परत्र चोपचर्यते। उपचरितभावः स विनैनं नो परज्ञता॥ १०॥

सूत्रभावार्थ:—एक स्थानमें निश्चित जो भाव है वह दूसरे स्थानमें उपचारमें लाया जाता है। इसीको उपचरित भाव कहते हैं। इसके विना परका ज्ञान नहीं हो सकता।। १०॥

व्याख्या । एकत्र निश्चितो भावः नियमितैकस्थानस्य भावस्य परस्थानोपचरणेनोपचरित-स्वभावता जायते । स उपचरितस्वभावो यदा नाङ्गीक्रियते तदा स्वपरव्यवसायिज्ञानवा-नात्मा किमु कथ्यते । ततो ज्ञानस्य स्वविषयत्वं त्वजुपचरितमेवास्ते । अथ परविषयत्वं तु परापेक्षया प्रतीयमानत्वं, तथा परिनरूपितसंबन्धत्वेनोपचरितमस्ति । इत्थमुपचरितस्वभावता द्विप्रकारास्ति ॥ १० ॥

च्याख्यार्थ:—जो भाव एक स्थानमें निश्चित है अर्थात् जिस स्वभावकी सत्ता एक पदार्थमें नियमसे है उस स्वभावका जब अन्य स्थानमें उपचार (आरोप) करते हैं तब उसको उपचरित—स्वभावता हो जाती है। उस उपचरित स्वभावको यदि नहीं स्वीकार करें तो आत्मा अपने और परके (दोनोंके) विषयमें व्यवसायात्मक ज्ञानका धारक है यह कैसे कहा जावे?। इस कारणसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानके स्वविषयत्व अर्थात् अपना जो ज्ञान है वह तो अनुपचरित (उपचाररहित) ही है और परकी अपेक्षासे जो जानता है वह परनिरूपित संबन्धसे उपचरित है। और इस प्रकार जो उपचरित स्वभाव है वह दो प्रकारका है। यही आगेके श्लोकमें कहते हैं॥ १०॥

सूत्रम्। कर्मजः सहजश्चैतौ मूर्त्ताचेतनभावयोः। जन्तोराचो द्वितीयोऽपि सिद्धस्य विमलात्मनः॥११॥

सूत्रभावार्थ:—एक कर्मजनित उपचरितभाव है और दृसरा सहज उपचरित-भाव है। ये दोनों मूर्त्त तथा अचेतन भावमें होते हैं। और प्रथम भेद तो संसारी जीवके होता है और दूसरा निर्मल आत्माके धारक सिद्ध जीवोंके होता है॥ ११॥

व्याख्या। कर्मज एकः सहजो द्वितीय एतौ द्वौ भेदौ मूर्ताचेतनभावयोः स्तः। तत्र पुद्गलसंबद्धस्य प्राणिनो मूर्तत्वमस्ति। अथ चाचेतनत्वमप्यस्ति तत्तु यज्ञीवस्य कथ्यते प्रथमं तत्र तु गौवीहीक इति न्यायानुसरणेनोपचिरतोऽस्ति कर्मजनितत्वात्। तस्मादत्र यत्कर्मजनितोपचिरतस्वभावत्वं तज्जन्तोर्द्वितीयोऽपि सहजोपचिरतस्वभावोऽपि सिद्धस्य निर्मल्ख्य। परइत्वं तु तत्र किमपि कर्मोपाधिजमस्ति तन्न स्थात्। तदुक्तमाचारसूत्रे "अकम्मस्स ववहारो ण विज्ञइ कम्मुणा उवाहि जायितिति" एवमेते दश स्वभावा नियतद्रव्यवृत्तयः सन्तीति॥ ११॥

च्याख्यार्थ:—प्रथम उपचरित स्वभाव कर्मसे उत्पन्न होता है और द्वितीय उपच-रितभाव सहज (स्वाभाविक) है। ये दोनों उपचरित भावके भेद मूर्त और अचेतनके विषयमें होते हैं। उनमें पुद्गलसे संबद्ध प्राणीके मूर्तत्व है और अचेतनत्व भी है और इसीलिये प्रथम उपचिरत भाव जीवके है। और यह कर्मजनित होनेसे "गोर्वाहीकः" 'यह बोझा ढोनेवाला गो (पशु) है" इस न्यायके अनुसार उपचिरत है। इसिलये यहां, जो कर्मजनित उपचिरत स्वभावता है सो जीवके कही गई है। और दूसरा जो सह-जोपचिरत स्वभाव है वह निर्मल (कर्मरिहत) सिद्ध जीवके है। सिद्धोंमें परका जो जानना है वह किसी कर्मकी उपाधिसे है ऐसा जो कहो तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि आचाराङ्ग सूत्रमें कहा है कि, "कर्मरिहत जीवके व्यवहार नहीं रहता है; क्योंकि उपाधि जो है सो कर्मसे होती है"। इस प्रकार ये दश १० स्वभाव पूर्वोक्त चेतनत्व आदि नियत द्रव्यवृत्ति हैं॥ ११॥

सूत्रम् । अमी द्दा विशेषेण खभावाश्चैकविंशतिः । सर्वे पुद्गलजीवानां पश्चद्शाप्यनेहसः ॥ १२॥

सूत्रभावार्थ:—ये दश स्वभाव और पूर्वकथित सत्तादि एकादश ये सब मिलके २१ भाव पुद्गल और जीवके हैं और कालके पन्दरह १५ स्वभाव हैं॥ १२॥

व्याख्या । अमी दश स्वभावाः पूर्वोक्ता एकादश स्वभावा उभये मिलिता एकविंशति-संख्या जायन्ते । तत्र पुद्रलानां जीवानां च प्रत्येकमेकविंशतिः स्वभावा भवन्ति । तथा अनेहसः कालद्रव्यस्य पञ्चदश भावा भवन्ति । मूलत एकविंशतिभावाः सन्ति । तेभ्यः पद्र निष्कास्यन्ते तदा पंचदश अवशिष्यन्ते । तानेवायंतनपद्येन व्याकरोति ॥ १२ ॥

च्याख्यार्थ:—चेतनत्व आदि ये दश स्वभाव तथा सत्ता आदि पूर्वकथित एकादश स्वभाव, दोनों मिलके इक्कीस २१ होते हैं। इनमें पुद्गलके इक्कीस भाव हैं और जीवके भी एकविंशति २१ भाव ही हैं। और कालके पन्दरह स्वभाव हैं। आरंभसे जो इक्कीस भाव हैं उनमेंसे छः भाव जब निकाले जाते हैं तो पन्दरह बाकी बचते हैं। अब आगेके श्लोकमें उन्हीका निरूपण करते हैं॥ १२॥

सूत्रम्। प्रदेशानेकता चित्ता मूर्त्तता च विभावता। शुद्धताऽशुद्धता चेति षड् हीनाः कालगोचराः॥ १३॥

सूत्रभावार्थः—बहुप्रदेशत्व, चेतनत्व, मूर्त्तत्व, विभावत्व, शुद्धत्व और अशुद्धत्व इन छे स्वभावोंसे रहित शेष पन्दरह स्वभाव कालके हैं॥ १२॥

व्याख्या । बहुप्रदेशस्वभावः १ चित्तेति चेतनस्वभावः २ मूर्तेति मूर्त्तस्वभावः ३ विभावता विभावस्वभावः ४ शुद्धता शुद्धस्वभावः ५ अशुद्धता अशुद्धस्वभावः ६ एते षडेकविंशतिभ्यो निष्कास्यन्ते तदा पञ्चदश सर्वे कालस्वभावाः ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थ:—बहुप्रदेशस्वभाव, चेतनस्वभाव, मूर्तस्वभाव, विभावस्वभाव, शुद्ध-स्वभाव और अशुद्ध स्वभाव ये छे भाव जब इक्कीसमेंसे निकालते हैं तो पन्दरह रहते हैं. ये सब पन्दरह स्वभाव कालके हैं ॥ १३ ॥

सूत्रम्। आदिमेन समायुक्ता धर्मादीनां तु षोडश। स्वभावाः संभवन्त्येव पूर्वोक्तानां प्रसंगतः॥ १४॥

सूत्रभावार्थ:—निकाले हुए छे स्वभावोंमेंसे प्रथम जो बहुप्रदेशस्वभाव है उस सहित धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यके सोलह २ स्वभाव होते हैं; क्योंकि, ऐसा पहले कह आये हैं॥ १४॥

न्याख्या । आदिमेन बहुप्रदेशस्वभावेन समायुक्ता अन्यपश्चवर्जितास्तदा पोडश स्वभावाः धर्माधर्माकाशास्तिकायानां भवन्ति । यत "एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले पश्चदश स्मृताः' इत्यादि ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थ:—जब भाव निकाले हुए छे भावोंमेंसे प्रथम बहुप्रदेशस्वभावसे सहित और शेष पांच भावोंसे रहित हुए तो सब सोलह स्वभाव हुए। ये सोलह २ स्वभाव धर्मीस्तिकायके, अधर्मीस्तिकायके और आकाशास्तिकायके होते हैं। क्योंकि "जीव और पुद्गलके २१ भाव हैं; धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्यके सोलह २ भाव हैं; कालमें पन्दरह भाव माने गये हैं। ऐसा पूर्वपाठ है॥ १४॥

सूत्रम् । एवं प्रमाणस्य नयस्य बोधादिमान्स्वभावान्परिभाव्य चित्ते । आप्तऋमाम्भोजप्रसत्तिलव्धमानन्द्रूपं परमं अयन्ताम् ॥१५॥

सूत्रभावार्थ:—हे भव्यजीवो! इस प्रकार प्रमाण तथा नयके ज्ञानसे इन स्वभा-वोंको चित्तमें विचारके श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंके प्रसादसे प्राप्त जो आनन्द्रूप ज्ञान है उसका आश्रय करो॥ १५॥

व्याख्या । अनया दिशा प्रमाणस्य स्वप्ट्यवसायिज्ञानस्य, नयस्य प्रमाणेन निर्णाता-थस्यैकांशप्रतिपाद्कवचनं नयस्तस्य, बोधादनुभवादिमान् स्वभावान् चित्ते मनसि परिभाव्य पर्यालोच्याप्तस्य श्रीजिनस्य क्रमौ पादौ तावेवाम्भोजं कमलं तस्य प्रसत्त्या प्रसादेन लव्धं प्राप्तमानन्दरूपं स्वानुभवरूपं परमं ज्ञानं श्रयन्तां सेवन्तामिति । भोजेति सन्दर्भकर्त्तुर्ना-मापि ॥ १५ ॥

> इति द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां कृतिश्रीभोजसागरनिर्मितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

च्याख्यार्थ:—मो भव्यजनो ! इस प्रकार अपने तथा परके व्यवसायात्मक ज्ञानरूप प्रमाणके और प्रमाणसे निश्चित अर्थके एक अंशके प्रतिपादक वचनरूप नयके अनुभवसे इन स्वभावोंको मनमें विचार कर, श्रीजिनेन्द्रके चरणरूप कमलके प्रसादसे प्राप्त जो अपने अनुभवरूप ज्ञान है उसका सेवन करो । यहां "भोज" यह श्लेषसे ग्रंथकारका नाम भी है ॥ १५॥

इति श्रीठाकुरप्रसादशास्त्रिविरचितभाषानुवादसमळङ्कृतायां द्रव्यानुयोग-तर्कणायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ अथात्र खभावानां निदर्शनमाह ।

अब इस त्रयोदश अध्यायमें स्वभावोंका दृष्टान्त कहते हैं---

सूत्रम् । अस्तिस्वभाव आम्नातः स्वद्रव्यादिग्रहे नये । ग्राहकत्वेऽन्यद्रव्याणां नास्तिस्वभाव ईरितः ॥ १॥

सूत्रभावार्थ:—स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नयसे अस्तिस्वभाव कहा गया है और परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नयसे नास्तिस्वभाव कहा है ॥ १ ॥

व्याख्या । स्वद्रव्यादिमहे नये द्रव्याधिकनयमते द्रव्याणामस्तिस्वभाव आम्नातः कथितः । १ । तथा द्वितीयो नास्तिस्वभावोऽस्ति, अन्यद्रव्याणां प्राह्कत्वे परद्रव्यादि-प्राहकद्रव्यार्थिकनये ईरितः कथितः । २ । उक्तं च "सर्वमस्तिस्वरूपेण परद्रव्येण नास्ति च" इति वचनात् ॥ १ ॥

व्याख्यार्थ:—अपने द्रव्य क्षेत्र आदिको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिक नयके मतमें द्रव्योंका अस्तिस्वभाव कहा गया है १ तथा अन्य द्रव्योंको ग्रहण करनेवाले परद्रव्यादि-ग्राहक द्रव्यार्थिकनयके मतसे द्रव्योंके दूसरा नास्तिस्वभाव कहा गया है २। ऐसा अन्यत्र वचन भी कहा हुआ है कि "अपने रूपसे सब है और परद्रव्यसे सब नास्ति (नहीं) है." ॥ १ ॥

सूत्रम् । उत्पाद्व्ययगौणत्वे नित्यः सत्तासमाश्रितः । पर्यायार्थिके कीऽपि ज्ञेयोऽनित्यस्वभावकः ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थ:—उत्पाद और व्ययकी गोणतामें सत्ता ग्राहक द्रव्यार्थिकनयसित नित्यस्वभाव है और उत्पाद तथा व्ययके ग्राहकपर्यायार्थिक नयमें अनित्य स्वभाव है; ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

व्याख्या । तथा सत्तासमाथितः सत्ताप्राहकद्रव्यार्थिकनययुक्तो नित्यो नित्यस्वभावः कथितः । कस्मिन्सत्युत्पादव्ययगौणःवे कश्चित्त्वतीयः । पर्यायार्थिकनय उत्पादव्ययप्राहको भवति तन्मतेऽनित्यस्वभावः, कश्चित्पर्यायार्थिकनय उत्पादव्ययप्राहको भवन्ननित्यस्वभावः स्यादिति ॥ २ ॥

व्याख्यार्थ:—और उत्पाद तथा व्ययकी गोणता होनेपर सत्ताका प्राहक जो द्रव्यार्थिक नय है उससे युक्त नित्यस्वभाव तीसरा कहा गया है। ३। तथा पर्याया- थिंक नय उत्पाद और व्ययका ग्राहक होता है इसिलिये उसके मतमें अनित्य स्वभाव ४ है। तात्पर्य यह कि उत्पाद तथा व्ययकी अप्रधानता होनेपर सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नयके मतमें नित्य स्वभाव है और सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नयकी अप्रधानतामें उत्पत्ति तथा नाशका ग्राहक जो पर्यायार्थिक नय है इसके मतसे चौथा अनित्य-स्वभाव होता है॥ २॥

⁽ १) त्रिष्विप पुस्तकेष्वयमेव पाठः ।

सूत्रम् । भेदसंकल्पनामुक्त एकस्वभाव आहितः। अन्वयद्वव्यार्थिके चानेकद्रव्यस्वभावकः॥३॥

सूत्रभावार्थ:—भेदकी कल्पनासे रहित द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्यका एक-स्वभाव कहा गया है और अन्वय द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अनेक स्वभाव माने गये हैं॥ ३॥

व्याख्या । भेद्करपनारहितशुद्धद्रव्यार्थिकनये भेद्करपनामुक्त एकस्वभावः कथितः ५ अन्वयद्रव्यार्थिकनयेऽनेकद्रव्यस्वभावोऽनेकस्वभावः ६ इत्यर्थः । कालान्वये सत्तामाहको देशान्वये चान्वयप्राहको नयः प्रवर्त्तत इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ:—भेदकी कल्पनासे रहित शुद्ध (सत्तामात्रके प्राहक) द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे द्रव्यका एक स्वभाव (५) कहा गया है तथा भेदकल्पनासहित अन्वय द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षामें द्रव्यका अनेक स्वभाव (६) भी कहा गया है। तात्पर्य यह कि जहां पदार्थमें कालका अन्वय होता है वहां तो सत्ताका प्राहक द्रव्यार्थिक नय प्रवृत्त होता है और देशके अन्वयमें अन्वयग्राहक द्रव्यार्थिक नय प्रवृत्त होता है ॥ ३॥

सूत्रम् । सङ्कृतव्यवहाराच गुणगुण्यादिभेदता । भेदकल्पनराहित्ये तस्याभेदः प्रकीर्त्तितः ॥ ४॥

सूत्रभावार्थ:—सद्भूत व्यवहार नयसे गुण गुणी आदिके भेदस्वभावता होती है और भेदकल्पनाकी शून्यतादशामें गुणादिका अभेद कहा गया है ॥ ४ ॥

च्याख्या । सङ्क्तव्यवहाराच सङ्क्तव्यवहारनयाद् गुणगुण्यादिभेदता । गुणगुणिनोः, पर्यायपर्यायिनोः, कारककारिकनोभेदस्वभावः सप्तमः । भेदकल्पनराहित्ये भेदकल्पनारिहत- शुद्धद्रव्यार्थिकनयमतेऽभेदः स्वभावः प्रकीर्त्तितः । ८ । यत्र कल्प्यमानस्यान्तर्निगीर्णत्वेन प्रहस्तत्रैकस्वभावो यथा घटोऽयिमिति, यत्र विपयविषयिणोर्वेवित्तयेन प्रहस्तत्राभेदस्यभावो यथा नीलो घट इति । सारोपाध्यवसानयोर्निस्द्धत्वार्थमः प्रकारभेदः । प्रयोजनवलौ तु ते यदच्छानिमित्तकत्वे स्वभावभेदसाधके । इति परमार्थः ॥ ४ ॥

च्याख्यार्थ:—सद्भूतव्यवहार नयसे गुण गुणी, पर्याय पर्यायी और कारक कार-कवान्का भेद स्वभाव है और यह भेद स्वभाव सप्तम है। ७। और भेदकल्पनारहित शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतमें तो अभेद स्वभाव कहा गया है। ८। जहांपर कल्पनीय पदार्थ निगीर्णस्वभाव है अर्थात् जहां कल्प्यमान वस्तु नहीं भासता है, वहांपर एक स्वभाव अर्थात् अभेद स्वभाव है। जैसे "अयं घटः" "यह घड़ा है." यहां यह नहीं जनाया गया कि यह घट नील है वा पीत है; इसलिये घटपदसेही उसका रूप विषय निगल लिया गया है। और जहांपर विषय और विषयीका पृथक् २ भान (ग्रहण) होता है, वहांपर अभेद स्वभाव है। जैसे—"नीलः घटः" "नीला घट." यहांपर सारोपा तथा साध्य- वसाना निरूढा ठक्षणासे यह प्रकार भेद है। और प्रयोजनवती सारोपा तथा साध्यवसाना ठक्षणा तो यहच्छानिमित्तसे स्वभावभेदसाधक है। यह यहांपर भावार्थ है॥ ४॥

सूत्रम्। परमभावग्राहके तु भव्याभव्यौ च पर्ययौ। शुद्धाशुद्धौ ततश्चोक्तौ चैतन्यमात्मनः स्मृतम्॥५॥

सूत्रभावार्थः—परमभावप्राहक नयके मतमें भव्य तथा अभव्य स्वभाव है और शुद्ध स्वभाव तथा अशुद्ध स्वभाव भी परमभाव प्राहक नयके मतसे ही है तथा चेतन स्वभाव आत्माके माना गया है ॥ ५ ॥

व्याख्या। भव्याभव्यो च स्वभावो परमभावप्राहके नये मन्तव्यो । भव्यतास्वभावो निरूपितोऽस्ति, अभव्यतास्वभाव उत्पन्नस्वभावस्य तथा परमभावस्य साधारण्यमस्ति। ततोऽत्रास्तिनास्तिस्वभावाविव स्वपरद्रव्यादिप्राहकनययोः प्रवृत्तिर्न भवेत् । तथा शुद्धा- शुद्धस्वभावो तृक्तो ह्रेयो। तथा पूर्वत्र परमभावप्राहकनये तद्वद् ह्रेयाविति। तथा चैतन्यं चेतनस्वभाव आत्मन आत्मारामस्य स्मृतं नान्येषाम्, आत्मा संसारस्यः चेतन इति । ९। १०। ११। १२। १३।। ५।।

व्याख्यार्थ:—परमभाव ब्राहक नयकी अपेक्षा भव्य स्वभाव तथा अभव्य स्वभाव मानने योग्य हैं। भव्यता स्वभाव पूर्व प्रकरणमें कह आये हैं और अभव्यता स्वभाव उत्पन्न स्वभाव तथा परम भावकी साधारणतामें है। इसिलिये यहांपर अस्ति नास्ति स्वभावोंके समान स्वकीय तथा परकीय द्रव्यादि ब्राहक नयोंकी प्रवृत्ति नहीं होती है अर्थात् जैसे अस्ति स्वभाव स्वद्रव्यादिब्राहक नयसे और नास्तिस्वभाव परद्रव्यादिब्राहक नयकी अपेक्षासे माना गया है, यह बात यहां नहीं है। और शुद्ध तथा अशुद्ध स्वभाव जैसे पूर्व प्रकरणमें कह आये हैं वैसे यहां भी समझने चाहिये। और चेतन स्वभाव केवल जीवके ही है, अन्य द्रव्योंके नहीं। क्योंकि जो संसारी जीव है वह चेतन है॥ इस प्रकार इस श्लोकमें भव्य ९ अभव्य १० शुद्ध ११ अशुद्ध १२ और चेतन १३ इन ५ भावोंका वर्णन किया गया है॥ ५॥

अब चैतन्यादिस्वरूपं कथयन्नाह ।

अब चेतनता आदिका स्वरूप कहते हुए श्लोक पढ़ते हैं।

सूत्रम् । असङ्कृतव्यवहारात्कर्मनोकर्मचेतना । परमभावग्राहके तस्याचेतनधर्मता ॥ ६॥

सूत्रभावार्थः—असद्भृतव्यवहार नयसे कर्म तथा नोकर्ममें ही चेतनाका व्यव-हार होता है और परमभावग्राहक नयमें उस कर्म नोकर्मजनित चेतन स्वभावके अचेतन धर्मपना है॥ ६॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहारादसद्भूतव्यवहारनयात्कर्मनोकर्मणोः कर्माणि ज्ञानावरणा-दीनि नोकर्माणि मनोवचनकायात्मकानि ततो द्वन्द्वस्तयोरेव चित्रेतनस्वभावः स्यात्, चेत- नसंयोगकृत्पर्यायस्तत्रास्ति । तत इदं शरीरमावश्यकं जानामीत्यादिव्यवहारोऽत एव भवति मृतं दहतीतिवत् । पुनः परमभावशाहकनये तस्य कर्मनोकर्मजनितचेतनस्वभावस्याचेतन-धर्मता अचेतनस्वभावत्वं, यथा घृतमनुष्णमित्यादिवत् ॥ ६॥

व्याख्यार्थ:—असद्भूतव्यवहार नयसे ज्ञानावरण आदि कर्म और मन, वचन, कायरूप नोकर्म इन दोनोंमें चेतन स्वभाव है; क्योंकि कर्म और नोकर्म इन दोनोंमें चेतनके संयोगसे किया हुआ पर्याय है। इसी कारण उस चेतनसंयोगकृत्पर्यायसे 'मृतकको भस्म करता है' इस व्यवहारकी मांति 'इस शरीरको मैं आवश्यक (जरूरी) जानता हूं.' इत्यादि व्यवहार होता है। और परमभावग्राहक नयके मतमें तो उस कर्म तथा नोकर्मसे उत्पन्न चेतन भावके अचेतन स्वभावपना है, जैसे 'अनुष्ण (ठंढा) घृत इत्यादिकी भांति॥ ६॥

सूत्रम्। असङ्कृतव्यवहारे जीवाचेतनधर्मता। परमभावग्राहके मूर्त्तनोकर्मकर्मता॥७॥

सूत्रभावार्थः असद्भूतव्यवहार नयसे जीवमें अचेतनस्वभावता है और परम-भावग्राहक नयमें नोकर्म तथा कर्म मूर्त्त हैं ॥ ७॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहारनये जीवतीति जीवस्तस्याचेतनधर्मस्तस्य भावो जीवाचे-तनधर्मतास्ति । अतएव जडोऽयमचेतनोऽयमित्यादिव्यवहारोऽस्ति । एतेनानुभिनोभि जानामीति प्रतीत्या विलक्षणाज्ञानसिद्धिचेदान्तिनामपास्ता, सद्भूतव्यवहारनयप्राह्येणाचे-तनस्वभावेनैव तदुपपत्तेः । अथ परमभावष्टाहकनये मूर्त्ता नोकर्मकर्मता मूर्त्तनोकर्म-कर्मता वर्त्तते । कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभावोऽस्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थ:—असद्भूतव्यवहार नयके मतसे जो प्राण धारण करता है वह जीव है। उसके अचेतनधर्मपना जो जीवाचेतनधर्मता वह है अर्थात् जीव अचेतन स्वभावका धारक है। इस अचेतन स्वभावके माननेसे ही यह जीव अचेतन है, जड है इत्यादि व्यवहार होता है। इससे "मैं अनुमान करता हूं, जानता हूं, इत्यादि प्रतीति (अनुभव) से विलक्षण (अनिर्वचनीय) अज्ञानकी सिद्धि होती है" इस वेदान्तियों के कथनका खंडन हुआ, क्योंकि असद्भूतव्यवहार नयसे प्रहण करनेयोग्य जो अचेतन स्वभाव है इस अचेतन स्वभावसे ही उस अज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। और परमभावप्राहक नयसे मूर्त्त ऐसी नोकर्मकर्मता वर्त्तती है अर्थात् कर्म तथा नोकर्मके मूर्त स्वभाव हैं॥ ७॥

सूत्रम्। असङ्कृतव्यवहारे जीवमूर्त्तत्विमध्यते। परमे पुद्गलं हित्वा द्रव्यामूर्त्तत्वमाहितम्॥८॥

सूत्रभावार्थः—असद्भूतव्यवहारनयके मतमें जीव मूर्त स्वभावका भी धारक है और परमभावग्राहक नयमें पुद्रलको छोड़कर सब द्रव्योंमें अमूर्तस्वभावता स्थापित की गई है ॥ ८ ॥ व्याख्या । असद्भूतव्यवहारे जीवमूर्त्तत्वमि जीवस्य मूर्त्तत्वं जीवमूर्त्तस्वभाव इष्यत । अतएव अयमात्मा दृश्यते, अमुमात्मानं पद्म्यामीति व्यवहारोऽस्ति । तथानेन स्वभावेन ''रक्तौ च पद्मप्रभवासुपृज्यौ'' इत्यादि चचनानि सन्ति । अथ च परमभावप्राहकनये पुद्रल्ट्रव्यं विना द्रव्याणाममूर्त्तत्वं द्रव्यामूर्त्तत्वमाहितं स्थापितम् । अन्यानि सर्वाण्यिप द्रव्याण्य-मूर्त्तस्वभाववन्तीत्यर्थः ॥ ८॥

व्याख्यार्थ: असद्भृतव्यवहार नयके मतमें जीवका भी मूर्त स्वभाव माना गया है। इसीसे 'यह आत्मा देख पड़ता है, इस आत्माको में देखता हूं' इत्यादि व्यवहार होता है; और "श्रीपद्मप्रभ तथा श्रीवासुपूज्य ये दोनों तीर्थंकर रक्त (ठाठ) वर्णके धारक हैं" इत्यादि वचन हैं। तथा परमभावग्राहक नयकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्यके विना द्रव्योंके अमूर्तस्वभाव रक्ला गया है अर्थात् पुद्गलद्रव्यके सिवाय अन्य सब द्रव्य अमूर्त स्वभावके धारक हैं। यह अर्थ है॥ ८॥

सूत्रम् । उपचारात्पुद्गलेऽपि नास्त्यमूर्त्तस्वभावता । व्यवहियतेऽनुगमात्तदेव चोपचर्यते ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थ:—पुद्गलमें उपचारसे भी अमूर्त्तस्वभावता नहीं है; क्योंकि अनुगमसे जिसका व्यवहार होता है उसी भावका उपचार भी होता है ॥ ९ ॥

व्याख्या । उपचारात्पुद्गलद्रव्येऽमूर्त्तस्वभावता नास्ति । यतश्चेतनसंयोगेन देहादौ यथा चेतनत्वमुपचर्यते तथैवामूर्त्तत्वं नोपचर्यते । तस्माद्सद्भृतव्यवहाराद्पि पुद्गलस्यामूर्त्त-स्वभावो न कथनीयः । प्रत्यासत्तिदोषेणामूर्त्तत्वं तत्र कथं नोपचिरतव्यमिति तदेवोपपाद्यन्ताह । व्यवह्रियतेऽनुगमाद्यदेवानुगमादेकसंबन्धदोषाद्भावत्वं व्यवह्रियते तदेवोपचर्यते परन्तु सर्वधर्मस्योपचारो न स्यात्तथाचारोपे सति निमित्तानुसरणमनु निमित्तमनुसृत्यारोप इति न्यायो नाश्रयणीय इति भावः ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—उपचारद्वारा भी पुद्गल द्रव्यमें अमूत्तिखभावता नहीं है। इसीसे चेतनके संयोगसे जैसे देह आदिमें चेतनताका उपचार किया जाता है उसी प्रकार अमूत्तिके संयोगसे देहमें अमूत्तिका उपचार नहीं होता है। इस कारणसे असद्भृतव्यवहार-नयसे भी पुद्गल द्रव्यका अमूत्ते स्वभाव है ऐसा कथन नहीं करना चाहिये। अब प्रत्या-सित्त दोषसे वहांपर अमूत्तिताका उपचार क्यों नहीं करना चाहिये इसीका उपपादन करते हुए "व्यवह्रियतेऽनुगमात्" इत्यादि उत्तरार्द्धसे कहते हैं कि अनुगम अर्थात् एकसंबंध-दोषसे जिस भावका व्यवहार होता है उसी भावका उपचार भी होता है परन्तु सर्वथा सर्व धर्मके अभावमें सब धर्मका उपचार नहीं होता। और इससे यह सिद्ध हुआ कि जहां आरोप करना हो वहां आरोपके निमित्तका अनुसरण करना चाहिये। और आरोप करके पश्चात् निमित्तका अनुसरण करना चहिये। यह भाव है।। ९॥

सूत्रम् । अशेषोऽनुगतश्चार्थः संमतौ हि प्रकाशितः । यथाम्बुपयसोर्भेदो न यावदन्त्यवैशिष्ट्यम् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—यह संपूर्ण जीव पुद्गलका अनुगत संबन्ध संमितिमें प्रकाशित है. क्योंकि जैसे दुग्ध और जलका अन्त्य विशेष विना भेद नहीं हो सकता, वैसेही इनका भी भेद नहीं हो सकता ॥ १०॥

व्याख्या । हीति निश्चितम् । अयमभिप्रायः अनुगतात्यन्तसंबन्धः सर्वोऽप्यर्थः संमतौ प्रकाशितः । यथा स्वनुगतत्वे दृष्टान्तमाह । अम्बुपयसोः क्षीरनीग्योभेंदो विभजना पृथकत्व- । मिति तावन्नास्ति यावद्नत्यवैशिष्ट्यमन्त्यविशेषपर्यन्तं यावत् । अन्त्यविशेषे शुद्धपुद्रला जीवल- क्षणेन पृथक् क्रियन्ते । यथा औदारिकादिवर्गणानिष्पन्नाच्छरीरादेर्ज्ञानघनासंख्येयप्रदेश आत्मा भिन्न इति । अत्र गाथा "अणुण्णाणुगयाणं इमेवतं विश्विभयणमजुत्तं । जह दुद्धपाणियाणं जावंत विसेस पज्जाया । १।" इत्यं कथयतां यदि मूर्त्तता पुद्रलद्रव्यविभाजकान्त्यविशेषोऽ- स्ति तदा तस्या उपचार आत्मद्रव्येण कथं भवेत् । अथ च यद्यत्र विशेषोनास्ति तदान्योन्यान्तुगमनेनामूर्त्तताया उपचारः पुद्रलद्रव्येण कथं न भवेदित्याशङ्का केषांचिद्रवित । तां शङ्कां निराचिकीर्षुः प्रतिपाद्यन्नाह् ॥ १० ॥

व्याख्यार्थ:—अभिपाय यह है कि निश्चयरूपसे अनुगत अर्थात् अत्यन्त संबन्धरूप सब अर्थ संमितिमें प्रकाशित किया गया है। अब यथा इत्यादि उत्तराईसे अनुगततामें हष्टान्त कहते हैं। जैसे मिले हुए जल और दूधका विभाग (भेद) जबतक अंतिम विशेष नहीं होता तबतक नहीं होता है, इसी प्रकार अन्तके विशेषमें ही शुद्ध पुद्गल जीवलक्षणसे पृथक् किये जाते हैं। भाव यह है कि जैसे जलका तथा दूधका विभाग अंतिम दाह कियारूप विशेष अथवा पदार्थिविज्ञान विशेषसे होता है, ऐसेही जीवकी मुक्तिदशारूप विशेषमें पुद्गलका जीवसे विभाग होता है। जैसे कि औदारिक आदि वर्गणाओंसे सिद्ध शरीर आदिसे ज्ञान्यन असंख्यात प्रदेशोंका धारक आत्मा भिन्न है। इस विषयमें अन्यत्र गाथा कही है कि ''जैसे दूध और पानीका अन्त्यविशेष पर्याय तक भेद नहीं होता उसी प्रकार परस्पर अनुगत पदार्थोंका भेद नहीं होता है, यह कहना अयुक्त है. '' इस प्रकार कहनेवालोंके यदि मूर्त्तपना पुद्गल द्रव्यको जुदा करनेवाला अन्तका विशेष है तो जीव पुद्गलका परस्पर अनुगम होनेसे जैसे मूर्त्तताका उपचार आत्मद्रव्यके साथ कैसे होवे। और यदि अन्त्य विशेष नहीं है तो जीव पुद्गलका परस्पर अनुगम होनेसे जैसे मूर्त्तताका उपचार आत्मद्रव्यके साथ होता है ऐसे ही अमूर्त्तताका उपचार पुद्गल द्रव्यके साथ क्यों न होगा? ऐसी आशंका किन्हींकी होती है, इस लिये उस शंकाको दूर करनेके लिये कहते हैं ॥ १०॥

सूत्रम्। मूर्तिर्यत्रानभिन्नता नास्ति तत्राप्यमूर्त्तता। यत्राभिभूतामूर्त्तित्वं मूर्व्यनन्त्यं हि तेषु च॥११॥ सूत्र भावार्थः — जहांपर मूर्त स्वभाव तिरोहित नहीं है, वहांपर अमूर्त स्वभाव है ही नहीं; और जहां आत्मद्रव्यमें कर्म है, वहां अमूर्त्तता तिरोहित नहीं है; किन्तु, वहांपर मूर्त्तता अन्त्यरहित अनुगमसे है ॥ ११॥

व्याख्या । यत्र पुद्गलद्रव्यस्य मूर्तिर्मूर्त्तता अभिभूता नास्ति किन्त्द्भूताऽस्ति तत्रामूर्त्ततास्व-भावो न भवति । अमूर्त्तता ह्यपुद्गलद्रव्यस्थान्त्यविशेषः । अथ च यत्रात्मद्रव्ये कर्म भवति न तत्रामूर्त्तताभिभूतास्ति । तत्र चामूर्त्तता अनन्त्यानुगमजनितसाधारणधर्मरूपा भवति । तथा चान्योन्यानुगमाविशेषेऽपि कचिदेव किञ्चत्केनचित्कथंचिद्भिभूयत इति यथागमव्यवहार-माश्रयणीयम् ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:—जहां पुद्गलद्रव्यका मूर्त स्वभाव अभिभूत (छिपा हुआ) नहीं है किन्तु उद्भृत (प्रकट) है वहां अमूर्त्तता स्वभाव नहीं होता है। क्योंकि अमूर्त्तता पुद्गलसे भिन्न द्रव्यका अन्त्य विशेष है। और जहां आत्मद्रव्यमें कर्म होता है वहां भी अमूर्त्तता अभिभूत नहीं है। क्योंकि वहांपर अमूर्त्तता अन्त्यसे भिन्न अनुगमसे उत्पन्न साधारण धर्मरूप है। इस प्रकार पुद्गल तथा जीवद्रव्यके अनुगममें विशेषता न होनेपर भी कहीं कोई भाव किसीसे किसी प्रकारसे अभिभूत होता है इस प्रकार शास्त्रके व्यवहारके अनुसार अंगीकार करना चाहिये॥ ११॥

सूत्रम्। अन्त्यो भावः पुद्गलस्यापीत्थमत्र विलुप्यते। असङ्कृतनये तेन परोक्षोऽणुरमूर्त्तकः॥१२॥

सूत्रभावार्थ:—पुद्गलका अन्त्य भाव भी इसी प्रकार यहां छप्त हो जाता है; इसीसे असद्भृतनयके मतमें परोक्ष परमाणु अमूर्त्त माना गया है ॥ १२॥

व्याख्या । उपचारेणाप्यमूर्त्तस्वभावः पुद्गलस्य न स्यादिति कथयतां मतेऽन्त्यो भाव एक-विंशतितमः स्वभावः पुद्गलस्य विलुप्तो भवति तदा पुनः "एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयो-मेताः" इत्येतद्वचनव्याघातादपिसद्धान्तोऽपि जायते । अथ तच्लङ्कापनोदायाह असद्भूतव्य-वहारनये तेन कारणेन यः परोक्षः पुद्गलपरमाणुरस्ति तस्यामूर्त्तता कथिता । व्यावहारिकप्रत्य-क्षागोचरत्वममूर्त्तत्वं प्रमाणोपचिरतं भक्तं स्वीकियत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थ:—उपचारसे भी पुद्गलके अमूर्त्तस्वभाव नहीं होता ऐसा कहनेवालों के मतमें पुद्गलका अन्तका भाव अर्थात् इक्कीसवां स्वभाव नष्ट हो जायगा और पुद्गलका जब अमूर्त्तस्वभाव नहीं रहेगा तब पूर्व प्रसंगमें जो ऐसा कहा है कि "पुद्गल तथा जीव इन दोनों में प्रत्येकके एकविंशति २१ भाव हैं" इस वचनका व्याघात होनेसे सिद्धान्तकी भी हानि होती है। क्योंकि जब इक्कीसमेंसे एक अमूर्त्त स्वभाव निकल जायगा तब तो पुद्गलके बीस स्वभाव ही रहैंगे। इस प्रकारकी शंकाको दूर करनेके लिये कहते हैं कि इसी कारणसे असद्भुत व्यवहार नयमें जो परोक्ष पुद्गल परमाणु है उसके अमूर्त्तता कही

गई है। तात्पर्य यह कि व्यवहारिक प्रत्यक्षके अगोचर रूप अमूर्तस्वभाव प्रमाणसिद्ध उपचरित भक्त (कथंचित्) स्वीकार किया जाता है॥ १२॥

सूत्रम् । पुद्गलाणोश्च कालाणोरेकदेशस्वभावता । परमे परद्रव्यस्य भेदकल्पनवर्ज्जितः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—परम भाव ग्राहक नयके मतसे कालाणु तथा पुद्गल परमाणुकी एक-प्रदेश-स्वभावता है। और अन्य द्रव्यका भी भेदकल्पनावर्जित शुद्धद्रव्यार्थिक एक स्वभाव कहलाता है॥ १३॥

व्याख्या । पुद्गलपरमाणोस्तथा कालाणोः परमे परमभावत्राहकनय एकप्रदेशस्वभावता कथ्यते । तथा परद्रव्यस्य कालपुद्गलवर्जितान्यद्रव्यस्य भेदकल्पनवर्जितः शुद्धद्रव्यार्थिक एकप्रदेशस्वभावः कथ्यते ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थ:—परम भाव ग्राहक नयमें पुद्गल परमाणु तथा कालके अणुकी एकप्रदे-शस्त्रभावता कही गई है। तथा भेदकी कल्पनासे वर्जित शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे काल और पुद्गलसे रहित अन्यद्रव्यके भी एकप्रदेशस्त्रभाव कहा गया है।। १३॥

सूत्रम् । शुद्धद्रव्यार्थिकेऽनेकप्रदेशत्वं विनाणुकम् । पुद्गलाणोः स्वभावत्वसुपचारेण तत्पुनः ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः — गुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे परमाणुको छोड़कर, संपूर्ण द्रव्योंका अनेक-प्रदेशस्वमाव है। और पुद्गलके अणुके तो अनेकप्रदेशस्वभावता उपचारसे है॥ १४॥

व्याख्या । शुद्धद्रव्यार्थिके भेदकल्पनासापेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयेऽणुकं परमाणुं विना स-वेषां द्रव्याणामनेकप्रदेशत्वमनेकप्रदेशस्वभावः कथ्यते । अन्यच पुद्रलाणोः पुद्रलपरमाणो-स्तद्नेकप्रदेशस्वभावत्वं भवितुं योग्यतास्ति । ततः उपचारेणानेकस्वभावत्वं कथ्यते । काला-णोश्चोपचारकारणता नास्ति ततस्तस्य सर्वथापि स्वभावो नास्ति ।। १४ ।।

व्याख्यार्थ:—भेदकल्पनासापेक्ष गुद्ध द्रव्याधिकनयसे परमाणुके सिवाय अन्य सब द्रव्योंका अनेकप्रदेशस्वभाव कहा गया है। और पुद्गलके परमाणुके उस अनेकप्रदेशस्वभाव होनेकी योग्यता है अर्थात् वह पुद्गलपरमाणु अनेकप्रदेशस्वभाव हो सकता है इस कारण उपचारसे उसके अनेकप्रदेशस्वभावताका कथन किया गया है। और कालके अणुमें कोई उपचारकारणता नहीं है इस हेतुसे उसके यह अनेकप्रदेशस्वभाव सर्वथा नहीं है॥ १४॥

सूत्रम् । शुद्धाशुद्धार्थिके विद्धि विभावाख्यस्वभावकात् । शुद्धे शुद्धस्वभावाः स्युरशुद्धे शुद्धवर्जिताः॥ १५॥

सूत्रभावार्थः—हे शिष्य, शुद्धाशुद्ध द्रव्याधिकनयमें विभाव नामक स्वभावोंका बोध करो । शुद्ध द्रव्यार्धिक नयमें शुद्ध स्वभावोंकी और अशुद्ध द्रव्यार्धिक नयमें अशुद्ध स्वभावोंकी स्थिति है ॥ १५ ॥

व्याख्या । शुद्धाशुद्धार्थिके नाम्नि द्रव्यार्थिकनये समुष्ययेन विभावादिस्वभावान् विद्धि जानीहि । शुद्धे शुद्धद्रव्यार्थिकनये शुद्धस्वभावान् जानीहि । अशुद्धेऽशुद्धस्वभावान् जानीहि । शुद्धे शुद्धस्वभावाः स्युरशुद्धेऽशुद्धस्वभावा इति ज्ञेयम् ॥ १५ ॥

च्याख्यार्थ:—शुद्धाशुद्धार्थिक नामक द्रव्यार्थिक नयमें समस्त विभाव खमावोंको जानो और शुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें शुद्ध खमावोंको जानो तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें अशुद्ध खमावोंको जानो । भावार्थ यह है कि शुद्ध द्रव्यार्थिकमें शुद्ध भाव तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिकमें अशुद्ध भाव होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १५॥

सूत्रम् । असद्भूतव्यवहारादुपचारस्रभावकाः । इति स्रभावविज्ञानं कत्तव्यं शुभमिच्छता ॥ १६॥

सूत्रभावार्थ:—असद्भृत व्यवहार नयसे उपचरित स्वभाव रहते हैं। इस प्रकार कत्याणके अभिलाषी जीवको स्वभावोंका विज्ञान करना चाहिये॥ १६॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहारनयादुपचारस्वभावका उपचरितस्वभावा ज्ञातव्याः । इतीति समाप्तौ । स्वभावविज्ञानं स्वभावनययोजना ग्रुभं कल्याणं हितं आयुष्यं ज्ञानं चेच्छता अभि-छपता कर्त्तव्यमिति ॥ १६ ॥

ट्यास्यार्थ:—असद्भृतव्यवहार नयकी अपेक्षासे सब उपचरित स्वभावोंको जानना चाहिये। सूत्रमें इति शब्द अध्यायकी समाप्तिका बोधक है। और यह स्वभावोंमें नयोंकी योजना जिस पुरुषको कल्याण, हित, आयुष्य तथा ज्ञानकी अभिलाषा है उसको करनी चाहिये॥ १६॥

सूत्रम् । अनुपचरिताः स्त्रीयभावास्ते तु गुणाः खलु । एकद्रव्याश्रिता गुणाः पर्याया उभयाश्रिताः ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—जो अनुपचरित अपने भाव हैं वे गुण हैं। और वे गुण एक द्रव्यके आधार रहते हैं: और पर्याय उभयके आश्रित रहते हैं।। १७॥

व्याख्या। अत्र दिगम्बरप्रस्तावना वर्तते। क्वत्रापि स्वसमयेऽप्युपस्कृता वर्त्तते परन्त्वत्र किमपि चिन्त्यं वर्त्तते तेन तदूषणं निराचिकीर्पुराह । अनुपचरिता उपचारवर्जिता ये निजकीयस्वभावास्ते गुणाः, गुणानां हि सहभावित्वादुपचारो न विद्यते । निष्कषेस्त्वयम् स्वभावो हि गुणपर्यायाभ्यां भिन्नो न स्थात्तस्माद्योऽनुपचरितो भावः स एव गुण इति, अथ यश्चो-पचरितः स पर्यायः कथ्यते । अतएव द्रव्याश्चिता गुणाः, उभयाश्चिताः पर्यायाः । तथोक्त-मुत्तराध्ययने गाथाद्वारा—"गुणाणमासवो द्व्वं एण द्व्वसिया गुणा। स्वस्त्रणं पज्जयाणं तु उभओ अस्सिआ भवेत्ति । १ ।" ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थ:—यहांपर दिगम्बरमतका प्रस्ताव (प्रसंग) है। और यह प्रसंग कहीं श्वेताम्बरिसद्धान्तमें भी है, परन्तु इस विषयमें कुछ विचारणीय है, इस लिये उसके दूष-णको दूर करनेकी इच्छासे कहते हैं। उपचारसे रहित जो अपने स्वभाव हैं वे गुण हैं. क्योंकि गुण सहभावी हैं, इस लिये उनमें उपचार नहीं होता है। तात्पर्य यह कि कोई स्वभाव गुण पर्यायोंसे भिन्न नहीं है इस लिये जो अनुपचरित भाव है वही गुण और जो उपचरित भाव है वही पर्याय कहा जाता है। और इसी कारणसे केवल द्रव्यके आश्रय जो रहें वे गुण हैं; और द्रव्य, गुण दोनोंके आश्रय जो रहें वे पर्याय हैं। इस विषयमें उत्तराध्ययनसूत्रमें गाथाद्वारा कहा है कि ''गुणोंका आश्रय द्रव्य है अतएव द्रव्या-श्रितत्व गुणोंका लक्षण है; और दोनोंके आश्रय रहना, यह पर्यायोंका लक्षण है.''॥१७॥

सूत्रम् । एवं स्वभावोपगता गुणास्तु भेदेन सम्यक्षथिताश्च योग्याः। अहत्रुमाम्भोजसमाश्चितानां भव्यात्मनां ज्ञानगुणार्थमत्र॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकार इस अध्यायमें श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंके आश्रित भव्य जीवोंको ज्ञानगुणकी प्राप्तिके लिये हमने शास्त्रोक्त योग्य स्वभावसे प्राप्त गुण अच्छी रीतिसे भेद करके कहे हैं॥ १८॥

इति द्रव्यानुयोगतर्कणायां त्रयोदशोऽध्यायः।

व्याख्या। यदि च स्वद्रव्यादिप्राहकेणास्तिस्वभावः, परद्रव्यादिप्राहकेण नास्तिस्वभावः, इत्यादि स्वभावोपगता गुणाः स्वभावसहिता इत्युपगम्यते । तदोभयोरपि द्रव्याधिकविषयत्वात्सप्तभक्त्र्यामाद्यद्वितीययोभिङ्गयोर्द्रव्याधिकपर्यायाधिकाश्रयेण प्रक्रिया भव्येतेत्याद्यत्र बहु विचारणीयम् । एवमनया रीत्या स्वभावाः स्वभावयुक्ता गुणाश्च भेदेन प्रकारकथनेन सम्यक्शाः स्वोक्तरीत्या कथिताः प्रकाशिताः । श्रीमद्वाचकमुख्ययशोविजयपाठकमतिवक्तारित्रप्राकृतपाठ-दृष्टा लिखिता इत्यर्थः । किमर्थमत्र कस्मै कार्याय कथिता इति प्रयोजनपदं ज्ञानगुणार्थं केपाम- ईतां वीतरागाणां कमाश्चरणास्तएवाम्भोजानि कमलानितत्र समाश्रितानां शरणीभूतानां भव्यात्समां भव्यलोकानां ज्ञानगुणार्थं मया कथिता इत्यर्थः ॥ १८ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरिनिमितायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां त्रयोदशोऽध्यायः ।

व्याख्यार्थ: —यदि अपने द्रव्य क्षेत्र आदिका ग्राहक होनेसे अस्तिस्वभाव और पर-कीय द्रव्यक्षेत्रादिका ग्राहक होनेसे नास्तिस्वभाव है; इत्यादि स्वभावसे उपगत गुण हैं ऐसा स्वीकार करते हो तब तो दोनोंके द्रव्यार्थिक नयका ही विषयपना होनेसे सप्तमंगीमें प्रथम-मंग '(स्यादस्त्येव) कथंचित् है ही और द्वितीयमंग (स्यान्नास्त्येव) कथंचित् है ही नहीं' इन दोनों मंगोमें द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकके आश्रय जो प्रक्रिया है उसका मंग होगा; इत्यादि बहुत कुछ यहांपर विचारणीय है। इस पूर्वोक्त रीतिसे स्वभाव तथा स्वभाव-सहित गुण प्रकारोंके कथनद्वारा शास्त्रोक्त रीतिसे प्रकाशित किये हैं अर्थात् श्रीमान् वाचक मुख्य यशोविजयजी उपाध्यायद्वारा विरचित प्राकृतपाठमें देखे हुए छिखे हैं। किस प्रयोजनके लिये कहे हैं? कि श्रीजिनेन्द्रके चरणरूपी कमलोंके शरणको प्राप्त जो भव्यजन हैं, उनको ज्ञानगुणकी प्राप्ति हो इस लिये मैने कहे हैं। यह तात्पर्य है॥ १८॥

इति श्रीपण्डितठाकुरप्रसादशमीवरिचतभाषाटीकासमळङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतः कणायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ पर्यायभेदानाह । अब पर्यायके भेदोंको कहते हैं ।

सत्त्रम् । नत्वा जिनं प्रवक्ष्यामि पर्यायोत्कीर्तनं सुदा । व्यञ्जनार्थविभेदेन तद्विभेदं समासतः ॥ १॥

सूत्रभावार्थ:—श्रीजिनेन्द्रको नमस्कार कर, आनन्दपूर्वक इस अध्यायमें पर्या-योंका वर्णन करूंगा। वह पर्यायोंका वर्णन समास(संक्षेप)से व्यंजन और अर्थके भेदसे दो प्रकारका है॥ १॥

व्याख्या । जिनं वीतरागं नत्वा नमस्क्रत्य पर्यायोत्कीर्त्तनं पर्यायाणामुत्कीर्त्तनं पर्यायोत्कीर्त्तनं मुदा हर्पेण प्रवक्ष्यामि । यदित्युत्तरापेक्षायां तत्पर्यायोत्कीर्त्तनं समासतः संक्षेपाद् व्यञ्जनार्थविभेदेन व्यञ्जनं चार्थश्च तयोविभेदः प्रत्येकं योजना व्यञ्जनभेदेनार्थभेदेन तत्कीर्त्तनं पर्यायस्य द्विभेदं द्विप्रकारकमित्यर्थः ॥ १ ॥

व्याख्यार्थ:—श्रीवीतरागको नमस्कार करके, हर्षसे पर्यायोंका उत्कीर्तन (निरूपण) इस चतुर्दश १४ अध्यायमें कहूंगा। 'यत्' यह आगेके कथनकी अपेक्षामें है. जो पर्यायका निरूपण संक्षेपसे व्यंजन और अर्थके भेदसे अर्थात् व्यंजनके भेदसे तथा अर्थके भेदसे दो प्रकारका है ॥ १ ॥

सूत्रम् । तत्र व्यञ्जनपर्यायस्त्रिकालस्पर्शनो मतः । द्वितीयश्चार्थपर्यायो वर्त्तमानाणुगोचरः ॥ २ ॥

सूच्रभावार्थ:—उन दोनों भेदोंमेंसे प्रथम व्यंजन पर्याय त्रिकालस्पर्शी कहा गया है; और दूसरा अर्थ पर्याय वर्त्तमान सूक्ष्मकालवर्त्ती माना गया है ॥ २ ॥

व्याख्या । तत्र तयोर्द्वयोक्तकीर्त्तनयोर्मध्य आद्यो व्यञ्जनपर्यायस्त्रिकालस्पर्शनो मतोऽनु-गतकालकलितः कथितः। यस्य हि त्रिकालस्पर्शनः पर्यायः स च व्यञ्जनपर्यायः। यथाहि प्यादि । यद्यादि पर्यायः स च व्यञ्जनपर्यायः। यथाहि प्यादि । यद्यादि पर्यायत्वं व्यञ्जयितः तथा द्वितीयोभेदोऽर्थपर्यायः वर्त्तमानाणुगोचरः सूक्ष्मवर्त्तमानकालवर्त्ती अर्थपर्यायः यथाहि प्यादेत्तत्तत्कान्त्राविद्यमानत्वेनार्थपर्याय उच्यत इत्यर्थः॥ २॥

च्याख्यार्थ:—उन दोनो उत्कीर्त्तनोंमें प्रथम जो व्यंजन पर्याय है वह त्रिकालस्पर्शी है अर्थात् पूर्वापर अनुगत सब कालके साथ वह पर्याय स्पर्श करता है। तात्पर्य यह कि जिसका स्पर्श भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें होता है वह व्यञ्जन पर्याय है।

जैसे-घटादिका मृत्तिका आदि पर्याय व्यञ्जन पर्याय है अर्थात् मृन्मय अथवा सुवर्णादिमय घट तीनो कालोंमें पर्यायत्व अर्थात् मृत्तिका आदि पर्यायको प्रकाश करता है । और द्वितीय भेद अर्थपर्याय है । यह अर्थपर्याय वर्त्तमान अणुका विषय है अर्थात् सुक्ष्म वर्त्तमान कालवर्त्ती अर्थ पर्याय है । जैसे घट आदिका उस उस क्षणमें रहनेवाला पर्याय जिस कालके क्षणमें वर्त्तमानतासे स्थित है उस उस कालकी अपेक्षासे उत्पत्तिद्वारा विद्यमान होनेसे वह अर्थपर्याय कहा जाता है। भाव यह है कि जिस क्षणमें घट विद्यमान है उसी क्षणकी विद्यमानतासे वह घट अर्थपर्याय है ॥ २ ॥

अथ तयोः प्रत्येकं द्वैविध्यं दर्शयत्राह । अब उन दोनों पर्यायोंमें प्रत्येकके दो २ मेद दिखाते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । द्रव्यतो गुणतो द्वेषा गुद्धतोऽगुद्धतस्तथा। गुद्धद्रव्यव्यञ्जनाष्यश्चेतनो सिद्धता यथा॥३॥

सूत्रभावार्थः उन पर्यायोंके द्रव्यसे तथा गुणसे दो भेद हैं और शुद्ध तथा अशु-द्धके द्वारा भी दो भेद हैं। शुद्ध द्रव्यव्यंजननामा शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय जैसे चेतनमें सिद्धता पर्याय है॥ ३॥

व्याख्या । द्रव्यतो द्रव्यपर्यायो भवति तथा गुणतो गुणपर्यायोऽपि भवति, एवं द्वेधा द्वि-प्रकारः स्यात् । तथाहि द्रव्यव्यञ्जनपर्यायो गुणव्यञ्जनपर्याय इति । तथा पुनस्तेनैव प्रकारेण शुद्धतः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः, अशुद्धतोऽशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायश्च द्विप्रकारः । तत्र तेषु भेदेषु शुद्धद्रव्यव्यञ्जनाख्यः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः कस्मिन्भवति चेतने यथा सिद्धता चेतनद्रव्यस्य यथा सिद्धपर्यायः । अयं हि केवलभावाःकोयः ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ:— द्रव्यसे तो द्रव्यपर्याय होता है और गुणसे गुण पर्याय होता है, इस प्रकार दो भेद होते हैं। जैसे द्रव्यव्यंजन पर्याय तथा गुणव्यंजन पर्याय होता है। और उसी प्रकारसे शुद्ध से शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय होता है तथा अशुद्ध से अशुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय होता है ऐसे दो भेद हैं। अब उन भेदोंमेंसे शुद्ध द्रव्यव्यंजन नामक शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय किसमें होता है, जैसे चेतनमें सिद्धता अर्थात् चेतनद्रव्यका सिद्ध पर्याय है। यह शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय केवल भावसे जानना चाहिये॥ ३॥

पुनर्भेदोपदेशमाह । फिर भेदका उपदेश करते हैं।

सूत्रम् । अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनो न्रादिर्बहुधामतः । गुणतोऽपीत्थमेवात्र केवल्यमतिचिन्मुखः ॥ ४ ॥

सूच्रभावार्थ:—अशुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय मनुष्य देव आदि अनेक प्रकारका माना गया है और इसी प्रकार गुणसे भी जानने अर्थात् शुद्ध गुणव्यंजन पर्याय तथा अशुद्ध गुणव्यंजन पर्याय ये दो भेद गुणसे हैं। इनमें प्रथम भेदमें केवलज्ञान आदि और दूसरे भेदमें मतिज्ञानादि पर्याय हैं॥ ४॥

व्याख्या । अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायोऽशुद्धद्रव्यव्यञ्जनो नरादिरादिशब्दादेवनारकिर्यगा-द्यो बहुधा मतास्तदपेक्षया नरादिर्बहुधा मतः । अत्र हि द्रव्यभेदः पुद्रलसंयोगजनितोऽस्ति । मनुष्यादिभेदेनैवं भेदः । गुणतोऽपीत्थमेव । गुणव्यञ्जनपर्यायो द्विप्रकारः । तत्र प्रथमं शुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायः कैवल्यं केवल्क्षानादिरूपः, द्वितीयोऽप्यशुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायो मतिचिनमुखः । मतिश्रुताविधमनःपर्ययक्षय इति ॥ ४ ॥

च्याख्यार्थः अगुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय मनुष्य, देव, नारक और तिर्यञ्च आदि रूपसे अनेक प्रकारका माना गया है. इसीकी अपेक्षासे "नरादिर्बहुधा मतः" यह सूत्रमें पाठ है। यहांपर द्रव्यका भेद पुद्गल संयोगसे उत्पन्न हे, अतः मनुष्य आदिके भेदसे यह भेद होता है। गुणसे भी इसी प्रकार है अर्थात् गुणव्यंजन पर्याय भी दो प्रकारका है। उनमें प्रथम गुद्ध गुणव्यंजन पर्याय जो है, वह तो केवलज्ञान आदि रूप पर्याय है। और दूसरा अगुद्ध गुण व्यंजन पर्याय मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्यय ज्ञान आदि स्वरूप है॥ ४॥

पुनः कथयति ।

फिर भी पर्यायका भेद कहते हैं।

सूत्रम्। ऋजुसूत्रमतेनार्थपर्यायः क्षणवृत्तिमान्। आभ्यन्तरः शुद्ध इति तद्नयोऽशुद्ध ईरितः॥५॥

सूत्रभावार्थ:—ऋजुसूत्र नयके मतसे अर्थपर्याय क्षणवृत्तिवाला है। आभ्य-न्तर तो ग्रुद्ध अर्थपर्याय है और उससे अन्य अग्रुद्ध अर्थपर्याय कहा गया है॥ ५॥

ब्याख्या । ऋजुसूत्रमतेनर्जुसूत्रादेशेनार्थपर्यायः, आभ्यन्तरः शुद्धार्थपर्यायः क्षणवृत्तिमान् क्षणपरिणतः । तद्दन्यस्तद्तिरिक्तोऽशुद्ध ईरितः । यो यस्माद्रुपकालवर्त्तां पर्यायः स च तस्माद्रुपत्वविवक्षया अशुद्धार्थपर्यायः कथ्यते ॥ ५ ॥

उचारुयार्थ:—ऋजुस्त्रनयके आदेशसे आभ्यन्तर (अन्तरंग)का जो है वह शुद्ध अर्थपर्याय है और क्षणमात्रवृत्ति है अर्थात् शुद्धार्थपर्याय क्षणक्षणमें परिणामको प्राप्त होता है। और उससे अन्य अशुद्ध अर्थपर्याय कहा गया है। तात्पर्य यह कि जो जिस पर्यायसे अल्पकालवर्त्ती पर्याय है वह पर्याय उस अधिक कालवर्त्ती पर्यायसे अल्पत्वकी अपेक्षासे अशुद्ध अर्थपर्याय कहा जाता है। ५॥

अत्र वृद्धवचनसंमतिं दर्शयति ।

इस विषयमें वृद्धोंके वचनरूप संमति दर्शाते हैं।

सूत्रम् । नरो हि नरज्ञब्दस्य यथा व्यञ्जनपर्ययः । बालादिकोऽर्थपर्यायः संमतौ भणितस्त्वयम् ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः — जैसे नर शब्दका नर पर्याय व्यंजनपर्याय कहा गया है, वैसेही संमति प्रन्थमें बाल आदि अर्थपर्याय कहा गया है ॥ ६ ॥

व्याख्या । नरो हि नरशब्दस्य यथा व्यञ्जनपर्यय इति । यथा पुरुषवाच्यजनममरणकालपर्यन्त एकोऽनुगतनरत्वपर्यायः स च पुरुषस्य व्यञ्जनपर्यायोऽस्ति, संमतिविषये बालादिकस्तु पुनर्यपर्यायः कथितः । अयमिति इदमः प्रत्यक्षत्वे साक्षात्संमतिदृष्ट इति । अत्र गाथा
"पुरिसंमि पुरिससदो जन्माइ मरणकालपज्ञंतो । तस्सओ बालाईया पज्जवभेया बहु विगप्पा।
॥ १॥ ६॥

च्याख्यार्थ:—जैसे नरशब्दका नर व्यंजनपर्याय है. तात्पर्य्य यह कि पुरुष शब्दसे बाच्य पुरुषपर्याय जन्मसे आदि लेके मरणकालपर्यन्त एक अनुगत रूपसे नरत्व पर्याय है और वह पुरुषका व्यंजन पर्याय है और बाल आदिक अर्थपर्याय हैं ऐसा संमित प्रथमें कहा है, अर्थात् यह विषय साक्षात् संमितिमें देखा हुआ है। यहां संमितिकी गाथा है कि "जैसे पुरुषमें पुरुष यह शब्द जन्मसे मरणतक रहता है यह व्यंजन पर्याय है और उस पुरुषमें बाल, युवा, इत्यादि जो भेद हैं ये सब अर्थपर्याय हैं॥ ६॥

अथ केवलज्ञानादिकः शुद्धगुणव्यञ्जनपर्याय एव भवति, तत्रार्थपर्यायो नास्तीत्येता-दृशी कस्यचिद्दिक्पटाभासस्याशङ्कास्ति तां निराकरोति ।

अब "केवल ज्ञान आदि शुद्ध गुणव्यञ्जन पर्याय ही हैं, उनमें अर्थपर्याय नहीं है." ऐसी किसी दिगम्बराभासकी शंका है, उसको दूर करते हैं।

सूत्रम्। षड्गुणहानिषृद्धिभ्यां यथाऽगुरुलघुस्तथा। पर्यायः क्षणभेदाच केवलाख्योऽपि संमतः॥ ७॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे षड्गुणी हानिवृद्धिसे अगुरुलघु पर्याय माना है, उसी प्रकार क्षणके भेदसे केवलाख्य गुण पर्यायके भी अर्थ पर्याय माना गया है ॥ ७ ॥

ध्याख्या । षड्गुणहानिवृद्धिभ्यामगुरुळघुपर्याया यथा कथिताः पड्गुणहानिवृद्धिळक्षणा अगुरुळघुपर्यायाः सूक्ष्मार्थपर्याया इतिवत्पर्यायः क्षणभेदात्केवळाख्योऽपि संमतः क्षणभेदात्केवळज्ञानपर्यायोऽपि भिन्नो भिन्न एव दार्शतः । यतः ''पढमसमये योगभवत्थकेवळनाणे'' अपढमसमये सजोगिभवत्थकेवळनाणे'' इत्यादिवचनात्तदञ्जसूत्रादेशेन शुद्धगुणस्याप्यर्थपर्याया मन्तव्याः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थ:— जैसे पर्गुणी हानि वृद्धिसे अगुरुलघु पर्याय कहे हैं अर्थात् जैसे पर्गुणी हानि वृद्धिलक्षण अगुरुलघु पर्याय अर्थात् सूक्ष्मार्थ पर्याय हैं ऐसेही क्षणके भेदसे केवल ज्ञान नामक पर्याय भी भिन्न २ ही देखा गया है. क्योंकि, प्रथम समयमें योग-भवस्थ केवलज्ञानमें, द्वितीयसमय सयोगी भवस्थ केवलज्ञानमें, इत्यादि वचन हैं. इस लिये ऋजुस्त्रनयके आदेशसे शुद्ध गुणके भी अर्थपर्याय मानने चाहिये॥ ७॥

सूत्रम् । सद्रव्यव्यञ्जनोऽणुश्चाद्युद्धपुद्गलपर्यवः। द्व्यणुकाचा गुणाः स्वीयगुणपर्यायसंयुताः॥८॥ सूत्रभावार्थ:—शुद्ध द्रव्यव्यंजन परमाणु जो है वह शुद्ध पुद्गल पर्याय है और द्वर्चणुकादि अशुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्याय हैं। ये अपने २ गुण पर्यायों सहित हैं॥ ८॥

व्याख्या । सद्रव्यव्यञ्जनोऽणुः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपरमाणुः शुद्धपुद्रलपर्यवसस्य नाशो नास्ति । तथा द्व्यणुकादिका अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः संयोगजनितस्वात् । कीष्टशाः स्वीयगुणपर्यायसं-युताः पुद्रलद्रव्यस्य शुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायाः अशुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायास्ते निज २ गुणाश्रिता मन्तव्याः । यतः परमाणुगुणो यः स च शुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायस्तथा द्विप्रदेशादिगुणो यः स चाशुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ:—शुद्ध द्रव्यव्यंजन परमाणु जो है वह शुद्ध पुद्गल पर्याय है। क्योंकि, उसका नाश नहीं होता है। और द्याणुक आदि अशुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय हैं। क्योंकि, संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण नाशवान् हैं। ये कैसे हैं कि अपने गुण तथा पर्याय करके सिहत हैं। अर्थात् पुद्गल द्रव्यके जो शुद्ध गुणव्यंजन पर्याय और अशुद्ध गुणव्यंजन पर्याय हैं, वे अपने २ गुणके आश्रित मानने चाहिये। क्योंकि, जो परमाणुका गुण है वह तो शुद्ध गुणव्यंजन पर्याय हैं। अश्रद गुणव्यंजन पर्याय है। ८।।

सूत्रम्। सूक्ष्मार्थपर्यवाः सन्ति धर्मादीनामितीव ये। कथयन्ति न किं तेऽम्रं जानन्त्यात्मपरार्थतः॥९॥

सूच्रभावार्थ:—धर्मादि द्रव्यके सूक्ष्म अर्थपर्याय हैं ऐसा जो दिगम्बर कहते हैं सो क्या वे स्वपरबोधसे इस क्षणपरिणामरूप अर्थपर्यायको नहीं जानते ॥ ९ ॥

व्याख्या । धर्मादीनां धर्मास्तिकायादीनां सूक्ष्मार्थपर्यवाः शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायाः सन्ति, इतीव ये कथयन्त्रेतादृशहठं कुर्वन्ति ते जना हठं त्यक्त्वा आत्मपरार्थतः निजपरप्रत्ययादृजु-सूत्रादेशेन चामुं क्षणपरिणतिरूपं पूर्वोक्तमर्थपर्यायमिष केवल्रज्ञानादिवन्न किं किमिति कथं न जानन्ति हठं त्यक्त्वा कथं नाङ्गीकुर्वन्ति । किं च तेषु धर्मास्तिकायादिष्वपेक्षया अशुद्धपर्या-योऽपि भवति न चेत्तदा परमाणुपर्यन्तविश्रामः पुद्गलद्रव्येऽपि न भवति, इत्यभिप्रायेण कथ-यन्नाह ॥ ९ ॥

च्याख्यार्थ:—धमीस्तिकाय आदि द्रव्योंके सूक्ष्म अर्थ पर्याय अर्थात् शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय हैं, ऐसा जो हठ करते हैं; वे हठ करनेवाले मनुष्य हठको छोड़कर, अपने प्रत्ययसे अथवा परके प्रत्ययसे और ऋजुसूत्रनयके आदेशसे इस क्षणपरिणाम रूप पूर्वकथित अर्थ-पर्यायको भी केवल ज्ञान आदिकी भांति क्यों नहीं जानते? अर्थात् अपने हठको छोड़कर, क्यों नहीं खीकार करते। यह आक्षेप है। और भी, उन धर्मास्तिकाय आदिमें अपेक्षासे अशुद्ध पर्याय भी होता है, यदि ऐसा न हो तो पुद्गल द्रव्यमें भी परमाणु तक विश्राम नहीं होता है। इस अभिप्रायसे स्ठोक कहते हैं॥ ९॥

सूत्रम्। यथाऽऽकृतिश्च धर्मादेः शुद्धो व्यंजनपर्यवः। लोकस्य द्रव्यसंयोगादशुद्धोऽपि तथा भवेत्॥ १०॥

सूत्रभावार्थ:—जैसे धर्म आदि द्रव्यके लोकाकाश प्रमाणसे शुद्ध व्यंजन पर्याय है, ऐसेही लोकमें रहनेवाले द्रव्योंके संयोगसे अशुद्ध व्यंजन पर्याय क्यों न हो ? अर्थात् होनाही चाहिये ॥ १० ॥

व्याख्या । धर्मास्तिकायादेराकृतिलीकाकाशमानसंस्थानरूपा यथा वर्त्तते तथा शुद्धो व्यंज-नपर्यवः शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायः कथ्यते परिनरपेक्षत्वेनेति । तथा लोकस्य द्रव्यसंयोगाल्लो-कवर्त्ती द्रव्यसंयोगरूपोऽशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायोऽपि तस्य लोकस्य द्रव्यसंयोगान्निरपेक्षत्वं कथयन्विरोधं नोत्पाद्यति । विरोधः कोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥ १०॥

व्याख्यार्थ:—जैसे धर्मास्तिकाय भादि द्रव्यका आकार लोकाकाश प्रमाण स्थिति-रूप है, इस लिये परद्रव्यकी निरपेक्षासे वह शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय है ऐसा कथन होता है; ऐसेही लोकके द्रव्योंके संयोगसे अर्थात् लोकमें रहनेवाले जो द्रव्य हैं उन द्रव्योंका धर्मादि द्रव्यके साथ संयोगरूप अशुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय भी है; और उस लोकके द्रव्य संयोगसे निरपेक्षक होनेसे किसी विरोधकों भी नहीं उत्पन्न करता; अर्थात् कोई विरोध नहीं है ॥ १०॥

अथाकृतिः पर्यायो भविष्यति, संयोगः पर्यायो न भविष्यतीत्याशङ्कां परिहरन्नाह । अब आकृति पर्याय हो सकती है और संयोग नहीं इस आशंकाको दूर करते हुए कहते हैं।

सूत्रम्। आकृतेरिव संयोगः पर्यवः कथ्यते यतः। उत्तराध्ययनेऽप्युक्तं पर्यायस्य हि लक्षणम्॥११॥

सूत्रभावार्थः—आकृतिके समान संयोग भी पर्याय कहलाता है। क्योंकि, उत्तरा-ध्ययन सूत्रमें भी पर्यायका लक्षण कहा है। ११॥

व्याख्या । संयोगोऽप्याकृतेरिवाकृतिवत्पर्यायः कथ्यते । यतो हेतोः पर्यायस्य स्रक्षणं हीति निश्चितमुत्तराध्ययनेऽप्युक्तं कथितम् । ततोऽस्य स्रक्षणं सभेदमपि श्रीउत्तराध्ययनादेवावसेय- मिति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थ:—संयोग भी आकृति (आकार) के समान पर्याय कहा जाता है। क्योंिक, निश्चय रूपसे पर्यायका लक्षण उत्तराध्ययन सूत्रमें भी कहा है। इसलिये भेदसहित पर्यायका लक्षण श्रीउत्तराध्ययन सूत्रसे ही जानना चाहिये॥ ११॥

पुनस्तदेवाह ।

फिर पर्यायके विषयमें ही कहते हैं।

सूत्रम्। एकत्वं च एथक्त्वं च संख्या संस्थानमेव च। संयोगश्च विभागश्चेतीत्थं मनसि चिन्तय॥१२॥

सूत्रभावार्थः—एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग तथा विभाग इन सबको पर्याय रूपसे मनमें विचारो ॥ १२ ॥

व्याख्या । एकत्वं १ पृथक्त्वम् २ एतद्वयं तथा पुनः संख्या १ संस्थानम् २ एतद्वयं च पुनः संयोगः १ विभागः २ एतद्वयं चेत्यादि षट्टं द्वित्वपरिणतं मनिस चिन्तय । खचेतोगोच-रीकुरुष्वेत्यर्थः । तथा च तत्र गाथा-"एगत्तं च पुहुत्तं च संख्या संठाणमेव च । संयोगो य विभागो य पज्जवाणं तु छक्खणं ।१।" इत्येतद्राथोक्तपर्यायभेदभावना भावयितव्या ॥ १२ ॥

च्याख्यार्थ:—एकत्व १ पृथक्तव २ ये दोनों, संख्या १ संस्थान २ (आकृति वा अवयव-रचना) ये दोनों, पुनः संयोग १ तथा विभाग २ ये दोनों, इन तीन द्वन्द्व अर्थात् छहको मनमें पर्याय रूप विचारो । अर्थात् अपने चित्तमें इनको पर्यायके भेद समझो । ऐसी ही यहांपर उत्तराध्ययनकी गाथा है—''एकत्व १ पृथक्तव २ संख्या ३ संस्थान ४ संयोग ५ और विभाग ६ ये पर्यायके लक्षण हैं । इस गाथामें जो (एकत्व आदि) कहे हैं, उनमें पर्यायके भेदकी भावना करनी चाहिये । भावार्थ—उत्तराध्ययनमें संयोगको भी पर्याय माना है ॥ १२ ॥

पुनः प्रकृतमेवार्थमाह ।

फिर उसी पर्याय विषयको कहते हैं।

सूत्रम् । उपचारी न वाऽशुद्धो यद्यप्यन्याश्रितो भवेत् । असद्भृता मनुष्याचास्तदा नाशुद्धयोगकाः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थ:—जो उपचरित है वह यद्यपि परद्रव्याश्रित हो परन्तु अशुद्ध नहीं हो सकता । यदि ऐसा मानते हो, तब तो असद्भृत मनुष्य आदि भी अशुद्धपर्याययोगी नहीं होंगे ॥ १३ ॥

व्याख्या । उपचारी न भवत्यशुद्धो यद्यप्यन्याश्रितो भवेत्परद्रव्यसंयोगी स्यात्तथाप्युप-चारी अशुद्धतां नाप्नोति । अथ च यद्येवं कथिष्ण्यथ यद्यदि च धर्मास्तिकायादीनां परद्रव्यसं-योगोऽस्ति तदुपचरितपर्याय इति कथ्यते, परन्त्वशुद्धपर्याय इति न कथ्यते, द्रव्यातथात्वहे-तुष्वेवाशुद्धत्वव्यवहारोऽस्तीति, तत्तस्माद् मनुष्यादिपर्यायोऽप्यशुद्ध इति न कथ्यत, असद्भूत-व्यवहारनयमाद्यत्वेनासद्भूत इति कथ्यत । तद्धि तन्त्वादिपर्यायवदेकद्रव्यजनकावयवसं-धातस्यैवाशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायत्वं च कथ्यतां चतुरस्रं छगेदिति । तस्मादपेक्षानपेक्षाभ्यां शुद्धाशुद्धानेकान्तव्यापकत्वमेव श्रेय इति । तदेवाग्रेतने पद्ये प्रतिपादियण्यति । पुनरक्षरार्थ-स्त्वेवम् । असद्भूता मनुष्याद्यास्तदा अशुद्धयोगका नेति ।। १३ ।।

व्याख्यार्थ—उपचारवान् यद्यपि परद्रव्यका संयोगी होवै तथापि वह अगुद्धताको नहीं प्राप्त होता है। अब यदि ऐसा कहते हो कि, धर्भास्तिकाय आदि द्रव्योंका परद्रव्यके साथ संयोग है; इसीसे उनको उपचरित पर्याय कहते हैं परन्तु अशुद्ध पर्याय नहीं कहते। क्योंकि द्रव्यके अतथाभावके (अन्यपनेके) हेतुओंमें ही अशुद्धताका व्यवहार है, इस कारण, मनुष्य आदि पर्याय भी अशुद्ध है; ऐसा न कहो। किन्तु असद्भूत व्यवहार नयसे प्राष्ट्य होनेसे असद्भूत है, ऐसा कहो। क्योंकि वह तन्तु आदि पर्यायकी तरह एकद्रव्यजनक जो अवयवसंघात (अवयवोंका समूह) उसीको अशुद्ध द्रव्यव्यंजनपर्यायता कहनेवालोंके चतुरस्र लगेगा। इमलिये अपेक्षासे शुद्ध और अपेक्षारहिततासे अशुद्ध इस प्रकार अनेकान्त व्यापकता ही श्रेष्ठ है। और इसीको आगेके श्लोकमें प्रतिपादित करेंगे। अक्षरोंका अर्थ तो यह है कि, यदि उपचारी अशुद्धताको नहीं प्राप्त होता; तो मनुष्य आदि भी अशुद्ध पर्यायके योगी नहीं हैं॥ १३॥

पुनः कथयति ।

पुनः उसी विषयको कहते हैं।

सूत्रम् । धर्मादेरन्यपर्यायेणात्मपर्यायतोऽन्यथा । अद्युद्धताविद्योषो न जीवपुद्गलयोर्यथा ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—धर्मास्तिकाय आदिके परपर्यायसे तथा अपने पर्यायसे विलक्षणता है; और जैसे जीव, पुद्गलमें अगुद्धताका विशेष नहीं है; वैसे इनमें भी नहीं है ॥ १४ ॥ व्याख्या । धर्मादेधर्मास्तिकायादेरन्यपर्यायेण परपर्यायेणात्मपर्यायेणात्मपर्यायतः स्वपर्या-यादन्यथा विषमत्वं विलक्षणत्वं ज्ञातव्यम् । यतः कारणाद्शुद्धताया विशेषो नास्ति यथा जीव पुद्मलयोविषये अशुद्धताविशेषो नास्ति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थ:—धर्मास्तिकाय आदिके परपर्यीय तथा आत्मपर्यायसे विलक्षणता जाननी चाहिये। क्योंकि, जैसे जीव और पुद्गलके विषयमें अग्रुद्धता विशेष नहीं है; वैसे यहां भी अग्रुद्धताका विशेष नहीं है ॥ १४॥

अथ प्रकारान्तरेण चतुर्विधपर्याया नयचके कथितास्तानेव दर्शयन्नाह ।

अब नयचक्रमें अन्य प्रकारसे पर्यायोंके जो चार भेद कहे हैं; उन्हीं भेदोंको दर्शाते हुए आगेका स्ठोक कहते हैं।

सूत्रम्। खजातेश्च विजातेश्च पर्याया इत्थमर्थके। स्वभावाच विभावाच गुणे चत्वार एव च॥१५॥

सूत्रभावार्थ:—द्रव्यके विषयमें इसी प्रकार स्वजातीयसे तथा विजातीयसे पर्याय होते हैं। ऐसेही गुणके विषयमें भी स्वभाव गुणसे तथा विभाव गुणसे पर्याय होते हैं। इस प्रकार पर्यायके चार भेद हुए॥ १५॥

ब्याख्या । इत्थममुना प्रकारेण खजातेः पर्यायाः सजातीयद्रव्यपर्यायाः, विजातेः पर्याया विजातीयद्रव्यपर्यायाश्चार्थके द्रव्ये द्रव्यविषये भवन्ति । खभावाच पुनर्विभावादिति स्वभाव- गुणपर्यायाः, विभावगुणपर्यायाः इत्यं चत्वारो भेदा द्रव्यगुणभेदात्पर्यायाणां कथनीयाः। स्वजातीयद्रव्यपर्यायः, विजातीयद्रव्यपर्यायः, स्वभावगुणपर्यायः, विभावगुणपर्यायः, इति चत्वारो द्रव्यगुणयोर्भेदा भावनीया इति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थ:—इस प्रकारसे स्वकीय जातिसे जो पर्याय होते हैं वे सजातीय पर्याय कहलाते हैं, तथा परजातिसे जो पर्याय होते हैं वे विजातीय पर्याय कहलाते हैं। और स्वभावसे तथा विभावसे गुणमें पर्याय होते हैं। अर्थात् स्वभाव गुणपर्याय, और विभाव गुणपर्याय दो भेद ये। ऐसे द्रव्य और गुणके भेदसे पर्यायोंके चार भेद कहने चाहिये। अर्थात् सजातीय द्रव्यपर्याय १ विजातीय द्रव्यपर्याय २ स्वभाव गुणपर्याय ३ तथा विभाव गुणपर्याय ४. इस प्रकार दो भेद द्रव्यके तथा दो भेद गुणके इन दानोंको मिलाके, चार भेद द्रव्य गुण दोनोंके विचारने चाहियें॥ १५॥

अत्र पूर्वोक्तानां भेदानामुदाहरणमाह । अब पूर्वोक्त सजातीय द्रव्यपर्याय आदि भेदोंके उदाहरण कहते हैं।

सूत्रम् । द्व्यणुकं च मनुष्याश्च केवलं मतिचिन्मुखाः। दृष्टान्ता प्रायिकास्तेषु नाणुरन्तर्भवेत्कचित्॥ १६॥

सूत्रभावार्थः—द्वचणुक सजातीय द्रव्यपर्याय हैं, मनुष्य आदि विजातीय द्रव्यपर्याय हैं तथा केवल ज्ञान स्वभाव गुणपर्याय है और मितज्ञान आदि विभाव गुणपर्याय हैं। ये दृष्टांत प्रायिक हैं। क्योंकि, इनमें कहीं भी अणुका अन्तर्भाव नहीं होता है॥ १६॥

व्याख्या । द्वयणुकं चेति द्विप्रदेशादिस्कन्धः स च सजातीयद्रव्यपयीयः, कथं तत् । द्वयोः परमाण्वोः संयोगे सति द्वयणुकमेतावता द्रव्यद्वयं संगत्यैकद्रव्यं भवतीति सजातीयद्रव्यपर्यायः १ । मनुष्याश्च मनुजादिपयीया विजातीयद्रव्यपर्याय इति, जीवपुद्रलयोयोगे सति मनुष्यत्वव्यवहारी जायते, एतावता विजातीयद्रव्यद्वयं संगत्यैकद्रव्यं निष्पन्नमिति विजातीयद्रव्यपर्यायः २ । अथ केवलमिति केवलज्ञानं स्वभावगुणपर्यायः कथ्यते, कथं तत्-कर्मणां संयोगरहितत्वात्स्वभावगुणपर्यायः ३ । अथ मतिचिन्मुखा मतिज्ञानाद्यः पर्यायाः विभावगुणपर्यायः कथ्यन्ते । कथं तत् कर्मणां परतन्नत्वाद्विभावगुणपर्याय ४ । इति । एते हि चत्वारो दृष्टान्ताः प्रायिका ज्ञातव्याः । परमार्थतस्तु परमाणुरूपद्रव्यपर्याय एषु चतुर्षु नान्तर्भवितुम्हिति विभागजनितपर्यायत्वात् । तदुक्तं संमतौ-"अणुएहिं द्व्वे आरद्धेति अणंति व्यसाण् विश्वः सात्ततो । अपुणविभन्तो अणुत्तिजाओ अणू होइ ।" इत्यादिकं सर्वे विमृत्य विज्ञेयमिति । किश्वः आरद्धद्रव्यपर्यायेऽणुद्वयसंयोगे सति द्वयणुकं निष्पद्यते, त्रिभिद्वर्णुकेष्ठयणुकं जायते, त्रिभिक्वणुकेश्चतुरणुकमुत्पद्यते । एवं महती पृथ्वी, महत्यआपो, महान्तो वायव इत्यादि नैयायिकैः प्रणीतत्वात् ॥ १६ ॥

च्याख्यार्थ:—जो द्विप्रदेश आदि स्कंध हैं वे सजातीय द्रव्यपर्याय हैं। सो कैसे कि, दो परमाणुओंका संयोग होनेपर द्याणुक होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक जातिके

दो द्रव्य परस्पर मिलके जो एक द्रव्य होता है वह सजातीय द्रव्यपर्याय है १। और मनुष्य आदि जो पर्याय हैं वे विजातीय द्रव्यपर्याय हैं। क्योंकि, जीव और पुद्रलका पर-स्पर संयोग होनेपर मनुष्य यह व्यवहार होता है। इससे यह सिद्धान्त हुआ कि भिन्न २ जातिके दो द्रव्य मिलकर, जो एक द्रव्य होता है; वह विजातीय द्रव्य पर्याय कहलाता है २। केवल ज्ञान जो है वह स्वभाव गुणपर्याय कहा जाता है। सो कैसे कि-वह कर्मों के संयोगसे रहित है इसलिये स्वभाव गुणपर्याय है ३। तथा मितज्ञान आदि पर्याय विभाव गुणपर्याय कहलाते हैं।सो कैसे कि,ये कर्मोंके सम्बन्धसे होते हैं; इसलिये विभाव गुणपर्याय हैं ४। इन चारों दृष्टान्तोंको प्रायिक समझना चाहिये, अर्थात् ये सर्वत्र रहनेवाले नहीं हैं। परमार्थसे तो परमाणु रूप द्रव्यपर्याय इन चारोंमें अन्तर्गत होने योग्य नहीं है। क्योंकि, वह परमाणु द्रव्यविभागसे उत्पन्न पर्याय है न कि संयोगसे उत्पन्न । सोही संमितिमें कहा है कि-"दो तीन आदि अणुओंसे अनन्त द्रव्योंका आरंभ निरन्तर होता है। और जिसका फिर विभाग न हो वह अणु है। यह द्वचणुकसे विभाग करके होता है।१।" इत्यादि सब विचारके जानना चाहिये । और ''आरंभ किये हुए द्रव्यके पर्यायमें दो अणु-ओंके संयोगसे द्वचणुक उत्पन्न होता है, ऐसेही तीन द्वचणुकोंसे व्यणुक और चार व्यणु-कोंसे चतुरण्क उत्पन्न होता है और इसी प्रकार महापृथिवी, महाजल तथा महावाय आदि होते हैं" इत्यादि रूपसे नैयायिकोंने भी कहा है ॥ १६ ॥

पुनः प्रतिपिपादयिषुराह ।

उसी कथनकी इच्छासे पुनः इस श्लोकको कहते हैं।

सूत्रम् । गुणानां हि विकाराः स्युः पर्याया द्रव्यपर्यवाः । इत्यादि कथयन्देवसेनो जानाति किं हृदि ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थ:—गुणोंके विकारही पर्याय हैं यह, पहिले कहके फिर द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय कहते हुए देवसेनजी अपने मनमें क्या जानते हैं ? ॥ १७ ॥

व्याख्या । गुणविकाराः पर्याया एवं कथियत्वा तेषां भेदाधिकारे पर्याया द्विविधा द्रव्य-पर्याया गुणपर्यायाश्चेति कथयंश्च देवसेनो दिगम्बराचार्यो नयचक्रप्रन्थकर्ता हृदि चित्ते किं जानाति अपि तु सम्भावितार्थं न किमपि जानातीत्यर्थः । पूर्वापरिवक्रद्धभाषणाद्सत्प्राय एवे-दमित्यभिप्रायः । किञ्च द्रव्यपर्याया एव कथनीयाः परन्तु गुणपर्याया इति पृथग्भेदोत्कीर्त्तनं न कर्त्तव्यं द्रव्ये गुणत्वाधिरोपादुणं च गुणत्वाभावादिति निष्कर्षः ॥ १७॥

व्याख्यार्थ:—गुणोंके विकार पर्याय हैं ऐसा कहके पुनः पर्यायोंके भेदके अधिकारमें पर्याय दो प्रकारके हैं-द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय इस प्रकार नयचक्र प्रन्थके कर्ता दिग-म्बराचार्य देवसेनजी अपने चित्तमें क्या जानते हैं। अर्थात् कुछ नहीं जानते हैं। अर्थात् पूर्वापर विरुद्ध भाषण करनेसे यह झूंटा है यह अभिप्राय है। और द्रव्यपर्याय ही कहने

चाहिये और गुणपर्याय ऐसा दूसरा भेद न करना चाहिये। क्योंकि, द्रव्यमें गुणत्वका अध्यारोप है और गुणमें गुणताका अभाव है। यही तात्पर्य है॥ १७॥

पुनस्तदेवाह ।

फिर उसीको कहते हैं।

सूत्रम् । इत्थं पदार्थाः प्रणिधाय मूर्त्रि परीक्षिता ज्ञानगुरोः सदाज्ञाम् । तुच्छोक्तिमुत्सुच्य विमोहसूलामईत्क्रमाम्भोजरतेन सर्वे॥१८॥

सूत्रभावार्थ:—ज्ञानके दाता श्रीगुरुकी उत्तम आज्ञाको मस्तकपर धारण करके, जिनेन्द्रके चरणकमलमें तत्पर मैने विमोहके मूलभूत अज्ञप्रणीत वचनको त्यागकर, इस प्रकार सब पदार्थोंकी परीक्षा की ॥ १८॥

इति श्रीयशोविजयोपाध्यायप्रणीतद्रव्यगुणपर्यायभाषाविवरणोक्तार्थसंद्रितस्रोक-रूप-द्रव्यानुयोगतर्कणायां चतुर्देशोऽध्यायः ॥ १४॥

व्याख्या । इत्थमनया रीत्या पदार्था द्रव्यगुणपर्यायाः परीक्षिताः स्वरूपळक्षणभेदादिकथनेन विशदीकृताः । किं कृत्वा ज्ञानगुरोः परम्परागतश्रुताचार्यस्य सदाज्ञां सत्यनिदेशं मूर्श्नि मस्तके निधाय संस्थाप्य। पुनः किं कृत्वा विमोहमूळां श्रमनिवन्धनां तुच्छोक्तिं तुच्छबुद्धिप्रणीतः वचनमुत्सृच्यापाकृत्य। कीदृशेन मया अर्हत्कमाम्भोजरतेन वीतरागचरणकमळसेवनरिसकेन। सर्वे पदार्था मया परीक्षिता इत्यर्थः । भोजेति नामनिरूपणं चेति ॥ १८ ॥

इति श्रीवाचकमुख्य-श्रीयशोविजयविद्भितद्रव्यगुणपर्यायनाषाविवरणतदुक्तिसङ्क-ि लितायां कृतिभोजसागरविर्विभितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥

च्याख्यार्थ:—परंपरागत श्रुताचार्यकी समीचीन आज्ञाको मस्तकपर धर करके और भ्रमसे उत्पन्न हुए ऐसे मन्द्वुद्धियोंके रचे हुए वचनको दूर करके श्रीजिनेन्द्रके चरणकम-लोंकी सेवा करनेमें रिसक ऐसे मैने इस प्रकार सब द्रव्य, गुण, पर्यायोंकी परीक्षा की; अर्थात् स्वरूप, लक्षण तथा भेद आदिका कथन करके स्पष्ट रीतिसे पदार्थोंका निरूपण किया। श्रेषसे "क्रमाम्भोज" इस पदमें "भोज" यह अपने नामका निरूपण भी आचार्यने किया है ॥ १८॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारिपण्डितठाकुरप्रसादशर्मद्विवेदिप्रणीतभाषानुवादसमलङ्काः तायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूत्रम् । द्रव्यादिकानां तु विचारमेवं विभावयिष्यन्ति सुमेधसो ये । प्राप्स्यन्ति ते सन्ति यशांसि लक्ष्म्यः सौख्यानि सर्वाणि च वाञ्छितानि१

सूत्रभावार्थः—जो बुद्धिमान् इस प्रकार द्रव्य आदिका विचार करेंगे; वे उत्तम यश, लक्ष्मी तथा संपूर्ण अभिलपित सुखोंको प्राप्त होंगे॥ १॥ व्याख्या । एवमनया रीत्या द्रव्यादिकानां विचारं ये सुबुद्धयो विभावयिष्यन्ति ते सुमेषस इह सन्ति शोभनानि यशांसि । पुनः लक्ष्म्यः परत्र सर्वाणि वाञ्चितानि सुखानि प्राप्स्यन्तीति भावः ॥ १ ॥

च्याख्यार्थ:—इस पूर्वोक्त प्रकारसे जो उत्तम बुद्धिके धारक मव्य जीव द्रव्यादि पदार्थोंके विचारकी विभावना करेंगे वे सम्यक् ज्ञानधारी जीव अच्छे यश, और रुक्ष्मि-योंको प्राप्त करेंगे तथा परलोकमें सब वाञ्छित सुखोंको प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥

सूत्रम्। गुरोः श्रुतेश्चानुभवात्प्रकाशितः परो हि द्रव्याचनुयोग आन्तरः।

जिनेशवाणीजलधी सुधाकरः सदा शिवश्रीपरिभोगनागरः ॥२॥ सूत्रभावार्थः सर्वोत्तम, आन्तरिक ज्ञानस्वरूप, श्रीजिनेन्द्रके वचनरूपी समुद्रमें चन्द्रमाके समान तथा निरन्तर मुक्तिलक्ष्मीके सेवनमें नागर ऐसा यह द्रव्यानुयोग मैने गुरुके सिद्धान्तसे तथा अपने अनुभवसे प्रकाशित किया ॥ २ ॥

व्याख्या । गुरोक्षीनगुरोः श्वतः सिद्धान्तादनुभवात्स्वानुभूतेरान्तरोऽन्तर्ज्ञानमयः परः प्रकृष्टो द्रव्यानुयोगः प्रकाशितः । कीदृशो वीतरागवचनसमुद्रे चन्द्र इव चन्द्रः, निरन्तरं शिव- लक्ष्मीविलासे नायक इव नागर इति ॥ २ ॥

सूत्रम्।ये बालकास्ते किल लिङ्गदर्शिनो ये मध्यमास्ते तु बहिष्कियारताः। द्रव्यानुयोगाभ्यसने य उत्तमाः कृतादराः सत्पथसङ्गिनस्ते ॥ ३॥

सूत्रभावार्थ:—जो बालक (मूर्ख) हैं वे केवल लिक्क दर्शक हैं, जो मध्यम (कुछ ज्ञानके धारक) हैं वे बाह्यकियामें तत्पर हैं; इसलिये जो द्रव्यानुयोगके अभ्यासमें आदर करनेवाले हैं वेही उत्तम (विशेष ज्ञानके धारक) हैं और सन्मार्गके सङ्गी हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या । ये वालका इति सुगमम् । पोडशकवचनं-"बालः पदयति लिङ्गं मध्यमबुद्धि-विचारयति वृत्तिम् । आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन ।१।'' इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ:—'ये बालकाः' इत्यादि श्लोकका अर्थ सुगम है। इस श्लोकार्थके विषयमें पोडशकका भी वचन है—"बालक (मन्दवुद्धिजन) लिङ्गको देखता है, मध्यम बुद्धिके धारक वृत्तिका विचार करते हैं और जो ज्ञानी (उत्तम) हैं वे सर्व प्रकारसे शास्त्रोक्त तत्त्वकी परीक्षा करते हैं ॥ ३॥

सूत्रम् । क्रिया प्रिया नैव विमुच्य संविदं न ज्ञानमानन्दकरं विना क्रियाम्। समुचये योगदृशां निरूपितं यद्केखद्योतवदन्तरं महत्॥ ४॥

सूत्रभावार्थ:—ज्ञानके विना किया प्यारी नहीं होती है और कियाके विना ज्ञान भी आनन्दका कर्त्ता नहीं होता है। और योगदृष्टिसमुज्ञय नामक प्रंथमें तो सूर्यमें और खद्योत (जुगुनू) में जितना अन्तर (फरक) है उतना बड़ा भेद ही ज्ञान और कियामें निरूपण किया है। अर्थात् ज्ञान तो सूर्यके समान है और किया खद्योतके तुत्य है॥ ४॥

⁽१) इस व्याख्याका अर्थ सूत्रभावार्थसे ही समझ छेना चाहिये। क्योंकि इसमें विशेषता नहीं है।

सूत्रम्। खद्योतप्रतिमा किया तु कथिता ज्ञानं तु भानूपम-मित्येतन्महदन्तरं कित्युगे कश्चिद्धधो विन्दति। बाह्याभ्यासविनिर्मितो हि दुरितक्षेपो भवेददुर-श्चण्णक्षोदकणोपमः किमपरं वाक्यं बुधा ब्रूमहे॥५॥

सूत्र भावार्थ:— किया तो खद्योतके तुत्य कही गई है और ज्ञान सूर्यके समान है, इस प्रकार ज्ञान और कियामें बड़ा भेद है। इस भेदको किछ्युग (पंचमकाल)में कोईही विद्वान् जानता है। और बाह्यके अभ्याससे उत्पन्न हुआ जो पापका नाश है, वह दर्दुर (मेंडक) के द्वारा खोदे हुए मिट्टीके कणके बराबर है। बुधजनो! इससे अधिक किया तथा ज्ञानके भेदके विषयमें आपसे और क्या कहें ?॥ ५॥

व्याख्या । क्रियेति स्पष्टम् । यदुक्तं योगदृष्टिसमुचये "तात्कालिकः पक्षपातो भावशून्या च या क्रिया । अनयोरन्तरं क्षेयं भानुखद्योतयोरिव ।१।" "मङ्कचुन्नकप्पो कियाइ जाणिओ कओ किलेसाणं । तद्ददुरचुन्नकप्पो नाणकओ तं च आणाए ।। १ ।। ५ ।।"

च्यारुपार्थ:—"किया प्रिया" इत्यादि चतुर्थ तथा पंचम कोकका अर्थ स्पष्टही है इसिल्ये व्याख्या नहीं की। यही विषय योगदृष्टिसमुच्चयमें कहा है कि तत्काल अर्थात् उसी क्षणमें होनेवाले अपने पक्षपातको प्रकटकची ज्ञानमें और भावशून्य जो किया है उसमें सूर्य और खद्यो के बराबर भेद जानो ।१।" इस विषयमें यह गाथा भी है "किया आदिसे मेंडकके खोदे हुए मिट्टीके कणके बराबर पापोंका नाश होता है और ज्ञानसे मेंडकके समान पापका नाश होता है, यह सर्वज्ञकी आज्ञासे सिद्ध है ।१॥॥॥॥

सूत्रम् । मिथ्यात्वम् लाष्टककर्मसंस्था न कोटिकोटेरधिकोपदिष्टा। समागते ज्ञानगुणेऽत्र पुंसो महानिशीथोक्तमिति प्रमाणम्६

सूत्रभावार्थ: मनुष्यको ज्ञान गुण प्राप्त होनेपर मिथ्यात्व है मूल जिनका ऐसे आठों कर्मोंकी स्थिति कोटिकोटि सागरसे अधिक नहीं है. यह प्रमाण महानिशीथ ग्रंथमें कहा हुआ है ॥ ६ ॥

सूत्रम्। जानाति तत्त्वानि यथार्थमर्थं ब्रूते परान्यो दुरितं निहन्ति। अनन्तकायस्थमपाकरोति यो भाष्य उक्तः सतु केवली ज्ञः॥७॥

सूत्रभावार्थ: जो संपूर्ण तत्त्वोंको जानते हैं, जो भव्यजीवोंको यथार्थ पदार्थका कथन करते हैं, जो अनन्तकायस्थको दूर वे हैं वे भाष्यमें केवली कहे गये हैं॥ ७॥

व्याख्या। अथ मिथ्यात्वेति। ज्ञानं हि सम्यग्दर्शनसहितमेवायाति तत्प्राप्तौ च कदाचिद्पि मिथ्यात्वमध्यगतो भवेत्तथापि जीवः कोटाकोटिसागरप्रमितिकालाद्धिकं कर्मवन्धं न करोति "बंधेण न बोल्ड कयावीति"वचनात्। एतद्भिप्रायेण नन्दिषेणाधिकोर महानिशीथसूत्रे ज्ञानगु-णोऽप्रतिपाती कथितः। उत्तराध्ययनेऽपि यथोक्तं "सूई जहा समुत्ता ण णस्सई कयवरम्मि पिडियाई। इय जीवोवि ससुत्तो ण णस्सइ गओवि संसारे।१।" अत्र वृहत्कल्पगाथा चेयम् "गीयत्थे केवली चतुव्बिहे पन्नते तं जहा जाणणेय १ कहणेय २ उछरागद्दोसे ३ अणंतका-यस्स वज्जणेण य ४।।" गाथा—"गीयत्थस्स वयणेणं विसं हालाहलं पिवे। अगीयत्थस्स वयणेणं अमयंपि न घुट्टए।१। अगीयत्थ छुसीलेहिं संगं तिविहेण वोसिरे । मुक्खमगगस्स ते विग्धं पहंमि तेणगे जह।२।" "कर्त्तुमिच्छोः अतार्थस्य ज्ञानिनोऽपि प्रमादिनः। कलादिविकलो योग इतीच्छायोगलक्षणम्।१।" इति वचनं लिलतिवस्तरादौ प्रन्थे। दृढकरणवाक्यमाले-यम्। अन्नावद्यकगाथा—"दंसणपक्त्वो सावय चित्तनतेष्ठेय संद्धम्मे य । दंसणचित्तपक्त्वो समणे परलोगकं खंमि ।१।" "मणेरिवाभिजातस्य क्षीणवृत्तरसंशयम्। तात्स्थ्यात्तद्अनत्वाच समापत्तिः प्रकीर्त्तता ॥ १ ॥ ६ ॥ ७॥"

व्याख्यार्थ:--"मिथ्यात्वमूलाष्ट्रक" इस छट्टे तथा "जानाति तत्त्वानि" इस सातवें इन दोनों श्लोकोंको मिलाके व्याख्या करते हैं। ज्ञान गुण जब आता है तब सम्यग्दर्शन सहित ही आता है और उस ज्ञानके प्राप्त होनेपर जीव कदाचित् मिथ्यात्वके बीचमें आजाय तो भी कोटाकोटि सागर प्रमाण कालसे अधिक कर्मबन्धन वह जीव नहीं करता है, क्योंकि—"जो ज्ञानी है वह कर्मबन्धसे संसारमें कभी नहीं डूबता" ऐसा वचन है। इसी अभिप्रायसे महानिश्चीथ सूत्रमें निन्द्पेण अधिकारमें ज्ञान गुण अप्रति-पाती कहा है अर्थात ज्ञान गुण हुए पीछे पुनः उसका प्रतिपात (अधःपतन) नहीं होता है। और उत्तराध्ययनमें ऐसा कहा है कि "जैसे सूत्र (तागे) सहित सुई नष्ट नहीं होती किन्तु वस्त्र आदिमें प्रवेश करके पुनः निकल आती है, इसी प्रकार सूत्र (ज्ञान) सहित जीव भी संसारमें गया हुआ नष्ट नहीं होता है । १।" यहां यह बहुत्कल्पकी गाथा भी है-''गीतार्थ केवली जाननेवाले, कहनेवाले, रागद्वेषरहित, भौर अनन्तकायवर्जिक इन भेदोंसे चार प्रकारके कहे गये हैं।" "गीतार्थिके वचनोंसे हाला-हल विषको पीना चाहिये और अगीतार्थके वचनोंसे अमृत भी नहीं पीना चाहिये ।१।" "अगीतार्थक्रशीलोंका संसर्ग मन, वचन, कायसे छोडना चाहिये। क्योंकि, जैसे रास्तेमें चोर विष्नकर्ता होते हैं वैसे वे भी मोक्षमार्गमें विष्नके कर्ता हैं॥ १॥" 'शास्त्रके अर्थको करनेकी इच्छावाले प्रमादी ज्ञानीके जो कला आदिसे रहित योग है वही इच्छायोग कहलाता है, यह इच्छायोगका लक्षण है। १।" ऐसा वचन ललितविस्तर आदि प्रंथोंमें है। यह पूर्वोक्त जो वाक्यसमूह यहां दिया गया है सो इस विषयको पुष्ट करनेके लिये है। यहां आवश्यक गाथा भी है कि—''दर्शनपक्षको धारण करनेवाला श्रावक है। यह चारित्रसे नष्ट है, परन्तु धर्मसे आई है। और मुनि दर्शन तथा चारित्र दोनोंके पक्षको धारण करते हैं और परलोक अर्थात अग्रिम भवोंका नाश करते हैं अर्थात उसी भवसे मोक्ष जाते हैं । १ ।'' "शुद्धरत्नकी तरह क्षीणवृत्ति जीवके उसमें रहनेपनेसे तथा उसके अंजनपनेसे समापत्ति कही गई है. यह कथन निस्तन्देह है ॥ 181६॥७॥"

सूत्रम् । ज्ञानं हि जीवस्य गुणो विशेषो ज्ञानं भवाब्धेस्तरणे सुपोतः । ज्ञानं हि मिध्यात्वतमोविनाशे भानुः कृशानुः पृथुकमेकक्षे ८

सूत्रभावार्थ:— ज्ञान जो है वह जीवका विशेष गुण है, ज्ञान संसारह्मपी समुद्रके तिरनेमें उत्तम नौका (अच्छा जहाज) है। ज्ञान मिथ्यात्वरूपी अधकारको नष्ट करनेमें सूर्यके समान है। ज्ञान विशाल कर्मरूपी काष्ठके भसा करनेमें अग्निके समान है॥८॥ सूत्रम्। ज्ञानं निधानं परमं प्रधानं ज्ञानं समानं न बहुकियाभिः।

ज्ञानं महानन्दरसं रहस्यं ज्ञानं परं ब्रह्म जयखनन्तम् ॥ ९॥

सूत्रभावार्थ:— ज्ञान सर्वोत्तम खजाना है, ज्ञानही सबमें प्रधान है, ज्ञान अनेक कियाओं के समान नहीं है अर्थात् अनेक प्रकारके आचरणोंसे भी विशिष्ट ज्ञानही है, ज्ञानही महा आनन्दरूप सुखका देनेवाला रस है, ज्ञानही परमात्माका रहस्य है और अन्तरहित है, ऐसा ज्ञान सर्वोत्कर्षता करके वर्त्तता है। ९॥

सूत्रम् । बाह्याचारपराश्च बोधरहिता इच्छाख्ययोगोद्धताः ये केऽपि प्रतिसेवनाविधुरितास्ते निन्दिताः शासने । ये तु खच्छमतुच्छवाञ्जयकलाकौशल्यमाबिभ्रति सार्वोक्तामृतपानसादरिधयस्तेभ्यो सुनिभ्यो नमः॥१०॥

सूत्रभावार्थ:—जो बाह्यकी कियाओं में तत्पर हैं, ज्ञानकरके रहित हैं, इच्छायो-गसे उद्धत हैं और ज्ञानादिको सेवनासे रहित हैं; वे जीव जिनमतमें निन्दित समझे जाते हैं. और जो अतिनिर्मल तथा विशाल ज्ञानकलाके कौशत्यको धारण करते हैं और सर्वज्ञके वचनरूपी अमृतके पीनेमें आदरपूर्वक बुद्धिको धारण करनेवाले हैं, उन मुनि-योंको मेरा नमस्कार है ॥ १०॥

अथ प्रशस्तिः।

श्लोकः। श्रीवीरपद्दाधिपतिर्वभूव सूरिः सुरत्नाद्विजयो यशस्त्री। यस्मिन्समुद्रे विविद्युः समग्रा विद्यासुनद्यश्च चतुर्दशापि११

अब ग्रंथकार पशस्ति लिखते हैं।

श्लोकार्थ:—श्रीवीरके पट्टके स्वामी, तथा यशके धारक श्रीरत्नविजयजी सूरि हुए, जिन रत्नविजयजी सूरिरूप समुद्रमें समस्त चौदह विद्यारूप उत्तम २ निर्देये प्रविष्ट थीं अर्थात् सब विद्याओं के धारक रत्नविजयजी सूरि हुए ॥ ११ ॥

श्लोकः । तत्पद्दोदयद्दौलसङ्गतरिवर्मिध्यातमस्त्रासने भव्याम्भोरुहभासने सुविपुलं ज्ञानाऽस्त्रभारं वहन् । कुग्राहग्रहतारतारकमिलद्दोषाविलं पुष्करं द्योभावद्विद्धन्वभूव विजयाच्छ्रीमत्क्षमाधीश्वरः॥१२॥त् स्रोकार्थ:—उन रत्नविजयसूरिजीके पट्टरूपी उदयाचलके समागमसे सूर्यके समान, और मिथ्यात्वरूपी अंधकारको दूर करनेके लिये तथा भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये ज्ञानरूपी किरणोंके समूहको धारण करनेवाले और खोटे सिद्धान्तको प्रहण करनेवाले अच्छे वादीरूप तारोंके संगमसे रात्रिपूर्ण आकाशको शोभायुक्त करने वाले ऐसे श्रीक्षमाविजयजी सूरि हुए ॥ १२ ॥

श्लोकः। मदनो निहतः खरूपतस्तरसा येन जितः सुराचलः।
महसा सहसा सहस्रक्षिवजितः सौम्यतया सुधाकरः॥१३॥ वचसा वचसामधीशिता कविताभिः कविरीशवस्त्रया।
हरिरेव जितो यशस्त्रिना विदुषा केन स चोपमीयते॥१४॥
युगमम्।

शुकार्थ:—यशके धारक जिन्होंने अपने रूपसे कामदेवको हराया, गुरुतासे सुमे-रुको जीता, स्वभावसे उत्पन्न तेजसे सूर्यको जीता और सौम्यतासे चंद्रमाको जीता॥१३॥ वचनसे बृहस्पतिपनेको, कवितासे शुक्रको और ऐश्वर्यसे इन्द्रको जीता. ऐसे उन आचा-याँको विद्वान् किसकी उपमा देवें अर्थात् जो उपमा देने योग्य पदार्थ थे उनको तो उन्होंने अपने गुणोंसे ही जीत लिया, अब उनको किसकी उपमा दी जावे॥ १४॥ इन दोनों श्रीकोंको मिलाके अर्थ किया गया है, इस लिये युग्म है।

श्होकः। सरस्रती यस्य मुखान्निरन्तरा प्रकाशमासाद्यति प्रभाविनी। हिमाद्रिपद्मद्रहतो निरस्यया सरिद्वरेवामरस्रोकपूजिता॥१५॥

श्लोकार्थ:—जैसे हिमाचलके पद्मद्रहसे देव तथा मनुष्योंसे पूजित गंगानदी निरन्तर निकलती हैं, उसी प्रकार जिनके मुखसे प्रभावकी धारक सरखती सदा प्रकट होती: रहती हैं ॥ १५॥

श्लोकः । यदीयकीर्तिर्धवलेष्टमूर्तिस्त्रिलोकसंपूर्तिमियर्ति नित्यम् । अनादिगङ्गैव जडस्वभावं विहाय वैशयमुरीचकार ॥ १६ ॥

श्होकार्थ:—उज्वल इष्ट आकारको धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति सदा तीन लोकको पूर्ण (व्याप्त) कर रही है सो यह कीर्ति ऐसी सोहती है, मानो अनादि गंगाने अपने जड़ (जल) स्वभावको छोड़कर, सचेतनता (निर्मलता) को ही स्वीकार करलिया है ॥ १६॥

श्होकः । अहो यदीयेन गुणोचयेन विहाय संख्यां ववृधे यथास्त्रम् । अतः कणादोक्तगुणेषु दक्षा गुणत्वजातिं न तथा वदन्ति ॥१७॥ श्होकार्थः—आश्चर्य है कि जिनके गुणोंका समूह संख्याको छोड़कर, इच्छानुसार गिंद्धको प्राप्त हो गये। इसी छिये कणादके कहे हुए गुणोंमें चतुर जन गुणत्व जातिको सी नहीं कहते हैं॥ १७॥

श्लोकः। यत्कीर्तिकान्ता व्यभिचारिणीव समुत्सुकैका त्रिदिवं जगाम तत्रामरस्पर्शविद्यीर्णहारा तस्तार तारोपममौक्तिकैः खम्१८

श्रोकार्थ:—जिनकी कीर्तिरूपी स्त्री व्यभिचारिणी स्त्रीकी नांई समुत्सुक होकर, ग्रीही स्वर्गमें चली गई. वहांपर देवोंके संसर्गसे टूटे हारवाली होकर, तारोंके समान गेती हैं उनसे आकाशको आच्छादित करती हुई। भावार्थ—ये आकाशमें तारे नहीं . कन्तु उन आचार्योंकी कीर्तिरूप स्त्रीके हारमेंसे टूटे हुए मोती हैं ॥ १८ ॥

श्लोकः । अहीनो नोऽहीनो यद्पि वपुषा भूभरज्ञषा तथाप्यास्ये वाणी हसति तुच्छैषीति भणनात्। अतस्त्वादेब्रीह्मीभणननियमश्चेतसि कृत-स्त्रिकालस्त्रैलोक्यस्त्रिपद्मयसन्दर्भविततः॥ १९॥

श्रोकार्थः ययि वे पृथ्वीको धारण करने रूपगुणसे शोभायमान शरीरसे अहीन अर्थात् उत्तम थे, तथापि अहि+इन=अहीन अर्थात् शेषनागजी नहीं थे, और उनके पृथ्वमें जो बाणी है वह शेषी इस नामके कहनेसे शब्द करती है, इसी लिये उन्होंने अपने मनमें तीन काल, तीन लोक और तीन रहोंको रचनासे प्रसिद्ध ओंकाररूप आदिकी वन्धी वाणीके कथन करनेका नियम किया ॥ १९॥

होकः। स एष गच्छाधिपतिर्विभाति स्रीश्वरः श्रीविजयाद्याख्यः। यस्य प्रभावेण च पश्चमेऽपि चतुर्थभावं समवाप धर्मः॥२०॥

होकार्थ:—वे उपरोक्त गुणोंके धारक ये गच्छके स्वामी श्रीदयाविजयजी नामक एउजी सर्वोत्तम रूपसे प्रकाशमान हो रहे हैं, जिनके प्रभावसे पंचमकालमें भी धर्म कालपनेको प्राप्त हुआ अर्थात् पंचमकालमें भी चतुर्थकाल जैसी धर्मीकृति ॥ २०॥

श्होकः । तैरनुग्रहिषया विधिरेष दिशातो मिय च शास्त्रसमुत्थः । तत्कृते च मयका रिचतोऽयं ग्रन्थ आगमपदैश्च पुराणैः॥२१॥

श्होकार्थ:—उन श्रीदयाविजयजी सूरीश्वरजीने ही कृपाबुद्धिसे मुझमें शास्त्रका ज्ञान दर्शाया है (प्रकट किया है) और इस लिये उन्हींकी प्रसन्नताके लिये प्राचीन सिद्धा-न्तोंके पदोंसे यह (द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक) प्रन्थ मैने रचा है ॥ २१ ॥

श्लोकः । तद्गच्छपुष्करिद्वाकररिदमतुल्याः श्लीभावसागर इति प्रथिताभिधानाः ।

तद्नितषच्छ्रीविनितादिवारां निधीश्वराः शास्त्रविचारदक्षाः ॥ २२ ॥

श्होकार्थ:—उस गच्छरूपी कमलको सूर्यकी किरणके समान, श्रीभावसागरजी इस नामसे प्रसिद्ध सूरि हुए और उनके शिष्य शास्त्रविचारमें चतुर श्रीविनीतसागरजी हुए ॥ २२ ॥

श्लोकः । तेषां विनेयलेशेन भोजेन रचितोक्तिभिः । परखात्मप्रबोधार्थं द्रव्यानुयोगतर्कणा ॥ २३ ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां कृतिभोजविनिर्मितायां समाप्तिसन्दर्भाध्यायः पञ्चदशः ।

स्होकार्थ:—उन श्रीविनीतसागरजीके तुच्छ शिष्य मुझ भोजसागरने परके तथा निजके प्रबोधके लिये वचनोंसे इस द्रव्यानुयोगतर्कणाको निर्मित किया ॥ २३ ॥

श्लोकः । श्रीगुरोश्चरणद्रन्द्रसरसीरुहसेवया । ठाकुरप्रसाद्विदुषा ग्रन्थोऽयं समनृद्तिः ॥ १ ॥

इति श्रीपण्डितठाकुरप्रसादप्रणीतभाषानुवादसमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगत• र्कणायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

। शं भूयात्।